ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-5)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम श्री अष्टपाहुड़
पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1973-74 में हुए शब्दशः प्रवचन
मोक्षपाहुड़, गाथा 1 से 89
प्रवचन नं. 149 से 152; 117-141; 87-88; 93 से 95

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2080

वीर संवत
2551

ई. सन
2024

—: प्रकाशन :—

वर्तमान शासननायक भगवान श्री महावीरस्वामी के
निर्वाण कल्याणक महोत्सव,
दिनांक 01 नवम्बर 2024 के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर पर नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। वर्तमान जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव से सुचारूरूप से परिचित है ही, तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रह जा सकता।

आपश्री ने स्वयं की अनुभवगर्भित कलम द्वारा निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा होता है, उसे भाववाहीरूप से अनेक परमागमों में प्रसिद्ध किया है। जंगल में रहकर स्वरूप आराधना में लीन रहते-रहते, केवलज्ञान की तलहटी में पहुँचकर, स्वसंवेदनमयी प्रचुर स्वसंवेदन में रहकर पवित्र मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। अनुभवप्रमाण इन सर्व से बलवान प्रमाण गिनने में आया है, जो आपके प्रत्येक वचन में प्रसिद्ध हो रहा है। अनेक महान आचार्यों ने भी आपका उपकार व्यक्त करके कहा है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यदि इस काल में मोक्षमार्ग को प्रसिद्ध न किया होता तो हम मोक्षमार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकते?

संवत् 49 में विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्य देशना को प्रत्यक्ष सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर आपने अनेक परमागमों की रचना की है। पंच परमागम वर्तमान जैनसमाज में प्रसिद्ध हैं। उसमें अष्टपाहुड़ ग्रन्थ भी समाविष्ट है। अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की रचना देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ दार्शनिक दृष्टिकोण से रचा गया है। आठ अधिकार (पाहुड़) की रचना में प्रत्येक में भिन्न-भिन्न विषयानुसार सूत्रों की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकार में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करके विपरीत अभिप्राय किस प्रकार के होते हैं और उनका क्या फल आता है तथा सम्यक् अभिप्राय का फल क्या आता है, उसका स्पष्ट चित्रण कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने चित्रित किया है।

शास्त्रों में तो आचार्य भगवन्तों ने निष्कारण करुणा से भव्य जीवों के हित के लिये रचना तो की है परन्तु वर्तमान दुषमकाल में उसका भाव समझना अत्यन्त विकट हो गया था और विपरीत अभिप्रायों की प्रचलितता और रूढ़िवाद में समाज जब डूबा हुआ था, ऐसे कलिकाल में, विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना को साक्षात् सुनकर भरतक्षेत्र में पधारनेवाले भावितीर्थाधिनाथ परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सूर्य समान अवतार, मुमुक्षु जीवों के मिथ्यात्व-अन्धकार को मिटाने के लिये हुआ। अनेक रूढ़िचुस्तता, मिथ्या अभिप्राय, क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग समझकर, मानकर उसकी आराधना चलती थी, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने निष्कारण करुणा से शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की अन्तरखोज द्वारा तथा श्रुतज्ञान की लब्धि द्वारा सत्य मोक्षमार्ग का स्वरूप खुल्ला किया। पूज्य गुरुदेवश्री ने 45 वर्ष तक अनेक परमागमों पर प्रवचन किये, जिसमें अनेकानेक सिद्धान्तों को प्रसिद्ध करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रसिद्ध किया। प्रत्येक प्रवचनों में आत्मा का मूलभूत स्वरूप, निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप, मुमुक्षुता, सिद्धान्तिक वस्तु का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप, निमित्त-उपादान का स्वरूप, सर्वज्ञ का स्वरूप इत्यादि अनेक विषयों को स्पष्ट करके कहीं भ्रान्ति न रहे, इस प्रकार से प्रकाशित किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरश: प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्द भरपूर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टपाहुड़ परमागम पर, ई.स. 1973-74 में हुए प्रवचनों को प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन शृंखला के पाँचवें भाग में मोक्षपाहुड़ की गाथा-1 से 89 तक के प्रवचन क्रमांक-149 से 152; 117-141; 87-88 तथा 93 से 95 तक का समावेश किया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसी अष्टपाहुड़ परमागम पर ई.स. 1970-71 में हुए प्रवचनों का शब्दश: प्रकाशन 'अष्टपाहुड़ प्रवचन' भाग 1 से 7 तक पूर्व में गुजराती एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा चुका है। तथा सन् 1952 में हुए प्रवचन दैनिक 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में उपलब्ध हैं, जिसका पहला भाग संकलित प्रवचन के रूप में 'अष्टपाहुड़ प्रवचन, भाग-1' पूर्व में इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में संग्रहित करने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उसके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट

(vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् विद्यमान रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारूलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत तथा vitragvani (app) पर भी उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

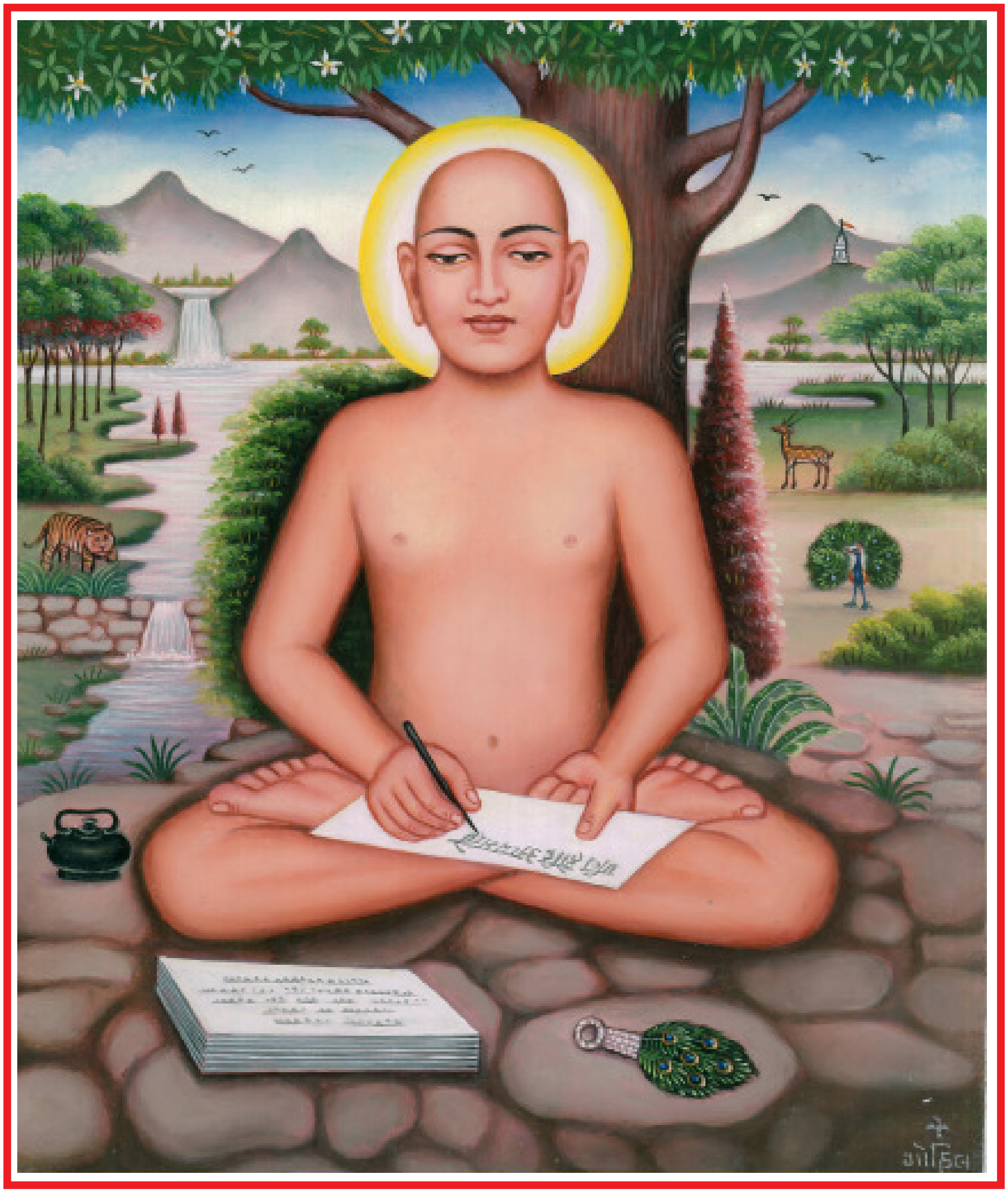

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ '**स्टार ऑफ इण्डिया**' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१४९	१७-०५-१९७४	मोक्षपाहुड़ १ से ५	१
१५०	१८-०५-१९७४	५ से ६	१५
१५१	१९-०५-१९७४	६ से ९	१६
१५२	२०-०५-१९७४	९ से १२	२७
११७	२४-०२-१९७४	१३ - १४	४१
११८	२५-०२-१९७४	१४	५४
११९	२६-०२-१९७४	१५ - १६	६७
१२०	०७-०३-१९७४	१६ से १८	८४
१२१	०८-०३-१९७४	१८ से २०	१०१
१२२	०९-०३-१९७४	२० से २३	१२०
१२३	१०-०३-१९७४	२४ से २६	१३८
१२४	११-०३-१९७४	२७	१५४
१२५	१२-०३-१९७४	२७ से २९	१७१
१२६	१३-०३-१९७४	२९ से ३१	१९०
१२७	१४-०३-१९७४	३२ - ३३	२०७
१२८	१५-०३-१९७४	३४ से ३७	२२३
१२९	१७-०३-१९७४	३८ से ४१	२३९
१३०	१८-०३-१९७४	४१ से ४४	२५५
१३१	१९-०३-१९७४	४५ से ४८	२६८
१३२	२०-०३-१९७४	४९ से ५३	२८४
१३३	२१-०३-१९७४	५३ से ५५	२९९

१३४	२२-०३-१९७४	५५ से ५७	३१५
१३५	२६-०४-१९७४	५८ से ६२	३३२
८७	१३-०९-१९७०	६३ से ६५	३४८
८८	१४-०९-१९७०	६५ से ६९	३६८
१३७	२८-०४-१९७४	६७ से ६९	३८७
१३८	२९-०४-१९७४	७० से ७३	४०२
१३९	०१-०५-१९७४	७३ से ७६	४१३
१४०	०२-०५-१९७४	७७ से ८०	४३०
१४१	०३-०५-१९७४	८१ से ८३	४४६
९३	२०-०९-१९७०	८२ – ८३	४६०
९४	२१-०९-१९७०	८४ से ८६	४७५
९५	२३-०९-१९७०	८६ से ८९	४९४

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-5)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९७३-७४ के प्रवचन)

मोक्षपाहुड़

—६—

वैशाख कृष्ण ११, शुक्रवार, दिनांक १७-०५-१९७४
गाथा - १ से ५, प्रवचन-१४९

गाथा - १

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स॥१॥

मोक्षपाहुड़ की पहली गाथा का भावार्थ है। **यह मोक्षपाहुड़ का प्रारंभ है।** बारह गाथा रह गयी थी न यह। **यहाँ जिन ने समस्त परद्रव्य को छोड़कर...** जिन को नमस्कार किया है। अरिहन्त अथवा सिद्ध—दोनों। मोक्ष का अधिकार है, इसलिए भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष हुआ है, उन्हें यहाँ नमस्कार किया है। कैसे हैं जिन? **समस्त परद्रव्य को छोड़कर...** जिन्हें राग का विकल्पमात्र सब परद्रव्य छूट गये हैं। ऐसे **कर्म का अभाव करके...** वह केवलज्ञानानन्दस्वरूप... केवलज्ञानानन्दस्वरूप—अकेला ज्ञान और आनन्द, ऐसा स्वरूप जिसका **मोक्षपद को प्राप्त कर लिया है,...** उस मोक्षपद की यह व्याख्या।

केवलज्ञानानन्दस्वरूप... अकेले ज्ञान और आनन्द की दशा की प्राप्ति पूर्ण, ऐसे मोक्ष को प्राप्त किया है जिन्होंने।

उस देव को मंगल के लिये नमस्कार किया—यह युक्त है। ऐसे देव को मोक्षप्राभृत की शुरुआत में उनको नमस्कार किया, यह बराबर—समुचित है। **जहाँ जैसा प्रकरण, वहाँ वैसी योग्यता।** ऐसा कहते हैं। यह मोक्ष का प्रकरण है, इसलिए मोक्षप्राप्त को नमस्कार किया है, ऐसा कहते हैं। **यहाँ भाव-मोक्ष तो अरिहन्त के हैं...** अरिहन्त को भावमोक्ष तो हुआ है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द (तो प्रगट हुए है)। अभी चार कर्म बाकी हैं, इसलिए द्रव्यमोक्ष अभी नहीं है। **और द्रव्य-भाव दोनों प्रकार के मोक्ष सिद्ध परमेष्ठी के हैं,...** सिद्ध परमेष्ठी को तो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से मोक्ष है। भावमोक्ष तो है, परन्तु यह चार (अघाति) कर्म टल गये, इसलिए द्रव्यमोक्ष भी है। **इसलिए दोनों को नमस्कार जानो।** मोक्षदशा केवलज्ञानमय, आनन्दमय, उसका अधिकार वर्णन करना है, इसलिए उसे प्राप्त को यहाँ नमस्कार किया है। जिसे परद्रव्य छूटकर स्वद्रव्य अकेला पर्याय में अकेला निर्मल परिपूर्ण रह गया, उसका नाम मोक्ष। मोक्ष अधिकार में ऐसे मोक्ष प्राप्त को नमस्कार किया है।

★ ★ ★

गाथा - २

आगे इस प्रकार नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं:—दूसरी गाथा।

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं॥२॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि उस पूर्वोक्त देव को... पूर्वोक्त देव कहा न? **'णमिऊण य तं देवं'** ऐसे केवलज्ञान प्राप्त देव को मोक्ष, भाव और द्रव्यमोक्ष प्राप्त को नमस्कार करके **परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा...** परमात्मा **उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा उसको, परम योगीश्वर जो उत्कृष्ट योग्य ध्यान के करनेवाले मुनिराजों के लिये कहूँगा।** परमात्मा को कहूँगा, ऐसा कहते हैं। पहले तो परमात्मा को नमस्कार किया।

अब परमात्मा का स्वरूप जो है, उसे मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं। **परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा उसको, परम योगीश्वर जो उत्कृष्ट योग्य ध्यान के करनेवाले...** उसे कहता हूँ। परमात्मा का स्वरूप मैं कहूँगा। किसे? जिसे आत्मा के ध्यान में जिसकी लगन लगी है, ऐसे मुनियों को, परम योगी के लिये यह परमात्मा का अधिकार कहूँगा। ऐसा कहते हैं।

कैसा है पूर्वोक्त देव? फिर देव की व्याख्या (करते हैं)। **जिसके अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन पाया जाता है, विशुद्ध है—कर्ममल से रहित है, जिसका पद परम उत्कृष्ट है।** मोक्ष। यह मोक्ष की दशा की—परमात्मदशा की बात सन्तों ने की, मुख्यरूप से सन्तों के लिये (कहते हैं)। योग्यता है न? गौणरूप से गृहस्थ है, प्रधानरूप से तो मुनि है। प्रधानपना कहा है न उसमें? अर्थ में करेंगे।

भावार्थ :- इस ग्रन्थ में मोक्ष को जिस कारण से पावे... ऐसा। मोक्ष—आत्मा के परम आनन्द का लाभ जिस कारण से पावे **और जैसा मोक्षपद है,...** ऐसा। वर्तमान मोक्ष का कारण और जैसा मोक्षपद है, **वैसा वर्णन करेंगे,...** मोक्ष का वर्णन और मोक्ष पाने के कारण का वर्णन। **इसलिए उसी रीति उसी की प्रतिज्ञा की है।** इस प्रकार उसकी प्रतिज्ञा की। मोक्ष को कहूँगा और मोक्ष के उपाय को भी कहूँगा। **योगीश्वरों के लिये कहेंगे,...** ऐसा कहा न? मूल तो मुनि ध्यानी (जिन्हें) आत्मा में अन्तर्लीन होने की बहुत योग्यता है। **योगीश्वरों के लिये कहेंगे, इसका आशय यह है कि ऐसे मोक्षपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं,...** ऐसे मोक्षपद को अर्थात् परम ज्ञानानन्द पर्याय की प्राप्ति को **शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा...** वह शुद्ध परमात्मा अपना स्वरूप है, उसके ध्यान द्वारा **प्राप्त करते हैं,...** लो! मोक्ष को कैसे प्राप्त करते हैं, यह भी बात की। वह परमस्वरूप भगवान आत्मा परमात्मा का ध्यान करके परमात्मपद प्राप्त करता है। कोई क्रियाकाण्ड से, व्रत-नियम से वह कहीं मोक्ष प्राप्त होता नहीं।

मुमुक्षु : व्रत-नियम से नहीं होता, ऐसा आया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा आया न परन्तु। उससे होता है और उससे नहीं होता। व्यवहार व्रत। व्रत, तप, दान, दया, पूजा, भक्ति।

मुमुक्षु : सबसे होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, कहते हैं, अब क्या हो परन्तु उसे बेचारे को। उसे ऐसा कठोर लगे कि अन्दर एकदम आत्मा... ऐसी राग की क्रिया से न मिले तो करने का तो यह है, ऐसा। परन्तु यह करने की ही बात नहीं। राग के विकल्प से भिन्न पड़कर परमात्मस्वरूप अपना अन्तरात्मा का, बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा का ध्यान करके परमात्मपद प्राप्त करता है। दूसरा क्या हो?

मुमुक्षु : अकेले ध्यान के साधन, द्रव्य साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन ही कहाँ थे? यह तो कहा नहीं? उसमें कहा है। 'जो जो साधक है, वह वह वहाँ बाधक है।' कहा है न? समयसार नाटक। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो पण्डित ने कहा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित ने कहा है तो न्याय से कहा है न! न्याय से चाहे जो कहे न! बालक हो आठ वर्ष का समकिती, वह न्याय से कहे तो मान्य रखे। उसमें क्या है? आहाहा! विकल्पमात्र साधक कहीं कहा हो तो वह बाधक है, ऐसा। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है—ऐसा आता है न, आता है। वह तो सब बातें व्यवहार की जानने की बात है।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी विराजमान परमात्मस्वरूप स्वयं उसका ध्यान, उसमें एकाग्रता से अनन्त आनन्द और ज्ञान की प्राप्तिरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसमें तीन बातें कीं। एक तो स्वयं शुद्ध परमात्मा स्वयं है, उसका ध्यान करने से मोक्ष का मार्ग होता है और उसकी पूर्ण प्राप्ति से मोक्ष होता है। आहाहा! बात तो यह है। चाहे जो फिर लाख बात करे। चरणानुयोग में आवे सब बातें। ऐसा उचित व्यवहार कैसा है, ऐसा बतलाया है। व्यवहारनय से उसमें कहा है, 'करे' ऐसा कहा है। आहाहा!

उस ध्यान की योग्यता योगीश्वरों के ही प्रधानरूप से पाई जाती है,... देखा! अर्थ ऐसा किया। उसने तो ऐसा अर्थ किया, ध्यान की योग्यता मुनि को ही होती है, गृहस्थ को होती नहीं। आहाहा! टीकाकार। है न दो? ऐसा तो नहीं आया? योगसार में नहीं आया? कितना श्लोक? १७ और ६५ दो (श्लोक)। गृहस्थ भी ध्यान करता है।

क्या शब्द है ? गृहकाम करते हुए—ऐसा आता है। आत्मा का ध्यान करता है। यहाँ तो मुख्यता की बात ली है। गृहस्थों को भी आता है। यह **ध्यान की योग्यता (सन्तों को) योगीश्वरों के ही प्रधानरूप से पाई जाती है, गृहस्थों के यह ध्यान प्रधान नहीं है।** ऐसी बात बराबर है। मुख्यता उन्हें नहीं। चौथे गुणस्थान से ही निर्विकल्प ध्यान शुरु होता है। आहाहा! भले निर्विकल्प उपयोग किसी समय हो, परन्तु होता है न ? चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में निर्विकल्प शुद्ध उपयोग होता है। आहाहा! उसकी प्रधानता नहीं है, प्रधानता मुनियों को है ध्यान की, ऐसा कहते हैं। यह पण्डित जयचन्द्रजी ने तो जैसा है, वैसा बराबर (कथन किया है)। वे खींचते हैं (कि) गृहस्थ को होता नहीं। वह तो मुनिपने की ध्यान की योग्यता गृहस्थ को नहीं होती है, ऐसा है। ऐसा नहीं होता। आहाहा! उन्हें जो ध्यान अन्दर तीन कषाय के अभाव से हुआ, वह आत्मा में जमावट जम जाये... आहाहा! ऐसा ध्यान इसे नहीं होता, बस इतनी बात है। इसलिए पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा न, **योगीश्वरों के ही प्रधानरूप से पाई जाती है,** ध्यान की योग्यता। **गृहस्थों के यह ध्यान प्रधान नहीं है।** प्रधान नहीं है, परन्तु गौणरूप से है न इन्हें ? आहाहा! दो गाथा ऐसी आती है योगसार में।

आत्मा वस्तुस्वरूप पूरा, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप वस्तु है न वह ? उसकी जहाँ सम्यग्दृष्टि हुई, तब वह सम्यग्दर्शन ध्यान में तो प्राप्त होता है। ऐसा नहीं आया ? **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** (वृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा-४७) देखो! सर्वत्र है। तीन भक्ति नहीं दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ? श्रावक को भक्ति है। आहाहा! दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भी दशा गृहस्थ को है। निश्चयभक्ति है, ऐसा कहा है, लो! कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं कहा है।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि स्वयं निश्चयदृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो ऐसा कि तीन की है वहाँ तो। तीनों की है। आत्मा में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एकाग्रता और शुद्धता है। चन्दुभाई! आता है ? नियमसार में। भक्ति अधिकार। दोनों को—श्रावक को और मुनि को, दोनों को कहा है। यह मूल बात पूरी पड़ी रही, इसलिए लोगों को कठोर लगता है।

दो साधु आज आये थे, मन्दिरमार्गी। मैं दिशा जाकर आऊँ, वहाँ खड़े रहे सब। पीपलिया से आते होंगे। जल्दी निकले होंगे। खड़े रहे मैं आऊँ तब तक। क्या नाम? नेमिसागर, नहीं? नेमविजय। आये। देखने गये, देखा। ... यह ३२ सूत्र का आगम स्थापित किया है न? ... कहा, नहीं, नहीं, यह तो दिगम्बर के आगम हैं। वे मानो कि यह स्थानकवासी में से आये न, स्थानकवासी के नहीं न? ३२ सूत्र कहे हैं। वहाँ वे ४५ कहे हैं, ऐसा। परन्तु मध्यस्थ थे। ... आज आये थे। अन्त में आ गये अन्दर।

अरे! भाई! किसी भी प्राणी के प्रति भी ऐसा विचार उसे (न हो)। मध्यस्थ से उसे व्यक्ति को वैरी देखे कि यह तो ऐसा है, ऐसा कुछ कारण है? दृष्टि में भले अन्तर हो, परन्तु व्यक्ति के प्रति प्रेम से, प्रेम से मिलना, बातचीत में दिक्कत क्या है? यहाँ क्या सर्वत्र? ... कहा, मार्ग तो यह है सम्यग्दर्शन का। यह बात कान में पड़ी नहीं। ... अरे! भगवान! चाहे वह त्यागी बाहर से हुए परन्तु उन्हें बेचारों को... वस्तु तो यह करने की है न? आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति प्रभु का ध्यान मुख्यरूप से तो... ध्यान में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होते हैं। आहाहा! ....

गृहस्थों के यह ध्यान प्रधान नहीं है। पण्डित जयचन्द्रजी ने तो बहुत सरस अर्थ (किया है)। मध्यस्थ से। उन्होंने... क्या नाम? श्रुतसागर। (वे कहे), गृहस्थ को ध्यान होता नहीं। जाओ!

मुमुक्षु : इसका अर्थ ऐसा हुआ कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या इसका अर्थ? .... आहाहा! पर की भक्ति, वह कहीं मोक्ष का मार्ग है? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३

आगे कहते हैं कि जिस परमात्मा को कहने की प्रतिज्ञा की है... परमात्मस्वरूप की प्रतिज्ञा की है कि परमात्मा कैसे होते हैं। **उसको योगी ध्यानी मुनि जानकर उसका ध्यान करके परम पद को प्राप्त करते हैं—**

जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं॥३॥

अर्थ :- आगे कहेंगे परमात्मा को जानकर... परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्य आनन्दघनस्वरूप। आहाहा! अन्तर स्वरूप, वह परमस्वरूप है परम शुद्ध चैतन्य। परम ध्रुवस्वरूपी परमस्वरूप है। परमपारिणामिक सहजस्वभाव, जिसे सहजात्मस्वरूप कहते हैं, वह यह है। आहाहा! ऐसा जानकर। ऐसा अपना भगवान सहजात्मस्वरूप स्वाभाविक वस्तु अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि गुण से सम्पन्न ऐसे **परमात्मा को जानकर योगी (मुनि) योग (ध्यान) में स्थित होकर निरन्तर उस परमात्मा को अनुभवगोचर...** बस, यह पाठ है। '**जोइऊण**' अर्थात् देखकर, ऐसा। '**जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं दष्टवा अणोवमं**' निरन्तर वैसे अन्दर भगवान आत्मा के स्वरूप का ध्यान करे। '**जोइऊण**' है न तीसरा शब्द? '**जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण**' इतने तो एक साथ ज-ज शब्द पड़े हैं। '**जं**' एक शब्द आया वह 'ज' आया '**जाणिऊण**' दूसरा 'ज' '**जोइऊण**' तीसरा 'ज' '**जोअत्थो**' चौथा, '**जोइऊण**' पाँचवाँ। पाँच तो 'ज' आये। '**जं जाणिऊण**' जिसे जानकर। '**जोई**' अर्थात् अन्तर के स्वरूप में जुड़ान करनेवाला, '**जोअत्थो**' अर्थात् ध्यान में स्थित। '**जोअत्थो**' अर्थात् ध्यान में स्थित। '**जोइऊण**' अर्थात् वस्तु को देखकर। '**दष्टवा**' त्रिकाल परमानन्दस्वरूप है, उसे देखकर। वह '**जाणिऊण**' और देखकर, दो डाले। '**जाणिऊण**' शब्द है न पहला? '**जाणिऊण**' और '**दष्टवा**' ऐसा। आहाहा!

वह परम शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, उसे जानकर मुनि अपने स्वरूप में स्थित होकर निरन्तर। '**अणवरयं**' आहाहा! मुनि है न, उन्हें तो निरन्तर वही ध्यान होता है। आहाहा! अब अभी कहते हैं, शुभयोग ही होता है। शुद्ध होता ही नहीं अभी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि मुनि को तो शुद्ध ध्यान ही होता है। वह

'अणवरयं' निरन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में स्थ-ध्यान में रहकर, निरन्तर उसका ध्यान करे। आहाहा! **निरन्तर उस परमात्मा को अनुभवगोचर करके...** आनन्दस्वरूप के अनुभव में उसे गम्य करके। आहाहा! वह परमानन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं ध्रुव, उसे जानकर, उसमें जुड़ान करके, उसमें स्थिर होकर, उसे देखकर निरन्तर उसका ध्यान करे। आहाहा! अमृत बहाया है अकेला। यह तो समझ में आये ऐसा है। नहीं समझ में आये, ऐसा नहीं।

'जं जाणिऊण' जिसे जानकर जाननहार में एकाग्र हुआ है, ऐसा कहते है। जिसे जानकर जाननेवाला योगी अर्थात् उसमें एकाग्र हुआ है और उसमें स्थित है, उसे देखकर निरन्तर... आहाहा! **परमात्मा को अनुभवगोचर करके...** परमात्म अपना स्वरूप है, उसे अनुभवगम्य करके। अरे! ऐसी बात को... आहाहा! इसमें कहाँ झगड़ा है? इसमें वाद-विवाद कहाँ? यह वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। उसमें किसी को दिखाना है, कोई यह देखे तो मेरी यह चीज़ रहे, ऐसा यहाँ तो कुछ नहीं। तू तुझे देख, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! आहाहा! हमको आती है यह बात। तुम जानो कि हमको यह आती है। यह तो आया नहीं यहाँ कोई। अपने को जानकर, अपने को देखकर, अपने में एकाग्र होकर निरन्तर ध्यान करके परमात्मपद को पावे। यह बात है, लो! आहाहा!

कैसा है निर्वाण? इसकी व्याख्या करते हैं अब। मोक्ष-मोक्ष। आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा, पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य। आठ गुण जो पर्याय व्यवहार से। निश्चय से अनन्त गुण की निर्मल पर्याय। कैसा है मोक्ष? **अव्याबाध है, जहाँ किसी प्रकार की बाधा नहीं है।** बाधा किसकी? विघ्न थे, वे तो टाले हैं। आहाहा! आत्मा के अन्तरस्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु, उसका ध्यान करके अनिष्ट का तो नाश किया है। आहाहा! उसे अब विघ्न क्या होगा? इष्ट की तो प्राप्ति की है। आता है न प्रवचनसार (में)? अनिष्ट का नाश करके इष्ट की प्राप्ति (की है)। अनिष्ट कोई परचीज़ नहीं। विकारी भाव, वह अनिष्ट है। उसे अपने परमात्मस्वरूप को जानकर-देखकर निरन्तर ध्यान में रहना इष्ट जो निर्मलपना प्राप्त किया। अब उसे विघ्न क्या? आहाहा! इसका नाम मोक्ष और इसका नाम परमात्मदशा उसकी। मुनि को ध्यान करके प्राप्त करनेयोग्य हो तो यह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अव्याबाध। **अनन्त है—जिसका नाश नहीं है।** जो परमात्मदशा, मोक्षदशा प्राप्त हुई, उसका अब नाश नहीं। आहाहा! उसमें नहीं आता? प्रवचनसार। व्ययरहित उत्पाद। केवलज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति, वह व्ययरहित उत्पाद। अब उसका व्यय नहीं होगा। ऐई! उत्पादरहित व्यय। संसार का उत्पाद अब न हो। आहाहा! कहते हैं कि **जिसका नाश नहीं है। 'अव्वाबाहमणंतं'।** वर्तमान कोई अनिष्ट रहा नहीं और जिसका इष्ट है, उसका अब नाश होता नहीं। आहाहा! **'अणोवमं' अनुपम है,...** आहाहा! भगवान आत्मा के ध्यान से परमात्मदशा जो प्रगट हो, उसे उपमा क्या होगी? अनुपम... अनुपम... अनुपम... निरुपम। निरुपम विजय ... वह आये थे न ... नहीं? वे आये थे। क्या नाम? निरुपमविजय। निरुपमविजय तो परमात्मा ... है। उपमारहित। आहाहा! तीन नहीं आये थे? बैठे थे। ... आवे। बाहर का देखे न तो, आहाहा! इस सोनगढ़ में ऐसा ... आहाहा! तेरा विशाल महल अन्दर पड़ा है बड़ा। आहाहा! अनन्त-अनन्त शान्ति और अनन्त स्वच्छता और अनन्त प्रभुता, ऐसे भाव से भरपूर परमात्मतत्त्व तेरा, उसका ध्यान करके, यह उसका उपाय ऐसा कहते हैं, मोक्षपद को पावे। वह पद ऐसा है कि अव्याबाध, अनन्त और निरुपम है। आहाहा!

जिसको किसी की उपमा नहीं लगती है। आहाहा! आत्मा की परमात्मदशा प्राप्त हो, मोक्षदशा हो, उसे उपमा किसकी है? भाई! ऐसी तो उसकी दशा का स्वरूप है, परमात्मदशा का। उसके ध्रुव के स्वरूप की तो क्या बातें करना? ध्रुवस्वरूप। पूर्ण स्वरूप—पूर्ण स्वरूप वस्तु के ध्यान से प्रगट हुई दशा अव्याबाध, अनन्त और अनुपम है। आहाहा! उसके ध्रुवस्वरूप का क्या कहना? जिसकी एक समय की पर्याय इतनी, जिसे विघ्न नहीं, अनन्तता और अनुपम। आहाहा! परमात्मा के ध्यान में उसका ध्यान करके ऐसे पद को पाता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह भटकने के भव तो बहुत अनन्त मिले। आहाहा! बड़ा सेठिया हुए, बड़ी इज्जत निकाली, नाक लम्बा बड़े का करके मरकर गया ढोर में वापस। आहाहा! धर्म बिना तो बहुत से ढोर में जायेंगे। जरा कड़क शब्द है। गढडा के भूराभाई आये थे न। गृहस्थ थे। बहुत अधिक पैसेवाले लाखोंपति और करोड़ोंपति, जिन्हें धर्म की कुछ पड़ी नहीं, वे सब मरकर बहुत से तो ढोर में जानेवाले हैं। ....भाई! तिर्यंच की संख्या बहुत है। .... आर्य व्यक्ति माँस, मदिरा न लेते

हों, वे देव और मनुष्य में ... ममता, ममता, ममता। आहाहा! ममता के कार्य के फल तिर्यंच के हैं। ... निगोद से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच कहलाते हैं। बड़ी संख्या है और पंचेन्द्रिय तिर्यंच की संख्या बड़ी है देव से, निगोद के जीव की तो अनन्त है, उसकी तो बात क्या करना?

जिसने भगवान आत्मा को स्मरण नहीं किया, सम्हाला नहीं। यह सब सम्हाल और सम्भालने में बाहर के पदार्थों की ममता ... अत्यन्त अक्ष को—इन्द्रियों को माननेवाले बहिरात्मा... पाँचवीं गाथा। आहाहा! अर्थात्? कि यह पाँच इन्द्रियाँ जो खण्ड-खण्ड है न? यह जड़ इन्द्रियाँ हैं और इनसे ज्ञात हों, ऐसे पदार्थ, उन्हें माननेवाले। अणीन्द्रिय वस्तु तो हाथ आती नहीं। दूसरी इन्द्रियों से जानने में काम आता है न। यहाँ से यह जाने, यह जाने (तो) वह आत्मा, ऐसा। इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा। इससे इन्द्रियों से अन्दर भावेन्द्रिय से ज्ञात हो, वह आत्मा, द्रव्येन्द्रिय आत्मा और उनसे ज्ञात हो, वह बाह्य पदार्थ। इस प्रकार तीन लिये हैं न वहाँ? '**जो इंदिये जिणित्ता**' (समयसार गाथा ३१) आहाहा! देखो! कुन्दकुन्दाचार्य का है और यह भी कुन्दकुन्दाचार्य का है।...

यहाँ कहते हैं कि इन्द्रियाँ हैं पाँच यह जड़, इनसे ऐसे ज्ञान होता है, होता है तो अपने उघाड़ से भावेन्द्रिय से, परन्तु वह भावेन्द्रिय है। उसमें इसे इसमें जानने में आवे तो क्या आवे? यह बाह्य पदार्थ। यह चीज़ बाह्य पदार्थ। यह इन्द्रिय, यह इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और यह—उसे आत्मा माने, वह बहिरात्मा है। इन्द्रियों से यह बाह्य पदार्थ की, जवान शरीर की अवस्था, प्रस्फुटित अवस्था.... आहाहा! यह इन्द्रियों से ज्ञात हो और उसमें हर्ष आता है उसे यह मानता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य की शैली अलौकिक कथनी! ऊँची भाषा, भाव बड़ा, इतना अधिक समाहित करे उसमें, आहाहा! इन्द्रियों को माननेवाले बहिरात्मा हैं। अर्थात् क्या? इन्द्रियों से जानना होता है, इसलिए उसे ऐसा हो गया कि यह इन्द्रियों से जानना होता है न, वह मैं। आहाहा! और इन्द्रियों से जानने में आवे यह पदार्थ। भगवान तो हाथ आवे नहीं उसमें। वह पुद्गल उसकी विभाविक—विभाविक पर्याय है। जो होता है, वह सब विभाविक पर्याय है। एक बार नागनेश के श्मशान में... है न बाहर श्मशान? क्या कहलाता है? ... दोपहर का अपवास करके ... आये थे न। वहाँ खड़ा था ऐसे। बहुत वर्ष हुए।

क्या दिखता है ? ... विभाविक पर्याय है। मूल द्रव्य तो दिखता नहीं। मूल द्रव्य तो अणीन्द्रिय है। रजकण भी अणीन्द्रिय है। आहाहा! ज्ञात होती है पूरी दुनिया, वह विभाविक, पुद्गल की विभाविक पर्याय है। चन्दुभाई! यह तो इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! इन्द्रिय से होता ज्ञान और इन्द्रिय से दिखाई देते पदार्थ, इससे उन इन्द्रियों को ही अपनी मानता है, ऐसा। वह यह वस्तु को ही अपनी मानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो अनुपम। **किसी की उपमा नहीं लगती है।** ऐसी परमात्मदशा। आहाहा!

भावार्थ :- आचार्य कहते हैं कि ऐसे परमात्मा को आगे कहेंगे, जिसके ध्यान में मुनि निरन्तर अनुभव करके... अन्तर के आनन्दस्वरूप का निरन्तर ध्यान करके **केवलज्ञान प्राप्त कर...** केवलज्ञान अकेली पर्याय पूर्ण। **निर्वाण को प्राप्त करते हैं।** आहाहा! मोक्ष को प्राप्त होते हैं। **यहाँ यह तात्पर्य है कि परमात्मा के ध्यान से मोक्ष होता है।** लो! परमात्मा अर्थात् स्वयं पूर्ण स्वरूप, हों! उसका अन्तर ध्यान करने से निर्वाण होता है, मोक्ष होता है।

★ ★ ★

गाथा - ४

अब **आगे परमात्मा कैसा है, ऐसा बताने के लिये आत्मा को तीन प्रकार का दिखाते हैं**—आत्मा की तीन प्रकार की अवस्थायें—दशायें दिखाते हैं।

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चइवि बहिरप्पा॥४॥

'**परमंतरबाहिरो**' इतने में तीनों समाहित कर दिये।

आहाहा! 'ज्ञानानंदे पूर्ण पावनो वर्जित सकल उपाधि सुज्ञानी।' आनन्दघनजी में आता है। 'ज्ञानानंदे पूर्ण पावनो वर्जित सकल उपाधि।'

अर्थ :- वह आत्मा प्राणियों के तीन प्रकार का है; अन्तरात्मा,... पहले ऐसा लिया। वरना वहाँ परम है। परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा, ऐसा। आत्मा की तीन प्रकार की दशा, आत्मा तीन प्रकार के। एक परमात्मा, एक अन्तरात्मा, एक बहिरात्मा।

अन्तरात्मा के उपाय द्वारा... फिर तो पाठ है वह '**अंतोवाएण**'। अन्तर भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य का ज्ञान और भान करके, उसके उपाय द्वारा **बहिरात्मपने को छोड़कर...** रागादि मेरे हैं, ऐसी बुद्धि छोड़कर, वस्तु शुद्ध चैतन्यघन हूँ—ऐसा अनुभव करके **परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।** लो! आहाहा!

अन्तरात्मा के उपाय द्वारा... यह शब्द है। अन्तर स्वरूप भगवान शुद्ध चैतन्य आनन्द के उपाय द्वारा **बहिरात्मा को छोड़कर...** राग और शरीर की एकताबुद्धि छोड़कर परमात्मा को प्राप्त करता है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त। **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा...** है? पाठ में है? '**अंतोवाएण**' '**अन्तरुपायेन**' चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप का अन्तर उपाय—उसे अनुभव करके उसके द्वारा बहिरात्मा को छोड़कर। इन्द्रिय, खण्ड इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय आदि छोड़कर परमात्मा के पद को प्राप्त करता है। आहाहा! घर की बात घर में जाने की कठोर पड़े इसे। बाहर में भ्रमता है न। उसमें से कुछ कहो तो इसे ठीक लगे।

मुमुक्षु : अनादि का करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही धर्म है, ऐसा। धर्म को समझते नहीं। उसे धर्म नहीं कहते, धर्म को समझते नहीं। ओहोहो! यह जितनी क्रियायें हैं राग की, उसे अपनी मानना, उसका नाम बहिरात्मा है, यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिरतत्त्व वस्तु में कहाँ है? आहाहा! बहिरात्मा द्वारा अन्तरात्मा को प्राप्त हो, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं, **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।** आहाहा! परमात्मा का ध्यान करना, पूर्ण स्वरूप का ध्यान करना।

भावार्थ :- बहिरात्मपन को छोड़कर... यह इन्द्रिय और इन्द्रिय से ज्ञात होते पदार्थ। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय (और) ज्ञात होते पदार्थ, सब ही मेरे नहीं। वे सब मेरे माने थे, वे मेरे नहीं, उन्हें छोड़कर। **अन्तरात्मारूप होकर...** शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा पवित्र है ऐसी दृष्टि, ज्ञान में पवित्रपना लाकर अन्तरात्मा ... पवित्र की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, ऐसी पवित्रता की पर्याय को प्राप्त करके **परमात्मा का ध्यान करना चाहिए...**

उसमें स्थिर होकर पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति के ध्येय से आत्मा का ध्यान करना चाहिए। आहाहा! **इससे मोक्ष होता है।** इससे आत्मा को पूर्ण आनन्द की दशा मोक्ष (प्राप्त होता है)। फिर से उसे संसार उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न हुआ मोक्ष, उसका व्यय नहीं होता, आहाहा! ऐसी दशा को वह प्राप्त करता है।

★ ★ ★

गाथा - ५

आगे तीन प्रकार के आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं— लो!

अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा तु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो ॥५॥

निर्णय। संकल्प का अर्थ निर्णय। तीन की व्याख्या।

अर्थ :- अक्ष अर्थात् स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ... यह स्पर्श, यह देखने को आँख, गन्ध, रस, स्पर्श, कान। पाँच इन्द्रियाँ जड़। **वह तो बाह्य आत्मा है,...** अक्ष स्पर्श इन्द्रिय आदि तो बाह्य आत्मा। लो, ठीक! ३१वीं गाथा भी कुन्दकुन्दाचार्य की और यह गाथा भी कुन्दकुन्दाचार्य की। आशय तो एक ही कहना है। भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय, उसका विषय सब इन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों को अपनी मानना, इसका नाम बहिरात्मा है। आहाहा! उसमें तो देव, गुरु और शास्त्र भी आये। वे इन्द्रिय में आये। इसे भी उनसे लाभ होगा मानना, वह पर को अपना माना है। वह इन्द्रियों को ही इसने आत्मा माना है, ऐसा कहते हैं।

स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ... यह कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श, वह तो बाह्य आत्मा है। इन्द्रियाँ, वही बाह्य आत्मा, ऐसा कहा। आहाहा! **क्योंकि इन्द्रियों से स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है...** ऐसा। पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं। इन्द्रियों से स्पर्श का ज्ञान, रूप का ज्ञान, रस का, गन्ध का। इन्द्रियों से यह रूप का ज्ञान, रस का ज्ञान, स्पर्श का ज्ञान, शब्द का ज्ञान। आहाहा! **तब लोक कहते हैं कि ऐसे ही जो इन्द्रियाँ हैं, वही आत्मा है,...** दूसरा आत्मा कहाँ उसके अन्दर है? आहाहा! भावेन्द्रिय, जड़ेन्द्रिय और उनके विषय, इसके अतिरिक्त दूसरा आत्मा कहाँ था? क्योंकि इन्द्रियों से

जानने का काम चलता है। इन्द्रियों से जानने के काम में तो इन्द्रियाँ और उनका विषय यह इन्द्रिय जाने। आहाहा! और भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड और उसमें ज्ञात होते विषय, वे सब जड़ पर हैं, उन्हें अपना मानना, इसका नाम मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। आहाहा! आत्मा में दया, दान और पुण्य के विकल्प, वे भी आत्मा में नहीं। वे बहिर् हैं। उन्हें अपना मानना, इसका नाम बहिरात्मा है। सूक्ष्म बात, भाई! सम्यग्दर्शन की व्याख्या सूक्ष्म बहुत, सूक्ष्म।

यहाँ कहा न? '**अक्खाणि बाहिरप्पा**' ऐसा कहा न? यह इन्द्रियाँ हैं, इनसे ऐसे जानना होता है न? इसलिए ऐसा मानता है कि यह आत्मा। परन्तु वह आत्मा कहाँ? वह तो एक समय की पर्याय जानने में आती है। यह सवेरे आया, साथ में आता है। मैंने देखा था। आहाहा! बहुत संक्षिप्त कहा है। इन्द्रियाँ खण्ड, जड़ (इन्द्रिय) और उसका विषय, वह सब इन्द्रियों से जानने में आता है। इन्द्रियों से आत्मा जानने में नहीं आता और इन्द्रियों से जानने में आया, इसलिए यह इन्द्रियाँ, वह आत्मा। अथवा भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड से जानने में आया, वह आत्मा। आहाहा! वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! कब यहाँ था? सब पढ़ा था न तुमने? कलकत्ता में।

मुमुक्षु : भूतकाल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतकाल में। आहाहा!

'**अंतरअप्पा तु अप्पसंकप्पो।**' भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का नाथ है। उसका अन्तर अनुभव होकर निर्णय होना, उसे यहाँ अन्तरात्मा कहते हैं। शब्द तो इतना ही पड़ा है। '**अप्पसंकप्पो**' आत्मा का संकल्प निर्णय। भगवान आत्मा, वह इन्द्रिय जितना नहीं, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय जितना नहीं, इन्द्रिय में नहीं, इन्द्रिय के विषय में वह नहीं। वह तो आनन्द का नाथ पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन है। आहाहा! ऐसे आत्मा का अनुभव होकर निर्णय (जिसे हो), उसे यहाँ अन्तरात्मा कहा जाता है। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त कहा।

यहाँ तो '**अक्खाणि बाहिरप्पा**' ऐसा कहा न? वह मानने-बानने की बात ली नहीं। इन्द्रियाँ, वह बहिरात्मा। आहाहा! अर्थात् कि इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय को और यह जानना हो खण्ड-खण्ड इन्द्रिय में, वहाँ ही इसने अपना माना है। इसका नाम बहिरात्मा है। आहाहा! वह भगवान तो अन्तर अणीन्द्रिय पड़ा रहा है पूरा। जो मन का

विषय नहीं, विकल्प का विषय नहीं, इन्द्रिय का विषय तो किसका हो वह? आहाहा!

इन्द्रियों से स्पर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है, तब लोग कहते हैं कि ऐसे ही जो इन्द्रियाँ हैं, वही आत्मा है। आहाहा! ज्ञान-खण्ड इन्द्रिय में ज्ञात होता है कितना? बड़े पर्वत ज्ञात हों, भगवान की मूर्ति ज्ञात हो, भगवान ज्ञात हो। लो! समवसरण ज्ञात हो। इन्द्रियों से तो यह ज्ञात हो, कहते हैं। उसे ही अपना माने, वह बहिरात्मा है। आहाहा! बहिरात्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि। आहाहा! कान में कीर्ति सुनकर प्रसन्न हो, वह इन्द्रिय को अपनी मानता है। आँख से स्त्री आदि के रूप देखकर या भगवान की मूर्ति के... आहाहा! उसकी पर्यायबुद्धि है न वह? वहाँ ही अटका है, ऐसा कहते हैं। यह मुझे लाभदायक है, यह मैं। वहाँ से बुद्धि उठाकर अन्दर में रखना, (उसकी) बहिरात्मा को तो खबर नहीं। आहाहा! साधु होकर घूमे, त्यागी होकर घूमे, परन्तु वस्तु तो सब उल्टे रास्ते है। आहाहा!

इस प्रकार इन्द्रियों को बाह्य आत्मा कहते हैं। देखा! बाह्य अर्थात्? यह उसे ही अपना माने। इन्द्रियों को, इन्द्रिय के विषय को और इन्द्रिय को जानने की खण्ड-खण्ड इन्द्रिय को, ऐसा। तो वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। वस्तु पूरी रह गयी। एक समय की पर्याय खण्ड-खण्ड इन्द्रिय की, वह बाह्य है। अन्तर में समाये, वह कहाँ है? **अन्तरात्मा है वह अन्तरंग में आत्मा का प्रकट अनुभवगोचर संकल्प है...** देखा! '**अप्पसंकप्पो**' की व्याख्या की वापस। **अन्तरंग में आत्मा का प्रकट अनुभवगोचर संकल्प है...** निर्णय, ऐसा। अनुभव होकर निर्णय होना, इसका नाम '**अप्पसंकप्पो**' अन्तरात्मा। आहाहा!

आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय में अन्तर्मुख होकर जो जानने में आवे, उसका जो अनुभव हो, उसमें जो निर्णय (हो), वह निर्णय। वह अन्तरात्मा। बाहर से धारणा में निर्णय आया कि आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है, वह नहीं—ऐसा कहते हैं। व्याख्या बहुत सरस की है। '**अप्पसंकप्पा**' है न? आत्मा जैसा है, वैसा निर्णय। ऐसा '**अप्पसंकप्पो।**' आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का अनुभव, वह निर्णय। '**अप्पसंकप्पो**' अन्तरात्मा। आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुवस्वरूप द्रव्य, उसका अनुभव होकर निर्णय (हो), वह '**अप्पसंकप्पो**' वह अन्तरात्मा। आहाहा! विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट - प्रवचन क्रमांक १५० उपलब्ध नहीं है।

वैशाख कृष्ण १३, रविवार, दिनांक १९-०५-१९७४
गाथा - ६ से ९, प्रवचन-१५१

मोक्षपाहुड़। परमात्मा के विशेषण कहते हैं। ऐसे परमात्मा को जानकर, ऐसा ही आत्मा स्वयं है, उसका ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। यहाँ तक आया है। **परमेष्ठी है- परमपद में स्थित है,...** कैसे हैं परमात्मा? परमेष्ठी परमपद में स्थित। **परम जिन हैं,...** परमात्मा का ... वह स्वयं परमात्मस्वरूप, ऐसा ही है। **सब कर्मों को जीत लिये हैं,...** सिद्ध परमात्मा हैं, उन्हें सर्व कर्म का अभाव है। इसी प्रकार यह आत्मा पूर्ण स्वरूप है, वह भी सर्व कर्म से रहित है। जो स्वरूप है, वह तो भव और भव के भावरहित है, तथा एक समय की पर्याय जो अवस्था, उससे रहित है। ऐसा जो परमात्मा अपना स्वभाव, उसका ध्यान करना। उसे ध्येय बनाकर उसमें एकाग्र होना। यह परमात्मा होने का उपाय है।

शिवंकर है... कैसे हैं परमात्मा? शिवंकर। **भव्य जीवों को परम मंगल...** है। शिव का अर्थ पहला वह उपद्रवरहित है न, इसलिए मंगल किया। उपद्रवरहित शिव का अर्थ। परमात्मा परम मंगलस्वरूप है। अर्थात् कि परमात्मा उपद्रवरहित है, (ऐसा) शिवं का अर्थ किया, अर्थात् कि परम मंगल है। इसी प्रकार यह आत्मा ध्रुव भी परम मंगल है, शिवंकर है यह। आहाहा! परम मंगल। एक बात। फिर शिवंकर का दूसरा अर्थ लिया। **मोक्ष को करता है,...** शिव अर्थात् पूर्ण आनन्दरूपी मोक्ष को करता है, अर्थात् परमात्मा उसरूप से परिणमता है और यह आत्मा भी मोक्ष का करनेवाला है। पूर्ण स्वरूप है, वह मोक्ष की पर्याय को करता है, ऐसा अभी द्रव्य और पर्याय उसकी गिनकर, ऐसा कहा है।

निश्चय से ध्रुवस्वरूप जो है... यहाँ तो शिवंकर सिद्ध करना है न? मोक्ष का करनेवाला सिद्ध करना है। वरना तो मोक्ष की पर्याय है, उसे द्रव्य करता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। ध्रुवस्वरूप जो है नित्य ध्रुव, वह तो पर को करता नहीं, भव के भाव को करता नहीं और उसकी पर्याय जो है जानने की, उसे भी वह करता नहीं। ऐसा वह

परमस्वभाव चैतन्य परम ध्रुव सहज स्वभाव, उसका ध्यान करना। आहाहा! ध्यान, वह पर्याय है। परन्तु यहाँ तो शिवंकर शब्द सिद्ध करना है न? परम मांगलिक के करनेवाले हैं और मोक्ष के करनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा। आहाहा! जिसे ऐसे परमात्मा ज्ञान में बसे, जिसे आत्मा परमात्मा परम मंगलरूप बसे, वह तो परम मंगलदशा हो गयी उसकी। और वह परमात्मा मोक्ष का करनेवाला है। वह जो अन्तर में उतना और वैसा ही मैं हूँ, ऐसा जानने से, अनुभव करने से वह आत्मद्रव्य मोक्ष का ही करनेवाला है। द्रव्य, मोक्ष का करनेवाला है। आगे हद तो वह मोक्ष की पर्याय का भी करनेवाला नहीं। अरे... भारी सूक्ष्म बात! समझ में आया?

ऐसे परमात्मा को... शाश्वत् है वह भगवान। सिद्ध परमात्मा, परमात्मा अथवा ध्रुवस्वरूप शाश्वत् है। शाश्वत् आत्मा त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु का ध्यान करना। अथवा शाश्वत् परमात्मा सिद्ध हुए, वैसा मैं हूँ—ऐसा करके ध्यान करना। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई! सवेरे वह लड़का जसु आया था। जसु है न। वह कहे, आत्मा... आत्मा करते हो, परन्तु आत्मा तो दिखता नहीं। उसकी बहिन ने या माँ ने पूछा होगा। आया था, नहीं? सवेरे आया था। आत्मा... आत्मा करते हो, परन्तु आत्मा तो दिखता नहीं। भाई! दिखता नहीं, यह कौन निर्णय करता है? कहा। उसे तो पकड़ में आये नहीं, बालक है। परन्तु उसे तो उसकी माँ ने कहा होगा। आहाहा! वास्तव में तो आत्मा ही ज्ञात होता है। यह तो कहेंगे अन्दर।

मुमुक्षु : प्रत्येक समय ज्ञान ज्ञात होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान ज्ञात होता है न! शरीर कहाँ ज्ञात होता है? शरीर तो पर रहा। उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान ज्ञात होता है। राग है, उस सम्बन्धी का ज्ञान ज्ञात होता है। परवस्तु वाणी आदि परवस्तु को जानने से, जिसमें ज्ञात होता है, वह ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। परन्तु बहुत सूक्ष्म बातें! आहाहा! जहाँ हो, वहाँ आत्मा की ही प्रसिद्धि है। पर की प्रसिद्धि कहाँ है? यह सर्वविशुद्ध में नहीं आया? वह दीपक के दृष्टान्त से। द्विरूपता स्वयं प्रकाशती है। पर को और अपने को प्रकाशता है, ऐसा पर्याय का द्विरूपता का सामर्थ्य उसका स्वयं का है। आहाहा! पर को प्रकाशे, पर तो भिन्न चीज़ रह गयी। शरीर, वाणी, मन वह तो जड़ भिन्न है। अरे! दया, दान के परिणाम, वे राग,

वह भी भिन्न तत्त्व है। उसे प्रकाशित करनेवाला-जाननेवाला तत्त्व वह उसे भी जाने और पर को जाने, वास्तव में तो वह स्व-पर को जानने का स्व का ही सामर्थ्य है, वह आत्मा है। आहाहा! परन्तु पूरा खो गया है। मूल चीज़ की ही खबर नहीं होती कि यह आत्मा क्या चीज़ है।

यह आत्मा तो, यहाँ कहा न? शाश्वत् वस्तु है। परमात्मा शाश्वत् है, ऐसा भगवान आत्मा नित्य वस्तु शाश्वत् है। वह परमात्मस्वरूप ही है। परमपारिणामिक परमस्वभाव ज्ञायकभाव ऐसा परमात्मस्वरूप, उसे अन्तरात्मा से स्वरूप का पूर्ण ध्यान करके परमात्मा हो। आहाहा! मोक्ष का अधिकार है न!

सिद्ध है, अपने स्वरूप की सिद्धि करके निर्वाणपद को प्राप्त हुआ है। परमात्मा। अपने स्वरूप की प्राप्ति करके सिद्धपद को—सीधी गति को पाये हैं। उसी प्रकार आत्मा भी सिद्धस्वरूप ही है। पाना है, वह तो पर्याय की बात है। आहाहा! जिसमें, पर्याय जो है केवलज्ञान की, वह भी जिसमें नहीं। उस पर्याय से भी पर-भिन्न वस्तु है। ऐसा जो परमात्मस्वरूप ध्रुव, उसका ध्यान करने से परमात्मा हुआ जाता है। कोई क्रियाकाण्ड करने से और यह व्रत, तप और फलाना, ढींकणा, वे सब बन्धन के कारण हैं, ऐसा कहते हैं। कहो, जयन्तीभाई! आहाहा! जगत को उल्टा मिला है न, इसलिए यह सुलटी बात कैसी है, यह बैठना चुनट पड़े कठिन। आहाहा! वह तो चैतन्यबिम्ब है न। ध्रुव अनादि-अनन्त सत्... सत्, ऐसे सत् में पूर्ण सत्पना पड़ा है। पूर्ण अस्तित्व। यह ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि पूर्ण शाश्वत् चीज़ पूर्ण है। उसका ध्यान करने से समकित होता है, उसका ध्यान करने से चारित्र होता है, उसका ध्यान करने से केवल (ज्ञान) होता है। लो, यह बात है।

भावार्थ :- ऐसा परमात्मा है, जो इस प्रकार से परमात्मा का ध्यान करता है, वह ऐसा ही हो जाता है। परमात्मस्वरूप। परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप। ऐसा जो भगवान आत्मा। ऐसे बात ऐसी है कि परमात्मा जो सिद्ध हैं, ऐसी जो समय की पर्याय निर्मल सिद्ध की, ऐसी तो अनन्त-अनन्त पर्याय का समुदाय भगवान आत्मा में पड़ा है। आहाहा! इसलिए सिद्ध से भी द्रव्यस्वभाव तो अधिक है, भिन्न है, पृथक् है, पूरा है। आहाहा! ऐसा जो स्वभाव, जिसे पर में कुछ भी सुखबुद्धि भासित होती है, वह सब पर

को ही आत्मा माननेवाले हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। उसमें जिसे राग की क्रिया से मोक्ष भासित हो, पर के भाव में हर्ष और उत्साह देखकर कुछ सुख है, ऐसा भासित हो, वे सब पर में आत्मा माननेवाले हैं। स्व आत्मा को खो बैठे हैं वे। यह आयेगा अभी आठवीं गाथा में। '**णियसरूवचुओ**'—अपने स्वरूप से च्युत हो गये हैं। आहाहा! यह तो परम अन्तर की बातें हैं। वीतराग सर्वज्ञदेव तीर्थंकर परमात्मा ने यह कहा था, वह बात रही। वह बात रह गयी और रही। दोनों हुआ। यह सम्प्रदाय में से रही (-निकल) गयी, वस्तु में रही। आहाहा! कहते हैं कि ऐसा जो भगवान आत्मा अथवा परमात्मा, वह तो परमात्मा, वे सिद्ध हैं, वैसा मैं हूँ—ऐसी अन्तरदृष्टि होने पर अपनी पूर्णता का ध्यान, वही परमात्मा का ध्यान है।

★ ★ ★

गाथा - ७

आगे भी यही उपदेश करते हैं— ७ (गाथा)।

आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥७॥

अर्थ :- बहिरात्मपन को मन वचन काय से छोड़कर... मन, वचन और काय से छोड़कर। अर्थात् शरीर, वाणी, मन और रागादि परवस्तु है, उसे अपना मानता था, वह बहिरात्मा है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जो स्वरूप में नहीं, चैतन्य के स्वरूप में जो नहीं, ऐसा जो विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति आदि (या) काम, क्रोध के भाव या शरीर, वाणी और कर्म, वे स्वरूप में नहीं। इसलिए मन, वचन और काया से पर को अपना मानना नौ-नौ कोटि से छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

बहिरात्मपन को मन वचन काय से छोड़कर... बहिरात्मा का अर्थ यह। शुभ-अशुभभाव, शरीर, कर्म और बाह्य इन्द्रिय से दिखते पदार्थ, उन सबको अपना मानता है, इसका नाम मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। आहाहा! ऐसा पर को अपना मानना मन, वचन, काया से छोड़कर। '**आरुहवि अन्तरप्पा**' भाषा ऐसी है, देखो! अर्थ किया है आश्रय।

अन्तरात्मा का आश्रय लेकर... भगवान पूर्ण स्वरूप में आरूढ़ होकर। पाठ ऐसा है। आहाहा! जो अनादि से शुभ-अशुभभाव और एक समय की पर्याय में आरूढ़ था, मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा... आहाहा! एक समय की दशा और राग तथा निमित्त में आरूढ़ था, उसका आश्रय करता था, वह बहिरात्मा। ऐसा बहिरात्मपना छोड़कर, अन्तरात्मा आरूढ़। आहाहा! चैतन्यमूर्ति प्रभु परम आनन्द का पर्वत, परमस्वभाव का सागर, परमस्वभाव का सागर। आरूढ़ होकर, सन्मुख होकर, समीप होकर, आश्रय करके। आहाहा!

परमात्मा का ध्यान करो,... उसका आश्रय करके परमात्मा का ध्यान करो। आहाहा! परमात्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु में समीप होकर उसका आश्रय लेकर, आश्रय लेकर ध्यान करो, ऐसा। आरूढ़ होकर ध्यान करो। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई! दिशा बदल दे, ऐसा कहते हैं। यह इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से दिखते विषय, उन सबमें (अपना) अस्तित्व माना है, परन्तु अपना अस्तित्व भिन्न है, उसे जाना नहीं। आहाहा! चैतन्य का सागर प्रभु, स्वभाव का सागर लो न! चैतन्य उसका स्वभाव है। ऐसे अनन्त-अनन्त स्वभाव, ऐसा जो अन्तरात्मा। आहाहा! अन्तर आत्मा, अन्दर आत्मा, अन्दर का पूर्ण स्वभाव आत्मा। आहाहा! उसका आश्रय लेकर। यह उसे मोक्ष के लिये करना है। आहाहा! यह बाहर में तो यह व्रत पालो, अपवास करो, तपस्या करो, ऐसी बातें चलती है। कहो, जयन्तीभाई! यह तो मार्ग अलग है, भाई! मोक्ष अर्थात् परमानन्द का लाभ, परम अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ मोक्ष अर्थात्। परम अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति, ऐसा जो मोक्ष, उसका उपाय, परमस्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान करना, यह उसका उपाय है। उसमें आरूढ़ होना, यह उसका उपाय है। आहाहा! अब वह आत्मा है कैसा? कितना? इसकी अभी खबर नहीं होती।

धर्म करनेवाला कौन है? धर्म, वह पर्याय—दशा है। परन्तु वह करनेवाला कौन है? कितना है? इसकी खबर नहीं होती और धर्म हो जाये इसे? आहाहा! समझ में आया? वहाँ लिखा है या नहीं? सोनगढ़ व्यारा। वह लिखा है बड़ा पाटिया सामने। यहाँ के लोग हैं न सर्वत्र। भाई भी है न वहाँ जयन्ती। जयन्तीभाई। ऐसा कि धर्म करनेवाले को जाने बिना धर्म किस प्रकार हो? ऐसा शब्द था। यहाँ कहते हैं कि अन्तरात्मा में

आरूढ़ हो। परन्तु वह अन्तरात्मा कितना ? कौन है ? आहाहा! उसे जाने बिना आरूढ़ किसमें होना ? कहीं यह वस्तु है, ऐसा ज्ञान में आवे तो वहाँ आरूढ़ हो, अर्थात् आश्रय करे। आहाहा! वीतराग परमात्मा तीर्थंकर का कहा हुआ मार्ग बहुत ही दुर्लभ है, अशक्य नहीं।

मुमुक्षु : सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल है। इसके पास स्वयं है, वह सरल है। अभ्यास नहीं, इसलिए दुर्लभ है। आहाहा!

कहते हैं कि **अर्थ :- बहिरात्मपन को मन वचन काय से... 'तिविहेण'** है न ? अर्थात् नौ-नौ कोटि से—प्रकार (से)। करना, कराना, और अनुमोदन; मन, वचन और काया। इससे राग का भाव, पर्यायबुद्धि का भाव, संयोगी निमित्त चीज़ और निमित्त चीज़ से मुझे लाभ होगा, ऐसा जो पर को अपना मानने का भाव, उसे नौ कोटि से मन, वचन, काया से छोड़े। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा तीर्थंकरदेव और देव-गुरु-शास्त्र से मुझे लाभ होगा तो उसने परद्रव्य को अपना माना, ऐसा कहते हैं। **'झाइज्जइ परमप्पा' परमात्मा का ध्यान करो,...** आहाहा! परन्तु इसे अस्तित्व, अपना अस्तित्व कितना, कैसा है, कहाँ, कैसे है, इसकी खबर बिना उसकी ओर कैसे झुके ? ज्ञान में उस चीज़ को जानने में इसे आवे कि यह चीज़ तो एक समय की पर्याय से भी सर्वथा भिन्न ऐसी चीज़ है, तो फिर विकल्प जो दया, दान और राग, उसकी तो बात क्या करना ? आहाहा! ऐसा जो परमपदार्थ महाप्रभु, उसमें आरूढ़ होकर बहिरात्मा को छोड़कर। ऐसी पहली भाषा ली। पाठ में **'आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छंडऊण तिविहेण।'** अस्ति से नास्ति ली। यहाँ पहले नास्ति से अस्ति (ली), अर्थ में।

परमात्मा का ध्यान करो,... आहाहा! परम आत्मा, परमस्वरूप प्रभु, जिसकी खान में तो अनन्त परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! जिसकी खान में—आत्मा में तो अनन्त परमात्मा—सिद्ध परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! ऐसे परमात्मा का मन, वचन और काया से, कृत, कारित, अनुमोदन से। पर्यायबुद्धि, निमित्तबुद्धि, रागबुद्धि का आश्रय छोड़कर उसका ध्यान करो। यह बहुत ही संक्षिप्त में मोक्ष के उपाय की व्याख्या की है।

यह जिनवरेन्द्र... अन्तिम शब्द है न? '**उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं**' भगवान ने उसका उपदेश ऐसा भगवान ने किया है। आहाहा! भगवान जिनवर तीर्थंकरदेव। '**जिणवरिंदेहिं**' है न? इसलिए तीर्थंकर (अर्थ) किया। जिनवर, गणधर के इन्द्र तीर्थंकर ऐसे परमदेव, उनका यह उपदेश है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव जिनवरदेव वीतरागदेव परमेश्वर का यह उपदेश है। लो! उनके उपदेश में यह आया है, ऐसा कहते हैं। विकल्प आदि को छोड़कर... आहाहा! व्यवहारादि के विकल्प को छोड़कर अन्तरात्मा भगवान आत्मा में आरूढ़ होना, ऐसा भगवान का उपदेश है। लो!

'**उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं जिनवरेन्द्रै**' आहाहा! भगवान आत्मा बहिरात्मपने की बुद्धि छोड़कर, अन्तरात्मा परमात्मस्वरूप से विराजमान भगवान स्वयं है, उसका ध्यान करना। आहाहा! वह ध्यान ही एक ही मोक्ष का उपाय है, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान भी उस आत्मा का ध्यान है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, वह ध्रुव का ध्यान है; सम्यग्ज्ञान, वह ध्रुव का ध्यान है; चारित्र, वह ध्रुव का ध्यान है। आहाहा! ऐसा भगवान के उपदेश में आया है। अब यह लोग दूसरे प्रकार से बातें करे। भगवान का यह उपदेश नहीं। आहाहा! व्रत पालो, अपवास करो, तपस्या करो। उसकी मानी हुई तपस्या, हों! मूल तपस्या तो आत्मा में आरूढ़ होना, वह है। आहाहा! मूल चारित्र तो आत्मा के स्वरूप में आरूढ़ होना, वह है। उसके बदले यह बाहर के व्रत के, तप के, भक्ति, पूजा के भाव करो, करने से तुमको मोक्ष हो जायेगा, धर्म (हो जायेगा), यह जिनवर का उपदेश नहीं। यह अज्ञानी का उपदेश है। बातें भारी कठिन पड़े।

यहाँ तो परमात्मस्वरूप से भगवान '**बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ**' बाह्य पदार्थ को प्रगट देखता है वह। इन्द्रियद्वार द्वारा बाह्य पदार्थ को प्रगट देखता है। '**णियसरूवचुओ**' निजस्वरूप से च्युत होता हुआ। आहाहा! बहुत संक्षिप्त बात! समझ में आया? कहो, गिरधरभाई! यह गाथा रखी है वहाँ गये थे एक बार। श्रीमद् की। है न, खबर है। पढ़ा है। गाथा का। ... थी न? मनसुख गाँधी। खबर है न। गाथा रखी थी। यह है सब उसमें। वहाँ उतरे हैं न बहुत बार, दरियापरी। एक बार पौन महीना... (संवत्) १९७६ के वर्ष की बात है। बहुत वर्ष पहले। ७६-७६। यह सब गाथायें लिखी हैं।

यहाँ कहते हैं, '**बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण**' इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ की प्रगटता देखकर। '**णियसरूवचुओ**' निज की—स्वरूप की सत्ता के सम्हाल से भ्रष्ट हो गया। आहाहा! अब ऐसी व्याख्या समझे नहीं बेचारे साधारण, इसलिए जहाँ-तहाँ घुटाकर, जाओ संथारा करो, महीने का आहार छोड़ दो, लो। परन्तु उसमें क्या हुआ? धर्म कहाँ आया वहाँ? कहो, मगनभाई! यह तो दूसरा निकला। आहाहा! अणीन्द्रिय अपने निर्मल स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा भगवान आत्मा, वह अणीन्द्रिय भाव है। उससे अणीन्द्रिय ऐसी वस्तु ज्ञात होती है। वह इन्द्रिय द्वारा पर को जानने से अणीन्द्रिय स्वरूप से च्युत हो गया वह। आहाहा! कहो, समझ में आया? माणेकचन्दभाई हैं? हीराभाई नहीं आये अभी? गढडे आये थे गढडे। आहाहा! ऐसी बातें!

इन्द्रिय द्वार। देखो न भाषा तो देखो! पर्याय द्वारा, इन्द्रिय द्वारा बाह्य पदार्थ को प्रगट देखकर, उसका अस्तित्व इसने माना। आहाहा! कहो, वजुभाई! ऐसी बातें! इतना सब अन्तर मानने में? एक ओर मिथ्यात्व तथा एक ओर सम्यक्त्व। यह ऐसा कहते हैं कि प्रभु चैतन्य भगवान अणीन्द्रियस्वरूप भगवान आत्मा तो है। वह अणीन्द्रियस्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा है। उससे च्युत हुआ '**बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण**' बाह्य में प्रगट दिखते पदार्थ, आहाहा! उनका अस्तित्व मानकर अपने शुद्ध के अस्तित्व पूर्ण अस्तित्व से च्युत हो गया है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान कहकर बुलावे, ऐसा कुछ एक लेख आया है। वच्छराजभाई की बहू है न, कोई नहीं? वच्छराज पारेख? ... तुम्हारे तुमने दिये थे। वे दे गये हैं न कागळिया। उसमें दूज के ऊपर का लिखा है। भानुबहिन है, वच्छराजभाई के घर से। क्या कहा? उसने लिखा था। भाई-बहिनों को भगवान कहकर बुलाते हैं। ऐसा उसने लिखा है। ... राजकोट का रतन, ऐसा कुछ है। लालभाई! (पर) रचा है वह सब। दो पृष्ठ भरे हैं। आहाहा!

कहते हैं, बहुत संक्षिप्त परन्तु मर्मवाला है, इसलिए बारम्बार कहा जाता है। आहाहा! '**इंदियदारेण णियसरूवचुओ बहिरत्थे फुरियमाणो**' अन्तर पदार्थ से च्युत हुआ। चिदानन्द भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यधातु, आहाहा! उससे च्युत हुआ और इन्द्रिय द्वार से बाह्य पदार्थ को प्रगट देखकर उसे अपना माना। आहाहा! धन, लक्ष्मी

दिखाई दे न इन्द्रिय द्वारा तो लक्ष्मी दिखाई दे। धान, अनाज के ढ़ेर घर में हो। बाजरा, गेहूँ, तिल, तेल। परिवार। आठ-आठ लड़के, उनके लड़के और उनके लड़के देखकर ऐसे... आहाहा! परन्तु किसके? वे तो पर हैं। वह तो इन्द्रिय द्वारा ज्ञात, वह विषय है। आहाहा!

आदि इष्ट पदार्थों में... आदि में त्रिलोकनाथ भगवान, देव-गुरु-शास्त्र भी आये। यह इन्द्रिय द्वारा **धन्य, धान्य, कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थों में स्फुरित...** उसका प्रगटपना दिखाई दिया, ऐसा कहते हैं। यह है, ऐसा देखे। यह... यह है, ऐसा इसे दिखता है। आहाहा! **तथा इन्द्रियों के द्वार से अपने स्वरूप से च्युत है...** आहाहा! वर्तन—आचरण कैसे करता है? यह प्रश्न यहाँ रखा नहीं इन्होंने। मात्र उसकी दृष्टि इन्द्रिय द्वारा पर में गयी है, इसमें उसका अस्तित्व इतना वह मानता है। आहाहा! यह स्त्री हमारी, पुत्र हमारे, मकान हमारा, पैसे हमारे, हडफा हमारे। हडफा समझ में आया? पेटी। छोटी-बड़ी पेटी। आहाहा! माल संग्रह करे तो वापस डिब्बे हों। बड़ा माल गोदाम में हो और एक-एक डिब्बे में पाँच सेर-दस सेर नमूना हो। इस प्रकार की चाय, इस प्रकार का फलाना, काजू, इस जाति की बादाम। उसकी जाति होती है न? ऐसे डिब्बे की लाईन सब हो। ऊपर नाम लिखे हों। लकड़ी के घोड़े हों। हमारे वहाँ पालेज में है न। यह तो घर की बात चलती है। पालेज में बड़े घोड़े। अब तो ... अब लड़के अलग हो गये। ऐसे देखकर प्रसन्न हो अन्दर घुसे वहाँ। डिब्बे रंगे हों सामने। लम्बे डिब्बे ऐसे डाले हों सामने नाम लिखे हुए। नमूना हो माल का। ऐसे देखे इन्द्रिय द्वारा आहाहा! यह हमारी दुकान। छोटाभाई! छोटाभाई ने तो छोड़ दिया। आहाहा!

बाह्य में '**बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ**' वह तो स्वरूप से च्युत हुआ है। आहाहा! **और इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है...** क्योंकि वह अंशबुद्धि है, इससे इन्द्रियों को ही अपनी मानता है। भावइन्द्रिय लो या जड़ इन्द्रिय लो, उसे ही अपनी मानता है। आहाहा! भावेन्द्रिय अर्थात् एक ज्ञान का अंश एक-एक विषय को जाने, उसे भावेन्द्रिय कहते हैं, उसे अपनी मानता है। आहाहा! **इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है, ऐसा होता हुआ अपने देह को ही आत्मा जानता है...** लो! इस देह को ही जाना न? यह पर्यायबुद्धि में देह ही आया फिर। एक समय की दशा को जहाँ अपनी

माना तो उसका लक्ष्य लम्बाया तो देह और राग में जाता है। आहाहा! क्योंकि उसका विषय तो वह है। आहाहा!

अपने देह को ही आत्मा जानता है... है न? **होता हुआ अपने देह को ही आत्मा जानता है, निश्चय करता है; इस प्रकार मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।** इस प्रकार से मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टिपना उसके पाप के फल में रुकता है, उसकी खबर नहीं। किसी की हिंसा करे, ऐसा हो तो उसे पाप लगता है (ऐसा) दिखाई दे। परन्तु इन्द्रिय द्वारा स्वरूप से च्युत हुआ, वह जीव की हिंसा की। आहाहा! जिसे जीवतत्त्व कहते हैं, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, अनन्तगुण का पिण्ड। इन्द्रिय द्वार के प्रेम में पड़ा देखता, ऐसे स्वरूप से च्युत हुआ है, वही हिंसा है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, उसका नकार करता है और यह है, वह मैं, इसका नाम ही हिंसा है। आहाहा! जीविया वहोरविया... ऐसा जो जीव का जीवत्व त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध चैतन्य वस्तु, उसे पर्दा लगाया। इन्द्रिय द्वारा मैंने यह देखा, यह ही मैं, यह नहीं। इसका अर्थ कि यह जीवत्व जीव का है, वह मैं नहीं। यह नहीं का अर्थ नकार किया, हिंसा की और यह है, वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। यह मोरबीवाले सुनने आये हैं। वहाँ भाई ने भेजे हैं शान्तिभाई ने कि भाई! वहाँ जाओ तो सही, एक बार सुनो तो सही। यहाँ तो ऐसा व्याख्यान है। शाम को आये हैं। आहाहा! धनबाद से शान्तिभाई है न, उन्होंने (भेजे हैं)। वहाँ आये नहीं? ... नहीं आये वहाँ? यहाँ उतरे होंगे। शान्तिभाई का मकान है यहाँ। शान्तिभाई ने कहा कि एक बार वहाँ (जाओ)।

यहाँ तो भगवान का ऐसा मार्ग है, बापू! यह बात है। वीतराग केवली परमात्मा तीर्थंकरदेव के हुकम में तो यह आया है। आहाहा! बाहर के अपवास और यह सब इन्द्रिय द्वार, वे तो सब लख्खण। दया, दान वे सब इन्द्रिय द्वार के लक्षण सब। आहाहा! उसे ही अपना मानकर, अणीन्द्रिय ऐसा भगवान अपना स्वभाव, उससे वह च्युत हुआ है। आहाहा! उसे अणीन्द्रिय ऐसे अपने स्वभाव के ऊपर आरूढ़ होकर बहिरात्मा से च्युत हो। यह आ गया है पहले। '**बहिरप्पा छंडऊण**' आया है न यह? उसे छोड़ना है। यहाँ आत्मा को छोड़ा है। ज्ञानी ने बहिरात्मा को छोड़ा है, अज्ञानी ने स्वरूप को छोड़ा है। अस्ति-नास्ति से बात की है। आहाहा! समझ में आया?

मत-मतान्तर इतने हुए कि उसे किसका सत्य है, यह निर्णय करने के लिये बेचारे को मुश्किल पड़ती है। कितने मत-मतान्तर हो गये। आहाहा! मेरे और तेरे। उसमें—पक्ष में उलझ गये लोग। सत्य वस्तु भगवान त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं, सत्य का आरूढ़ और असत्य का छोड़ना। अज्ञानी को असत्य का आरूढ़ और सत्य को छोड़ना। आहाहा! मनसुखभाई! ऐसी बात है। आहाहा! क्या कहा?

मुमुक्षु : दोनों त्यागी हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक (ज्ञानी) बहिरात्मा का त्यागी (और) अज्ञानी स्वरूप का त्यागी। आहाहा! दृष्टि बदलने से सृष्टि है। आहाहा! इन्द्रिय द्वारा दृष्टि से देखने पर उसकी उत्पत्ति एकदम मिथ्यात्व और अज्ञान की होती है। जो अपना नहीं, उसे मानने की दृष्टि होती है। आहाहा! और स्वभाव से अणीन्द्रिय से अणीन्द्रिय को देखने पर... समझ में आया? आहाहा! वहाँ स्वरूप की सृष्टि होती है, वहाँ स्वरूप की उत्पत्ति होती है। आहाहा! **इस प्रकार मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।**

भावार्थ :- ऐसा बहिरात्मा का भाव है, उसको छोड़ना। आहाहा! मन, वचन और काया, उसके भाव और उससे दिखती चीज़ बाहर की—वह सब पर है। ऐसी बुद्धि छोड़ देना इसे कि यह मेरे हैं, ऐसा। आहाहा! लो, आठ हुई।

आगे कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि अपनी देह के समान... अब दूसरे की आयी। **दूसरे की देह को देखकर...** उसे दूसरे का आत्मा, ऐसा। स्त्री का देह देखकर और उसका वह आत्मा। आहाहा! देह के सामने देखे ऐसी लगे सुन्दरता, वह सब उसका आत्मा है वह। आहाहा! आत्मा, देह की चेष्टा और क्रिया से भिन्न है, इसका उसे भान नहीं। जैसे अपनी इन्द्रियाँ और देह को अपना मानता है, वैसे दूसरे के देह को उसका आत्मा है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? **आगे कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि अपनी देह के समान...** दूसरे का देह देखे न। अपना देह है इन्द्रियाँ, उस द्वारा देखता है, ऐसा उसे वह देखता है यह। यह उसका शरीर और यह सुन्दर और उसकी चेष्टा और उसकी भाषा... यह सब उसका आत्मा है। ऐसा मानकर स्वयं स्वरूप से भ्रष्ट हो रहा है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक २०-०५-१९७४
गाथा - ९ से १२, प्रवचन-१५२

गाथा - ९

णियदेहसरिच्छं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेरणं पि गहियं झाइज्जइ परमभावेण॥९॥

अर्थ :- मिथ्यादृष्टि पुरुष अपनी देह के समान... अपनी देह है न, उसे अपना आत्मा मानता है। आत्मा भिन्न है, उसका तो भान नहीं। कहीं तो इसे अस्तित्व तो मानना चाहिए न? रागादि, देहादि में आत्मा है, ऐसा माने। दूसरे के देह को देखकर उसका आत्मा है, ऐसा माने। उसका देह है, वह आत्मा है, ऐसा। **देह को देखकर के यह देह अचेतन है तो भी मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा...** आत्मभाव अर्थात् वह आत्मा है। **बड़ा यत्न करके...** उसके ... आत्मा है, ऐसा मानकर परसन्मुख का यत्न करता है। कहाँ गये तुम्हारे? समझ में आया?

अपने देह को आत्मा (मानता है)। क्योंकि रागादि सब देह है। चैतन्यमूर्ति जो भगवान शुद्ध, वह आत्मा है, उसे न जानकर राग और देह को आत्मा मानता है, वह पर के देह को ही वह आत्मा मानता है, ऐसा। ऐसा मानकर **मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा...** वह आत्मा है, ऐसा मानकर **बड़ा यत्न करके...** वह आत्मा है पर का देह, ऐसा मानकर उसमें यत्न करता है। **आत्मा ध्याता है...** आहाहा! वह मानता है कि यह है, देह है, वह आत्मा है। उसका आत्मा अर्थात् यह शरीर, वह आत्मा, ऐसा। चैतन्य की भिन्नता का भान नहीं न, इसलिए इस प्रकार से अपने को माने और पर को भी इस प्रकार से मानता है। आहाहा!

भावार्थ :- बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्वकर्म के उदय से... यह तो मिथ्यात्वकर्म का उदय कहते ही उसके... आवश्यक नहीं। उदय उसे ही कहा जाता है, वरना तो निर्जरा कहलाती है। राग-द्वेष करे तो उसे उदय कहा जाता है। बात ऐसी है।

मिथ्यात्वकर्म के उदय से मिथ्याभाव है, इसलिए वह अपनी देह को आत्मा जानता है... अपनी देह को वह आत्मा जानता है। **वैसे ही पर की देह अचेतन है तो भी उसको पर की आत्मा...** देखा न ? उस देह को ही पर का आत्मा मानता है। अर्थ में खोटा लिखा है। अर्थ इसके साथ मेलवाला नहीं। इसमें बहुत अर्थ फेरफार हो गये हैं। लिख गया हो न... आता नहीं। उसे ऐसे काम सौंपना नहीं। भाई ने कहा नहीं छोटाभाई ने ? ऐसे अर्थ घर के डालना और स्वयं को... नीचे ऐसा फेरफार किया है। निचली गाथा के अर्थ में। यहाँ तो पर को आत्मा माने और पर में बड़ा यत्न करे, ऐसा कहते हैं। बस।

यहाँ **(अर्थात् पर को भी देहात्मबुद्धि से मान रहा है और ऐसे मिथ्यात्वभाव सहित ध्यान करता है)**। पर को आत्मा, उसकी देह है वह पर का आत्मा है। वही आत्मा और उसकी उसे सावधानी, उसके प्रति उसे वह आत्मा मानकर, उसका ध्यान रखता है। आहाहा! ऐसा समझना। लो! **देह को आत्मा जानता है, वैसे ही पर की देह अचेतन है तो भी उसको पर की आत्मा मानता है और उसमें बड़ा यत्न करता है...** ऐसा। वह आत्मा है ... उसमें वह यत्न करता है। ऐसा है। **इसलिए ऐसे भाव को छोड़ना-यह तात्पर्य है।**

★ ★ ★

गाथा - १०

आगे कहते हैं.... यह लोग कहे ... अन्दर हो और उसे लगती वह बात है। यह तो घर का डाले अन्दर और पूरा अर्थ बदल जाये। ... परन्तु अब प्रकाशित हो गया इसलिए क्या करे ? ... अर्थ खोटा है। ... यहाँ तो कहते हैं कि इस शरीर को जो आत्मा मानता है। आत्मा वस्तु भिन्न है, उसकी खबर नहीं। इसलिए कहीं अस्तित्व तो सत्ता का स्वीकार तो चाहिए न ? इसलिए फिर राग को करे वह आत्मा, ऐसे दूसरे का शरीर और राग, वह आत्मा। और स्वयं जैसे अपने शरीर के लिये आत्मा मानकर सम्हाल रखता है, वैसे उस देह को आत्मा मानकर उसकी सम्हाल करता है। बस। समझ में आया ?

अब दसवाँ। दो ही गाथा बाकी है। ११। **आगे कहते हैं कि ऐसी ही मान्यता से पर मनुष्यादि में मोह की प्रवृत्ति होती है :—**

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ठए मोहो॥१०॥

अर्थ :- इस प्रकार देह में स्व-पर के अध्यवसाय... यह निश्चय कोष्ठक में नहीं चाहिए। **स्व-पर के अध्यवसाय अर्थात् निश्चय...** ऐसा। चन्दुभाई! ऐसा अर्थ किया है। स्व-पर का अध्यवसाय अर्थात् कि निश्चय, बस, ऐसा चाहिए। कोष्ठक में निश्चय, ऐसा नहीं चाहिए। सीधा निश्चय चाहिए। अर्थात् निश्चय, ऐसा। स्व-पर की एकत्वबुद्धि ऐसा जो अध्यवसाय, ऐसा। ऐसा जो निश्चय। इसमें पूरा अन्तर। इस गाथा के अर्थ में सब अन्तर है। ... सब गड़बड़ की है। **देह में स्व-पर के अध्यवसाय अर्थात् निश्चय के द्वारा...** ऐसा सीधा चाहिए। कोष्ठक की आवश्यकता नहीं।

मनुष्यों के सुत... अर्थात् पुत्र, स्त्री **दारादिक जीवों में मोह की प्रवृत्ति करते हैं,...** पर में सावधानी करते हैं। आहाहा! **कैसे हैं मनुष्य...** वहाँ पूरा पाठ पड़ा रहा। पण्डित जयचन्द्रजी का। उनका पूरा पाठ। अविदित, ऐसा चाहिए। अविदित—नहीं जाना जिसने अर्थ कहिये पदार्थ। उसका आत्मा अर्थात् उसका स्वरूप। ऐसा चाहिए। पूरा बड़ा अन्तर है। **देह में स्व-पर के अध्यवसाय अर्थात् निश्चय...** ऐसा। अध्यवसाय अर्थात् निश्चय, ऐसा। कोष्ठक में नहीं। **के द्वारा मनुष्यों के सुत दारादिक जीवों में मोह की प्रवृत्ति करते हैं, कैसे हैं मनुष्य,...** अविदित अर्थात् नहीं जाना है। यह शब्द पूरा पड़ा रहा है मूल पाठ का। **कैसे हैं मनुष्य,...** अविदित अर्थात् नहीं जाना है, ऐसा चाहिए पहला। क्या? अर्थ। अर्थात् कि पदार्थ। उसका आत्मा। ऐसा। पाठ है न? '**अविदिदत्थमप्पाणं**' यहाँ आत्मा वह और उसकी बात नहीं। अविदित अर्थ उसका आत्मा। उसका आत्मा अर्थात् उसका स्वरूप। यह तो इसमें लिखा है। पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है।

अविदित अर्थात् नहीं जाना है। उसका तो पहले का करनेवाला तो। नहीं जाना। क्या? अर्थ? पाठ है न। '**अविदिदत्थमप्पाणं**' ऐसा है न? नहीं जाना पदार्थ का स्वरूप, ऐसा। '**अप्पाणं**' का अर्थ। नहीं जाना आत्मा, ऐसा नहीं। जिसे पदार्थ के स्वरूप का ज्ञान नहीं। **पदार्थ का स्वरूप (अर्थात् आत्मा)...** अर्थात् स्वरूप। है न? अन्दर इसमें है। अर्थ अर्थात् पदार्थ उसका आत्मा। पदार्थ उसका आत्मा अर्थात् कि स्वरूप। यह पूरा

अर्थ फेरफार है। यह तो पूरा पड़ा रहा उसमें। **नहीं जाना है...** यह बाद में किया। परन्तु वह अविदित का शब्द रखकर चाहिए। अविदित है। मूल तो '**अविदिदत्थमप्पाणं**' ऐसा है। नहीं जाना पदार्थ का स्वरूप जिसने, ऐसा है।

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा न जानकर, यह पुण्य-पाप के भाव और शरीर, वह मैं हूँ। जो उसमें नहीं, वह मैं हूँ और जिसमें स्वयं नहीं, वह मैं हूँ, ऐसा। पुण्य और पाप के भाव तथा शरीर आदि में आत्मा नहीं। ऐसे पुण्य-पाप के भाव और शरीर आत्मा में नहीं। आहाहा! ऐसी जिसे खबर नहीं। अविदित—जाना नहीं पदार्थ का स्वरूप जिसने। इसलिए दोनों आ गये। राग और शरीर का स्वरूप जाना नहीं और रागरहित आत्मा का स्वरूप जाना नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो सम्यग्ज्ञान की बात चलती है यह। मोक्षपाहुड़ है न? उसे सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। जैसा आत्मा है, वैसा उसे ज्ञान चाहिए और अजीव रागादि, शरीरादि है, वैसा उसे ज्ञान चाहिए। स्व-पर की भिन्नता का भान चाहिए। अज्ञानी ने स्व-पर की एकताबुद्धि में नहीं जाना स्व का स्वरूप, नहीं जाना पर का स्वरूप। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो समझना-समझना के ऊपर पूरी बातें हैं, हों! यह तो ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! इसे क्या करना? इसे जो है, उस प्रकार से उसे होना है। तो जो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूपा है, उसरूप होना, इसका नाम धर्म। राग और शरीररूप नहीं, उसरूप नहीं होना, यह नास्ति से। अधर्म की नास्ति, धर्म की अस्ति। आहाहा!

सर्वज्ञ के सिवाय ऐसी बात को कहीं अवकाश नहीं। परमेश्वर वीतराग तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने जो यह देखा, वैसा वाणी द्वारा आया। भाई! तू आत्मा है। आत्मा अर्थात् ज्ञान और आनन्द के स्वभाव का सागर। आहाहा! यह आत्मा। और यह आत्मा ऐसा जाने, उसे ऐसी आत्मा की दशा होती है, उसे मोक्ष का उपाय कहते हैं। लो! आहाहा! तू राग और शरीर, वाणी, वह नहीं। तो स्त्री-पुत्र वे कहीं दूर रह गये। आहाहा! परन्तु जिसने अपने ही आत्मा को जाना नहीं और पर में अपना माना। वह पर को भी आत्मा उसका है, ऐसा वह मानता है। आहाहा! उसके शरीर का रक्षण करूँ, शरीर को सम्हालूँ। फलाने का ध्यान रखना। किसका ध्यान रखे? लड़के... हो, उनका ध्यान रखना। लिखे न परदेश में से? उसे बुलाना, ऐसा कहे। कहते हैं न? बुलाना भाई वहाँ

स्मरण करते हैं। कौन ? परन्तु वहाँ आत्मा कहाँ ? वह तो शरीर, वाणी जड़ है, आत्मा तो भिन्न है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा!

दूसरा अर्थ किया है यह भाषा परिवर्तनकार ने दूसरा, हों! भाषाकार ने दूसरा। **इस प्रकार देह में स्व-पर के अध्यवसाय अर्थात् निश्चय...** वहाँ भी ऐसा चाहिए। **स्व-पर के अध्यवसाय निश्चय के द्वारा जिन मनुष्यों ने पदार्थ के स्वरूप को नहीं जाना है...** जिन मनुष्यों ने पदार्थ के स्वरूप को जाना नहीं। देखा! यह वह '**अप्पाणं**' का अर्थ स्वरूप किया। **उनके सुत... पुत्र दारादिक...** स्त्री आदि **जीवों में मोह की प्रवृत्ति होती है।** वहाँ उनकी सम्हाल करना, ध्यान रखना, यह करना... यह करना... आहाहा! उसे सुख मिले, उसे दु:ख न हो। किसे ? उसके शरीर को। आहाहा! **मोह की प्रवृत्ति होती है।** यह भाषा परिवर्तनकार ने।

भावार्थ :- जिन मनुष्यों ने... जिन अर्थात् जो। **जिन मनुष्यों ने जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना,...** लो! जीव अर्थात् आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप। अजीव अर्थात् राग और शरीर, वाणी, मन आदि। उनके पदार्थ के स्वरूप को यथार्थ जाना नहीं। यह पुण्यभाव को यथार्थ जाना नहीं, अर्थात् पुण्यभाव से धर्म होता है, ऐसा मानते हैं और आत्मा को आत्मारूप से जाना नहीं, इसलिए पुण्य के द्वारा आत्मा को लाभ होता है, ऐसा मानते हैं। आहाहा! पुण्य का राग का स्वरूप और आत्मा का स्वरूप भिन्न है, वह जैसा है, वैसा उसने जाना नहीं। इसलिए उस राग के भाग को, पुण्य के भाग को 'धर्म करते हैं', ऐसा मानते हैं। आत्मा माना उसने। आहाहा!

स्व-पराध्यवसाय है। उसे तो **देह में स्व-पराध्यवसाय है।** अपनी देह में और पर की देह में, ऐसा। अध्यवसाय एकत्वबुद्धि है—एकत्वनिश्चय है। आहाहा! **अपनी देह को अपनी आत्मा जानते हैं और पर की देह को पर की आत्मा जानते हैं,...** यह शरीर ही मैं हूँ, ऐसा मानते हैं। बस उसकी शोभा, शृंगार, खिलाना-पिलाना, सम्हाल, नहलाना-धुलाना। ऐसे सवेरे माँग पाड़ना। पटीया अर्थात् क्या ? बाल-बाल व्यवस्थित करके। अभी तो यह बहुत बढ़ गया है। ऐसे... ऐसे रखते हैं सब। क्या कहलाता है ? कंघा-कंघा। यहाँ तो कुछ नहीं था। बहुत देखते हैं। मजदूर निकले तो भी। पहले तो टोपियाँ ओढ़ते थे, इसलिए दबता था। अब टोपी निकल गयी। टोपी हो न, उसमें दब जाये।

रूखे-रूखे हों तब तो बहुत नहीं दिखाई दे। और यह खुल्ले रूखे रखे नहीं जाते। उसे तेल चोपड़ना पड़े। और न उड़े, इसलिए अधिक चिकनाई रखे। आहाहा! यह नव... में देखा। एक बार रात्रि में... ऐसा करते थे। जवान करते हैं अभी। मजदूर भी करते हैं। उघाड़े सिर रहना, इसलिए खुल्ले बाल हुए बिना रहे नहीं। पण्डितजी! और वह तो टोपी ओढ़ते। टोपी इसलिए यहाँ दबकर रहे, यहाँ दबकर रहे, यहाँ दबकर रहे। फिर उसे कंघे की आवश्यकता नहीं, तेल की आवश्यकता नहीं। यह तो सब बदल गया। घड़ी चाहिए, कंघा चाहिए। क्या कहलाता है ? पैन चाहिए इसे। आहाहा! अच्छे कपड़े हों तो यहाँ गलपट्टा (टाई) चाहिए। दिखाई दे। शरीर को आत्मा माना, इसलिए उसे शृंगारने में पड़ा है। आहाहा! बहुत बढ़ गया है ... आहाहा!

पर की देह को पर की आत्मा जानते हैं, उनके पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्बियों में मोह होता है। परसन्मुख उसका झुकाव रहता है। **जब ये जीव, जीव-अजीव के स्वरूप को जाने,...** भगवान आत्मा तो पर है। राग से पर है तो शरीर, वाणी, कर्म तो (कहाँ रहे ?) ऐसा जो जीव भगवान आत्मा, उसे अपने में सुख मुझमें, मैं जीव हूँ और मेरा सुख मुझमें है। मेरा सुख पर के कारण नहीं और पर को भी पर के कारण सुख नहीं। ऐसा यदि अपने में ऐसा माने तो पर के कारण, ऐसा माने। पर को भी दाल-भात आहार अनुकूल मिला, इसलिए सुखी है—ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो आत्मा में दृष्टि करे तो वह सुखी है, पर भी। अपने ऐसा कि उसे आहार-पानी दें तो वह सुखी हो। ऐसा ज्ञानी नहीं मानता। स्वयं भी उससे सुखी मानता नहीं तो पर को भी इस प्रकार से सुखी मानता नहीं। आहाहा!

जब ये जीव, जीव-अजीव के स्वरूप को जाने, तब देह को अजीव मानें,... लो! वह शरीर को तो जड़-अजीव माने। **आत्मा को अमूर्तिक चैतन्य जानें,...** यह तो अमूर्तिक वापस। उसमें रंग, रस, गन्ध, (स्पर्श) है नहीं। आहाहा! ऐसा जाने तो उसके अस्तित्व की अन्दर की दृष्टि रहे, परन्तु यह मैं नहीं और यह मैं, उसमें उसके अस्तित्व के ऊपर दृष्टि रहे राग के ऊपर। **अपनी आत्मा को अपनी मानें और पर की आत्मा को पर मानें...** आत्मा को। पर के आत्मा को पर का आत्मा माने। उसका देह है, वह उसका आत्मा, ऐसा न माने। आहाहा! **तब पर में ममत्व नहीं होता है।** पर को पर का आत्मा

माने, फिर (ममत्व) कहाँ रहा? वह तो पर आत्मा है। मेरा आत्मा यह है। पर में यह मेरे हैं, ऐसा उसे रहता नहीं। **पर में ममत्व नहीं होता है। इसलिए जीवादिक पदार्थों का स्वरूप...** जीव-अजीव, पुण्य-पाप इत्यादि। उसका स्वरूप **अच्छी तरह जानकर... अच्छी तरह जानकर...** ऐसा। ऐसा का ऐसा नहीं। बराबर जानकर। **मोह नहीं करना...** पर में रुचि और पर में राग नहीं करना। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ११

आगे कहते हैं कि मोहकर्म के उदय से मिथ्याज्ञान और मिथ्याभाव होता है, उससे आगामी भव में भी यह मनुष्य देह को चाहता है— इस भव में भी देह को अपनी माने और परभव में जाये तो भी वह देह को ही चाहे। आत्मा हो मेरा, यह कहाँ है उसे? देह अच्छी मिले स्वर्ग में, मनुष्य में। आहाहा! मिथ्याज्ञान और मिथ्याभाव होता है। भविष्य के भव में भी वह मनुष्य की देह को चाहता है। आहाहा! वह **मनुष्य देह को चाहता है—**

मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं सं मण्णए मणुओ ॥११॥

अर्थ :- यह मनुष्य मोहकर्म के उदय से मिथ्याज्ञान के द्वारा मिथ्याभाव से भाया हुआ... मिथ्या भावना से भावना में पड़ा है। आहाहा! **आगामी जन्म में इस अंग को अच्छा समझकर चाहता है।** लो! इस देह को ही अच्छा मानकर, बस। शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं। लो! शरीर की सुखाकारी हो तो मन ठीक रहे और मन ठीक हो तो आत्मा में धर्म हो, ऐसा अज्ञानी... आहाहा! वैद्य भी ऐसा बतावे, हों! बड़े वैद्य सही। शरीर की निरोगता रहे तो मन को स्फूर्ति रहे। मन को स्फूर्ति रहे तो धर्मध्यान हो सके। लो, ठीक! वह कहता था, वह बड़ा वैद्य नहीं अहमदाबाद का? आया था, नहीं? पटेल के घर में। पटेल के यहाँ उतरे थे न। अहमदाबाद में। पंचकल्याणक था तब। क्या वह? रमणभाई के यहाँ उतरे थे, तब वैद्य देशी। बड़ा वैद्य है। बड़ा वैद्य है। .... आया था। एकाध दो... वह कहे, ऐसे शरीर ऐसा हो और स्फूर्ति रहे, बस।

मुमुक्षु : पहला सुख निरोगी काया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोगी काया। हाँ यह। पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख घर में चार पुत्र। किसी को छह पुत्र हों, और आठ हों। तीसरा सुख सुकुल की नारी। अच्छे कुल की नारी, वह तीसरा सुख उसके घर का। चौथा सुख कोठी में अनाज। कोठी में अनाज हो। यह चार सुख, भाई! अज्ञानी के। आहाहा! निरोग सुख। रोग-निरोग के साथ सम्बन्ध क्या है ? आहाहा! सातवें नरक का नारकी सोलह रोग। तथापि उसमें समकित पाता है। आहाहा! सातवें नरक का रव-रव नारकी। उसकी पीड़ा का पार नहीं होता। उसकी सदी वहाँ बहुत होती है। एक सर्दी का वह कण यहाँ आवे तो अनेक कोसों के मनुष्य मर जायें। इतनी सर्दी। उसमें ३३ सागर व्यतीत करे। उसमें आत्मधर्म पावे। आहाहा! अब बाहर क्या कहते हो, सुन न! आहाहा! संयोग कहाँ तुझे बाधक हैं ? आहाहा! ऐसी प्रतिकूलता सातवें नरक में। आहाहा! राजा, महाराजा हो बड़ा, माँस और मदिरा खाया(-पीया) हो। वह गुरु के निकट सुना हुआ हो, परन्तु कुछ ...में रखा न हो। वह मरकर नरक में जाये, राजा हो। वहाँ पार्लियामेंट....

... फट फट उस तालाब के पास रहे सर्दी में। वहाँ जाकर मारे। आहाहा! देखने को अनदेखा करना (कहावत है)। पीछे आँख चाहिए। ऐसे न चाहिए। ऊपर ऐसा कहे। अपने ऐसी कहावत है आँख ओडे गई। वह यहाँ देखता नहीं, यहाँ चली गयी है। आहाहा! ऐसी बात है। यह वह ... रखे थे बेचारे उसके पास। हे राजा! ऐसा भी पाप। अरे! इस हाथ से करते हैं और इस हाथ से भोगेंगे। हम क्षत्रिय हैं। मर गया। अभी चिल्लाहट मचाता होगा नरक में। आहाहा! रणजीत सिंह अभी यहाँ राजा था। जामनगर का करोड़। अभी नरक में चिल्लाहट मचाता होगा। आहाहा! परन्तु लोग भूल जाते हैं। वर्तमान देखकर और त्रिकाली भगवान कौन है, उसे भूल जाते हैं। आहाहा! वर्तमान की लालच, अनुकूलता—प्रतिकूलता देखकर वर्तमान को ही माननेवाले, त्रिकाली भगवान चिदानन्दस्वरूप है, उसे नहीं जाननेवाले, नहीं माननेवाले, इस स्थिति में पड़े, वे मरकर जायेंगे कहीं। आहाहा! वहाँ यह सेठाई काम नहीं आयेगी। यहाँ पूर्व में किया, यहाँ भोगा। अब चिल्लाहट मचाकर मर जायेगा, बापू! नरक की वेदना, वह नारकी सहन करे। उसकी पीड़ा... पीड़ा... यह सब मिथ्यात्व के फल हैं। स्व-पर की एकता मानने

के यह सब फल हैं। स्व-पर की एकता में फल फले। स्व-पर की एकता टूटने पर भव का अभाव होता है। आहाहा! क्या करना इसमें, सूझ पड़ती नहीं। वह तो कहे बाहर करना। यह करना। राग और शरीर से भिन्न।

दृष्टान्त नहीं दिया था? करवत का। अभ्यास करते। आता है न अभ्यास। कलुषित। कलनात्। करवत होती है न, लकड़ी में अभ्यास करे (तो) दोनों भिन्न पड़ जायें। इसी प्रकार यह अभ्यास तो कर, प्रभु! आहाहा! राग और भगवान अन्दर स्वभाव चैतन्य का, दोनों भिन्न हैं, ... आहाहा! उन्हें भेद पाड़ने का अभ्यास तो कर तू। आहाहा! यह अभ्यास करने से तुझे दोनों भिन्न दिखाई देंगे। आहाहा! परसन्मुख के झुकाववाले विकल्प राग, चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, उससे चैतन्य जाननेवाला तत्त्व अत्यन्त भिन्न है। उसे राग के साथ सम्बन्ध नहीं। वास्तव में तो राग को ज्ञायकभाव स्पर्शा नहीं, छुआ नहीं। आहाहा! ऐसे दो भाव को प्रज्ञाछैनी से दोनों को पृथक् कर न! उसमें तुझे हित है, भाई! आहाहा! दुनिया की महत्ता लेने, दुनिया में बड़ा कहलाने, बड़ा व्यापार, धन्धा क्या कहलाये अभी यह सब? कारखाना। बहुत कारखाना अभी तो। फलाना तो कारखाना, फलाने को तो कारखाना। सब यही बातें करते हैं। ... कारखाना। आहाहा! यह मोह पर की सम्हाल रखने और देह की सम्हाल में अर्थात् कि पर के साथ होड़ाहोड़ में जीने में अधिकपना मेरा हो। उसमें यह सब उपाधि कर बैठता है। आहाहा!

भावार्थ :- मोहकर्म की प्रकृति मिथ्यात्व के उदय से ज्ञान भी मिथ्या होता है,... ज्ञान मिथ्या हो जाता है। मिथ्या श्रद्धा हुई। राग मैं, पुण्य मैं, शरीर मैं, यह... सब कर्म के, वह मैं, कर्म के फल सब संयोगी वह मैं। वह मिथ्या, ज्ञान मिथ्या हो गया। आहाहा! जो देखना, उसे देखे नहीं; नहीं देखना, वहाँ अपना मानकर बैठे। यह ज्ञान... हो गया। **परद्रव्य को अपना जानता है...** इसलिए भगवान चैतन्यस्वरूप अपने को न जानकर, अपनी कीमत न करके यह राग और पुण्य और पाप की कीमत करके पर को अपना माने, जाने। **और उस मिथ्यात्व ही के द्वारा...** उस मिथ्याश्रद्धा द्वारा, ऐसा कहा। क्या कहा? ज्ञान मिथ्या होता है, वह ज्ञान पर को ही अपना जानने का मिथ्याज्ञान। और **परद्रव्य को अपना जानता है...** इसलिए राग और शरीर को ही अपना मानता है। वह

मिथ्यात्व ही के द्वारा मिथ्या श्रद्धान होता है,... ऐसा कहते हैं। वह कर्म के द्वारा, ऐसा नहीं, ऐसा। आहाहा! मिथ्यात्व द्वारा मिथ्याश्रद्धान। उल्टी श्रद्धा द्वारा मिथ्याश्रद्धा होती है। वह पर के कारण से होती है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा सुनने पर भी निवृत्ति नहीं मिलती। ... तो ले। सुनने को निवृत्त होवे। पाप का धन्धा करना, उसमें सुनने के पुण्य में आवे। अभी तो पुण्य, हों! धर्म तो बाद में। कितने ही तो बहुत धन्धा हो तो कहे, मरने की भी फुरसत नहीं, ऐसा कहे। ठीक। अभी तो मरने की भी फुरसत नहीं। बापू! मरेगा तब... पड़े रहेंगे, भाई! हाय... हाय... यह क्या हुआ? यह हमारे ऐसा कहते हैं। मरने की... फुरसत। फुरसत। निवृत्ति कहाँ है, बापू? यह देह छूटने के समय ऐसा निवृत्त होगा। लड़के का विवाह होगा, विवाह। आहाहा!

राणपुर में हुआ था न। भतीजे का विवाह किया। मण्डप भतीजे का। बारात जानेवाली थी। ... और उसे ... उसका पिता तो वापस चला गया। आहाहा! मण्डप... बारात गयी और यहाँ मर गया। पुत्र रूप से ... भाव ... पितारूप से। आहाहा! मण्डप के नीचे निकाला। आहाहा! ऐसे दृष्टान्त हजारों अनन्त बने हैं। आहाहा! ... अभी तो मण्डप निकाला नहीं था। उसे यहाँ ... निकाला। दामनगर-दामनगर। आहाहा! संसार। उसको मिठास। भाई! तू कौन है? कहाँ है? तुझे तेरी खबर नहीं। तू तो ज्ञान और आनन्द में तू है। राग और शरीर में तू नहीं। आहाहा! समझ में आया? तू राग और शरीर में शोधने जायेगा तो नहीं मिलेगा। आहाहा! अन्दर आत्मा तो राग और शरीररहित चैतन्यमूर्ति, चैतन्यस्वरूपी भगवान आत्मा। आहाहा! वहाँ देख, उसे देख, उसे शोध। आहाहा! यह मिथ्यात्व हो गया इसे, ऐसा कहते हैं।

कर्म के उदय के कारण। अर्थात् कि वह उदय ही उसे कहते हैं। वरना तो कर्म का उदय निर्जरा हो जाये। आहाहा! **ज्ञान भी मिथ्या होता है,...** चैतन्य का ज्ञान विपरीत हो गया। आहाहा! **परद्रव्य को अपना जानता है और उस मिथ्यात्व ही के द्वारा मिथ्या श्रद्धान होता है, उससे निरन्तर परद्रव्य में यह भावना रहती है...** लो! जिसे अपना माने, उसकी निरन्तर भावना रहे। राग बढ़ाऊँ, शरीर बढ़ाऊँ, परिवार बढ़ाऊँ, यह बढ़ाऊँ। आहाहा! व्यापार बढ़ाऊँ। पिता ने नहीं किया था, उतना व्यापार हम करते हैं। मेरे पिता दो हजार पैदा करते थे, मैं पचास हजार, लाख पैदा करूँ। आहाहा! कहते हैं, वह

निरन्तर परद्रव्य में यह भावना रहती है... आहाहा! लड़के बढ़े, उन्हें पढ़ाना, उन्हें अच्छे ठिकाने डालना, ... व्यापार में जोड़ना। मर गया ऐसा का ऐसा। तेरा तूने क्या किया? तुझे अच्छे ठिकाने डालना है या नहीं तुझे? आहाहा! यह तो मिथ्याश्रद्धा की बात है, हों! ऐसे छोड़कर स्त्री, पुत्र छोड़े, इसलिए मिथ्याश्रद्धा छूट गयी—ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो राग और देह, शरीर को अपना माने और फिर साधु होकर बैठे, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि ही है। यह बाहर की व्यवस्था रखने के लिये ही मिथ्या प्रयास करेगा वह। आहाहा! साधु हो तो भी, दूसरे साधु को स्वागत के समय बैण्ड था, मेरे स्वागत में बैण्ड नहीं? ... दो-दो हजार लोग, पाँच-पाँच हजार लोग हों। दो-चार-पाँच बैण्ड हों। हजार-हजार लोगों को ....। मेरे समय नहीं? मैं तो आचार्य... ऐसे का ऐसा। कहते हैं कि वह राग और पुण्य और पाप को अपने मानता है, उसकी पुष्टि करने के लिये ही वह मिथ्या प्रयास करता है। आहाहा!

निरन्तर परद्रव्य में... देखा! स्वद्रव्य चैतन्य भगवान, वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसका तो भान नहीं होता। मैं कुछ करूँ, राग करूँ, पुण्य करूँ, पाप करूँ, यह करूँ... यह करूँ... उसमें **निरन्तर परद्रव्य में यह भावना रहती है...** ऐसा। आहाहा! उसे डोरा छूटता नहीं। जैसे सांधे जाये डोरा निकालते, वैसे यह सांधे जाये। पर की अनुकूलता करने, पर की प्रतिकूलता पालने। आहाहा! **कि यह मुझे सदा प्राप्त होवे...** मुझे यह सब अनुकूलता प्राप्त होओ। परन्तु किसकी अनुकूलता? पर की? पर की अनुकूलता अर्थात् क्या? आहाहा! भगवान के समवसरण में गया, कितनी अनुकूलता थी बाहर की। परन्तु अन्दर में? राग और पुण्य, वे मेरे—ऐसी मान्यता में पड़ा, उसे अनुकूलता क्या करे? भगवान की वाणी जैसी अनुकूलता। आहाहा! समवसरण धर्म दरबार। उसमें गया, वह मिथ्यात्व ऐसा का ऐसा रहकर वापस... आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया। मिथ्यादृष्टि नहीं गया? अहमेन्द्र सभी। कोई छोटे-बड़े नहीं। ठीक! आहाहा! परन्तु अन्दर मिथ्यात्व पड़ा है। राग को अपना मानकर चैतन्यस्वरूप की... उस अहमेन्द्र में उलझन में भी मिठास, पर में मिठास।

यह मुझे सदा प्राप्त होवे... मुझे अनुकूलता हो। मृत्यु तक सब ठीक रहे, ... ठीक रहे, फलाना ठीक रहे। मरण तक ... यह सब अनुकूलता ... **इससे यह प्राणी आगामी**

देह को भला जानकर चाहता है। इसलिए तो भविष्य के देह को भला जानकर वहाँ जायेगा। आहाहा! अवतरित होगा। धर्मी दूसरे देह में जाये, परन्तु भला मानकर नहीं जाता। आहाहा! **यह प्राणी आगामी देह को भला जानकर चाहता है।** स्वयं चैतन्यस्वरूप की उसे भावना बढ़ो। भविष्य में स्वर्ग में से निकलकर भी यह होओ। वह तो ज्ञानी को ऐसी भावना होती है। आहाहा! स्वर्ग की अनुकूलता में ऐसा होने पर, भावना तो (ऐसी होती है कि) कब मैं मनुष्य होऊँ, कब मैं राग छोड़कर मुनि होऊँ? आहाहा! अज्ञानी ऐसा मानता नहीं। उसे तो बाहर की अनुकूलता....

छठवें... कहते थे। ... अभी लेख आया था। वे ... थे न स्थानकवासी में। ... गुजर गया। उसने छह बोल यह लिये थे। ... जैन शासन का वैरी ... छठवें से। इसमें से ... बहुत सुख। बहुत जानपना हो, परन्तु जिसे अन्दर सम्यग्दर्शन का भान नहीं। राग से, पठन से भी मेरी चीज़ भिन्न है। ऐसा जिसने वहाँ साधारण शब्द रखा। उसने यह रखा। ... अत्व अर्थात् आत्मज्ञानी, अणत्व अर्थात् अनात्मज्ञानी। ऐसा किया है। वह कषायवन्त। कषायवन्त को सुख का जानपना, वह संसार को बढ़ानेवाला है, ऐसा कहते हैं। कषायवन्त को शिष्य का परिवार बढ़े, इज्जत बढ़े, कीर्ति बढ़े, वह सब परिभ्रमण के लिये है। जैसे-जैसे बहु श्रुत... ... बहुत लोग माने। उस कषायवन्त को सब लोग माने। भटकने के लिये है। आहाहा! परिवार बढ़े, इज्जत बढ़े, ... बढ़े। ... जिसे राग से, पुण्य से आत्मा भिन्न है। मेरी चीज़ में राग, पुण्य (नहीं) - ऐसी चीज़ का भान नहीं। वह राग को अपना मानकर और वह दुःखी होकर बाहर के अनुकूल साधन मिलेंगे, उसमें उसे पाप की वृद्धि होगी। आहाहा! उसका उसे अभिमान (बढ़ेगा) आहाहा! और आत्मज्ञानी को... धर्म की ... मेरे लिये ... मेरी वृद्धि का कारण नहीं। पर की वृद्धि से मैं भी बढ़ा, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १२

आगे कहते हैं कि मुनि देह में... अब, सुलटा लेते हैं। **मुनि देह में निरपेक्ष है, देह को नहीं चाहता है, इसमें ममत्व नहीं करता है, वह निर्वाण को पाता है।** आहाहा!

जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं॥१२॥

जो धर्मी जीव। तीन विशेषण दिये। योगी, ध्यानी, मुनि। मुनि की प्रधानता से कथन है न! मोक्ष का कारण तो चारित्र ही है न अन्दर की दशा। यह लोग माने, वह चारित्र नहीं कहीं। अज्ञानी बाहर से छोड़कर साधु होकर घूमे, वह मिथ्यादृष्टि है। चारित्र कहाँ था? आहाहा! यह तो जिसे भगवान आनन्द और ज्ञान सरोवर, उसका जिसने मीठा पानी पिया है। उस आत्मा के आनन्द का जल जिसने पिया है। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसका जिसे सम्यग्दर्शन में आनन्द का भान जिसे स्वाद में आया है और जिसे चारित्र में तो अतीन्द्रिय आनन्द बढ़ गया है। आहाहा! आत्मा में जुड़ान बढ़ गया है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन में जुड़ान है, इसलिए चारित्र में उग्र जुड़ान हो गया। ऐसे योगी। अन्तर ध्यान में साधनेवाले ध्यानी। ऐसे ध्यानी और यह मुनि। **देह में निरपेक्ष है...** देह के साथ पर (के साथ) सम्बन्ध क्या है? उसकी पर्याय उसके कारण से होती है। मेरे कारण से रहती नहीं, मेरे कारण से जाती नहीं। आहाहा!

अर्थात् देह को नहीं चाहता है... अर्थात् अपनी देह को अपना मानता नहीं। देह को निज मानता नहीं। **उदासीन है....** आहाहा! शरीर से भिन्न आत्मा का ज्ञान है, वह धर्मात्मा शरीर के प्रति तो उदास है। आहाहा! **निर्द्वंद्व है...** निर्द्वंद्व की व्याख्या की। **राग-द्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मान्यता से रहित...** ऐसा। राग। द्वंद्व है न अर्थात् राग-द्वेष। **राग-द्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मान्यता से रहित है,...** आहाहा! राग की इच्छा और द्वेष की इच्छा, वह तो अनिष्ट मान्यता है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसकी एकाग्रता की तो धर्मी को भावना होती है। वह राग और द्वेष की इच्छा, ऐसी जो अनिष्ट मान्यता, वह अनिष्ट मान्यता है। आहाहा! 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दु:ख मूल।' इच्छा में तो

आत्मा को शान्ति नहीं। आहाहा! ऐसी इच्छा, अनिष्ट मान्यता से रहित है।

निर्ममत्व है—देहादिक में यह मेरा ऐसी बुद्धि से रहित है, निरारम्भ है—इस शरीर के लिये तथा अन्य लौकिक प्रयोजन के लिये आरम्भ से रहित है... लड़के का विवाह करना, फलाना वह ... होता है? शरीर के कारण और पर के कारण वह कुछ होता नहीं। आहाहा! **और आत्मस्वभाव में रत है,...** मुनि तो। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप... उसमें वह लीन है। **निरन्तर स्वभाव की भावनासहित है,...** वह (अज्ञानी) उस देह की भावना भाता है। यह निरन्तर स्वभाव की भावनासहित **वह मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है।** लो! ऐसे धर्मात्मा हों, वे निर्वाण पाते हैं। आहाहा! पर को अपना माननेवाले... देह की ... दे में जन्मेंगा, देह में ... आहाहा! ... करता है? राग की इच्छा और द्वेष की इच्छा ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... ... अनिष्ट है। वह धर्मी को होती नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- जो बहिरात्मा के भाव को छोड़कर... राग और शरीर को अपना मानना, वह भाव छोड़ दे। **अन्तरात्मा बनकर...** भगवान ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भान करके **परमात्मा में लीन होता है,...** उस परमस्वरूप में लीन हो। **वह मोक्ष प्राप्त करता है। यह उपदेश बताया है।** लो! ...गाथा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन शुक्ल २, रविवार, दिनांक २४-०२-१९७४
गाथा - १३-१४, प्रवचन-११७

यह अष्टपाहुड़ है, उसमें मोक्षप्राभृत। १३वीं गाथा। भावपाहुड़ चलता था तो उसमें व्यवहार का अधिकार बहुत था। अब तो बड़ी सभा है तो जरा परमार्थ क्या है। फिर से।

★ ★ ★

गाथा - १३

आगे बन्ध और मोक्ष के कारण का संक्षेपरूप आगम का वचन कहते हैं:— भगवान की वाणी में बन्ध और मोक्ष का संक्षेप में क्या कथन है, वह दिखाया है। २४० पृष्ठ गाथा है - १३।

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
ऐसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स॥१३॥

अर्थ :- जो जीव परद्रव्य में रत है,... बहुत संक्षेप में कथन द्वारा बारह अंग का सार कहते हैं। जो अपना चैतन्यद्रव्य ज्ञायकभाव पवित्र शुद्ध ध्रुवभाव को छोड़कर पुण्य-पाप का विकल्प आदि परद्रव्य में जो रत है। परद्रव्य में आश्रय करने से तो विकार ही होता है। चाहे तो तीर्थंकर हो, आगम हो या गुरु हो, परन्तु परद्रव्य के लक्ष्य से तो राग ही उत्पन्न होता है। '**परदव्वरओ बज्झदि**' महा जिनोपदेश। यह जिनोपदेश। वीतराग का यह उपदेश... दिव्यध्वनि में गणधर और इन्द्रों के समक्ष भगवान का यह उपदेश था कि जो जीव परद्रव्य में रत है, परद्रव्य शब्द से (आशय) देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हो, सब परद्रव्य हैं। परद्रव्य में जिसका आश्रयभाव है, वह राग है। उस राग में रत है, वह मिथ्यादृष्टि कर्म से बँधता है। बहुत सूक्ष्म भाव, अपूर्व भाव! अनभ्यासी भाव अनादि काल से अभ्यास नहीं न!

अपनी चीज़ जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुवस्वरूप नित्य स्वभाव, उसका आश्रय छोड़कर जितना परद्रव्य का आश्रय करते हैं, उसमें राग होता है। और राग में एकत्व मानते हैं तो मिथ्यात्वभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव देव, गुरु और शास्त्र के आश्रय से उत्पन्न होता है। ८३ गाथा में आ गया था भावपाहुड़ में, कि जैनधर्म; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि, वैयावृत्य सेवा आदि भाव, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा! वह तो पुण्यभाव है। वह ८३ गाथा में आया है। ८३ है न ८३। भावपाहुड़। पृष्ठ १७८।

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो॥८३॥ (भावपाहुड़)

जैनशासन में जिनेन्द्रदेव ने जो भावप्राभृत में कहा, वह संक्षेप में मोक्षप्राभृत में कहते हैं। **जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है...** वीतरागमार्ग में, जितना परद्रव्य के आश्रय से शुभभाव उत्पन्न होता है, भगवान की पूजा, यह लो इसमें विवाद है न कि भगवान की भक्ति में राग है, वह कहाँ दुःख है? उसमें राग ही नहीं है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की पूजा... उसमें अन्दर में विशेष लिखा है। **पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य ही है...** उसमें पूजा, भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य आदि समझना। यह सब पुण्यभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है वह तो। पूजा, भक्ति, वैयावृत्य, वन्दना, यह तो देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है, परद्रव्य के लक्ष्य से वह भाव होता है। आहाहा! वह तो पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! है? ८३ गाथा। **लौकिक जन तथा अन्यमति कई कहते हैं कि पूजा आदिक शुभक्रियाओं में और व्रतक्रियासहित होता है, वह जिनधर्म है,...** वैसे जैन सम्प्रदाय में रहनेवाला ऐसा कहे... यह ८३ गाथा है, कि **पूजा आदि शुभक्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है, परन्तु ऐसा नहीं है।** आहाहा! **जिनमत में जिनभगवान ने इस प्रकार कहा है कि पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो पुण्य है,...** पुण्य, वह धर्म नहीं; वह तो आस्रव है, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! **और उपवास आदिक व्रत है, वह शुभक्रिया है,...** आहाहा! है? **इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है, इसलिए**

इनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है। स्वर्गादि संयोग मिले, परन्तु आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात, भाई!

जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ... यहाँ भी वह आया। '**ऐसो जिणउवदेसो**' परद्रव्य में जितना परद्रव्य अपने से भिन्न चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो परद्रव्य है ही। उसके आश्रय से तो अशुभराग होता है। और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उस ओर का आश्रय और झुकाव, वह सब शुभराग पुण्य है। उस पुण्य में लीन होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पण्डितजी! है?

मुमुक्षु : पुण्यभाव मिथ्यात्व है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यभाव मिथ्यात्व नहीं। पुण्यभाव में लीन होना और वह धर्म है, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? भगवन्त! मार्ग तो ऐसा सूक्ष्म है। लोगों को बाहर से ऐसी स्थूल चीज़ मिली है तो यह बात उनको ऐसी लगती है कि यह तो निश्चयाभास की बात है। व्यवहार से कुछ लाभ होता है, ऐसी बात तो यहाँ आती नहीं। आहाहा! पण्डितजी! व्यवहार तो परद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होता है। आहाहा!

समयसार में २७२ गाथा में कहा। भगवान ने, परद्रव्य को मैं जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ, दुःखी कर सकता हूँ—ऐसा जो अभिप्राय, वह मिथ्यात्वभाव है। तो कहते हैं, जो परद्रव्य को मैं ऐसे जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ—ऐसा भाव मिथ्यात्व अध्यवसाय है। भगवान ने ... उसका निषेध किया है। तो आचार्य कहते हैं कि जब भगवान ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य को जिलाना, सुखी करना, वह अपने से हो नहीं सकता और मानते हैं तो मिथ्यात्व है, तो हम तो ऐसा कहते हैं, आचार्य कहते हैं कि जितना परद्रव्य आश्रित व्यवहार है, उसका भी भगवान आचार्य निषेध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। अनन्त काल से सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसको प्राप्त करने की विधि भी इसके समझ में आयी नहीं।

मुमुक्षु : अहिंसा परमो धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अहिंसा राग की अनुत्पत्ति होना, वह परमधर्म है।

मुमुक्षु : शुभराग की उत्पत्ति हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग की उत्पत्ति हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। वह हिंसा है। चाहे तो शुभराग उत्पन्न हो। आहाहा! हो, (वह) अलग बात है, परन्तु है वह चीज़ क्या है? कहो, समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, कहते हैं कि राग है। वह राग हिंसा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! पुरुषार्थसिद्धि उपाय (बनानेवाले) अमृतचन्द्राचार्य कलश करनेवाले हैं समयसार के, वही कहते हैं वहाँ। समझ में आया? है न पुरुषार्थसिद्धिउपाय? कौनसी गाथा है? ४४-४४।

अप्रार्दुभावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥

निश्चय से रागादि भावों का प्रकट न होना, यही अहिंसा है और उन रागादि भावों का उत्पन्न होना ही हिंसा है,... आहाहा! यह तो वीतराग मार्ग है। भगवान की भक्ति, पूजा, व्रत, तप, उपवास, यह सब भाव राग है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य के समय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अनादि से ऐसे चला आता है। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में... यहाँ तो यह कहते हैं न कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान! मार्ग की दुष्करता... अन्तर्मुख होना और द्रव्यस्वभाव को पकड़ना, वही चीज़ है, बाकी तो सब व्यवहार की बातें बन्ध का कारण हैं। चरणानुयोग में व्रत की जितनी व्याख्या कही, वह सब पुण्यभाव बन्ध का कारण राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... छोड़ने के लिये कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने का यह राग, करने का स्वद्रव्य का आश्रय। यह बात है। क्या हो? अभी तो बहुत गड़बड़ी हुई है न! यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं। भगवान की भक्ति हो, पंच महाव्रत का परिणाम हो, वह तो हिंसा है, राग है, हिंसा है। अहिंसा, वह दुःखरूप होगी या सुखरूप होगी? समझ में आया? वह (राग) तो दुःखरूप है। व्यवहार आता है। सम्यग्दृष्टि को भी स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ और पश्चात् उसको शुभराग आता है। परन्तु है वह हिंसा और बन्ध का कारण। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि का (राग)। मिथ्यादृष्टि का राग तो एकत्वबुद्धि में मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

जिसकी राग के ऊपर रुचि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, उसके शुभराग में तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है, शुभराग हो तो। परन्तु धर्मी जीव को भगवान चैतन्य द्रव्यस्वरूप, अपना आनन्द का नाथ ध्रुव द्रव्यस्वभाव ध्रुव नित्यानन्द, उसका जहाँ आश्रय लिया तो उस आश्रय से तो रागरहित ही दशा उत्पन्न होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों रागरहित दशा है। समझ में आया? वह भी यहाँ कहा न? **'येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति'** वह गाथा है २१२। (पुरुषार्थसिद्धिउपाय की) तीन गाथायें हैं। **'येनांशेन सुदृष्टि'** चिदानन्द भगवान अपना अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प दृष्टि प्रगट की, उतने अंश से अबन्ध है। **'बन्धनं नास्ति'** और **'येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥'** यह २१२ है। आहाहा! समझ में आया? जितने अंश से राग उत्पन्न होता है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, आगम की श्रद्धा... आहाहा! आगम पर है न? उसकी श्रद्धा, वह भी राग की उत्पत्ति होती है। समझ में आया?

पंचास्तिकाय, १७० गाथा में तो ऐसा लिया है। तीर्थंकर कहते हैं कि हमारे—तीर्थंकर की रुचि जिसको है, जहाँ तक राग है, वहाँ तक मुक्ति दूर है, निर्वाण दूर है। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा कहता है। हमारी भक्ति और हमारे प्रति भी जब तक प्रेम है, तब तक उसकी मुक्ति दूर है। आहाहा! हमारे प्रति भक्ति—राग है, तो राग से लाभ माननेवाला तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु राग से लाभ नहीं माननेवाला, अपने चैतन्य के आश्रय से लाभ माननेवाला, उसको जो राग होता है, तीर्थंकर के प्रति, आगम का और नौ पदार्थ की श्रद्धा का। यह तीन बोल हैं, १७० गाथा है, पंचास्तिकाय। तो कहते हैं कि जब तक राग है, तब तक उसका निर्वाण दूर है। आहाहा!

दृष्टि में जब तक राग का प्रेम रहता है, तब तक वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! क्योंकि राग हिंसा है और हिंसा की रुचि रहे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पण्डितजी! कोई तो ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़ ने ऐसा निकाला। तो यह क्या है? भगवान! यह अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य (क्या कहते हैं)? दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं और हजार वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य टीका में और सूत्र में कहते आये हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो उसकी बात यहाँ आयी, परन्तु उसमें है, वह आयी न? पुस्तक छपे, उसमें क्या है? यह तो सोनगढ़ में भी नहीं छपी है। छपी कहीं से भी हो परन्तु भाव क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : किशनगढ़ में छपी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? ... दूसरी बात है, परन्तु भाव तो ऐसे चला आया है या नहीं? समझ में आया? आहाहा! अनादि-अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त भावलिंगी सन्त ऐसा कहते आये हैं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' परमार्थ से वह भगवान आत्मा चैतन्य द्रव्यस्वभाव, उसकी दृष्टि और ज्ञान और उसकी लीनता— आचरण... वह अभी आयेगा उसमें अपने।

सम्यग्दृष्टि को अपने स्वरूप की श्रद्धा, स्वभाव की रुचि, स्वभाव की प्रतीति, आचरणयुक्त है। आहाहा! अपना चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का दल यह है, उसके स्वद्रव्य के आश्रय से रुचि, उसकी प्रतीति, उसकी श्रद्धा और उसका अन्तर में आचरण, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? छहढाला में ऐसा आया न? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' बहुत कहा है परन्तु समझे नहीं और अपना ... रखे और माने कि नहीं। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है तो अनेकान्त कहने में आता है। अनेकान्त की व्याख्या ऐसी करते हैं। समझ में आया? अपने स्वभाव के आश्रय से भी धर्म होता है और परद्रव्य के आश्रय से शुभराग हुआ, उससे भी धर्म होता है। तो वह अनेकान्त है। वह अनेकान्त नहीं, वह तो फुदड़ीवाद है, मिथ्यावाद है। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ तो महा परमपवित्रता स्वभाव से तो भरी है न, भगवान! तुझको तो भगवान कहकर तो आचार्य बुलाते हैं न, नाथ! आहाहा! (समयसार) ७२ गाथा में भगवान आत्मा... आहाहा! पुण्यभाव, वह अशुचि है; भगवान आत्मा पवित्र और निर्मल है, ऐसा कहा। आहाहा! ७२ गाथा। वह पुण्यभाव—भगवान की भक्ति है, वह अचेतन है। आहाहा! क्योंकि उस राग में चैतन्यभाव नहीं आया। उसको—राग को,

शुभराग को वहाँ जड़ कहा है, ७२ गाथा में। क्योंकि उसमें चैतन्य भगवान ज्ञान की किरण, ज्ञान की किरण, ज्ञान का अंश, उस राग में आया नहीं। वह तो अचेतन है। आहाहा! और भगवान आत्मा चैतन्यघन है, विज्ञानघन है, उसमें शुभविकल्प का भी प्रवेश नहीं। जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव भी अचेतन है। आहाहा! षोडशकारण भावना। भावना भाते परम गुरु होय। बोले। 'दरशनविशुद्धि भावना भाये...' फिर क्या? 'सोलह तीर्थंकर पद होय, परम गुरु होय, जय जय नाथ परम गुरु होय।' भगवान! सुन तो सही! वह षोडशकारण भावना भी राग है, वह हिंसा है। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि को ही यह भाव आता है। मिथ्यादृष्टि को यह षोडशकारण का विकल्प होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उपवास करे, व्रत करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत करे, अपवास करे, यह सब लंघन है, (जो) शुभराग हो, राग की मन्दता मिथ्यादृष्टिसहित हो। मार्ग प्रभु! यह तो वीतराग का मार्ग है, यह कोई पाँच-पचास लोग कल्पना कर लें, ऐसी यह चीज़ नहीं। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त भावलिंगी मुनियों का एक प्रकार का उपदेश है। यह यहाँ कहा न, देखो न!

'**ऐसो जिणउवदेसो**' चलती गाथा १३ में। आहाहा! कि '**परदव्वरओ बज्झदि**' भगवान आत्मा अपने द्रव्य को छोड़कर... आहाहा! परद्रव्य में, राग में लीन रहता है वह '**बज्झदि**' मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व से बन्धन प्राप्त करता है। आहाहा! जैन द्रव्यलिंग धारण करके मुनि पंच महाव्रतादि नग्न मुनि (पाले), परन्तु राग में एकत्वबुद्धि है (तो) परद्रव्य में राग है उसको। तो मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व को ही बाँधते हैं। भले अट्ठाईस मूलगुण पालता हो। आहाहा! समझ में आया?

जो जीव परद्रव्य में रत है, रागी है, वह तो अनेक प्रकार के कर्मों से बँधता है,... अनेक प्रकार शब्द से मिथ्यात्व से अनन्तानुबन्धी आदि से कर्म से बँधता है। ओहोहो! यह बात कुछेक को ऐसी लगती है कि यह तो निश्चयाभास की बात है। क्योंकि व्यवहार से लाभ कहते नहीं। प्रभु! परन्तु व्यवहार तो शुभराग है। शुभोपयोग, वह व्यवहार है। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! चाहे तो सम्यग्दृष्टि हो या चाहे तो मुनि

हो, परन्तु जितनी राग में एकता है, अस्थिरता है, उतना बन्ध है। एकता है तो मिथ्यात्व का बन्ध है। एकता नहीं और अस्थिरता आती है तो उसको अस्थिरता का बन्ध है। आहाहा! देखो! यह श्लोक। भावपाहुड़ में जरा नव ब्रह्मचर्य ऐसी लम्बी-लम्बी बात आती थी। पाठ संक्षिप्त में है और ... ऊपर से कहाँ से यह कहते हैं, ऐसा लगे तो यह पाठ यहाँ लिया। समझ में आया?

और जो परद्रव्य से विरत है... 'विरओ मुच्चेइ' आहाहा! एक ही शब्द में। परद्रव्य-सन्मुख के राग में एकत्वबुद्धि है, वह बन्धन को प्राप्त होता है, और राग और परद्रव्य से विरक्त है। आहाहा! **'विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं'** उसको कर्म बँधते नहीं। पाठ की शैली तो अनेक प्रकार से आती है। आहाहा! **'विरओ'** परद्रव्य से विरक्त है। परद्रव्य के प्रति जिसे प्रेम ही अन्दर से छूट गया है। आहाहा! राग हो, परन्तु रुचि-श्रद्धा उससे छूट गयी है। समझ में आया? यह परमागम की भक्ति, प्रतिमा की भक्ति, यह सब होता तो है न, परन्तु वह राग है—ऐसा ज्ञानी जानते हैं। परन्तु आता है, आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जो हो। लाख का हो या पच्चीस लाख का हो। वह तो जड़ की क्रिया है, अपनी क्रिया है नहीं। उसमें जो भाव था, वह शुभभाव है। होता है। परन्तु वह बन्ध का कारण है, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता में तो वह राग पामरता है। आहाहा!

भगवान तो ऐसा कहते हैं शक्ति में—४७ शक्ति में कि अपना वीर्य—बल तो उसको कहिये कि जो शुद्ध स्वरूप की रचना करे, उसका नाम वीर्य है। राग की रचना करे, वह वीर्य नपुंसक है। आहाहा! समझ में आया? वीर्यगुण है न। अभी सब चल गया है। रिकॉर्डिंग हो गया है सब। ४७ शक्ति। उसमें वीर्य का क्या कार्य? कि स्वरूप की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। आहाहा! अपना शुद्ध ज्ञान-श्रद्धा, शान्ति-वीतरागता की रचना करे, वह वीर्य। शुभभाव की रचना, वह तो नपुंसकता है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग की श्रद्धा अलौकिक चीज़ है। समझ में आया? यह कोई पक्ष की बात नहीं। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ (ने) केवलज्ञान में देखा, ऐसी चीज़ का **'ऐसो**

जिणउवदेसो' ऐसा कहा न? वीतराग भगवान की वाणी में ऐसा उपदेश आया। आहाहा!

रागी नहीं है, वह अनेक प्रकार के कर्मों से छूटता है,... छूटता है अर्थात् उसको वीतरागभाव उत्पन्न हुआ स्वद्रव्य के आश्रय से, परद्रव्य के आश्रय का भाव जिसको छूट गया (और) उसका स्वद्रव्य के आश्रय में लीन हो गया। जितनी लीनता श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति है, उससे उसको कर्मबन्धन नहीं है। कर्म छूट जाता है। आहाहा! यह निर्जरा है। समझ में आया? यह तो अपवास करे (और माने कि) निर्जरा हुई। धूल में भी निर्जरा नहीं है, भगवान! तुझे अभी खबर नहीं। उपवास करने में यदि राग की मन्दता हुई हो तो वह मन्दता पुण्य का कारण है परन्तु उसमें धर्म मानते हैं तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है उसको। समझ में आया? जैनदर्शन का मर्म यह है। आहाहा!

रागी नहीं है, वह अनेक प्रकार के कर्मों से छूटता है, यह बन्ध का और मोक्ष का संक्षेप में जिनदेव का उपदेश है। आहाहा! त्रिलोकनाथ वीतरागदेव सर्वज्ञ परमेश्वर... कुन्दकुन्दाचार्य... भगवान विराजते हैं महाविदेह में। सीमन्धर भगवान का पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व की देह की स्थिति है। आत्मा अनादि-अनन्त है। उसकी अक्षय स्थिति है। और देह प्रमाण (आत्मा) का अवगाहन है। शरीरप्रमाण आत्मा का अवगाहन है, वह तो अपना है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये। संवत् ४९। लब्धि थी। जमीन से चार अंगुल ऊपर चलने की लब्धि थी। भगवान के पास गये। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि देव आया और ले गया। वह गये वहाँ, यह बराबर है। और वहाँ आठ दिन रहे। आठ दिन रहकर यहाँ आकर यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! भगवान का सन्देश लाये, वह इस शास्त्र में आया है। समझ में आया? भगवान के घर का माल था, वह माल उनको अनुभव में आ गया। सम्यग्दर्शन-चारित्रसहित अनुभव में आ गया। भावलिंगी सन्त थे। परमेश्वरपद में मिल गये थे। आहाहा! जिसको गणधर, महाविदेहक्षेत्र के गणधर, शास्त्र की रचना में णमो लोए सव्व साहूणं (कहे), उसमें वे आचार्य आये थे। तेरे चरण में हमारा नमस्कार है। ओहोहो! बाह्य में अपने से छोटी दीक्षावन्त को साधु पैर न छुए। परन्तु णमो पंच नवकार गिने, उसमें तो नमस्कार आ जाता है।

'ऐसो जिणउवदेसो' प्रभु! परद्रव्य में राग करनेवाला बँधता है और स्वद्रव्य में

राग से विरक्त होकर... आहाहा! अपने स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, रुचि और अन्तर में आचरण, द्रव्य में आचरण, राग का आचरण नहीं। आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान की श्रद्धा, ध्रुव की श्रद्धा, वह श्रद्धा पर्याय है। आहाहा! वह प्रतीति, रुचि यह है पर्याय। और अपने स्वरूप में स्थिर करना, आचरण करना, वह भी एक पर्याय है। यह वस्तु है, भगवान! ... आहाहा! प्रभु! तेरी प्रभुता की सम्हाल ले। पामरता को छोड़ दे। पण्डितजी! ऐसी बात है। तो सोनगढ़ की बात है, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरे घर की बात है। आहाहा! ऐसा जिन-उपदेश तो कहा यहाँ, आचार्य कहते हैं कि हम कहते हैं ऐसा नहीं। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य कहे, वही यथार्थ प्रमाण है। यह तो अपने उपदेश में जो बात कही, वह तो जिन का उपदेश है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... जिनदेव का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जिनदेव का उपदेश है। आहाहा! जिनोपदेश है। जिनदेव का उपदेश। अर्थकार तो लिखे न। जिनदेव का यह उपदेश है। संक्षेप में उपदेश है। सार में सार संक्षिप्त में कहने में आया है, ऐसा उपदेश वीतराग का है। आहाहा!

भावार्थ। जिनदेव का उपदेश कहकर, अपना उपदेश नहीं, (परन्तु) वह तो वीतराग (का उपदेश है) ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। मैं तो वीतराग की वाणी द्वारा वीतराग कहते हैं, वह कहता हूँ। है हमारी अनुभवदृष्टि भले। समझ में आया? मुनिपना है, परन्तु हम कहते हैं वीतराग वाणी के अनुसार कहते हैं कि यह मार्ग है। आहाहा! अरे! ऐसे मनुष्यभव में सत्य की बात सुनने में न आवे और सुने तो अन्दर परिचय न करे, परिचय करके उसका अनुभव न करे। आहाहा! जन्म-मरण का मिटानेवाला तो यह एक भाव है। स्वद्रव्य की श्रद्धा अन्दर अनुभव निर्मल करना। आहाहा! बाकी सब बातें हैं। मूल बात है। कल ही प्रश्न आया न चेतनजी के ऊपर। कल आया। चार दिन हो गये। अभी आयेंगे। भगवान की भक्ति में ... निर्णय करो। अरे! भगवान! ... है। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। कुछ सुना नहीं। ... शान्ति, शान्ति के भाव में तो लूट होती है, तब शुभभाव उत्पन्न होता है। हो, परन्तु है हिंसा और दुःखरूप। आहाहा! तब उसको कहे कि भगवान की भक्ति करते हैं, उसमें कहाँ अशान्ति है? प्रभु! तुझे शान्ति की खबर नहीं। शान्तिस्वरूप भगवान आत्मा का जो अनुभव हो तो शान्ति के साथ

मिलाते हैं तो यह राग है, वह अशान्ति है। परन्तु शान्ति क्या चीज़ है, उसकी तो खबर नहीं, तो मिलान किसके साथ करे? तो राग की अशान्ति न दिखे उसको। प्रेमचन्दजी! समझ में आया? सुनने में बराबर आता है? बड़ी चर्चा हुई। ... आवास था उसके घर। राजमलजी। आपके घर आवास था। ... क्या करे भाई! यह बात। ... हमारे सेठ थे। अजीर्ण हो गया। आहाहा! भाई! वीतरागमार्ग को हजम करना ... वह अलौकिक बात है, भाई! भले राग छोड़ सके नहीं, चारित्र हो सके नहीं, परन्तु राग का आदर है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। और जहाँ राग का आदर है, वहाँ चिदानन्द भगवान का अनादर है। समझ में आया? राग का अन्तर से जो आदर है, 'द्वेष अरोचक भाव'। भगवान आत्मा के प्रति अरुचि हुई और राग के प्रति रुचि हुई तो आत्मा के प्रति द्वेष हुआ। आहाहा! समझ में आया? जिसको राग का प्रेम है, उसको स्वरूप के प्रति द्वेष है। जिसको स्वरूप के प्रति रुचि है, उसको राग के प्रति अरुचि है, आदर नहीं। हो। छद्मस्थ है। आहाहा! 'मूल मार्ग सांभळो जिननो रे।' यह जिन का मूलमार्ग है। आहाहा!

कहते हैं कि **बन्ध-मोक्ष के कारण की कथनी अनेक प्रकार से है,...** शास्त्र में अनेक प्रकार से है। चरणानुयोग में व्रत, व्रत के अतिचार को पालना आदि बहुत बातें हैं। **उसका यह संक्षेप है - जो परद्रव्य से रागभाव तो बन्ध का कारण...** आहाहा! यह तो ११वीं गाथा में भी कहा न, पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किया है कि जितना परद्रव्य -आश्रित व्यवहारभाव है, कथनी भगवान की वाणी में भी व्यवहार की कथनी बहुत आयी है। एक तो अनादि का भेद का तो आश्रय है—भेदबुद्धि राग आदि भेदबुद्धि। और उपदेश करनेवालों में भी परस्पर यही उपदेश बहुत चलता है। दो। और तीसरी बात, जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश हस्तावलम्ब निमित्त देखकर बहुत आया है, परन्तु तीनों का फल संसार है। भगवान की वाणी में आया व्यवहार, ऐसा भी कहा है। है?

व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से है ही। ...भेददृष्टि छोड़कर... पर्यायबुद्धि में भेदबुद्धि तो अनादि से है। और उसका उपदेश बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। उसका उपदेश वही जाति का करे। हाँ बराबर है। वह तो निश्चय-निश्चय की (बात करते हैं)। और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब सहायक जानकर बहुत किया है। जिनवाणी में भी व्यवहार बहुत आया है, वह व्यवहार द्वारा

निश्चय समझाना है, समझाना है। व्यवहार कराना नहीं है। चरणानुयोग व्यवहार बताता है कि देव-गुरु, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ... वह आत्मा। वह तो भेद से बात कही। भेद से बताना है आत्मा। भेद का लक्ष्य कराना नहीं, भेद का अनुकरण करवाना नहीं, भेद का अनुसरण कराना नहीं। समझ में आया? शुद्धनय का हस्तावलम्ब जानकर बहुत किया। किन्तु उसका फल संसार ही है। संसार ही है। आहाहा! जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश आया है, वह भी संसार है। आहाहा! क्यों आया? ऐसा क्यों आया? आता है, उसका ज्ञान कराते हैं। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! चारों तरफ से तपासे तो वस्तु ऐसी एक ही सिद्ध होती है। कहो, चन्दुभाई! आहाहा! ... रागभाव तो बन्ध का कारण है। आहाहा! और वीतरागभाव मोक्ष का कारण है। इस प्रकार संक्षेप में जिनेन्द्र का उपदेश है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १४

आगे कहते हैं कि स्वद्रव्य में रत है, वह सम्यग्दृष्टि होता है... आहाहा! **और कर्मों का नाश करता है—**

सदव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं ॥१४॥

आहाहा! **अर्थ :- जो मुनि...** आत्मा मुनि। **स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में रत है,...** आहाहा! शुद्ध घन आनन्दकन्द ध्रुव, उसमें रत वह पर्याय है। शुद्ध ज्ञानघन जिसमें दृष्टि का प्रसार करके उसमें लीन है। आहाहा! समझ में आया? **जो मुनि स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में रत है,...** अपना ज्ञायकस्वभाव चैतन्यमूर्ति अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, जिसमें निमित्त तो है नहीं, राग है नहीं और एक समय की पर्याय भी जिसमें—द्रव्य में है नहीं। समझ में आया? ऐसा अपना स्वद्रव्य स्वभाव, उसमें रत। पर्याय उसमें लीन होना। ओहोहो! जो पर्याय—अवस्था-वर्तमान ज्ञानदशा जो राग में लीन है, उस पर्याय को स्वभाव में लीन करना। तो वह पर्याय तो स्वभाव में लीन ही होती है। वह तो रात्रि को कहा था कि वह पर्याय तो राग में एकाकार है। वह पर्याय तो

अन्दर में झुका नहीं सकता। तब उपदेश में ऐसा आता है। पर्याय में पुरुषार्थ करवाना है न? पुरुषार्थ तो पर्याय में होता है न, द्रव्य में तो पुरुषार्थ है नहीं। द्रव्य तो पुरुषार्थ का पिण्ड सारा पड़ा है। आहाहा! तो पर्याय में आश्रय लो द्रव्य का। भूतार्थ का आश्रय करो। कौन करे? पर्याय करे। कौन सी पर्याय? जो पर्याय राग में है, वह पर्याय तो ... नयी आये, वह और नयी आये, वह आश्रय करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसे साथ में है। जब द्रव्य द्रव्य के ऊपर पड़ा तो पर्याय उत्पन्न हुई दृष्टि, तो उसने आश्रय द्रव्य का लिया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! कहो, बाबूभाई! आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ३४वाँ वर्ष है जिनमन्दिर का। जिनमन्दिर का ३३ वर्ष आज पूरा हुआ। १९९७ फाल्गुन शुक्ल दूज, भगवान के मन्दिर की आज वर्षगाँठ है। आज ३३ वर्ष पूरा हुआ मन्दिर को। ३४वाँ आज शुरु हुआ। समझ में आया? आहाहा! सात प्रकृति का नाश का उपाय आत्मा में है। आहाहा! वह आत्मा में रत है। विशेष बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक २५-०२-१९७४
गाथा - १४, प्रवचन-११८

सदव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं॥१४॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, तीर्थंकर भगवान ने जो मार्ग कहा, वह मार्ग जगत के पास प्रसिद्ध करते हैं। जो कोई आत्मा... वह शब्द पड़ा है न, मुनि। **स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में रत है,...** आहाहा! भगवान आत्मा स्वद्रव्य शुद्ध अखण्ड आनन्दकन्द है, उसका आश्रय लेकर अन्तर स्वरूप में लीन है, रत है। जो कोई आत्मा अपने स्वद्रव्य में शुद्ध चैतन्यघन की रुचि, श्रद्धा—प्रतीति और स्वरूप का आचरण करते हैं, उसको धर्मी जीव कहा जाता है। स्वद्रव्य में रत। स्वद्रव्य, परद्रव्य से भिन्न है और राग दया, दान, आदि विकल्प से भी स्वद्रव्य तो भिन्न है। और स्वद्रव्य में तो वर्तमान पर्याय जो है, उससे भी वह तो स्वद्रव्य भिन्न है। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति। शान्ति शब्द से वीतरागता। आनन्द शब्द से अतीन्द्रिय सुख परिपूर्ण भरा है, प्रभु! उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन पाने की दूसरी कोई रीति है नहीं।

प्रथम धर्म की शुरुआत आत्मद्रव्य में आश्रय करना। वह (समयसार) ११वीं गाथा में ऐसा कहा न। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' सत्यस्वरूप भगवान परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव का आश्रय करने से प्रथम धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है। वह आत्मा में अन्तर्मुख होकर आनन्द और ज्ञान की पर्याय प्रगट करे और उसमें विशेष लीन रहे। आहाहा! क्रियाकाण्ड व्यवहार और निमित्त वह कुछ उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, **रुचि सहित है, वह नियम से सम्यग्दृष्टि है...** त्रिकाली भगवान ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यद्रव्य सामान्य सदृश्य एकरूप जिसका स्वभाव है, ऐसी अन्तर्मुख होकर रुचि करना, प्रेम करना, उसमें एकाग्र होना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और इस सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ करने में आता है, वह सब संसार खाते परिभ्रमण है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में जो बन्ध और मोक्ष की पर्याय से भी रहित है। समझ में आया? जो जीव है ध्रुव, वह तो मोक्ष की पर्याय का भी कर्ता नहीं और मोक्षमार्ग है, उसका भी कर्ता वह नहीं। और बन्ध का कर्ता तो है ही नहीं और बन्ध के मार्ग का कर्ता भी आत्मा है नहीं। आहाहा! ऐसा चिद्घन प्रभु, उसकी जिसको रुचि और दृष्टि हो तो नियम से वह सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? यह उसकी सम्यग्दर्शन पाने की रीति है। कोई कषाय मन्द करे और क्रियाकाण्ड में जुड़ जाये और निमित्त के अवलम्बन में भगवान की अनन्त भक्ति करे तो उससे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर की श्रद्धा करे, उनका ज्ञान करे और उनमें प्रीति करे, वह तो राग है। समझ में आया? १४वीं गाथा है।

'सदव्वरओ सवणो' सम्यग्दृष्टि है... आहाहा! मोक्षपाहुड़। भगवान आत्मा संयोगी चीज़ देव-गुरु-शास्त्र से तो पर है और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, वह राग है, उससे भी आत्मा प्रभु भिन्न है और वर्तमान जो ज्ञान की पर्याय का क्षयोपशम, वीर्य में क्षयोपशम जो एक समय की पर्याय में वर्तता है, उससे भी प्रभु तो भिन्न है। आहाहा! पर्याय से तो भिन्न है। समझ में आया? निश्चय से देखो तो प्रभु पर्याय का क्षेत्र और पर्याय का भाव द्रव्य से भिन्न है। आहाहा! अपना क्षेत्र और अपना भाव, वह पर्याय का क्षेत्र और पर्याय के भाव से अपना क्षेत्र और अपना भाव भिन्न है। भगवान! बात तो ऐसी सूक्ष्म है। लोगों ने बाह्य के त्याग में सब मान लिया, परन्तु अन्तर में मिथ्यात्व का त्याग कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, भगवान! दर्शनपाहुड़ की १४वीं गाथा भाई! बोधपाहुड़ की १४वीं और यह मोक्षपाहुड की १४वीं। तीन १४-१४ है। समझ में आया? बोधपाहुड़ की १४वीं गाथा में ऐसा कहा। है न उसमें? बोधपाहुड़ है न? पहला तो दर्शनपाहुड़, पहला दर्शनपाहुड़। दर्शनपाहुड़ है पहला। १४-१४ गाथा। चौदह गुणस्थान है न। १४-१४ गाथा तीनों में आयी है। पृष्ठ-२०। पहला पृष्ठ-२०।

दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि॥१४॥

जैनदर्शन किसको कहते हैं? समकित की बात यहाँ नहीं। जैनदर्शन है वह

जैनदर्शन किसको कहते हैं ? **जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो...** आहाहा! अन्तर में विकल्प का त्याग, बाह्य में वस्त्र-पात्र के संयोग का भी त्याग। संयोगीभाव का त्याग और संयोगी चीज़ का त्याग। आहाहा! **और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो...** तीन कषाय का अभाव होकर। यहाँ तो जैनदर्शन का वर्णन करना है न ? तीन कषाय का अभाव होकर स्वरूप में सम-सम्यग्दर्शनसहित यम अर्थात् लीनता होती है, वह मोक्षमार्ग है, वह जैनदर्शन है। आहाहा!

तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो... ज्ञान में भी कम, अधिक और विपरीत ऐसा सम्यग्ज्ञान में हो नहीं और अपने आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान—स्व अर्थात् अपना और सं अर्थात् प्रत्यक्ष, आनन्द और ज्ञान का प्रत्यक्ष होना वेदन में, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। और **निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे, ऐसे खड़े रहकर पाणिमात्र में आहार करे,...** ओहो! अन्तर में तीन कषाय का अभाव और अन्तर में आत्मा का अनुभव आनन्द की दशा की मिठास। सम्यग्दर्शन में अन्तर का आनन्द का स्वाद और संयम में उत्कृष्ट प्रचुर स्वसंवेदन स्वाद। आहाहा! और खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार। इसको यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। ऐसा जैनदर्शन अन्तर में आत्मा की श्रद्धा अन्तर का आश्रय करके ऐसी जैनदर्शन की श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? यह १४ में है न ?

और बोधपाहुड़ की १४ है। आहाहा! बोधपाहुड़ की १४। यह तो लोगों को ख्याल रहे तीन गाथा का।

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथ णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं॥१४॥

जैनमार्ग में दर्शन उसको कहते हैं। सम्यग्दर्शन नहीं यहाँ। जैनदर्शन। जैनदर्शन की बात है। '**दंसेइ मोक्खमग्गं**' अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अन्तर में अनुभव हो। और '**सम्मत्तं संजमं**' संयम हो और सुधर्म हो। वीतरागी दशा अन्दर हो। '**णिग्गंथ णाणमयं**' निर्ग्रन्थ हो। बाह्य और अभ्यन्तर ग्रन्थ से रहित नग्नमुद्रा बाह्य में हो। अन्तर में विकल्प से रहित निर्ग्रन्थदशा हो। आहाहा! '**णाणमयं जिणमग्गे**' वह ज्ञानमय चैतन्यबिम्ब हो। उसको जिनमार्ग में दर्शन कहने में आया है। समकित नहीं, हाँ! सारा

मुनिपना तीन कषाय का अभाव, द्रव्यलिंग नग्न और अन्तर में व्यवहार पंच महाव्रत का अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह व्यवहार नग्नपना, वह अजीव की दशा, जीव की तीन कषाय रहित की दशा, यह सब मिलकर जैनदर्शन कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? जैनदर्शन कोई पक्ष नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? और इसके सिवाय कोई अधिक, कम, विपरीत कहे, वह जैनदर्शन नहीं। वीतराग का कहा हुआ वह मार्ग नहीं। जरा सूक्ष्म तो है भगवान! समझ में आया?

दिगम्बर सन्त जो बात अन्तर में से शान्ति का वेदन—चारित्र का वेदनसहित कहते हैं। सम्यग्दर्शन में भी शान्ति का वेदन है परन्तु अल्प है और मुनिपना जिसको कहे, उसको तो प्रचुर स्वसंवेदन है। पाँचवी गाथा में, समयसार में पाँचवी गाथा में आया है। प्रचुर स्वसंवेदन। उसका अर्थ हुआ कि सम्यग्दृष्टि को प्रचुर स्वसंवेदन नहीं। परन्तु अल्प आनन्द का वेदन और ज्ञान की दशा का और वीतराग की पर्याय का विकास है। आहाहा!

प्रथम में प्रथम कर्तव्य हो तो यह है। समझ में आया? नियमसार में कहा न तीसरी गाथा में। '**णियमेण य जं कज्जं**' ३ गाथा में यह पाठ है। जो नियम से कर्तव्य योग्य हो तो यह है। अपना चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक भगवान में दृष्टि प्रसारकर पर्याय को अन्तर में अभेद करना, वही प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! जो पर्याय वर्तमान दशा राग सन्मुख झुकनेवाली है, वह मिथ्यादृष्टि पर्यायबुद्धि है। समझ में आया? आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, इस १४वीं में।

जिसको आत्मद्रव्य में पर्याय लीन हुई है। आहाहा! जो वर्तमान पर्याय—अवस्था चलती है, वह राग के झुकाव में रहे, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? और जो अपनी आत्मा में झुक गयी है पर्याय, वह रत है। उसमें भी बात तो कल कही थी कि जो पर्याय राग सन्मुख झुकती है, वह पर्याय अन्तर्मुख नहीं होती। समझ में आया? जो पर्याय अनादि से राग की ओर झुकती है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। उसके पीछे द्रव्य में लीन होकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह पर्याय द्रव्य सन्मुख झुकती है, उसने द्रव्य का आश्रय किया है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : लाउड स्पीकर काम नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाउड स्पीकर काम नहीं करता? चालू है। चालू है न? ... पर्याय तो अन्दर में घुस गयी ध्रुव में।

(ध्रुव) अविनाशी त्रिकाल है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि जो गुण है, वह भी त्रिकाल अविनाशी है और उसमें जो कारण (शुद्ध)पर्याय है, वह भी उत्पाद-व्यय की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय से रहित है। समझ में आया? अन्दर द्रव्य ध्रुव, गुण ध्रुव और पर्याय समय-समय की ध्रुव। भगवान! यह तो मार्ग जैनदर्शन का है। यह तो अपूर्व बात है। अनन्त काल में कभी उसने यह बात सुनी नहीं। सुनना उसको कहे कि रुचिपूर्वक सुने तो (सुना) कहे।

कहते हैं कि भगवान आत्मा कारणपरमात्मा। कारणपरमात्मा अर्थात्? ध्रुवस्वरूप नित्यानन्द सत्त्व केवल सत् जो आत्मा, उसका सत्त्व जो गुण अनन्त-अनन्त गुण और उसकी वर्तमान अविनाशी कारणध्रुवपर्याय तीनों मिलकर आत्मा कहने में आता है। समझ में आया? उस आत्मा में दृष्टि करके, रुचि करके लीन होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! वह कारणपर्याय सम्यग्दर्शन नहीं। सम्यग्दर्शन तो उत्पाद पर्याय है, नयी उत्पन्न होनेवाली अवस्था है। कारण(शुद्ध)पर्याय नयी उत्पन्न होनेवाली ऐसी अवस्था नहीं। आहाहा! वह तो ध्रुव है। समझ में आया?

जैसे समुद्र है और उसमें जो जल भरा है, वह भी सारा अस्तित्व और उसकी सपाटी जो है, समुद्र की ऊपर की सपाटी, वह तीनों ध्रुव में चले जाते हैं। और ऊपर में रागादि आता है, राग का उपशम होता है, राग का क्षय होता है, वह तो उसकी पर्याय में चलता है। समझ में आया? ऐसे ध्रुव प्रभु जिसकी कारण(शुद्ध)पर्याय भी शुद्ध आनन्दघन है, उसकी अन्तर रुचि करने से, राग और पर्याय से विमुख होकर, निमित्त संयोगी चीज़ चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, परन्तु वह भी परचीज़ है, उससे भी विमुख होकर। आहाहा! उसकी श्रद्धा में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान होता है, उससे भी विमुख होकर और एक समय की पर्याय जो क्षयोपशम, वह सब आ गया उसमें, उससे भी विमुख होकर और स्वभाव-सन्मुख। पर्याय से विमुख।

आहाहा! यह अस्ति-नास्ति। यह अनेकान्त है। अनेकान्त इसको कहते हैं। अनेकान्त फुदड़ीवाद है, ऐसा नहीं। निश्चय से भी होता है और व्यवहार से होता है, उपादान से होता और निमित्त से होता है, वह अनेकान्त है—अनेकान्त ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अपने में आनन्दकन्द ध्रुव भगवान... अहो! ध्रुव को ध्येय बनाकर, ध्येय बनाती है पर्याय; ध्रुव ध्रुव को ध्येय नहीं बना सकता... आहाहा! ध्रुव को ध्येय बनाकर अन्तर एकाग्र होना ध्यान में, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? वह द्रव्यसंग्रह है न, उसमें ४७ गाथा। ४७ समझते हो? ४ और ७। वह सैंतालीस आप की भाषा में। हमारे में सुड़तालीस कहते हैं। ४७ गाथा है द्रव्यसंग्रह की। तो वहाँ ऐसा लिया है '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' यह गाथा है। द्रव्यसंग्रह नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती। वह तो कोई (भी) मुनि हो, दिगम्बर मुनि का कथन एक ही प्रकार का है। समझ में आया? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' आहाहा!

कहते हैं कि दो प्रकार का मोक्षमार्ग। एक उपचारिक, एक निश्चय। दोनों ध्यान में प्राप्त होते हैं। उसका अर्थ क्या? कि वस्तु स्वरूप जो पूर्ण आनन्द है, भगवान! तुम परिपूर्ण भगवान ही हो। भगवान जिनेश्वर की दशा और तेरा द्रव्यस्वभाव, उसमें कुछ अन्तर नहीं है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा, हाँ! अन्य अज्ञानी कहे, वह आत्मा नहीं। आत्मा तो बहुत लोग कहते हैं। आत्मा-आत्मा। एक चार्वाक नास्तिक सिवा। परन्तु सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा कि जिसमें वस्तुरूप से एक और शक्तिरूप अनन्त, शक्ति अर्थात् गुण, ऐसा अनन्तगुण का स्थान अभेद चीज़ है। उस अभेद में दृष्टि देने से... आहाहा! प्रथम में प्रथम निश्चय सम्यग्दर्शन और ज्ञान और शान्ति, वह अन्तर में से होती है। निश्चयमोक्षमार्ग भी ध्यान में प्राप्त होता है और वह ध्यान (में अवशेष रहा राग), वह व्यवहार कहने में आता है।

मुमुक्षु : ध्यान में व्यवहारमोक्षमार्ग.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारमोक्षमार्ग आरोपित से व्यवहार कहा। निश्चय के साथ

निमित्त है तो आरोप से, उपचार से कहते हैं। है तो बन्धमार्ग। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का भाव और शास्त्र का ज्ञान, ये तीनों बन्ध का कारण है। पर सन्मुख का लक्ष्य है न वहाँ? भगवान! ऐसी बात है। शास्त्र की ओर का झुकाव करते हैं न, वीतराग की वाणी सुनते हैं। सुनते समय में जो ज्ञान होता है, अपनी पर्याय में वह सुनने से नहीं। अपनी (पर्याय) है, वह भी सम्यग्ज्ञान नहीं। क्योंकि वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। आहाहा! अन्तर में ज्ञायक आत्मा भगवान को स्पर्श करके, चैतन्यस्वभाव का स्पर्श करके, वेदन करके—आनन्द का स्वाद लेकर जो ज्ञान की पर्याय उसमें से आती है, उसे ज्ञान और मोक्ष के मार्ग की पर्याय कहने में आती है और स्वरूप में स्थिरता, वह ध्यान में स्थिरता होती है प्रथम।

स्वरूप ध्यान। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन का भेद छोड़कर। वह तो उसमें आता है छहढाला में। छहढाला में आता है। भेद छोड़कर। आहाहा! यहाँ तो ध्याता मैं हूँ, मैं ध्यान करता हूँ, ध्याता, ध्यान और ध्येय, द्रव्य ध्येय है—ऐसा भेद भी जहाँ नहीं। आहाहा! ऐसी अन्तर दृष्टि और ज्ञान और लीनता हो तो निश्चयमोक्षमार्ग है। और उसमें जितना राग बाकी रहता है, वह व्यवहार निश्चय के साथ में हो, वह बन्ध का कारण है, परन्तु उसका (निश्चय का) आरोप देकर उसको (राग को) मोक्षमार्ग व्यवहार से कहने में आया है। वह यहाँ कहते हैं।

अपनी आत्मा में... भाषा क्यों लिया है अपनी आत्मा में? स्वद्रव्य शब्द है न? वीतराग को मानना तो शुभविकल्प राग है। समझ में आया? वह १६वीं गाथा में कहेगा। **'परदव्वादो दुग्गइ'** आहाहा! १६वीं गाथा। नीचे १६ है न। **'परदव्वादो दुग्गइ'** जितना परद्रव्य-सन्मुख लक्ष्य जाता है, वह आत्मा की गति और आत्मा का भाव नहीं। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! **'परदव्वादो दुग्गइ'** भगवान आत्मा स्वद्रव्य के अतिरिक्त... **'सदव्वा हु सुग्गइ होइ।'** आहाहा! ... वह सुगति, वह आत्मा की सुगति है। ... तीन लोक के नाथ की भक्ति का भाव भी राग और दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! यह धर्म जीरववा मुकिल है। जीरववा समझते हो? हजम होना, हजम (पचना) होना। हिन्दी शब्द हमें आता नहीं न। हजम होना मार्ग अन्दर में। आहाहा!

कहते हैं कि अपनी... स्वद्रव्य शब्द पड़ा है न? तो स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा। वीतराग का आत्मा नहीं, देव-गुरु का आत्मा नहीं। आहाहा! परद्रव्य की नास्ति की है। अपने स्वद्रव्य में रत है। **रुचि सहित है,...** भगवान आत्मा जिसका पुसान। पोषाण कहते हैं; हिन्दी में क्या कहते हैं? व्यापार में पुसान नहीं होता? माल पुसाये। भगवान शुद्ध परमात्मस्वरूप... पर्याय का पुसान छूट गया। आहाहा! ... सदा द्रव्य पर होती है। ... सातवें नरक में नारकी है, रव-रव नरक में अपरिठाणा। ओहोहो! सम्यग्दृष्टि है न? उसकी बात है। मिथ्यादृष्टि वह बाद में लेंगे।

अपना स्वभाव, बापू! प्रभु! यह वस्तु कोई अलौकिक है। अन्तर चिदानन्दस्वरूप ध्रुव स्वरूप (की ओर) झुकना, (उसमें) सारी दशा पलट जाती है। ... द्रव्य है, दशा निर्विकारी है। फूलचन्दजी! ओहोहो! ऐसे यहाँ कहते हैं, जिसको भगवान आत्मा की रुचि हुई... वह निर्जरा अधिकार में भाई आता है न! रति, सन्तोष, कल्याण इतना है। २०६ गाथा, निर्जरा अधिकार में आता है। वह भी कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है।

वह नियम से सम्यग्दृष्टि है और वह ही सम्यक्त्व भावरूप परिणमन करता हुआ... आहाहा! द्रव्य में निरन्तर दृष्टि से परिणमन करता हुआ, ऐसा कहते हैं। अलौकिक बात है। पहले तो सम्यग्दर्शन की बात कही। पीछे सम्यग्दर्शन भावरूप परिणमन करता हुआ। उसका अर्थ कि त्रिकाल द्रव्य के ऊपर दृष्टि कायम रखकर निरन्तर शुद्ध परिणमन जो होता है, वह चारित्र है। चारित्र कोई पंच महाव्रत का विकल्प और नग्नपना, वह चारित्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि **वह ही...** वह ही अर्थात्? जिसको शुद्ध चैतन्य आत्मा परमात्मस्वरूप की अन्दर अनुभव में प्रतीति हुई, अनुभव में प्रतीति। जो वस्तु है, उसको अनुसर के भवन होना, जो चीज़ आनन्दकन्द प्रभु है, उसके अनुसर के अनुभव अर्थात् भवन होना, ऐसे जो सम्यग्दृष्टि... आहाहा!

सम्यग्दर्शन में तो अनन्त गुण का अंश सब प्रगट होता है। क्या कहा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन में जितनी संख्या में गुण है आत्मा में, वह सब गुण का अंश सम्यग्दर्शन में (प्रगट होता है)। सर्व गुणांश, वह समकित। वह शब्द है श्रीमद् का। अपने यहाँ रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (है कि) ज्ञानादि अनन्तगुण का एक अंश निर्मल निर्मल चौथे गुणस्थान में सब प्रगट होता है। है न भाई इसमें? इसमें नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक।

गुजराती है। इसमें भी होगा न। यह है न?

चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को... टोडरमल। 'आत्मा का ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट होता है।' सब गुण। है? रहस्यपूर्ण चिट्ठी है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न वह? हाँ हाँ चिट्ठी है। लो देखो। चौथे गुणस्थान में... आहाहा! गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादि गुण, ज्ञान आदि गुण अनन्त, जितनी संख्या में गुण है, वह सब गुण। ज्ञानादि गुण एकदेश-एक अंश प्रगट होता है। आत्मानन्दजी! यह आत्मा की बात है। आहाहा! देखो न। टोडरमल जैसे ने इतना स्पष्ट किया। श्रीमद् ने उसको 'सर्व गुणांश ते समकित— ऐसा कहते हैं।' सर्व गुणांश वह समकित। यह कहा कि एकदेश प्रगट होता है। समझ में आया? और तेरहवें गुणस्थान में आत्मा का ज्ञानादि गुण सर्वदेश प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में अयोग की पर्याय भी प्रगट होती है। समझ में आया? जितने अन्दर गुण हैं न अनन्त? वह सब गुण की पर्याय का अंश निर्मल व्यक्त आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता आदि सब गुण की पर्याय प्रगट होती है। प्रभु! सम्यक् किसको कहे! आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि **सम्यक्त्व भावरूप परिणमन करता हुआ...** भाव शब्द से पर्याय। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ध्रुव, ऐसा जो अनुभव में आया तो वही द्रव्य की दृष्टि में जोर देकर अन्तर एकाकार होना, उससे **दुष्ट आठ कर्मों का क्षय-नाश होता है।** दुष्ट आठ कर्म का नाश होता है। पाठ है न? **'दुट्ठट्ठ'** वह कहते हैं न, णमो अरिहंताणं, कर्मरूपी वैरी को हनते हैं, ऐसा न लेना। वह चले गये। परन्तु उन्होंने ऐसा कहा। फिरोजाबाद के पण्डित माणेकचन्द। अरि शब्द नहीं। जैन में अरि शब्द (नहीं लेना)। अरे! परन्तु उसमें है क्या? यहाँ कहा दुष्ट आचरण है। उसमें क्या है? णमो अरिहंताणं। भावकर्मरूपी वैरी निश्चय में, द्रव्यकर्मरूपी वैरी असद्भूत व्यवहारनय में, उसका नाशकर जिसने केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट किया, उसको अरिहन्त कहते हैं। अरि है। अरि शब्द आया तो द्वेष हो गया? वह प्रश्न आया था। क्या कहते हैं उसको? फिरोजाबाद। माणेकचन्दजी। उसका आया था। आहाहा!

यहाँ तो कहा, दुष्ट कर्म है। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध शक्ति को धरनेवाला है। ऐसी आठ कर्म की पर्याय, वह तो निमित्त से कथन है। परन्तु अपना सम्यग्दर्शनरूपी

परिणमन से उग्र निरन्तर, सदा निरन्तर द्रव्य के ऊपर दृष्टि का जोर से जो परिणमन होता है, उसमें अशुद्ध परिणामरूपी भावकर्म का नाश होता है। अशुद्ध भावकर्म जो घाति है, उसका नाश होता है और जड़कर्म का नाश तो उसके कारण से होता है। अपनी पर्याय से होता है, ऐसा नहीं। कर्म की पर्याय उस समय अकर्मरूप होने की थी तो उसके कारण से हो गई है। आत्मा के कारण से हुई है, ऐसा नहीं। वह तो परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

दुष्ट आठ कर्मों का क्षय... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि स्वद्रव्य में एकाग्रता से सम्यग्दर्शन होता है, स्वद्रव्य में एकाग्रता से ही मुक्ति होती है। चारित्र भी स्वद्रव्य में लीनता, शुक्लध्यान भी स्वद्रव्य में लीनता और एकाग्रता के कारण केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय से भी मोक्ष होता है, ऐसा नहीं। यहाँ तो द्रव्य में एकाग्र होने से मोक्ष होता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अरिहन्त भगवान को शुक्ललेश्या होती है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार... उपचार। योग के साथ लेश्या थी, लेश्या गई परन्तु योग रहा तो उपचार से लेश्या कहने में आया है। लेश्या बन्ध नहीं। लेश्या तो क्लेश है, क्लेश तो बन्ध का कारण है। भगवान को है नहीं। योग की अपेक्षा से उपचार से कहने में आया है। क्योंकि कषाय अनुरंजित योग लेश्या। गोम्मटसार में है न? वह तो है। कषाय से रंजित योग को लेश्या कहते हैं। तो कषाय से रंजित वह भाव तो चला गया कषायभाव। योग रहा, उस अपेक्षा से कहा उपचार से। भगवान को लेश्या-बेश्या है नहीं।

यहाँ कहते हैं, **यह भी कर्म के नाश करने का कारण संक्षेप कथन है।** आहाहा! कोई उपवास करना, व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, उससे कर्म का नाश होता है, ऐसा है नहीं। वह तो बन्ध का कारण है। कहते हैं, **यह भी कर्म के नाश करने का कारण संक्षेप कथन है। जो अपने स्वरूप की श्रद्धा...** अपने स्वरूप—स्व-रूप। शुद्ध आनन्दघन ज्ञानादि अनन्त गुण का स्व-रूप वह अपना रूप, उसके स्वरूप की श्रद्धा। स्वरूपवान आत्मा आ गया उसमें। स्वरूप की श्रद्धा में स्वरूपवान आ गया तो स्वरूप की श्रद्धा कहा है। अपने स्वरूप की श्रद्धा, अपने स्वरूप की रुचि—सब एक ही अर्थ

है। अपने स्वरूप की प्रतीति और अपने स्वरूप का आचरण। आहाहा! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : श्रद्धा और प्रतीति में क्या अन्तर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब एकार्थ है। भिन्न-भिन्न अर्थ कहा। श्रद्धा कहो, उसको रुचि कहो, उसको प्रतीति कहो, एक ही बात है। आचरण, यह स्वरूप का आचरण। व्रत का विकल्प, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! स्वरूप जो भगवान आनन्दघन शक्ति का पूर्ण स्वरूप, उसमें आचरण, लीनता, वीतरागता, अनाकुल आनन्द की दशा की उग्रता, वह आत्मा का आचरण है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य आचरण तो होता है उसके कारण से, आत्मा से नहीं। होता है वह बात है। वह तो प्रश्न यहाँ नहीं। वह धर्म नहीं। हो उसके कारण से। निश्चय से नहीं, सुनो! निश्चय से तो यति की जितनी क्रिया है, उन सबका आत्मा में अभाव है। अलिंगग्रहण है। १७२ गाथा है न, प्रवचनसार की। १७२ गाथा में २० बोल है अलिंगग्रहण के। तो उसमें कितने में आया ? १७। १७वाँ बोल है। सत्रह कहते हैं तुम्हारे ? १० और ७। यति की बाह्य क्रिया जितना विकल्प और नग्नपना, वह सब आत्मा में है नहीं।

मुमुक्षु : स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रवचनसार है ? अन्तर में न हो, बाहर में हो उसके कारण से। तो उसमें क्या आया ? उसमें आत्मा का अधिकार कहाँ आया ? क्या कहा ? १७२ गाथा। १७। १८वाँ लगता है। **लिंगों का अर्थात् धर्मचिह्नों का...** धर्म के चिह्न जो नग्नपना आदि है और पंच महाव्रत का विकल्प आदि है, उसका **ग्रहण जिसके नहीं है...** आहाहा! वह संस्कृत है हाँ। **'न लिंगानां धर्मध्वजानां'** जितना बाह्यलिंग है धर्मध्वज। नग्नपना और पंच महाव्रत का विकल्प **'धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येसि बहिरंगयतिलिंगा-भावस्य।'** वह आत्मा में है नहीं। आहाहा! वह आत्मा में है नहीं। पर में हो। समझ में आया ? जिसको ऐसा आत्मा अन्दर में है मुनिपना, भावलिंग अन्तर दृष्टिसहित, उसको पंच महाव्रत का विकल्प होता है। परन्तु वह बाह्य है, वह आत्मा में नहीं है। विकल्प है वह आस्रव है। तो आस्रव अन्दर में है नहीं। और नग्नदशा भी है, वह अन्दर में नहीं।

आहाहा! बात यह है कि वहाँ रुचि जमती है कि ऐसा हो तो ठीक। उसका जोर वहाँ है। हो तो वह अजीव की पर्याय है। नग्नदशा तो अजीव की पर्याय है और आस्रव तो विकारी पर्याय है। वह चैतन्यद्रव्य में अन्दर में अलिंगग्रहण (है अर्थात्) ऐसा चिह्न धर्मध्वज का अन्दर में है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : परन्तु वह बाह्यलिंग मोक्षमार्ग है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। मोक्षमार्ग नहीं है। परन्तु होता है नग्न। मुनिपना है, भावलिंग है तो उसको नग्नपना ही होता है। कोई कहे कि वस्त्रसहित हो, वह झूठ बात है। होता है, वह तो अजीव की पर्याय है। अजीव की पर्याय है, ऐसी होती है। कोई कहे कि वहाँ वस्त्र हो, पात्र हो और बाह्यलिंग ऐसा हो और अन्तर में मुनिपना है तो, ऐसी बात झूठ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह तो पहले कह गये न। १४वीं गाथा में (कि) खड़े-खड़े आहार। १४वीं गाथा। दर्शनपाहुड़ की १४वीं गाथा। खड़े-खड़े आहार है। बैठकर आहार ले और पात्र में आहार ले तो वह मुनि नहीं। आहाहा! परन्तु उसके ऊपर जोर नहीं वहाँ।

मुमुक्षु : उससे धर्म होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म होता है और उससे कुछ लाभ होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यह तो दृष्टि की प्रतीति कराते हैं पहली। आहाहा! १७२ गाथा।

मुमुक्षु : हानि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हानि है, नुकसान है। उस ओर लक्ष्य जाता है, इतना विकार उत्पन्न होता है। नग्नपने के ऊपर लक्ष्य जाता है, वह भी विकल्प उत्पन्न होता है। हो। हो तो वही दशा होती है। किसी को नग्नपना न हो और वस्त्रसहित हो और साधुपना आ जाये, तीन काल में (होता) नहीं। वह तो संयोगी चीज़ छूट जाती है उतनी। समझ में आया? व्यवहार और निश्चय के बीच में गड़बड़ बहुत। निश्चय ऐसा होता है तो व्यवहार होता है, परन्तु व्यवहार होता है तो निश्चय है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : नाटक में कहा न। निश्चय-व्यवहार में जगत भरमाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत भरमाया। आया न दो नय से। आता है।

यहाँ कहते हैं **नियम से सम्यग्दृष्टि है,...** आहाहा! निश्चित अपने स्वभाव की दृष्टि, रुचि और रमणता वह सम्यग्दृष्टि साधु है। बाद में आयेगा मिथ्यात्व का। **यह सम्यक्त्वभाव से परिणमन करता हुआ...** क्या कहा? कि वस्तु का स्वरूप है, उसकी दृष्टि, रुचि, अनुभव हुआ और उस ही अनुसार सम्यक्‌भाव से परिणमित होता हुआ, शुद्धस्वभाव से परिणमन होता हुआ, आठ कर्मों का नाश करके मुनि निर्वाण को प्राप्त करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : किस रीति से मुनि कर्म का नाश करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस रीति से मुनि कर्म का नाश करते हैं। कहो, पण्डितजी! आहाहा! मार्ग प्रभु! ध्रुव स्वभाव का आश्रय करना, उसके आश्रय से सब धर्म परिणति होती है। बाकी सभी व्यवहार की बातें हों। हो। वह तो संयोग की बात है। समझ में आया? वह कहा था न? वस्त्र का धागा रखकर भी मुनिपना माने, निगोद गच्छई। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा।

मुमुक्षु : व्यवहार बराबर नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? आता है या नहीं? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि तिल-तुषमात्र भी परिग्रह है और मुनिपना माने तो निगोदं गच्छई। उसका अर्थ कि जिसको मुनिपना प्रगट हुआ है, उसको द्रव्य का उग्र आश्रय है। और उसकी पर्याय में संवर उग्र है। तो उसकी पर्याय में वस्त्र लेने का आस्रव का विकल्प होता ही नहीं। आहाहा! यह एक भूल नहीं, उसमें नौ तत्त्व की भूल है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि जो कोई ऐसी अन्तर दृष्टि में रमणता करते हैं, वह निर्वाण को प्राप्त होता है, दूसरे की मुक्ति होती नहीं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन शुक्ल ४, मंगलवार, दिनांक २६-०२-१९७४
गाथा - १५-१६, प्रवचन-११९

गाथा - १५

अष्टपाहुड़ शास्त्र है। उसकी १५वीं गाथा चलती है।

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं ॥१५॥

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा इस देह में विराजमान चैतन्यस्वरूप जो है, वह इस शरीर, वाणी, मन से भिन्न चीज़ है और अन्दर जो कर्म है पुण्य और पाप के रजकण जिसको प्रारब्ध कहते हैं, उससे भी वह चीज़ प्रभु भिन्न है। और अन्दर में जो पुण्य और पाप का भाव होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह पुण्यभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना पापभाव—उन दोनों भाव से आत्मा अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! ऐसी चीज़ की पहिचान अनन्त काल में कभी पूर्व में की नहीं। और ऐसी समझन बिना, आत्मज्ञान बिना, आत्मदर्शन बिना अनन्त काल में चौरासी लाख में परिभ्रमण करते हैं, उसका कारण? कि जो '**जो पुण परदव्वरओ**' सूक्ष्म बात है, भगवान! आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसको छोड़कर शुभ और अशुभ जो राग है, विकल्प है, वासना है, उसमें जो लीन है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव चार गति में परिभ्रमण करनेवाला है। समझ में आया?

'**परदव्वरओ**' परद्रव्य उसको कहे... सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल में परिचय किया नहीं इसका। अनन्त काल में स्वर्ग में अनन्त बार गया, नरक में अनन्त बार गया। प्रभु! आत्मा अनादि का है। तो अनादि की अपनी चीज़ की कीमत और बहुमान किये बिना, परचीज़ की कीमत करने से चौरासी में उसको भटकना पड़ा है। समझ में आया? कैसे होगा वकील? आहाहा! '**परदव्वरओ**' यह शब्द पड़ा है। सूक्ष्म है, भगवान! चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु है वह। उससे भिन्न जितना शुभ और अशुभ

राग और विकल्प पुण्य-पाप का होता है, वह परद्रव्य है। निश्चय से अपनी चीज़ नहीं। समझ में आया? यह तो पहली बार सुनने में आया। यह चीज़ दूसरी है दुनिया से। उसका लड़का है न आठ हजार का वेतन है। रामजीभाई का। मुम्बई में। धूल की कीमत। धूल। ऐसो (कम्पनी) है न? पेट्रोल। उसमें वह ऑफिसर है। उसका एक ही लड़का है। मासिक आठ हजार का वेतन है। यहाँ आता है। अभी आयेगा। हम तो कहते हैं कि धूल है तेरा आठ हजार का वेतन।

जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु शान्त अनाकुल आनन्दकन्द... कल दृष्टान्त दिया था श्रीफल का। नारियल है न, नारियल? नारियल में ऊपर का छाला है, वह कोई नारियल नहीं, श्रीफल नहीं। और अन्दर जो काचली है। काचली को क्या कहते हैं हिन्दी में? तुम्हारी सब भाषा आती नहीं। हमें तो थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती है। वह काचली है, उससे भी श्रीफल अन्दर भिन्न है। और जो काचली तरफ की लाल छाल होती है, जो खोपरापाक करते समय उसको खमणी में छीलकर करके निकाल देते हैं। लाल छाल वह कोई श्रीफल नहीं, वह खोपरा नहीं। खोपरा तो मीठा, सफेद, शुद्ध सफेद गोला जो अन्दर डेढ़ सेर है, वह श्रीफल है। ऐसे... यह तो दृष्टान्त हुआ। ऐसे यह शरीर है, वह ऊपर की छाल है। वह आत्मा नहीं। और उसमें आठ कर्म जिसको प्रारब्ध कहते हैं, पूर्व का पुण्य कोई हो तो उससे ये सेठाई और धूल का सेठ होता है या नहीं? ऐ... सेठ! ये धूल के सेठ करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। वह पूर्व का कोई पुण्य पड़ा हो रजकण-धूल, तो उसके पाक के काल में ऐसी गोटी बैठ जाती है। तो उसको ऐसे दो-पाँच करोड़ मिल जाये, वह तो धूल है। उसका कारण पूर्व का प्रारब्ध है। उस प्रारब्ध से भी आत्मा भिन्न है, काचली से जैसे भिन्न है वैसे। शरीर छाल है यह, अन्दर काचली शब्द से कर्म है रजकण सूक्ष्म मिट्टी। जिसे कर्म कहे, प्रारब्ध कहे, तकदीर कहे, वह चीज़ भी जड़ है अन्दर। उससे भगवान आत्मा अन्दर में भिन्न है। और काचली की ओर की लाल छाल जो सूक्ष्म है। उसी प्रकार आत्मा का आनन्दस्वरूप भगवान में जो उसकी दशा में—हालत में पुण्य और पाप का भाव दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पुण्य भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, कमाना, रलना, नौकरी करना आदि का... क्या है? ये पन्ना का धन्धा करना। वकीलात करना, वह पाप है। समझे? ये वकील थे न

३० वर्ष पहले। २०० रुपये लेते थे। पाँच घण्टे के २०० रुपये लेते थे। एक दिन का। धूल है। और वह सब समझन है, वह भी कुज्ञान है।

भगवान! तेरी चीज़ तो शरीर से भिन्न है, कर्म से भिन्न है और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है। और उसका जानपना कहने में आता है, ये वकीलात का, डॉक्टर का, एल.एल.बी., एम.ए. का पूँछड़ा बड़ा होता है न? उसकी जो ज्ञान की पर्याय है, उससे भी वह भिन्न है। आहाहा! कभी सुना नहीं, कभी अपनी चीज़ क्या है, उसका पता लिया नहीं, इस कारण से चौरासी लाख में एक-एक योनि में अनन्त बार परिभ्रमण करता है। समझ में आया? अनन्त बार राजा हुआ, करोड़-करोड़ की उपजा एक-एक दिन की, ऐसा राजा भी अनन्त बार हुआ, अनन्त काल का आत्मा अनादि है। नया उत्पन्न होता है, ऐसी चीज़ नहीं। वह तो है। है, उसकी उत्पत्ति क्या? और है, उसका नाश क्या? और है, उसका जो त्रिकाली स्वभाव है, उसका अभाव क्या? सूक्ष्म बात है, भगवान! ऐसी आत्म चीज़ वह स्वद्रव्य है। अपनी चीज़ पूर्णानन्द, जैसे वह खोपरा सफेद; वैसे आत्मा शुद्ध, खोपरा मीठा, वैसे आत्मा में आनन्द। आहाहा! क्यों पोपटभाई नहीं आये हैं? ठीक नहीं होगा। ठीक! कहो, समझ में आया?

अन्दर में शुद्ध चैतन्यघन है। जैसे शियाळा का दिन। शियाळा को क्या कहते हैं? जाड़ा का दिन। तुम्हारे हिन्दी में। जाड़े के दिन में पहले मगसर महीने में घी बहुत अच्छा होता था। अभी ये सब क्या कहते हैं तुम्हारे? काला बाजार हो गया सबमें। ओहोहो! अनीति... अनीति... अनीति... तो पहले का घी ऐसा था कि भैंस और गाय ने कपासिया खाया हो उसका दूध, उसका दही और उसमें से घी होता था। वह घी इतना घन था घन कि जिसमें उँगली तो प्रवेश करे नहीं, परन्तु खुरपा। खुरपा समझे? तावेथा हमारे गुजराती में कहते हैं। वह खुरपा भी डाले तो टेढ़ा हो जाये। ऐसा घी घन था। अभी तो बहुत हो गया। तुम्हारे क्या कहते हैं? वेजिटेरियन को फलाना और ढींकणा। कुछ दगा हो गया। आहाहा! वह आया था न, एक म्युनिसिपालिटी का व्यक्ति वहाँ भावनगर का। तो करियाणा की दुकान में से ले आया ४०-४५ चीज़। तो उसमें से ३५ चीज़ तो मिलावटवाली निकली। अभी साल, दो साल पहले की बात है। भेलसेल, भेलसेल समझे? मिलावट। ऐसे आत्मा में राग की मिलावट अनादि से मानी है। आहाहा!

मुमुक्षु : एकरूप नहीं हुई है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकरूप है नहीं। एकरूप हो तो पृथक् पड़ सके नहीं। जो पृथक् पड़ सके, वह एकरूप हुआ ही नहीं। राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना वह विकल्प है, वासना है, राग है, लाल छाल जैसे खोपरा की है, वैसे लाल छाल है। आहाहा! वह परद्रव्य है। लाल छाल, वह काचली और छाल। ऐसे शरीर, कर्म और पुण्य और पाप का भाव। वकील! ये तुम्हारे वकीलात करने का भाव, जीते और फलाना, वह पाप है। (धर्म) क्या, पुण्य (भी नहीं है) तो धर्म तो कहाँ था वहाँ? वह सब परद्रव्य है अन्दर।

उस परद्रव्य में रतो... यह तो अध्यात्मभाषा है, भगवान! यह कोई कथा नहीं है कि झट उसमें स्पष्टीकरण आ जाये। '**परदव्वरओ**' इतना शब्द पड़ा है। '**जो पुण परदव्वरओ**' जो कोई आत्मा ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति और काम, क्रोध विकार के भाव में लीन है, उसमें रुचि है, उसमें अपनापना माना है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसकी दृष्टि मिथ्या-झूठी है। आहाहा! वह असत्य का सेवन करनेवाला है। सूक्ष्म है भगवान!

अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान,
सेवे नहिं गुरु संत को, छोड़ा नहिं अभिमान।

अनन्त काल से आथड्यो। आथड्यो समझे? हमारी गुजराती भाषा है। भटका, रुला।

अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान,
सेवे नहिं गुरु संत को, छोड़ा नहिं अभिमान।

क्या चीज़ आत्मा है, आत्मज्ञानी क्या कहते हैं और आत्मज्ञानी क्या समझाते हैं, उसकी दृष्टि कभी हुई नहीं। आहाहा! दुनिया की मजदूरी की सब। कमाना, खाना, पीना, भोग की वासना, वह सब मजदूरी, विकार की मजदूरी है। मजदूरी में खेदखिन्न होकर चार गति में भटकते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें मिठास लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिठास लगती है, ऐसा कहते हैं। वह तो कहा नहीं? कहा

नहीं था? कहा नहीं था? ज्येष्ठ महीने की धूप-गर्मी हो। सुनो। मिठास लगती है राग में-विषय में। तो ज्येष्ठ महीने की गर्मी होती है न? तड़का क्या? धूप। तो लड़के को बहुत दूध पिलाये दूध। तो इतना दूध पिलाया है तो उसको शेरणा हो जाये। शेरणा समझे? दस्त हो जाये। पतला-पतला दस्त। प्रवाही। बाहर में गर्मी हो। बालक साल, डेढ़ साल का हो। ऐई! बलुभाई! यह बहुत बड़े डॉक्टर हैं। फैक्ट्री बड़ी।

मुमुक्षु : दवा बनाने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा की बहुत बड़ी फैक्ट्री। वह तो उसके घर गये थे न, मुम्बई। बड़ा कारखाना पाप का। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ में जो राग उत्पन्न होता है, उसमें मिठास आती है। कैसी? कि ज्येष्ठ महीने की धूप में बालक को दूध बहुत पिलाया हो तो पतला दस्त हो जाये, बाहर में गर्मी हो। बच्चे को देखा है? हाथ लगाये। ठण्डा है न, ठण्डा? है तो (विष्टा)। ऐई! सेठ! पीछे बात करते हैं न अभी तो। हाथ लगाता है। करता है बच्चा। देखा है? हमने तो सारे संसार को देखा है। नाचते है, उसमें नाचने में आया नहीं, परन्तु नाच कैसा होता है, उसे देखा है। तो वह बालक जैसे ठण्डे की मिठास लेता है, ऐसी (राग की) मिठास है। आहाहा! पुण्य और पाप का भाव, वह तो विष्टा समान है। आहाहा!

क्या कहते हैं? कि विषय में, भोग में, आबरू में, कीर्ति में मजा आता है। तो वह मजे की व्याख्या चलती है। अभिनन्दन दे। बड़ा ऐसा लम्बा लम्बा आता है न? जलसा उड़ावे। बैठे फिर बोले। फिर बोलते हैं कि मैं इसके योग्य नहीं हूँ। अन्दर तो मिठास है। परन्तु तुम इतना इकट्ठे होकर मुझे इतना अभिनन्दन देते हो, वह आपकी महत्ता है। क्योंकि अन्दर में प्रसन्न हो वापस। बड़प्पन देते हैं और अभिनन्दन पत्र सुनाते हैं वहाँ। वह राग की मिठास तो विष्टा की मिठास है। भगवान आत्मा अमृतस्वरूप चिदानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द उसकी रुचि, पोषाण, श्रद्धा, आदर, सेवन—सब एकार्थ है, (उसको) छोड़कर दया, दान, व्रत और काम, क्रोध के उत्साह में जो प्रेम-राग है, उस राग की मिठास को मानते हैं, (उसको) यहाँ मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठी दृष्टि। सत्य दृष्टि नहीं, सच्ची दृष्टि नहीं। स्वभाव के आनन्द से उलटा राग, राग में प्रेम करनेवाला झूठी-असत्य दृष्टि सेवनेवाला है। यह तो सीधी भाषा बात है, साधारण बात है। भाषा ऐसी कोई कड़क नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : नुकसान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान तो... लाभ नहीं, पूरा नुकसान है। शान्ति आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु है सच्चिदानन्द अनाकुल आनन्द का रस है आत्मा। भाई! उसको खबर नहीं। आहाहा! अपनी चीज़ में क्या है और अपनी चीज़ कैसी है, भगवान! तुझे खबर नहीं, प्रभु! यहाँ तो भगवानरूप ही आत्मा को बुलाते हैं। वह भगवान होने के योग्य ही है। आहाहा! संसार में होने के योग्य है नहीं, परन्तु उत्पन्न की है मिथ्या भ्रान्ति। पुण्य और पाप का विकल्प जो राग है, वह परद्रव्य है। यहाँ कहा है, भाई! बाद की गाथा में कहा है। '**आदसहावादण्णं**' १७वीं गाथा। परद्रव्य किसको कहे? '**आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।**' आहाहा! भगवान! आत्मस्वभाव से अन्य। तो आत्मा का ज्ञान और आनन्दस्वरूप भगवान प्रभु, उससे अन्य। पुण्य और पाप की वृत्ति विकल्प की—राग की (वृत्ति), वह सब अन्य द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया?

खोपरा में से लाल छाल निकल जाती है। तो लाल छाल उसकी खोपरा की हो तो निकले नहीं। उसकी सफेदाई और मिठास निकलती है? खोपरा में से सफेदाई और मिठास निकाल दो। कैसे निकले? वह तो उसका स्वरूप ही है। और छाल जो है, वह उसका स्वरूप नहीं है, निकल जाती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपना स्वचैतन्य को छोड़कर आत्मा के स्वभाव से अन्य, अन्य जो पुण्य और पाप का राग और शरीर, वाणी, बाह्य चीज़, स्त्री, कुटुम्ब, देश आदि सब पदार्थ तो पर हैं, पर को अपना मानता है और राग की मिठास का वेदन करता है। अनादि का अज्ञानी को राग का ही वेदन है, दुःख का वेदन है, आकुलता का वेदन है। आकुलता का वेदन, वह मेरी चीज़ है, उसमें लीन है, उसको परमात्मा मिथ्या—झूठी—असत्य को सेवनेवाला झूठी दृष्टिवन्त कहते हैं।

भगवान! बात तो ऐसी सूक्ष्म है। परिचय नहीं कभी। कौन अन्दर क्या चीज़ है? आहाहा! समझ में आया? 'परख्या माणेक मोतीया, परख्या हेम कपूर, परन्तु एक न परख्यो आत्मा, वहाँ रह्यो दिग्मूढ़।' बाहर की परीक्षा बहुत की। आहाहा! दस हजार-बीस-बीस हजार का मासिक वेतन मिला। धूल में। चार गति में भटकने का भाव है। ऐई! यहाँ कोई मक्खन नहीं है। ओहोहो! सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान, आनन्द अर्थात् सुख—ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु वस्तु का सहज स्वभाव, उसको छोड़कर अन्य जितना पुण्य और पाप का (भाव)... ओहोहो! त्रिलोकनाथ परमात्मा की भक्ति का भाव, भगवान! वह भी अन्य द्रव्य है, वह विकल्प है, राग है, वृत्ति का उत्थान है, वृत्ति उठती है। भगवान ज्ञाता-दृष्टा भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

वह '**परदव्वरओ**' आत्मस्वभाव की अन्य सचित-अचित मिश्र। वह राग है, वह अचेत भाव है। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, वह राग है और वह राग अचेत है। चैतन्य ज्ञानानन्द सूर्य। सूर्य की किरण तो सफेद होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य उसकी दशा में ज्ञान और आनन्द की किरण आती है, वह उसकी चीज़ है और राग और दया, दान का विकल्प उठता है, वह उसकी चीज़ नहीं। आहाहा! 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' अपनी चीज़ प्रभु! आहाहा! राग, विकल्प,... यह १६वीं गाथा में जरा भाई ऐसा कहेंगे कि उससे सुगति भी होती है, स्वद्रव्य में। वह किस अपेक्षा से? कि आत्मा अन्दर वस्तु है, उसका गुणी और गुण—ऐसा भेद का विकल्प उठता है, वह स्वआश्रय है उतना। है तो पराश्रय, परन्तु उतना विकल्प उठता है। तो विकल्प का फल पुण्य है और पुण्य से स्वर्गादि मिलता है और अपनी चीज़ जो राग से भिन्न अन्दर अखण्ड अभेद आनन्दकन्द प्रभु है, आनन्द का दल है। शक्करकन्द जैसा है। यह शक्करकन्द नहीं होता है? शक्करकन्द समझे? महारात्रि होती है न शिवरात्रि का। शक्करकन्द बहुत पकाकर खाये, वे शिवरात्रि में। शक्करकन्द में अकेली मिठास ही भरी है। ऊपर की छाल है, उससे भिन्न चीज़ अन्दर है। उसीप्रकार पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, वह छाल जैसी ऊपर की, अन्दर में तो अकेली मिठास ही भरी है। आहाहा!

अखण्डानन्द प्रभु अपने स्वभाव को छोड़कर... आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत

का दया, दान का भाव हो, वह भाव भी राग है और परद्रव्य है। आहाहा! भारी कठिन बात भाई! आहाहा! अरेरे! उसने कभी निज चीज़ की कीमत की नहीं और दूसरी चीज़ की कीमत करके चार गति में जिसको महत्ता आयी, उस चीज़ से रहित वह नहीं हो सकेगा। आहाहा! पुण्य और पाप और उसके फल को जिसने अधिकरूप से महत्ता दी... महत्ता समझे? क्या कहते हैं? बड़प्पन-बड़प्पन तुम्हारी भाषा है हिन्दी। उसको बड़प्पन दिया तो वह संयोग से कभी नहीं छूटेगा, चार गति में भटकेगा। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो भगवान कहकर बुलाते हैं, हों! ७२ गाथा में। माता झूले में सुलाने को लड़के की महिमा करती है। पुत्र तुम चतुर हो, तुम ऐसे हो। नहीं? तो वह सोता है। वरना गाली दे तो नहीं सोता है। आपको देखना हो तो देख लेना। गाली दे, मारा रोया सोता नहीं? नहीं सोयेगा वह। परन्तु उसकी महिमा करे कि पुत्र चतुर, पाट पर बैठकर नहाये। आता है न कुछ, महिलायें गाती हैं। अपने को कहाँ बहुत खबर यह? मामा के पास गया था और जेब में खारेक लेकर आया और ढींकणा ऐसी महिमा करे।

मुमुक्षु : खारेक और खोपरा लाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ खोपरा लाया। ऐसा कुछ गाते हैं। क्योंकि अव्यक्तरूप से भी गुण की प्रशंसा उसको (रुचती) है। यहाँ कहते हैं कि भगवान परमात्मा... उसकी माँ महिमा करके सुलाती है, यहाँ परमात्मा और सन्त उसकी महिमा करके जगाते हैं। अरे! जाग रे जाग नाथ! तुझमें राग और पुण्य नहीं। आहाहा! अन्धा होकर अनादि से क्यों भटकता है? प्रभु! तेरी सम्पदा अनन्त आनन्द पड़ी है अन्दर में। उस सम्पदा का ध्यान करता नहीं। सम्पदा की सम्हाल नहीं, सम्पदा की रुचि और पोषण नहीं और उससे विरुद्ध राग का पोषण तुझे हो गया है, मूढ़ है। आहाहा! चाहे तो अरबोंपति हो। अरबोंपति (अर्थात्) जड़ का पति? यह नरपति नहीं कहते? नृपति-नृपति। मनुष्य का पति। मनुष्य का धनी होगा वह? धूल में भी नहीं। मूढ़ है। ऐसे राग का पुण्य और पाप के भाव का स्वामी होता है। यह मेरी चीज़ है, उसमें मुझे मिठास आती है, ऐसे माननेवाला, भगवान कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि है। झूठी दृष्टि, असत्य का सेवन करनेवाला

है। आहाहा! सत्य साहेब प्रभु, वह विकार से रहित चिदानन्द आत्मा पड़ा रहा, अनादर कर दिया। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! यह बाल-गोपाल शरीर न देखो। शरीर तो भिन्न है। समझ में आया? सोने की ईंट हो हजार। उसके ऊपर कपड़ा लपेटा हो। कपड़ा वींट्या समझते हो? लपेटा हो। कोई मखमल, कोई मखमल का और ऊपर चित्र हो। बाघ का, हिरण का। होता है न? कबूतर का। ऊपर लपेटे तो कुछ सोने की ईंट उसरूप हो जाती है? उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दकन्द की ईंट अन्दर में है। उसमें यह चमड़ी का लपेट ऊपर लगा दिया है। किसी को स्त्री का, किसी को पुरुष का, किसी को बाघ का, किसी को हीजड़ा का। परन्तु उसरूप वस्तु नहीं हुई है। आहाहा! समझ में आया?

वह तो सच्चिदानन्द प्रभु आनन्दकन्द ज्ञायक और आनन्द से भरा पड़ा है, ऐसा का ऐसा अनादि का है। उसकी दृष्टि न करे तो भी ऐसा है और दृष्टि करे तो ऐसा है। आहाहा! तो यह दृष्टि किये बिना '**परदव्वरओ**' आहाहा! '**मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू। मिच्छत्तपरिणदो**' राग को, विकल्प को अपना मानकर उससे लाभ है, ऐसा मानकर मिथ्यात्व अर्थात् असत्य झूठी दृष्टि से परिणमन करते हैं, झूठी दृष्टि से अवस्था होती है। '**बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं**' महा पाप के आठ कर्म उसको बँधते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अब १६वीं गाथा लेते हैं। आज तो यह है। कल तो फिर दूसरा है। यहाँ तो दोपहर से वहाँ चलेगा। लोग बहुत आ गये हैं न। लोग समाते नहीं। दोपहर को पाण्डाल में व्याख्यान चलेगा। वह तो खबर थी। लोग बहुत हैं। देखो न समाते नहीं बाहर में। इतने लोग आये हैं। आज भी सुबह में ख्याल था। परन्तु अभी तो तैयारी नहीं थी। दोपहर को वहाँ व्याख्यान चलेगा। ढाई से साढ़े तीन, पाण्डाल में चलेगा।

यहाँ कहते हैं... '**परदव्वादो दुग्गइ**' आहाहा! १६वीं गाथा, प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज सर्वज्ञ परमात्मा के पास गये थे। तब सब युक्ति से, लॉजिक से सिद्ध करने में तो देर लगे। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्द एक मुनि दिगम्बर सन्त वनवासी थे। परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह क्षेत्र एक है जमीन के ऊपर। समझ में आया? वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। समझ में आया? और वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया।

भगवान ऐसे कहते हैं कि हे प्रभु! तू सुन तो सही। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' आहाहा! पुण्य और पाप के प्रेम से भटकता है, वह दुर्गति है। वह पुण्यभाव दुर्गति है, ऐसा कहते यहाँ तो। भगवान आनन्दस्वरूप का परिणमन हो तो शुद्ध आनन्द होता है। यह तो राग, वह परद्रव्य है, उसका लक्ष्य करने से दुर्गति होती है। पण्डितजी! सूक्ष्म बात है। व्यवहाररत्नत्रय के राग में परिणमन करना, वह दुर्गति है। बात तो ऐसी है। माने न माने उससे कुछ... सोने की कीमत न जाने तो कोई कीमत चली जाती है? ऐसे भगवान आत्मा की कीमत न करे तो कीमत चली जाती है? उसकी दृष्टि में भिन्न हो जाती है। आहाहा!

ओहो! भगवान! यहाँ तो परमात्मा आखिर की बात त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर (कहते हैं)। क्योंकि आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव है। जैसे छोटी पीपर होती है न? छोटी पीपर। छोटी पीपर। वह पीपर है रंग में काली है, कद में छोटी है, बाह्य में चरपराहट में अल्प है। परन्तु अन्तर में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है। घोंटने से आती है तो कहाँ से आती है? पत्थर में से आती है? चौंसठ पहरी चरपराई। हमारे तीखाश कहते हैं। तुम्हारे चरपराई कहते हैं न। और हरा रंग। अन्दर चौंसठ पहरी चरपराई भरी है और हरा रंग भरा है। काली, ऊपर की छाल काली और कद छोटा, उससे कोई अन्तर की कीमत कोई घट जाये, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! अन्तर में तो चौंसठ पहरी (भरी है)।

सो पैसे का रुपया तो अभी हुआ न? आप का क्या कहते हैं? दो सेर का किलो। यह सब तुम्हारी नयी भाषा निकली। दो शेर छह रुपया भार का किलो कहलावे, फलाना कहलावे। पहले तो सोलह आने का रुपया और चौंसठ पैसे का रुपया। चौंसठ पैसा। तो चौंसठ कहो या रुपया कहो या पूर्ण कहो या एक कहो। उसी प्रकार भगवान आत्मा में जैसे उसमें चौंसठ पहरी चरपराई और हरा रंग पूरा भरा है तो बाहर आता है। प्राप्त की प्राप्ति, है उसमें से आता है। पत्थर को घोंटने से आता हो तो कोयला और पत्थर घोंटने से आना चाहिए। पत्थर घोंटे चौंसठ (पहर) तो क्या है उसमें? समझ में आया? इतनी छोटी कद में, परन्तु अन्दर में चौंसठ पहर रुपया-रुपया सोलह आना चरपराई भरी है। चरपराई अर्थात् तीखाश। आहाहा! तीखा रस और हरा रंग।

उसी प्रकार भगवान आत्मा में बाह्य में पुण्य-पाप देखो काला मैल। आहाहा! वह परद्रव्य है। और शरीर प्रमाण कद है उसका। कद अर्थात् चौड़ाई। परन्तु स्वभाव में तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान चौंसठ पहर भरा है। कैसे बैठे? रंक को प्रभुता कैसे बैठे? पामर को प्रभुता कैसे बैठे? आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि अपना चैतन्य पूर्ण स्वभाव शुद्ध सोलह आना चौंसठ पैसा स्वभाव। आहाहा! और हरा रंग, ऐसे यहाँ शुद्धता। वह मिठास और वह शुद्धता परिपूर्ण परमात्मस्वभाव में अन्दर पड़ी है। उसके सिवा जितना रागादि उत्पन्न हो, भगवान की भक्ति हो, पंच महाव्रत का विकल्प हो, वह परद्रव्य '**दुग्गइ**'। परद्रव्य से तो दुर्गति है, चैतन्य की परिणति नहीं, चैतन्य की गति नहीं, वह चैतन्य की जाति नहीं। सूक्ष्म है, भगवान! '**दुग्गइ**' कहा है यहाँ चन्दुभाई! आहाहा! ये इंजेक्शन दूसरी जाति का है। डॉक्टर आये हैं या नहीं? डॉक्टर नहीं आये? गाँव में गया होगा। भूपतभाई है न अपने। आते हैं। कामकाज हो, नौकरी हो वहाँ बँधा हो दबायेला।

यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव, जो चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर थी, वह प्रगट की। उसी प्रकार आत्मा में सर्वज्ञ स्वभाव है। ज्ञ-स्वभाव-ज्ञानस्वभाव, वह परिपूर्ण स्वभाव है। उसमें एकाग्र होकर सर्वज्ञशक्ति जो थी, वह अवस्था में सर्वज्ञपना प्रगट हुआ। तीन काल—तीन लोक जानने की शक्ति की व्यक्तता हुई। वह भगवान के मुख से वाणी निकली इच्छा बिना, वह वाणी यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य जगत को कहते है। आहाहा! भगवान! '**परदव्वादो दुग्गइ**' अरर! वह पुण्यभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और (पापभाव)—काम, क्रोध, राग-द्वेष वह दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं। ब्रह्मचारीजी! १६वीं गाथा है। मोक्षपाहुड़। १६। आप समझ लेना। कल सुबह में तो वहाँ दूसरा चलेगा। सुबह में भाई! पंचम है कल। संवर अधिकार। सुबह में समयसार लाना। सुबह में समयसार चलेगा। दोपहर को भक्ति चलेगी। अध्यात्म भक्ति है। दोपहर को चलेगी। कल से महोत्सव है न।

यहाँ कहते हैं, '**परदव्वादो**' दुर्गति होती है। आहाहा! प्रभु! प्रभु! जिसको वह मिठास मानता है पुण्यभाव करके। पुण्यभाव दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव पुण्य है और वह परद्रव्य है। आहाहा! अपनी चीज़ नहीं। अपनी चीज़ से विरुद्ध भाव वह है।

वह तो चैतन्य की दुर्गति है। दु:ख है। आहाहा! दु:खदेन का अर्थ दु:ख देनेवाला। भगवान! शान्ति से समझना। यह तो अपूर्व बात है। समझ में आया? दुनिया से निराली चीज़ है यह। साधारण सम्प्रदाय में चलती है बात, उससे भी यह निराली चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं परमात्मा, कुन्दकुन्दाचार्य जगत के पास प्रसिद्ध करते हैं। सुन एक बार। प्रभु! तेरी चीज़ आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भगवान जो स्वद्रव्य है... स्वद्रव्य की व्याख्या की है। १८वीं गाथा। १७ में परद्रव्य की व्याख्या थी, १८ में स्वद्रव्य की। '**दुट्ठट्ठकम्मरहियं**' आठ कर्म से रहित अनुपम—जिसकी उपमा नहीं '**णाणविग्गहं**' ज्ञान जिसका शरीर। ज्ञान जिसका शरीर। भगवान आत्मा का ज्ञानशरीर। यहाँ तो आत्मा को ही भगवान कहते हैं, प्रभु! प्रभु हो गया वह हो गया उसमें। आहाहा! '**णाणविग्गहं**' शब्द है न, भाई! ज्ञानशरीर। ज्ञान—समझन का शरीर, वह ज्ञान-श्रुतज्ञान पिण्ड वह शरीर है। यह शरीर नहीं। वह '**णाणविग्गहं णिच्चं**' त्रिकाल ज्ञानशरीर जिसका—आत्मा का है। और '**सुद्धं**' पवित्र है। '**जिणेहिं कहियं**' तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव के मुख से आयी यह बात है। '**अप्पाणं हवदि सद्दव्वं**' इस आत्मा को स्वद्रव्य कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! इतनी सभा में यह (बात)? बापू! आत्मा की बात है यहाँ तो। जिससे जन्म-मरण मिटे, उसके बिना की बात में कुछ माल है नहीं। जिससे स्वर्ग मिले, धूल के सेठ जिसको कहे, वह सब भटकनेवाले हैं। ऐई! सेठ! लो, यह सब सेठ है। किसके परन्तु? धूल के। सेठ तो उसको कहे श्रेष्ठ। सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। आहाहा! अपने आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि करनेवाला, वह सेठ है। बाकी सब हेठ है, पामर है। आहाहा! यह स्वद्रव्य की भाई व्याख्या आयी। १८।

अनुपम। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव की उपमा क्या? वह तो ऐसी ही उसके जैसी चीज़ है। ऐसी '**णाणविग्गहं णिच्चं**' भगवान आत्मा का तो स्वभाव ज्ञानस्वरूप, ज्ञान जिसका शरीर, समझन जिसका पिण्ड, वही आत्मा नित्य त्रिकाल। वह आत्मा '**जिणेहिं कहियं**' वह आत्मा। उसके अतिरिक्त पुण्य का, पाप का विकल्प आदि शरीर वह आत्मा नहीं। तो जो कोई परद्रव्य में रति करते हैं, वह '**दुग्गई**' जाते हैं। आहाहा! यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह भी दुर्गति है—ऐसा कहते हैं। और

'सदव्वादो हु सुग्गइ' दो ही वाक्य। **'परदव्वादो दुग्गई सदव्वादो हु सुग्गइ होई।'** परद्रव्य से दुर्गति, स्वद्रव्य से सुगति। परन्तु उसकी व्याख्या जरा... आहाहा!

आगे कहेंग। स्वद्रव्य से मुक्त भी होता है, और स्वर्ग भी होता है। ऐसा अर्थ लेते हैं। क्यों लेते हैं? जरा गुण-गुणी भेद का विकल्प उठता है अपने में। दूसरा नहीं। दया, दान का नहीं। परन्तु अन्तर में यह आत्मा है, यह शुद्ध है—ऐसा अनुभव में विकल्प उठता है, तो उस विकल्प से राग से पुण्यबन्ध हो जाता है, तो उससे स्वर्ग में जाते हैं, परन्तु उस विकल्प से रहित केवल चिदानन्द भगवान आनन्दकन्द में लीन है, दृष्टि उसमें है, ज्ञान उसका है और लीन उसमें है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! कहो, पूरणचन्दजी! यह तुम्हारे पैसे-बैसे का दान, कहते हैं कि राग मन्द करे तो पुण्य हो। करोड़ दो तो भी राग मन्द करे तो पुण्य। जो दुनिया के दिखाव के लिए करे (कि) हम बड़े दानी हैं, ऐसा बाहर प्रसिद्ध हो, ऐसे भाव से दे तो पाप है। समझ में आया?

यहाँ राग की मन्दता करके करोड़ों की प्रभावना में दान करे, परन्तु है वह शुभराग। गजब बात है। शुभभाव वह दुर्गति है, वह चैतन्य की गति नहीं, चैतन्य की जाति नहीं। आहाहा! दुःखदायक है, भगवान! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव दुःखरूप है। क्या बन्ध का कारण आनन्द होता है? धर्म होता है? जिस कारण से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव राग है, दुःख है, आकुलता है; वह स्वभाव से विपरीत गति है उसकी। आहाहा! पहली बार नये सुननेवाले को तो थोड़ा....

मुमुक्षु : हजम नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हजम करना पड़ेगा। भस्म नहीं लेते हैं? क्षय आदि रोग होता है तो भस्म लेते हैं या नहीं ताँबे की, चाँदी की, सोने की? भस्म-भस्म लेते हैं या नहीं? उसी प्रकार यह भस्म है। जन्म-मरण मिटाने की और आत्मा की शान्ति पूर्ण प्राप्त होने की यह भस्म है। रसायन कहते हैं न, रसायन? समझ में आया? ऐई! सेठ! हमारे सेठ के पास बहुत दवा है। वह बहुत दवा लेते हैं। क्या कहते हैं उसका नाम? जवाहरात। पाँच-पाँच हजार की ... सेर। पाँच हजार की एक सेर। रोग हो तो खाये दवा। आहाहा! फिर भी दवा से मिटे, ऐसी बात नहीं है। वह रोग तो पूर्व का पुण्य हो, साता उदय हो तो मिट जाये, वरना तो दवा खाने से मिटता हो तो कोई राजा मरे ही नहीं। आहाहा! यह

दवा ऐसी है कि जो कोई आत्मा अनादि से... आहाहा! **'परदव्वादो दुग्गइ'** गजब बात है। १६वीं गाथा। पूर्ण बात। मोक्षप्राभृत की गाथा है यह। आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा प्रगट होना, उसका नाम मुक्ति।

मुमुक्षु : दवा तो आप ही देते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्त देते हैं, उसकी हम दलाली करते हैं साथ में। मार्ग यह है। माल के हम आड़तिया हैं। यह माल है, भगवान! सुन तो सही। जिन्दगी में मनुष्यदेह पाकर अपनी चीज़ क्या है, उसका तो तुझे बोध हुआ नहीं ज्ञान उसका। डॉक्टर आये हैं? भाई! यह सबको सुनने जैसा, समझने जैसा है। धूल में कुछ नहीं है वहाँ। वहाँ लाख रुपये का वेतन हो या दो-पाँच करोड़। अभी मर गया नहीं वह? दो अरब और चालीस करोड़वाला। शान्तिलाल खुशाल गोवावाला-गोवावाला। दो अरब और चालीस करोड़। दस मिनिट में मर गया। मुम्बई उसकी पत्नी के लिये आया था। यह क्या कहीं तुम्हारे कहलाये? हेमरेज-हेमरेज। हेमरेज हुआ था तो आया था। गोवावाला। अभी दो महीने हुए। यह उसके बहनोई यहाँ है न। उसके बहनोई यहाँ हैं। अपने बैठे हैं। उनकी बहिन की पुत्री यहाँ है बालब्रह्मचारी। एक बहिन की पुत्री अभी यहाँ बालब्रह्मचारी होनेवाली है, दूसरी इस त्रयोदशी को। उसकी सगी बहिन की पुत्री एक है और वह होनेवाली है। वह डेढ़ बजे उठा होगा। कितने बजे होंगे, कोई खबर नहीं होगी, नहीं? पोपटभाई! कितने बजे? २ बजे? पौने तीन बजे, लो! उसके बहनोई हैं, वहाँ जा आये हैं। दो अरब चालीस करोड़ धूल भी हाथ में न आयी। दुःखता है, मुझे दुःखता है। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर आवे, उससे पहले भगवान देह छोड़कर रवाना हो गया। आहाहा! वहाँ कुछ गिरवी रखा जा सकता है पैसा? गीरो समझे? गिरवी? गिरवी रखा जा सकता है? धूल में भी नहीं। सुन तो सही। देह की जिस समय की स्थिति होनेवाली है, उसी समय होगी। लोग ऐसा कहते हैं कि हम बढ़ते हैं, हमारा आयुष्य बढ़ता है। परमात्मा कहते हैं कि जो अवधि मृत्यु की है, उसके समीप जाता है। तुझे खबर नहीं। दुनिया की दृष्टि से सब विपरीत बात है। आहाहा! बुढ़िया कहे पुत्र बड़ा होता है, लड़का। भगवान कहे कि मृत्यु के समीप में जाता है। जो देह की स्थिति है, अवधि है, जो समय में जहाँ पडवाकी वहाँ ही पडवाकी। लाख डॉक्टर और इन्द्र

ऊपर से उतरे (परन्तु उसे बचा सके नहीं)। इन्द्र भी मर जाता है। आहाहा!

तो कहते हैं, परद्रव्य से तो दुर्गति होती है। गजब बात है, भाई! दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं। वह गति फिर स्वर्ग मिले, नरक मिले सब दुर्गति है। आहाहा! यहाँ तो अन्तर के परिणाम दुर्गति है। श्रीमद् ने कहा है न? उत्कृष्ट अध्यवसाय वही स्वर्ग है। मैला अध्यवसाय वही नरक है। अध्यवसाय शब्द लिया है। श्रीमद् राजचन्द्र। आठ साल की छोटी उम्र में जातिस्मरण हुआ था। पूर्व भव का ज्ञान था। ३३ वर्ष में देह छूट गयी। गाँधी के गुरु थे। गाँधी। श्रीमद् राजचन्द्र। तो वहाँ कहते हैं। वहाँ पहले कहते थे अन्दर लिखा है। समझे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, परद्रव्य से दुर्गति। प्रभु! एकबार सुन तो सही। शान्ति से सुन एकबार। आहाहा! तेरी आनन्द चीज़ से विकल्प जितना उठे, चाहे तो दया के, दान के, व्रत के, भक्ति के, परोपकार के और चाहे तो हिंसा के, झूठ के, चोरी के, भोग के, विषय के, वासना के, रति, अरति, खुशी के नाखुशी के, वह सब दुर्गति है। वह अपनी चैतन्य की गति नहीं। एकत्व निश्चयगत है न? गत है न, गत। एकत्व निश्चयगत। वहाँ राग में गत हो गया गति। आहाहा! भाई! यह तो अनन्त काल से नहीं मिली ऐसी अपूर्व चीज़ की बात है, प्रभु! बाकी तो साधारण कहे दया पालो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, कल्याण होगा। धूल में भी नहीं होगा। हो, पाप से बचने को ऐसा भाव आता है, परन्तु है वह दुर्गति। समझ में आया?

'सदव्वादो हु सुग्गई' आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान राग से भिन्न, विकल्प से भिन्न, एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था, हालत। सोना जो है सोना। उसमें जो गहना होता है जेवर, वह जेवर की जितनी अवस्था है, उतना सोना है? सोना तो शाश्वत रहनेवाली चीज़ है, अवस्था तो बदल जाती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! अरेरे! उसे ऐसा मनुष्यपना मिला और यह आत्मा क्या चीज़ है, उसकी कीमत नहीं की (तो) मूढ़ होकर देह छोड़ेगा और चार गति में भटकने जायेगा। आहाहा! समझ में आया? अपने वजुभाई की लड़की आयी है? नहीं आयी? आयी है बहिन? राजुल आयी है? उस लड़की को जातिस्मरणज्ञान है पूर्व भव का। यहाँ जूनागढ़ की लुहार की पुत्री थी अपने यहाँ आयी है। वजुभाई के पुत्र की

पुत्री। वजुभाई इंजीनियर थे न बड़े? वांकानेर के। कहाँ बैठे? यह तो जरा नमूना लोगों को बताया। यह पूर्व भव से आयी, उसका ज्ञान है उसे। पुनर्जन्म मानते नहीं न अभी कितने ही। यह भव रखो, परभव किसने देखा? मर जायेगा अब, सुन न अब। अनन्त काल से भटक रहा ऐसे भव अनन्त किये। उस लड़की को ढाई वर्ष पूर्व भव का ज्ञान हुआ था। आयेगी। थोड़े दिन में आयेगी। ढाई वर्ष से बोली थी। मैं तो राजुल नहीं, गीता हूँ। वहाँ गीता नाम था। लुहार की लड़की। गोकुलदास लुहार है। उसके माँ-बाप हैं सब वहाँ। जूनागढ़ के। उसे पहचानकर आयी, उसका हाथ पकड़ा। माँ! मैं बुखार में मर गयी थी। हें! हाँ। बुखार आवे न। क्या कहलाये? बुखार नहीं वह क्या? ओरी-ओरी। वह शीतला क्या कहते हैं? ओरी-ओरी। ओरी निकले और उसमें वह मर गयी ढाई वर्ष में। और अपने यहाँ जन्मी है, वहाँ यह वजुभाई उनके पुत्र की पुत्री। उनका पुत्र यहाँ बैंक में है। ऐसा तो अनन्त भव है। यह तो बड़ी साक्षी तो यहाँ अपने चम्पाबहिन पास हैं, परन्तु यह बात न बैठे लोगों को। समझ में आया? अपनी बहिन है चम्पाबहिन। उन्हें तो पूर्व का असंख्य अरब वर्ष का जातिस्मरण है। यह बहिन बैठी हैं। पूर्व का। यहाँ भाई बात इस प्रकार झेलना कठिन पड़े, ऐसी है। यह कहीं अकेली पर की बात नहीं, यह तो अन्तर की बातें हैं। आहाहा!

कहते हैं कि '**सदव्वादो हु सुग्गई**' आहाहा! सुगति अर्थात् मोक्ष। आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा की प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष और दु:ख की दशा की प्राप्ति, उसका नाम संसार। आहाहा! समझ में आया? '**इय णाऊण**' दोनों का इस प्रकार ज्ञान करके। लो, गुजराती आ गया। दो प्रकार का ज्ञान करके। है पाठ? '**इय णाऊण**' परद्रव्य से दुर्गति होती है। चाहे तो शुभाशुभभाव हो, उससे बन्ध होता है और वह संसार का कारण है। आहाहा! '**सदव्वादो हु सुग्गइ**' भगवान आत्मा राग और दु:ख के विकल्प से, वृत्ति से भिन्न चैतन्यदल जो आनन्द है, उसमें एकाग्र होने से मुक्ति होती है, उसमें एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन होता है, उसमें एकाग्र होकर सम्यग्ज्ञान होता है, उसमें लीन होने से चारित्र होता है। चारित्र, कोई बाहर की क्रियाकाण्ड, वह चारित्र नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**इय णाऊण**' ऐसा दो प्रकार का ज्ञान करके। आहाहा! '**णाऊण**' शब्द है न? '**सदव्वे कुणह रई**' आहाहा! भगवान स्वद्रव्य में '**कुणह रई**' अन्तर आनन्द

में प्रेम कर। आहाहा! तेरी अतीन्द्रिय आनन्द की चीज़, वहाँ रति कर। रति अर्थात् प्रेम कर। आहाहा! समझ में आया? बहुत संक्षिप्त में सार अकेला मक्खन है। है? **'सदव्वे कुणह रई'** चिदानन्द प्रभु ज्ञान की ज्योति, चैतन्य जलहल ज्योति और अतीन्द्रिय आनन्द का अविनाभावी साथ में पड़ा है आनन्द ज्ञान में, ऐसी जो निज चीज़, वहाँ प्रीति कर। यहाँ प्रीति छोड़ और वहाँ प्रीति कर। यहाँ पर से, राग से प्रीति छोड़ और स्व से प्रीति कर। (जिसने) जोड़ी है, वह तोड़े। राग में प्रीति उसने अज्ञान से जोड़ी है। आहाहा! स्वद्रव्य में रति कर। सन्तों का यह उपदेश है।

भगवान! स्वद्रव्य तो कहा न? ... कर्मरहित चैतन्यघन भगवान। आहाहा! उसमें प्रीति कर। राग का प्रेम करनेवाला, (वह) चैतन्यस्वभाव का द्वेष करनेवाला है। एक म्यान में दो तलवार न रह सके। राग का शुभराग का भी प्रेम और आत्मा का प्रेम, दोनों साथ में नहीं रह सकते। समझ में आया? **'सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि'** और राग का प्रेम से छूट जा। **'इयरम्मि'** इतर अर्थात् अन्य। अन्य अर्थात् दया, दान आदि विकल्प से विरति कर। विरत, विरत—उसकी रुचि छोड़ दे। आहाहा! कहो, पण्डितजी! मार्ग ऐसा है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा के मुख से निकली हुई दिव्यध्वनि का यह हुकम है। आहाहा!

कहते हैं, **'विरइ इयरम्मि'** इतन अर्थात् राग का और पुण्य के प्रेम से छूट जा नाथ! आहाहा! तुझे शान्ति चाहिए, अतीन्द्रिय आनन्द चाहिए तो राग के विकल्प से प्रेम छोड़ दे। शरीर, वाणी तो पर जड़ रह गया। यह तो धूल है। परन्तु अन्दर में राग का प्रेम छोड़कर विरत—उसकी रति छोड़, यहाँ रति कर। आहाहा! यह १६वीं गाथा हुई। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक ०७-०३-१९७४
गाथा - १६-१७-१८, प्रवचन-१२०

... और स्वद्रव्य से मोक्षगति होती है। अन्त में अपने यह चला था।

गाथा - १६

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि ॥१६ ॥

आहाहा! कहते हैं कि **अर्थ :- परद्रव्य से दुर्गति होती है...** सूक्ष्म है, भगवान बात! अपना ज्ञायकस्वभाव शुद्ध द्रव्य के स्वभाव के अतिरिक्त जो परद्रव्य हैं, चाहे तो स्त्री, पुत्र हो या देव-गुरु-शास्त्र हो, वह सब परद्रव्य है और परद्रव्य से तो दुर्गति होती है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! मोक्ष अधिकार है। संक्षेप में बहुत संक्षेप में सार भर दिया है। **परद्रव्य से दुर्गति होती है...** आहाहा! दुर्गति अर्थात् चैतन्य का आनन्दस्वभाव, वह न परिणमित होकर, पर के लक्ष्य से तो राग की उत्पत्ति होती है। आहाहा! मोक्ष अधिकार है न? चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश हो या चाहे तो देव, गुरु और शास्त्र हो, ये सब परद्रव्य हैं। स्पष्टीकरण करेंगे १७वीं गाथा में। परद्रव्य किसको कहे? और स्वद्रव्य किसको कहे? १७ में परद्रव्य की व्याख्या आयेगी, १८ में स्वद्रव्य की व्याख्या आयेगी। आहाहा!

भगवान! अनन्त काल से अनन्त तीर्थंकरों ने यह कहा है कि **परद्रव्य से दुर्गति और स्वद्रव्य से सुगति होती है।** है? अरे! उसको रुचती नहीं अन्दर में। बाहर की प्रीति के समझ स्वद्रव्य ज्ञायकभाव है। यद्यपि ज्ञेय का सम्बन्ध तो ज्ञान की पर्याय के साथ है, ज्ञायक के साथ तो सम्बन्ध है नहीं। क्या कहा यह?

मुमुक्षु : पर्याय के साथ है, ज्ञायक के साथ नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञायक ध्रुव के साथ क्या है? सुन भगवान! अन्तरदृष्टि सम्यग्दर्शन का विषय बताते हैं। समझ में आया? वह ज्ञायकभाव जो ध्रुव है, उसका तो पर्याय के

साथ भी सम्बन्ध नहीं निश्चय से तो। और एक समय की पर्याय ज्ञान की है, उसका परज्ञेय के साथ व्यवहार सम्बन्ध है। ज्ञायक से तो परद्रव्य के साथ व्यवहार सम्बन्ध भी है नहीं। सूक्ष्म है, भगवान! लोगों को तो न पचे, ऐसी बात नहीं है। यह तो पचे ऐसी बात है। आहाहा!

कहते हैं, **यह स्पष्ट जानो,...** '**हु**' शब्द पड़ा है न '**हु**'? '**परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।**' यह स्पष्ट बात है, प्रत्यक्ष बात है। अनादि काल से अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते आये हैं। '**इय णाऊण**' इस प्रकार का ज्ञान करके '**सदव्वे कुणह रई**' प्रभु! ज्ञायक द्रव्य हों यहाँ, पर्याय भी नहीं। स्वद्रव्य। आहाहा! अपना ज्ञायक चिदानन्द सहजानन्द की मूर्ति नित्यानन्द प्रभु, वह स्वद्रव्य, उसकी रति करो। **हे भव्य जीवो! तुम इस प्रकार जानकर...** '**णाऊण**' है न? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि परद्रव्य से तो दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति, ऐसा '**णाऊण**'—ऐसा ज्ञान करके। आहाहा! **इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो...** मोक्ष की पर्याय या धर्म की पर्याय स्वद्रव्य में से आती है। स्वद्रव्य जो ज्ञायकभाव, आत्मस्वभाव, वह स्वद्रव्य है। आगे कहेंगे १८वीं में। अकेला चिदानन्द ज्ञाता आनन्दकन्द प्रभु, ध्रुवस्वरूप ध्येय, जो पर्याय का ध्येय है, वह ध्रुव। वह ध्रुवस्वभाव, उसमें रति करो, उसमें लीन हो।

और अन्य जो परद्रव्य उनसे विरति करो। है न? '**विरइ इयरम्मि**' ... अर्थात् स्वद्रव्य के अतिरिक्त। ओहोहो! परद्रव्य से विरक्त हो, पर्याय से भी विरक्त हो। वह भी परद्रव्य, निश्चय से स्वद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय परद्रव्य है। यह ५०वीं गाथा में नियमसार में लिया है। आहाहा! तो एक ज्ञायकभाव के सिवाय कोई भी द्रव्य जो है, उसमें रति नहीं करना, प्रेम नहीं करना, आश्रय नहीं लेना। आहाहा! जिसको आत्मा की पूर्ण आनन्दरूपी मुक्ति, पूर्ण अतीन्द्रियरूपी मुक्त होने की भावना हो, उसको यह करना। **परद्रव्य उनसे विरति करो।** यह साधारण बात हुई। उसका स्पष्टीकरण १७ गाथा (में आयेगा)। परद्रव्य किसको कहे और स्वद्रव्य किसको कहे? यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १७

आगे शिष्य पूछता है कि परद्रव्य कैसा है ? आहाहा! तुम परद्रव्य में रति करना नहीं और परद्रव्य से दुर्गति होती है (ऐसा कहते हो) आहाहा! तो परद्रव्य किसको कहते हो ?

आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं ॥१७॥

सर्वदर्शी ऐसे सत्यार्थ अनादिकाल से कहते आये हैं। आहाहा! समझ में आया ?

अर्थ :- आत्मस्वभाव से अन्य सचित्त... भगवान आत्मा... मोक्ष का अधिकार है न भगवान! आत्म स्व-भाव। जो त्रिकाल ज्ञायकभाव, त्रिकाल ध्रुवभाव, त्रिकाल सामान्यभाव, त्रिकाल एकरूपभाव। इस **आत्मस्वभाव से अन्य...** आत्मस्वभाव का स्पष्टीकरण नीचे करेंगे, आत्मस्वभाव कैसा। परद्रव्य की व्याख्या है न यहाँ। **आत्मस्वभाव से अन्य सचित्त जो स्त्री, पुत्रादिक, जीवसहित वस्तु...** तीर्थंकर हो, सिद्ध हो, यह जीवसहित वस्तु, परन्तु परद्रव्य है। समझ में आया? यह पंचम काल के मुनि पंचम काल के जीव को कहते हैं। कोई कहे कि ऐसी बात तो चौथे काल की है। सेठ! यह तो पंचम काल के मुनि हैं। दो हजार वर्ष पहले हुए हैं। वह पंचम काल के जीव को कहते हैं या चौथे काल के जीव को कहते हैं? लोगों को अन्दर परम सत्य चीज़ का माहात्म्य आता है नहीं। कहीं न कहीं रुकावट ऐसी हो जाती है परद्रव्य में। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र से लाभ होगा और शुभराग से अपने में लाभ होगा, और पर्यायबुद्धि से भी लाभ होगा, यह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

यह तो बहुत सप्ताह हो गया न, भगवान! आठ दिन रहे तो ऊपर कलश चढ़ाते हैं। मन्दिर के ऊपर कलश चढ़ा था न। गाथा वही आयी है, हों! वाँचन में गाथा आयी। महोत्सव हुआ था, भेदज्ञान शुरु किया था। दोपहर को स्तुति। आज दोपहर को समयसार थोड़ा भाग बाकी है न अन्तिम? वह दोपहर को चलेगा।

मुमुक्षु : बीच में बोल ले लिया था। यही चल रहा था पहले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चल रहा था, पहले यह चल रहा था।

मुमुक्षु : बहुत अच्छा निकला स्वद्रव्य-परद्रव्य का।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा! भगवान!

यह तो कहते हैं न, **'अवितत्थं सव्वदरिसीहिं'** सर्वदर्शी त्रिकाल ज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा परद्रव्य किसको कहते हैं और स्वद्रव्य किसको कहते हैं? और परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है, (ऐसा) सत्यार्थ अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है। आहाहा! **'अवितत्थं' 'अवितत्थं'** आहाहा! विपरीत तथ्य से रहित **'अवितत्थं'** आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी में यह आया है कि यह जीवसहित अन्य वस्तु। आत्मस्वभाव भगवान स्व निजस्वरूप, उससे अन्य जो सचित्त-अचित्त स्त्री, पुत्र आदि जीवसहित। चाहे तो सिद्ध हो या अरिहन्त हो, वह परद्रव्य है।

मुमुक्षु : 'परदव्वादो दुग्गइ'।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'दुग्गइ' भगवान! कड़क तो है, भाई! कहाँ गये हमारे परमेष्ठीदास? गये? है। कड़क कहते थे न, कड़क। कल कहा था न? भैया! कड़क कहो, नाथ! जैसी है, वैसी बात तो है। मीठी मधुर भगवान की वाणी ऐसी है। लोगों को अन्तर में वस्तु की चीज़ उसके ऊपर माहात्म्य नहीं आता न? तो उसका माहात्म्य पर के ऊपर चला जाता है अनादि से। आहाहा!

कहते हैं कि परद्रव्य तो उसको कहे कि... आत्मस्वभाव चिदानन्द प्रभु। उसकी भी व्याख्या नीचे करेंगे। आत्मस्वभाव स्वद्रव्य। आहाहा! यह चलते अधिकार में आया था, हों! परन्तु छोड़ दिया था। दोपहर को पहले चला था न पहले दिन? समयसार। सुबह यह चला था। कौन से दिन? चौथ है चौथ। पंचमी से शुरु हुआ न? तो चौथ के दोपहर को तो समयसार चला था अन्तिम अधिकार। सुबह यह चला था। दोनों छोड़ दिये। समझ में आया?

वस्तु तथा अचित्त, धन, धान्य, हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु... रागादि सब अचेतन वस्तु है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प—राग, वह भी अचेतन वस्तु है। वह तो आ गया है ७२ गाथा में। (समयसार) ७२ गाथा में आ गया है। अशुचि, अचेतन और दुःखरूप। जो पुण्य-शुभ और (पाप)-अशुभभाव दोनों अचेतन हैं,

दु:खरूप हैं, अशुचि हैं। वह तो ७२ में आया है। यह तो अष्टपाहुड में लिया। आहाहा! सत् की बात बैठनी जगत को ऐसी कठिन पड़े। अशक्य नहीं। परन्तु अनादि काल का अभ्यास नहीं न, तो उसको दुर्लभ हो गयी है। आहाहा!

कहते हैं कि **और मिश्र आभूषणादि सहित मनुष्य तथा कुटुम्ब सहित...** इसकी व्याख्या बहुत की है। परमात्मप्रकाश में भी है सचेत-अचेत-मिश्र की व्याख्या और समयसार में भी है १९वीं गाथा में। यहाँ तो इतना कहा कि **गृहादिक ये सब परद्रव्य हैं, इस प्रकार जिसने जीवादिक पदार्थों का स्वरूप नहीं जाना...** जीव ज्ञायकस्वभाव है, रागादि परस्वभाव है, परद्रव्य भिन्न द्रव्य है, ऐसा **जीवादिक पदार्थों का स्वरूप नहीं जाना, उसको समझाने के लिये...** उसको समझाने के लिये **सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवान ने कहा है...** सर्वदर्शी त्रिकाल दर्शन जिसको है। त्रिकाल सर्वज्ञपना पर्याय में प्रगट हुआ है। त्रिकाल का ... ओहो! ऐसा, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अथवा... उसने कहा है **अथवा अवितत्थं अर्थात् सत्यार्थ कहा है।** आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वभाव ध्रुव के सिवाय अन्य चीज़ परद्रव्य है और परद्रव्य के लक्ष्य से तो आत्मा की दुर्गति होती है, स्वभाव का परिणमन न होकर विभाव का परिणमन हो, वह दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! ब्रह्मचारीजी! ऐसी बात है। द्रव्यलिंग में कोई दूसरा नहीं, हों! द्रव्यलिंग तो दो ही है। चौथा और पाँचवाँ और म्थ्यिात्व तीनों द्रव्यलिंग हैं। चौथा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह तीन में आ गया, तीन में आ गया। मिथ्यादृष्टि, वह भी द्रव्यलिंगी है और चौथे गुणस्थान में भी छठवें गुणस्थान की क्रिया हो, वह भी द्रव्यलिंगी है और पाँचवें गुणस्थान में आनन्दसहित की दशा है तो छठवाँ गुणस्थान नहीं और छठवें गुणस्थान की क्रिया व्यवहार से है, वह भी द्रव्यलिंगी है। बस, तीन द्रव्यलिंग है। चौथा द्रव्यलिंग नहीं है। यह कल छोटालालजी थोड़ा कहते थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सर्वदर्शी भगवान ने यह सत्यार्थ कहा है। अवितत्थं। ओहोहो!

भगवान आत्मस्वभाव जो ध्रुव, जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन जिसके आश्रय से उत्पन्न हो, वह आत्मस्वभाव ध्रुव, उसको स्वद्रव्य कहने में आया है। उसकी विशेष व्याख्या कहेंगे। मोक्ष अधिकार है न। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, सीमन्धर परमात्मा के पास। किसी को शंका है। क्या है ऐसा? ऐसा कहते हैं। अरे! सुन तो सही प्रभु! वह तो लेख भी है श्रवणबेलगोला आदि में (शिला) लेख है। समझ में आया? वह सर्वज्ञ परमात्मा विराजते हैं, महाविदेह में वर्तमान मौजूद हैं। वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। आकर कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, गोदिकाजी! पैसा-बैसा कहीं रह गया तुम्हारा? धूल में रहा। वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य के आश्रय से दुर्गति होती है। लक्ष्मी में राग घटाकर जो दान का भाव है, वह दुर्गति है—ऐसा कहते हैं। ठीक लगे, न ठीक लगे दुनिया जाने। मार्ग तो ऐसा है। परद्रव्य का लक्ष्य करके राग घटाते हैं न, उसमें दान आदि का, परन्तु वह भाव परद्रव्य आश्रय का भाव है।

मुमुक्षु : बदलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बदलता है। वह शुभ है इतना। परन्तु है तो दुर्गति। दुर्गति का अर्थ? वह चैतन्य आनन्दकन्द की परिणति नहीं है। आहाहा! सहजानन्दस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! जिसकी स्वभाव परिणति, स्वभाव के आश्रय से होनी चाहिए, वह न होकर परद्रव्य के लक्ष्य से ऐसा राग का-विभाव का परिणमन है... उसको परमात्मा सर्वदर्शी सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया, वह कुन्दकुन्दाचार्य बीच में आड़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। माल तो सर्वज्ञ का है। अपने में माल आया है तीन कषाय के अभाव का। परन्तु आडतिया होकर जगत (को कहते हैं कि) भगवान ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! आप मुनि हैं न , आप कहो तो भी सत्य है। मुनि हैं तो आप कहो, वह भी सत्य है। भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! सर्वदर्शी सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ अब तक सत्य यह कहा है। यह कहते हैं। आहाहा! यह सत्यार्थ है।

परद्रव्य, आत्मा के सिवाय, स्वभाव के सिवाय सिद्ध हो या अरिहन्त पंच परमेष्ठी हो, (सब) परद्रव्य हैं। परद्रव्य की ओर लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होगा। आहाहा!

समझ में आया ? राग दु:ख है, वह आत्मा की गति नहीं। आत्मा की गति तो आनन्दस्वरूप प्रभु, शुद्ध आनन्दकन्द की आनन्द की धारा परिणति बहे, समयग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति से, वह आत्मा की धारा और आत्मा की परिणति है। आहाहा ! कहते हैं कि ऐसा भगवान ने अभी तक कहा है।

भावार्थ :- संक्षिप्त-संक्षिप्त लेते हैं न। लोग हैं न। **अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय...** भगवान चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव ध्रुव, हों! पर्याय नहीं। ज्ञायक स्व-भाव, त्रिकाल भाव। ओहोहो! ऐसे **अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय अन्य चेतन अचेतन मिश्र वस्तु हैं,...** अन्य चाहे तो चेतन अरिहन्त, सिद्ध आदि हो या चाहे तो अचेत स्कन्ध। अचेतन महास्कंध आता है न, वह सारा लोक में ? एक रजकण हो। यह सब अचेतन और चेतन, आभूषण आदि के साथ मिश्र स्त्री, कुटुम्ब आदि होता है न ? वह मिश्र वस्तु। **वे सब ही परद्रव्य हैं,...** आहाहा ! कहो, पण्डितजी ! लोगो ंको भारी कठिन काम पड़े। अरे ! प्रभु ! परन्तु तेरी चीज़ ऐसी है। आहाहा ! तुझे मोक्ष चाहिए, तुझे धर्म चाहिए या नहीं ? धर्म तो अपने त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के आश्रय से होता है। पर के आश्रय से धर्म तीन काल में होता नहीं। ऐसे सर्वदर्शी सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा है। समझ में आया ?

इस प्रकार अज्ञानी को समझाने के लिये... अज्ञानी को, परद्रव्य को अपने लाभ... कहा था न एकबार भाई! हमारे शिवलालभाई आये हैं या नहीं? ऐई! शिवलालभाई ! तुम्हारे पिता वीरचन्दभाई २०१० के वर्ष। १०। १० वर्ष हुए। व्याख्यान चलता था वहाँ बोटाद में म्युनिसिपालटी के मकान में। मैंने कहा, देव और गुरु भी परद्रव्य हैं। तो उसके पिताजी श्रीमद् के भगत थे। वहाँ तो भक्ति अधिकार बहुत चले न अगास में तो। वह बोले, अरे ! देव-गुरु शुद्ध, वह परद्रव्य ? ऐसा प्रश्न किया था। खबर है ? (संवत्) २०१० के वर्ष। २० वर्ष हुए। देव-गुरु तो शुद्ध हैं। शुद्ध, वह परद्रव्य ? परन्तु शुद्ध है तो उनका शुद्ध है, या अपना शुद्ध है वह ? २० वर्ष पहले। फिर थोड़ा बदल गये थे। उस समय जरा आग्रह था। लोगों को ऐसा है न, भगवान की भक्ति करे, भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा, सुन न ! भक्ति तो राग है। त्रिलोकनाथ की भक्ति। आहाहा !

सम्यग्ज्ञान दीपिका में तो ऐसा कहा और परमात्मप्रकाश में भी कहा है। 'भवे भवे जिन पूजियो।' समवसरण में अनन्त बार गये और समवसरण में भगवान की पूजा की। मणिरत्न के दीपक, हीरा के थाल, कल्पवृक्ष के फूल। वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य की भक्ति का भाव शुभराग है, वह कोई धर्म नहीं। सुनो, समझो, वस्तु यह है। '**अवितत्थं सव्वदरिसीहिं**' यह कहा है। समझ में आया? और सम्यग्ज्ञान दीपिका में यह कहा है। भाई धर्मदास क्षुल्लक, धर्मदास क्षुल्लक। वह कहा कि भाई! ऐसी परमात्मा की पूजा भव-भव में अनन्त बार की, अनन्त भव में। परमात्मप्रकाश में कहा, जिनो भव भव पूजियो। वह तो शुभराग है। यहाँ कहते हैं, उस परद्रव्य की ओर जो झुकाव है, वह चैतन्य की गति और चैतन्य की जाति नहीं। समझ में आया? आहाहा! इसको हजम करना, यह ज्ञानी झेल सके, अज्ञानी का भार नहीं अन्दर में। समझ में आया? सर्वदर्शी, सर्वज्ञ ज्ञानी अवितत्थ—सत्यार्थ यह कहा है। अपने आत्मस्वभाव के अतिरिक्त सब परद्रव्य और परद्रव्य से दुर्गति। ऐसी सन्धि सबके साथ लेना। समझ में आया?

और **अज्ञानी को समझाने के लिये...** जिसको भान नहीं कि स्वद्रव्य और परद्रव्य क्या है। आहाहा! **सर्वज्ञदेव ने कहा है।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १८

अब आत्मस्वभाव की व्याख्या। वह तो परद्रव्य की व्याख्या कही। क्योंकि '**परदव्वादो दुग्गइ**' पहले शब्द पड़ा था न १६ वीं गाथा में। तो पहले शब्द का अर्थ यहाँ परद्रव्य का कहा। सब स्वद्रव्य किसको कहते हैं? आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कहा, वह क्या है? ओहोहो!

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवदि सद्दव्वं॥१८॥

लो, यहाँ तो कर्म को दुष्ट कहा। ओहोहो! परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य जब अपनी आनन्द की धुन में हैं और उस समय यह विकल्प आया है। तो कहते हैं कि विकल्प,

यह दुर्गति है। आहाहा! वह आत्मस्वभाव नहीं। तो आत्मस्वभाव क्या है?

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।

आठ कर्मरहित, दुष्ट आठ कर्म से रहित भगवान आत्मा। अभी, हों! आहाहा! और अनुपम—जिसको उपमा दे सके नहीं। इसकी उपमा इसको, दूसरी क्या कहे उसको? ऐसी चीज़ निर्विकल्प आनन्दघन प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय है और जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! '**अणोवमं णाणविग्गहं**' क्या है यह चीज़ आत्मस्वभाव? '**णाणविग्गहं**'—ज्ञान जिसका शरीर है, ज्ञान जिसका शरीर है। आहाहा! शरीर और राग, वह उसका शरीर नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**णिच्चं**' नित्य त्रिकाल कायम। भगवान आत्मा का स्व-स्वभाव। स्वभाववान तो प्रभु आत्मा और स्वभाव आठ कर्म से रहित। कब? त्रिकाल। ऐसा कहते हैं, देखो! '**अणोवमं**' आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ नूर का पूर अन्दर बहता है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानरूपी धारा अन्दर ध्रुव धारा पड़ी है। आहाहा! वह अनुपम है। भाई! यह पंचम काल के प्राणी ने यह शास्त्र बनाया किसके लिये? और दुनिया को सुनाने के लिये या गुप्त रखने के लिये? आगे गाथा आयेगी। सुने, वाँचन करे, पठन करे, प्रयास करे तो उसका कल्याण होगा। ऐसा कहेंगे। किसको? पंचम काल के जीव को कहते हैं या दूसरे को कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि '**णाणविग्गहं णिच्चं।**'

मुमुक्षु : पंचम काल।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल। यह पंचम काल है न? कहते थे, तब पंचम काल था न? जब भगवान कुन्दकुन्दाचार्य शास्त्र लिखते थे तो पंचम काल है या नहीं? कोई ऐसा कहते हैं कि ऐसी बात तो चौथे काल में काम की है। अरे! प्रभु! काल तुझमें है ही नहीं। चौथा और पाँचवाँ काल है ही नहीं। अरे! गुणस्थान तुझमें है नहीं। चौदह गुणस्थान भी पर्याय-व्यवहार। द्रव्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव में गुणस्थान-फुणस्थान है नहीं। वह तो ६ गाथा में आया है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' '**जाणगो दु**' निश्चय जो भाव त्रिकाल। जो यहाँ स्वभाव कहते हैं, वह त्रिकाल भाव वहाँ कहते हैं। आहाहा! '**एवं भणंति सुद्धं**' ऐसा ध्रुव शुद्ध ज्ञायकभाव प्रमत्त—

अप्रमत्त ऐसी चौदह गुणस्थान की दशा से भिन्न जो है। आहाहा! ऐसे '**भणंति सुद्धं**' जो उस द्रव्यस्वभाव का लक्ष्य करके सेवा करते हैं, द्रव्यस्वभाव में जो लीन-एकाग्र होते हैं, वह पर्याय है। तो पर्याय की पहले नास्ति कही थी अन्दर में, परन्तु यह निर्मल पर्याय है। तो जो द्रव्यस्वभाव की ओर की उपासना करती है। पर्याय की उपासना नहीं, निमित्त, राग की नहीं, निमित्त की नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... निकल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब निकल गया। भेद भी नहीं। गुण-गुणी का भेद भी नहीं। गुणी भगवान गुण को स्पर्शता नहीं। यह बात एकबार आ गयी थी। १८वीं। अलिंगग्रहण के १८वें बोल (में)। अलिंगग्रहण का १८वाँ बोल। ज्ञानमात्र गुण जितना है, इस गुण को आलिंगन नहीं करनेवाला गुणी भगवान आत्मा है। आहाहा! निमित्त को तो आलिंगन करता नहीं, राग को तो स्पर्शता नहीं... आहाहा! पर्याय को स्पर्शता नहीं, गुण-गुणी का भेद को, विशेष को भी सामान्य स्पर्शता नहीं। आहाहा! यह द्रव्यदृष्टि और द्रव्य के जोर में दृष्टि कैसी होती है, वह बताने को प्रयोजन सिद्ध करने को, यह बात कही है।

मुमुक्षु : प्रयोजन के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें प्रयोजन उस ओर की दृष्टि करने से प्रयोजन सिद्ध होता है। भगवान! आहाहा! वह लिखा है। ११वीं गाथा है न, उसमें लिखा है पण्डित जयचन्द्रजी ने। भाई! ऐसा क्यों कहा? अकेला सत्यार्थ भूतार्थ... भूतार्थ... भूतार्थ... एक सत्य और उसकी दृष्टि करने से समकित है और पर्यायमात्र को गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा। गौण करके, हों! अभाव करके नहीं। वस्तु है न, पर्याय नहीं है? परन्तु वह मुख्य करके निश्चय बताना है। निश्चय तो स्व द्रव्य, गुण, पर्याय, तीनों निश्चय हैं। स्व, वह निश्चय और पर, वह व्यवहार। इतना सामान्य अर्थ करे तो द्रव्य-गुण-पर्याय स्वद्रव्य तो निश्चय है और पर है, वह व्यवहार है। परन्तु उस निश्चय में भी मुख्य जो है, वह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सन्तों की वाणी... आहाहा!

कहते हैं, मुख्य जो द्रव्यस्वभाव... तीनों में से अभेद लेना है। आहाहा! इस अभेद को निश्चय कहकर, मुख्य को निश्चय करके, गुणभेद, पर्याय, विकल्प सबको

गौण करके, गौण करके... अभाव करके, सर्वथा अभाव करके—ऐसा नहीं है। वहाँ दृष्टि लगाने को, मुख्यरूप से वहाँ दृष्टि जोड़ने को, वही सत्यार्थ एक ही है और व्यवहार और गुण-गुणी का भेद और पर्याय, वह सब असत्यार्थ है। गौण करके असत्यार्थ है। दृष्टि वहाँ से उठाना है। समझ में आया? आहाहा! वह समयसार में आता है न। पद्मनन्दि में आता है। अध्यात्म की बात जिसने प्रीति से सुनी है... ऐसी गाथा आती है। अपने इसमें आया न '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन**' वह तो ख्याल है। परन्तु शब्द नहीं बोले। '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।**' ओहो! भगवान ज्ञायकस्वभाव ध्रुव में, जिसमें पर्याय का निश्चय से सम्बन्ध नहीं। आहाहा! राग का सम्बन्ध तो है नहीं, पर का सम्बन्ध तो है ही नहीं। पर्याय में राग का सम्बन्ध है, वह व्यवहार है। पर्याय में निमित्त का, ज्ञेय का सम्बन्ध, वह व्यवहार है। द्रव्य—ज्ञायक का सम्बन्ध तो पर के साथ सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञायकभाव-सन्मुख की जो सेवा-उपासना, वहाँ लगाते हैं मुख्यपने में, तो जो शुद्धता प्रगट हुई। सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि, वह त्रिकाल सत्यार्थ है, अभी तक जो पदार्थ त्रिकाल स्वभाव, उसके आश्रय से, उसकी सेवा। सेवा शब्द से? यह लोग कहते हैं न, पर की सेवा करे, वह परोपकार है, धूल है। धूल भी नहीं, सुन तो सही। पर की सेवा कौन कर सकता है? परद्रव्य की पर्याय कौन कर सकता है? तो क्या पर की सेवा करते हैं? तो फिर आाता है न उसमें? 'परस्परोग्रहो जीवानां।' तत्त्वार्थसूत्र में आता है या नहीं? वह शब्द लिखा है उसने। सब है। वह तो निमित्त का कथन है। उपकार कौन किसके ऊपर करे? समझ में आया? अपना त्रिकाली स्वभाव अपना उपकार करनेवाला अपने में है। आहाहा!

कहते हैं, ज्ञायकस्वभाव की जिसने उपासना-सेवा, लो! यह सेवा की है। जिसको शुद्धता, अनुभव में सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में शान्ति और आनन्द का अनुभव हुआ, उसको त्रिकाली शुद्ध है, ऐसा सत्ता का ख्याल आया। त्रिकाल शुद्ध जो ज्ञायक आत्मस्वभाव है, ऐसी सत्ता का स्वीकार करनेवाला स्वभाव-सन्मुख हुआ। भाई! बापू! मार्ग अलौकिक है। लोगों ने कुछ न कुछ रीति से जगत का मार्ग, दुनिया के मार्ग की ओर ले गये हैं। वीतराग का मार्ग त्रिलोक का मार्ग प्रभु, सर्वदर्शी का मार्ग कोई अलौकिक भिन्न है। समझ में आया?

कहते हैं... आहाहा! शुद्ध तो सब है, सब कहते हैं। ऐसा नहीं। शुद्ध तो आत्मा त्रिकाली है, ऐसा तो सब जानते हैं। नहीं। सब जानते नहीं हैं। जो उसकी सेवा करके, उपासना करके पवित्र दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की प्रगट की, उसे वह द्रव्य शुद्ध है। ज्ञेय ज्ञान में आये बिना खाली शुद्ध है, शुद्ध है आया कहाँ से? उसकी सत्ता शुद्ध है। शुद्ध पूर्णानन्द की सत्ता शुद्ध है, ऐसा ख्याल में आये बिना शुद्ध सत्ता जगत में है, (ऐसा) कौन मानता है? समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भगवान, हों! यह तो यह गाथा चलती थी। महोत्सव के पहले यह गाथा चलती थी। मोक्ष अधिकार। आहाहा! १६वीं चलती थी, थोड़ी चली थी।

यहाँ तो कहते हैं... ओहोहो! अन्तर शुद्ध सत्ता '**अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं**' '**सुद्धं जिणेहिं कहियं**' देखो! यहाँ वही शब्द आया। '**सुद्धं**' त्रिकाल शुद्ध ध्रुव है। '**जिणेहिं कहियं**' तीर्थंकरों—सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह त्रिकाल। स्वद्रव्य किसको कहते हैं, उसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? '**अप्पाणं हवदि सद्दव्व**' अब उसका अर्थ।

मुमुक्षु : शुद्धता का भान तो पहले मिथ्यात्व में होगा...

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। वह तो चलता है यहाँ। स्व के लक्ष्य से होता है।

मुमुक्षु : स्व का लक्ष्य मिथ्यात्व में होगा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। मिथ्यात्व में होता ही नहीं। स्व का लक्ष्य हुआ तो सम्यग्दर्शन हो गया। सुनो! ध्रुव का लक्ष्य आया तो शुद्धता दृष्टि में आयी तो पर्याय में सम्यग्दर्शन हो गया। सब एक ही काल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, कोई भी हो। जब सम्यग्दर्शन होता है, तब त्रिकाली शुद्ध के आश्रय से ही होता है और तब सम्यग्दर्शन में त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा भासित होता है। इसमें कहीं कुछ आड़ा-टेढ़ा चलता नहीं। समझ में आया? देखो! आचार्य ने लिया न, यह शब्द लिया, ६वीं गाथा का।

यहाँ लिया, संसार के दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादि दुष्ट अष्ट कर्मों से रहित है भगवान। अष्ट कर्म के फल तो दुःखरूप है। तो अष्ट कर्म दुःखरूप है, ऐसा कहने में आता है। वह समयसार में है न, भाई! अष्टकर्म दुःख विपाकं। आठ कर्म का पाक हो तो दुःख ही होता है। आठ कर्म हों, वहाँ लो लिया है। अघाति के फल में दुःख है, ऐसा वहाँ तो लिया है। आठों कर्म दुःख। पाठ है। अष्ट... हैं न समयसार में? कौन-सी गाथा है? ... आहाहा! ... आठों कर्म के पाक का फल दुःख है। अघाति ले लिये। इतनी अशुद्धता है न अभी? असिद्धपना है न। जब तक चार अघाति है, तब तक असिद्धपना है। तो परम अव्याबाध आनन्द नहीं। अनन्त आनन्द है, परन्तु परम अव्याबाध आनन्द सिद्ध में होता है। थोड़ा-थोड़ा भेद है।

यहाँ कहते हैं कि आठों प्रकार के कर्म सब पुद्‌गलमय है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान सर्वज्ञदेव कहे। जो पक्व होकर उदय में आनेवाला कर्म का फल प्रसिद्ध दुःख है, ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! तो यहाँ शब्द यह लिया कुन्दकुन्दाचार्य (ने)। '**दुट्ठट्ठकम्मरहियं**' अघातिकर्म दुष्ट। दुष्ट कहा। उसमें आत्मा को क्या लाभ हुआ? वह तो जड़ है। तीर्थंकर प्रकृति जिससे बँधे, वह भाव तो विभाव है। चैतन्यगति नहीं वह। मार्ग बापू! वीतराग सर्वज्ञ प्रभु का मार्ग है। समझ में आया? तो वहाँ जैसे कहा, वैसे यहाँ कहा, देखो! **अष्ट कर्मों से रहित और जिसको किसी की उपमा नहीं...** ओहोहो! चिद्‌घन आनन्ददल। शुद्धघन ध्रुव जिसको निश्चय आत्मा कहते हैं, वह निश्चय आत्मा तो पर्याय मोक्ष का मार्ग और मोक्ष की पर्याय भी करनेवाला नहीं। वह ध्रुव भगवान आत्मा। आहाहा! वह ३२० गाथा में आया है, समयसार। '**बंधमोक्खं ण करइ**' जीव ध्रुवस्वरूप है, वह बन्ध की पर्याय, मोक्ष की पर्याय को भी नहीं करता। आहाहा! ऐसी अनुपम चीज़! स्वरूपचन्दभाई! यह स्वरूपचन्द की बात चलती है। आहाहा! अरे! तूने रुचि से कभी सुना नहीं। सुना सही, परन्तु रुचि से सुना नहीं। आहाहा! अनन्त बार समवसरण में गया, दिव्यध्वनि अनन्त बार सुनी। आहाहा!

ऐसी एक सज्झाय आती है। 'केवली आगळ रह गयो कोरो।' हमारी गुजराती भाषा में आता है। चार सज्झायमाला है श्वेताम्बर में। एक-एक सज्झायमाला में २००-३०० सज्झाय है। २००-३००-३००। ऐसी चार हैं। हमको तो दुकान के ऊपर सब

निवृत्ति थी न। पिताजी की दुकान थी न। तो सब (पढ़ी है)। सज्झाय-सज्झायमाला। स्वाध्याय स्वाध्याय नहीं। स्तवन है, सज्झाय है। एक दृष्टान्त लेते हैं, देखो। 'सहजानंदी रे आत्मा सुतो कंई निश्चिंत रे।' ऐसी आठ लाईन होती है, दस लाईन होती है, उसको एक सज्झाय कहते हैं। पद संग्रह लो न तुम्हारी भाषा में। ऐसी ३००-३०० एक सज्झायमाला में ३००-३०० है। चार सज्झायमाला है। हमें तो छोटी उम्र में यह संस्कार थे न। दुकान के ऊपर सब वाँचते थे। १७-१८-१९ वर्ष (की आयु में)।

मुमुक्षु : हिन्दी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी नहीं, गुजराती है। दूसरे बहुत ग्रन्थ हैं। कोई श्वेताम्बर से लिया है, कोई दिगम्बर है। बहुत-बहुत है। चार सज्झायमाला है। यहाँ पर है। यहाँ है सब। हमने तो दुकान के ऊपर मँगवायी थी। १८-१९ वर्ष की उम्र से। अब तो ८४ हुए। उसमें यह आया था। 'केवली आगळ रह गया कोरो।' यह क्या? कि सर्वज्ञ के पास भी अनन्त बार गया। उसमें है। 'केवली आगळ रह गयो कोरो।' समझे? रूखा रह गया। अपनी दृष्टि की नहीं। और 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो।' यह दो बोल दुकान पर आये थे। द्रव्यसंयम से आत्मदर्शन और अनुभव के बिना बाहर के क्रियाकाण्ड लेकर 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फिर पीछो पटक्यो।' उसमें आता है।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि नहीं जा सकता समवसरण में?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जाते हैं न। मिथ्यादृष्टि जाते हैं समवसरण में। अभव्य नहीं जाते। मिथ्यादृष्टि जाते हैं। सम्यग्ज्ञान दीपिका में है। समझ में आया? वहाँ निमित्त क्या करे? वहाँ अनन्त बार गया। वह बात नहीं आती है? सुनी नहीं? वह साधु था पार्श्वनाथ भगवान का। मश्करी। समवसरण में बैठे थे। समवसरण में बैठे तो वाणी निकली भगवान की। उसका तो बहुमान आया नहीं। उसको बाहर निकल करके... दृष्टि मिथ्यात्व थी, बाहर निकलकर कहा, यह नहीं। भगवान कहते हैं, ऐसी बात नहीं। हमको तो मुख्य साधु (गणधर) बनाया नहीं। मान था न अभिमान। मश्करी की बात है। मुख्य साधु नहीं बनाया। आहाहा!

मुमुक्षु : गौतम को बना दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गौतम को नवदीक्षित (को), अभी तो आज आया, वहाँ बना दिया। कौन बनावे ? सुन तो सही ! वह तो उसकी योग्यता से बना है। तेरी योग्यता सुनने से प्रतिकूल से हो गया उसको। बस, मिथ्यादृष्टि था। आहाहा! अरे! आहाहा! क्या करे ? केवली क्या करे ? समवसरण क्या करे ? वाणी क्या करे ? अपनी अन्तर में दृष्टि बदले बिना दूसरी चीज़ क्या कर सके ?

यहाँ कहते हैं कि केवली आगळ... उसमें यह भी सज्झाय आयी थी, उस समय में। 'सहजानंदी रे आत्मा तुं सूतो निश्चिंत रे, मोह तणा रे रणिया भमे।' हे नाथ! तेरे ऊपर मिथ्यात्व और मोह का तो चोर आता है। तुझको लूट लेते हैं। आहाहा! 'जाग जाग मतिवंत रे, अे लूंटे जगतना जंत रे।' स्त्री और परिवार कहे, किसलिए हाथ पकड़ा था ? पोषण करना पड़ेगा। नहीं चलाऊँ। ऐसे परिवार के जन ठगों की आजीविका की टोली... नियमसार में लिया है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार ठगों की आजीविका की टोली है सब। वह कहे, हमारे घर क्यों आया ? हमारे पिताजी हो, पोषण करना पड़ेगा। स्त्री कहे कि हाथ क्यों पकड़ा था ? ऐसा पाठ नियमसार में है। कलश में है। सब ठगों की आजीविका टोली है। 'लूंटे जगतना जंत नाखी वांक अनंत।' क्यों मालिक बनाया था। ... लिया था। तो हमको बराबर गहने, वस्त्र। हम जवान हैं। हमारी पच्चीस वर्ष की उम्र है, हमारे साथ भोग नहीं लेते, क्यों लिया हमें ? ऐसे अज्ञानीजन तेरी चीज़ को लूटते हैं। 'लूंटे जगत का जंत, नाखी वांक अनंत, विरला कोई उगरंत।' आहाहा! यह गाथा उसमें आती है। विरल प्राणी उससे भिन्न होकर अपने आत्मा का उद्धार करता है। 'सहजानंदी रे आत्मा।' आहाहा! यह तो एक-दो कड़ी है, ऐसी सात-आठ कड़ी। ऐसी-ऐसी सज्झाय ३००-३०० ... एक सज्झायमाला। माला नाम ... चार है। यहाँ सब ग्रन्थ है।

यहाँ कहते हैं कि अहो! भगवान आत्मा दुष्ट आठ कर्म से तो रहित है। कर्म का तो नाश किया आपने। अस्ति-नास्ति है। कर्म में कर्म अस्ति है। आत्मा में अस्ति कहाँ से आयी ? समझ में आया ? त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव भगवान में आठ कर्म का तो अभाव है। एक चीज़ अस्ति है तो परचीज़ की तो उसमें नास्ति है। यह तो पहला सिद्धान्त है सप्तभंगी का। समझ में आया ? तो वह कहते हैं यहाँ। भगवान चिदानन्द ज्ञानस्वभाव जो ध्रुवस्वभाव, वह तो दुष्ट आठों कर्मों से रहित है, और जिसको किसी की उपमा नहीं।

आहाहा! सिद्ध की पर्याय भी है, वह भी एक अंश है। यह तो त्रिकाली वस्तु है। उसको किसकी उपमा दे? बात साधारण ऐसे कहे कि 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' वह आता है या नहीं? बनारसीदास। परन्तु वह उपमा कहाँ लागू पड़ती है? आहाहा! क्या कहे? त्रिलोकनाथ ध्रुवस्वरूप चिद्घन जिसमें से अनन्त केवलज्ञान की पर्याय जिसमें ज्ञानगुण में पड़ी है, उसमें से निकलती है। ऐसा भगवान ज्ञानगुण में भी अनन्त शक्ति, ऐसी-ऐसी अनन्त गुण की शक्ति का एक रसकन्द प्रभु, उसको उपमा किसकी दे? सिद्ध समान व्यवहार से कहे। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' वह तो इतना सिद्ध जैसी मेरी चीज़ है इतना। सिद्ध में जैसे अल्पता नहीं, विकार नहीं, अशुद्धता नहीं, ऐसी मेरी चीज़ त्रिकाल शुद्ध आनन्दघन अन्दर ध्रुव है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। इसलिए अनेकान्त में द्रव्य को पर्याय के साथ सम्बन्ध नहीं, पर्याय को राग के साथ सम्बन्ध नहीं, राग का निमित्त के साथ सम्बन्ध नहीं। एक-दूसरे का एक-दूसरे में अभाव है। आहाहा! ऐसा अनेकान्त भगवान त्रिलोकनाथ ने समवसरण में इन्द्र और गणधर के बीच में प्रसिद्ध किया था।

कहते हैं, अरे! ऐसा आनन्द ध्रुव एक समय की पर्याय जो अनन्त चतुष्टय में प्रगट होती है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, वह तो एक समय की पर्याय है, एक अंश है। आहाहा! और यह ध्रुव त्रिकाल स्वभाव को किसकी उपमा दे? आहाहा! भाई! अन्तर परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी उसको खबर नहीं। आहाहा! परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप। आहाहा! परमस्वरूप अनुपम। उपमा दे सके नहीं, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा! अरे! दृष्टि की नहीं, माहात्म्य लिया नहीं, पर से माहात्म्य हटा नहीं, अन्तर का माहात्म्य आया नहीं। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती है। जिसको शुभभाव पर्याय, निमित्त का माहात्म्य रहता है, उसको ध्रुव का माहात्म्य नहीं आयेगा। भाषा समझते हैं न बराबर? महाराष्ट्र। महादेश। महा देश तो आत्मा है, हों! असंख्य प्रदेशी प्रभु महाराष्ट्र—अनन्त गुण की शक्ति से भरा, ऐसी अनुपम चीज़ को उपमा कैसे दे? कहते हैं। आहाहा!

क्या कहते हैं यह? आत्मस्वभाव स्वद्रव्य किसको कहे, यह चलता है। स्वद्रव्य, वह आत्मस्वभाव कैसा है? किसको कहते हैं? वह बात चलती है, भगवान! आहाहा!

एक बार वहाँ थे न भाई! पालेज में, तब हमारे रिश्तेदार वैष्णव थे। वैष्णव-वैष्णव। तो उसकी भक्ति चलती थी तो हमें जाना पड़े न। छोटी उम्र की बात है। १५-१६-१७ वर्ष की देह की स्थिति। तो वहाँ एक भजन करते थे। 'जगतडा कहे छे रे भगतडा घेला छे। जगतडा कहते हैं रे यह भगतडा घेला छे। रे पण घेला न जाणशो रे प्रभुने त्यां ये पहेला छे।' यह वैष्णव गाते थे। कहा, वह बात यह नहीं परन्तु यहाँ सही।

मुमुक्षु : पहेला अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहेला अर्थात् मुख्य। पेला शब्द नहीं आता? पागल। पागल पागल को कहते हैं न भैया। घेला-घेला। यह तो छोटी उम्र में सुनते थे। 'जगतडा कहते हैं रे भगतडा काला छे।' क्यों ऐसी बात काला जैसी करते हो? लो, आत्मा ध्रुव है, उसको उपमा न दे सके। काला-काला समझते हैं? काला को क्या कहते हैं? वह काला नहीं होता? कपास का। कपास-कपास का झींडवा होता है न, उसको काला कहते हैं। कपास निकलता है न जिसमें से। वह फट जाये फिर कपास बाहर निकलता है। उसको काला कहते हैं, उसको निकालते हैं। ऐसे यह भगतडा काला जैसी बातें करे, पागल जैसी। अरे! सुन रे सुन! 'जगतडा कहे छे रे भगतडा काला छे। पण काला न जाणशो रे प्रभुने अे व्हाला छे।' आहाहा! गुजराती भाषा थी न। यह हिन्दी तो आपके लिये कही। आहाहा!

कहते हैं, जिसकी उपमा नहीं। ओहोहो! यह जिसका ज्ञान ही शरीर है। ज्ञानविग्रहं—ज्ञानशरीर है। आहाहा! यह शरीर तो ... शरीर है। ... नाश हो तो शरीर... ऐसा आता है न? यह नहीं है ऐसा। ज्ञान जिसका शरीर ध्रुव चैतन्य भगवान नित्यानन्द, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? जिसके अवलम्बन से आनन्द का अनुभव होता है। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूंप, अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।' समझ में आया? वह बनारसीदास में है। यह तो ज्ञानशरीर। राग नहीं, एक समय की पर्याय भी नहीं। पूरा ज्ञानदल, चैतन्यदल, ध्रुव दल शरीर जिसका है। आहाहा! और जिसका नाश नहीं। नीचे है न, नीचे है। उसकी जरा व्याख्या लम्बी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन शुक्ल १५, शुक्रवार, दिनांक ०८-०३-१९७४
गाथा - १८-१९-२०, प्रवचन-१२१

अष्टपाहुड़ चलता है। मोक्षपाहुड़। १८वीं गाथा चलती है न? पहले कहा था कि '**सदव्वादो हु सुग्गइ होई परदव्वादो दुग्गई।**' उसकी व्याख्या चलती है कि परद्रव्य से दुर्गति होती है तो परद्रव्य है क्या चीज़? अपना ज्ञानस्वभाव शुद्धस्वभाव से अन्य राग, शरीर, वाणी, मन और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और देव-गुरु और शास्त्र, ये सब परद्रव्य हैं।

मुमुक्षु : वह तो सब ठीक है परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो, स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म होता है, वह सिद्ध करना है। स्वद्रव्य जो अपना चैतन्य ज्ञान विग्रहं—ज्ञान जिसका शरीर है, आनन्द जिसका रूप है, वह सब स्वद्रव्य में आता है। आनंदरूपं। त्रिकाल आनन्दरूप स्वरूप है, ऐसे द्रव्य के आश्रय से धर्म होता है। मोक्ष अधिकार है न। तो सम्यग्दर्शन, यह भी स्वद्रव्य के आश्रय से होता है; सम्यग्ज्ञान भी स्वद्रव्य के आश्रय से होता है और सम्यक्चारित्र भी सवद्रव्य के आश्रय से होता है और शुक्लध्यान भी स्वद्रव्य के आश्रय से होता है और केवलज्ञान भी स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा!

तो '**सदव्वादो हु सुग्गइ**' ऐसा कहने में आया और '**परदव्वादो दुग्गई**' परद्रव्य पर जितना लक्ष्य जायेगा, इतना राग उत्पन्न होगा। चाहे तो ज्ञानी हो... अज्ञानी की तो बात क्या करना? परन्तु ज्ञानी हो, उसका जितना परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है, इतना राग है, इतना बन्ध है, इतना संसार है, इतना दुःख है। ज्ञानी को... वह २१६ गाथा में आया है न? वैद्यवेदकभाव। धर्मी तो आत्मा का आनन्द का वेदन करनेवाला है और वैद्य होनेवाला आनन्द। वह द्रव्य की अपेक्षा से कथन है। समझ में आया? परन्तु जितना परद्रव्य के लक्ष्य से पर्याय में राग होता है समकिती को, मुनि को, उसका उसमें—पर्याय में राग का, दुःख का वेदन है, ऐसा सम्यग्ज्ञान जानता है। पण्डितजी!

वह कहते हैं कि दुःख का वेदन करे, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा चलता है अभी। ऐसा है नहीं। दुःख का वेदन सम्यग्दृष्टि को भी होता है। जितना राग है न। बस। १७० गाथा में कहा न यथाख्यातचारित्र के पहले स्वरूप में स्थिर हो न सके तो विपरिणमन हो जाता है, राग में आ जाता है। राग विकल्प जितना शुभभाव हो, सब राग का वेदन (है—ऐसा) पर्याय का ज्ञान करनेवाला ज्ञान बराबर जानता है। समझ में आया?

यहाँ कहत हैं, द्रव्य के आश्रय से जितना स्वभाव हुआ, वह मोक्ष का मार्ग है। और धर्मी को भी जितना परद्रव्य के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है, उतनी दुर्गति है। चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! मोक्ष की गति में वह मददगार नहीं। बन्धभाव है, वह तो। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि निरास्रव और अबन्ध है। वह द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से कहने में आया है, परन्तु साथ में पर्याय में जबतक राग है, तबतक आस्रववान है। दूसरी नय से ऐसा कथन कहने में आया है। समझ में आया? एक ही पकड़े और दूसरी नय का ख्याल न करे तो वह दृष्टि मिथ्यात्व है। बात तो ऐसी है। आहाहा! यह बड़ी गड़बड़ चली है न अभी कि दुःख वेदे वह मिथ्यादृष्टि है। समकिती को दुःख होता ही नहीं। ऐसा है नहीं। वह दृष्टि विपरीत है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि को आनन्द के साथ थोड़ा दुःख होता है। मिथ्यादृष्टि को अकेला दुःख है। समझ में आया? अकेला दुःख आकुलता, मिथ्यात्व और राग-द्वेष का। समकिती को जितना आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ, उतना आनन्द है और उसी समय में वही पर्याय में पर के आश्रय से राग हो, वह दुःख है। एक पर्याय में दो भाग हैं। अज्ञानी को एक पर्याय में एक ही भाग है—दुःख।

मुमुक्षु : दुःख न होवे तो मोक्ष होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो मोक्ष होना चाहिए, केवलज्ञान होना चाहिए, यथाख्यात चारित्र हो जाना चाहिए।

मुमुक्षु : अनन्त सुख हो जाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनन्त सुख। सुख पूर्ण होना चाहिए लो न पहले। अनन्त

सुख तो केवली। परन्तु बारहवें गुणस्थान में अनन्त सुख होता है न पूर्ण? केवली में अनन्त सुख, सिद्ध में अनन्त अव्याबाध सुख और बारहवें में सुख बस इतना। बारहवें में पूर्ण है तो नीचे दुःख है ही। आहाहा! यहाँ तो सर्वज्ञ का मार्ग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बारहवें में अज्ञान का नहीं। अपूर्ण जन्म। अपूर्णता है न। बस इतना। अपूर्णता का दुःख है इतना। पूर्ण है नहीं न। पूर्ण ज्ञान नहीं। इतना। उतना परिवर्तन होता है न। एकरूप नहीं रहते है। और अपूर्ण है न! दूसरी भाषा। परिवर्तन और अकेली दूसरी बात। यहाँ तो अपूर्ण है, वह दुःख है। अपूर्ण है, वह दुःख है।

मुमुक्षु : अपूर्ण वह दुःख?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य अपूर्ण है। तो वीर्य और आनन्द अपूर्ण है। पूर्ण हो तो तेरहवें में आ जाये।

मुमुक्षु : तेरहवें गुणस्थान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर है थोड़ा। अव्याबाध इतना। सुख तो पूर्ण ही है। परन्तु वेदनीय का अभाव नहीं, इतना वहाँ अव्याबाध नहीं लागू पड़ा, यह कहने में आता है। बाकी सुख तो पूर्ण ही है। चंचलता है न पीछे। योग की चंचलता है, वह दुःख वास्तव में असिद्धदशा है। योग का कम्पन है, वह असिद्धदशा है, वह सिद्धदशा नहीं। इतना वहाँ अव्याबाध सुख नहीं। दुःख नहीं, अव्याबाध सुख नहीं। सुख तो पूर्ण है। परन्तु अव्याबाध नहीं। जरा अन्तर है। बारहवें में सुख पूर्ण, तेरहवें में अनन्त सुख, चौदहवें में भी अनन्त सुख होने पर भी असिद्धपना बाकी है, इतना अव्याबाध सुख का अभाव है और सिद्ध में अनन्त अव्याबाध सुख (है)। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है।

मुमुक्षु : ये तो नाममात्र का रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले नाममात्र है, परन्तु है न। देखो। यहाँ क्या कहा? देखो!

मुमुक्षु : वहाँ अपूर्णता, यहाँ गुण पूरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं यहाँ देखो। '**दुट्ठट्ठकम्मरहियं**' अपने गाथा यही चलती है १८वीं, देखो! पण्डितजी! अपने १८वीं गाथा चली। '**दुट्ठट्ठकम्मरहियं**' आठ

कर्मरहित है। यह १८वीं गाथा अपने चलती है। दुष्ट आठ कर्म है। और ४५ गाथा कही थी न! पहले कहा था ४५ गाथा। ४५ गाथा समयसार। '**अट्ठविहं पि य कम्मं विपच्चमाणस्स दुक्खं**' आठों कर्मों का पाक दु:ख है। वहाँ तो चार अघाति का फल भी दु:ख है, ऐसा कहा। वह अव्याबाध नहीं है उसे। यहाँ तो भाई! वीतराग का मार्ग है। उसमें एक अंश भी अन्तर होना नहीं चाहिए। वह कल कहा था न? ४५ गाथा समयसार की। ४५-४५।

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिण बेंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स॥४५॥

आहाहा! अघाति का फल भी दु:खरूप है, ऐसा यहाँ तो कहा। वह अव्याबाध नहीं है, उस अपेक्षा से। यहाँ तो वीतराग का मार्ग तो एक-एक समय का विवेक कराता है। समझ में आया? हमारे चेतनजी है न, वह बात करते थे। भैया! वह सन्मति सन्देश में है। तुम्हारे सन्मति कहते हैं? चेतनजी! कहते थे न तुम? राजमलजी का प्रश्न वेद्यवेदक। आत्मा में सुख का ही वेदन है, ऐसा आया है उसमें। परन्तु दु:ख का वेदन है, ऐसा ज्ञानपर्याय जानती है। न जाने दु:ख का वेदन तो मिथ्यादृष्टि है वह। समझ में आया? वह तुम्हारे सन्मति संदेश आया होगा, अभी मैंने पढ़ा नहीं। चेतनजी ने कहा। तुमने कहा। ओहोहो! आहाहा!

जब द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से कथन चले, तब तो द्रव्यस्वभाव की दृष्टि निर्विकल्प है और स्वभाव भी अभेद है। तब तो वह द्रव्य(दृष्टि) की अपेक्षा से पर्याय में दु:ख का वेदन का कथन न चले। परन्तु जब ज्ञान की (अपेक्षा से) चले कथन तो ज्ञान तो स्वद्रव्य को जानता है और पर्याय को जानता है। तो ज्ञान स्व-परप्रकाशक है। तो द्रव्य के साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान दु:ख का वेदन को पर्याय में जानता है। समझ में आया? दु:ख का वेदन न जाने और केवल आनन्द ही है, (ऐसा माने) वह अज्ञानी का भ्रम है। यहाँ तो यह बात है, भाई! समझ में आया? ऐ... धीरुभाई! यह सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : यह लोगों की....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह भी समझने की पहली चीज़ है। समझना पड़ेगा पहले, बापू! आहाहा! देखो!

यहाँ तो कहा न, **संसार के दु:ख देनेवाले...** अज्ञानी १८वीं गाथा। **ज्ञानावरणादिक दुष्ट अष्टकर्म...** उस कर्म का स्वरूप में अभाव है, अपने स्वरूप में आठ कर्म का तो अभाव है। स्वद्रव्य में परद्रव्य का तो अभाव है। परन्तु वह कर्म से रहित द्रव्य... तो यहाँ स्वद्रव्य सिद्ध करना है। स्वद्रव्य किसको कहते हैं? कि वह अष्ट कर्म से रहित **और जिसको किसी की उपमा नहीं, ऐसा अनुपम,...** ओहोहो! अकेला ज्ञायकभाव, शुद्धभाव, पवित्रभाव, पूर्णभाव, सामान्यभाव, सदृश्यभाव, अभेदभाव—सब एक अर्थ है। समझ में आया? यह चीज़ तो अनुपम है। द्रव्य—स्वद्रव्य। उसकी कोई उपमा है नहीं। कहा न। वहाँ भी कहा और यहाँ भी कहा। कुन्दकुन्दाचार्य की यह गाथा है और वह भी कुन्दकुन्दाचार्य की ४५वीं गाथा है। इतना अपने स्वरूप से विरुद्धता रखनेवाली जड़ चीज़ है, परन्तु वह निमित्त से दुष्ट कर्म कहने में आया। क्योंकि उसके आश्रय से जितनी पर्याय में अपूर्णता और विपरीतता हो, वह सब दु:खरूप है, ऐसा बताना है। आहाहा! समझ में आया? तो कोई कहे न कि भाई! ज्ञानी को तो दु:ख होता ही नहीं। दु:ख वेदे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। झूठ बात है।

ज्ञानी यथार्थ में आत्मा का आनन्द का वेदनेवाला भी है स्वभाव की अपेक्षा से और पर्याय में राग का, दु:ख का वेदनवाला भी एक समय में दोनों है। जब द्रव्यस्वभाव की मुख्यता चले, तब आनन्द का वेदनवाला मुख्यता से है, ऐसा कहने में आता है। तब दु:ख का वेदन गौणपने, अभाव करके नहीं; गौण करके। गौण करके दु:ख का वेदन नहीं, वह द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से कहने में आया। परन्तु जब ज्ञान की पर्याय दृष्टि से देखने में आवे, तब मुख्य-गौण नहीं। आहाहा! उस समय आनन्द भी है और उस समय दु:ख भी है।

मुमुक्षु : अपेक्षा नहीं लगायी बस।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस। स्वभाव की अपेक्षा से जब कथन चले, तब तो वह द्रव्य का स्वभाव आनन्द का वेदनेवाला है, ऐसा चले, परन्तु साथ में ज्ञान है, उस ज्ञान पर्याय को जब देखती है तो दु:ख को भी वेदता है, ऐसा स्पष्ट ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु : एक पर्याय का दो भाग।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भाग। नहीं तो पूर्ण केवलज्ञान हो जाये, आनन्द हो जाये। समझ में आया? बड़ी गड़बड़ी चली है। द्रव्य की अपेक्षा से चले, तब आत्मा राग का वैद्यवेदकवाला नहीं। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से चले, तब पर्याय में वेदन दु:ख का है, उसको गौण करके, मुख्य करके आनन्द का वेदनेवाला है, ऐसा कहने में आया है। परन्तु ज्ञान से जब जानने में आता है, तब मुख्य-गौण नहीं। जिस समय अपने आश्रय से आनन्द हुआ इतना भी वेदन है, और जिस समय पर के आश्रय से जितना राग (उत्पन्न हुआ) उतना दु:ख का भी साथ में वेदन है। वहाँ मुख्य-गौण नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! अन्तर वस्तु कोई ऐसी भिन्न पड़ी है, उसको स्वद्रव्य यहाँ कहते हैं तो स्वद्रव्य के आश्रय से तो शुद्धता ही उत्पन्न होती है, परन्तु जब तक वीतरागता न हो तब तक पर्याय में राग भी उत्पन्न होता है, वह परद्रव्य कहने में आया है, स्वद्रव्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह तो एक समय की निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहने में आया है। नियमसार ५० गाथा। ५०वीं गाथा। क्योंकि जैसे परद्रव्य में से नयी निर्मल पर्याय नहीं आती है, वैसे पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती है। उस अपेक्षा से निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहकर स्वद्रव्य तो त्रिकाली ध्रुव है, उसमें से निर्मल पर्याय आती है। आहाहा! कथन की शैली (समझनी चाहिए)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस अपेक्षा से कहा। क्योंकि पर्याय में से पर्याय नहीं आती। जैसे परद्रव्य में से पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय में से नयी निर्मल पर्याय नहीं आती। नयी पर्याय तो द्रव्य में से आती है। तो उस अपेक्षा से पर्याय को परद्रव्य कहकर त्रिकाल द्रव्य को स्वद्रव्य कहा है।

मुमुक्षु : अपने काल में होती है। हेतु क्या है, यह बताना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। बस इतना बताना है। होती है, फिर भी उसको परद्रव्य क्यों कहा? होती है तो हो। वह तो स्वकाल में होती है। राग भी स्वकाल में है और निर्मल पर्याय भी स्वकाल में है। परन्तु उसको पर्याय, निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य क्यों

कहा ? वह प्रयोजन की बात चलती है। समझ में आया ? कि वह तो त्रिकाल द्रव्य पर दृष्टि पड़ने से द्रव्य के आश्रय से ध्रुव में से पर्याय आती है। नयी पर्याय ... केवलज्ञान पर्याय जो आती है, वह मोक्ष के मार्ग की पर्याय का व्यय होकर उसमें से नहीं आती। मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय हो और पूर्ण मोक्ष हो, वह मोक्षपर्याय कहाँ से आयी ? व्यय हुआ, उसमें से आती है ? द्रव्य में से आती है। कारणपरमात्मा उसको कहा है। द्रव्य को इस कारण से कारणपरमात्मा कहा है कि जिसमें से केवलज्ञानरूपी कार्य, कारणपरमात्मा में से आता है। वह पूर्व के मोक्षमार्ग में से आती है, वह तो व्यवहार कथन है। आहाहा! भाई है ? वया गये ? बाबूभाई गये ? ठीक। यहाँ बैठते थे। कहो, समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान स्वद्रव्य इसको कहे कि जिसमें आठ कर्म का अभाव है और जिसको किसी की उपमा नहीं, ऐसी अनुपम चीज़ है। उपमा किसको ? द्रव्य को किसकी उपमा दे ? आहाहा! जिसमें केवलज्ञान की पर्याय अनन्त पड़ी है ज्ञानगुण में। जिसमें क्षायिक समकित की पर्याय अनन्त श्रद्धागुण में पड़ी है अन्दर। जिसमें यथाख्यातचारित्र की पर्याय अन्दर चारित्रगुण में अनन्त पड़ी है। आहाहा! गुण में, हों! तो उसकी पर्याय को छोड़कर त्रिकाली द्रव्य किसको कहते हैं, वह बात यहाँ कहते हैं। आहाहा!

जिसका ज्ञान ही शरीर है। आहाहा! जिसका अस्तित्व ज्ञान ही अस्तित्व है। जिसका जानन स्वभाव ज्ञायकभाव ही शरीर है। उसको यह राग का या पर का शरीर है नहीं। आहाहा! त्रिकाल ज्ञायकभाव का शरीर हों! वह लेना। एक समय की पर्याय नहीं। **और जिसका नाश नहीं है, ऐसा अविनाशी नित्य है...** आहाहा! केवलज्ञानादि पर्याय तो नाश होती है। आठ बोल चले हैं। ३८ गाथा नियमसार। वह सब पर्याय तो नाशवान है। भगवान आत्मा त्रिकाल अविनाशी है, वह स्वद्रव्य है।

मुमुक्षु : पर्याय को कथंचित् भिन्न (कहा है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में द्रव्य नहीं, द्रव्य में पर्याय नहीं। अनेकान्त किसको कहे ? द्रव्य में पर्याय नहीं। अनेक अन्त। स्व से अस्ति और पर से नास्ति। तो द्रव्य से अस्ति और पर्याय से नास्ति। यह तो मार्ग, भाई! वीतराग का ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

धीरुभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! पहले पहले में नीचे-नीचे ऐसा नहीं चले। स्वरूपचन्दभाई! भाई तो ऐसा कहे कि हमारे लिए तो बहुत... परन्तु उसे समझना पड़ेगा या नहीं यह? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान का शरीर कौन आत्मा का? वह तो ज्ञानस्वरूप ज्ञानदल, चैतन्यदल सत्त्व। सत् आत्मा उसका ज्ञान सत्त्व, पूर्ण सत्त्व, वह उसका शरीर है। आहाहा! और जिसका नाश नहीं, (ऐसा) अविनाशी है। वह तो त्रिकाल अविनाशी है वस्तु। उसमें पलटना, बदलना स्वद्रव्य ध्रुव में है नहीं। आहाहा! ऐसा अविनाशी है **और शुद्ध अर्थात् विकाररहित...** है। विकार कैसा? त्रिकाल निर्मलानन्द प्रभु है। **केवलज्ञानमयी आत्मा...** केवलज्ञान। केवलज्ञान अर्थात् वह पर्याय नहीं। केवलज्ञानमय अकेला ज्ञानमय, अकेला ज्ञानमय (आत्मा)। आहाहा! **जिन भगवान सर्वज्ञ ने कहा है, वह ही स्वद्रव्य है।** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो यह कहा वही स्वद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी राग का कर्ता नहीं तो भोक्ता कैसे हो सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्ता नहीं है, वह तो दृष्टि की अपेक्षा से। करनेयोग्य नहीं इस अपेक्षा से। परिणमन है, उस अपेक्षा से कर्ता है। वह तो बात चली थी दो दिन पहले। ४७ नय। करनेयोग्य है, ऐसी अपेक्षा से कर्ता नहीं, परन्तु परिणमन की अपेक्षा से कर्ता है।

मुमुक्षु : ... कर्ता भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। दोनों है, दोनों है। राग का कर्ता भी है और राग का भोक्ता भी है।

मुमुक्षु : दृष्टि की अपेक्षा से न कर्ता, न भोक्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो करनेयोग्य की अपेक्षा से कर्ता नहीं। परन्तु परिणमन की अपेक्षा से कर्ता-भोक्ता है। ऐसा है। दुःख का वेदन है और दुःख का कर्ता भी है। वह ४७ नय में चला है। दो दिन पहले बात चली थी। गणधर भी कर्ता और भोक्ता नय से जानते हैं (कि) जितना विकल्प है, वह मेरा परिणमन है और विकल्प है, उतना मेरे

में दु:ख है। दु:ख का भोक्ता है। ४७ नय। ४७ समझे न? प्रवचनसार। लेना है? ये प्रवचनसार है?

आत्मद्रव्य। क्योंकि पहले यह लिया है। नय का अधिष्ठाता आत्मा है। पहला शब्द यह लिया है। आत्मद्रव्य। **प्रथम तो, आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता,...** देखो! यह कर्ता और भोक्ता नय का अधिष्ठाता आत्मा है। यह ज्ञान का कथन है। बापू! यह वस्तु भगवान के मार्ग की शैली ऐसी है। देखो, क्या कहते हैं? **चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता...** है। अनन्त धर्म शब्द से कर्ता, भोक्ता नय का आधार है। आहाहा! **एक द्रव्य है, क्योंकि अनन्त धर्मों में व्याप्त होनेवाला जो अनन्त नय है, उनमें व्याप्त होनेवाला जो एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से प्रमेय होता है।** उसके बाद नय लिया।

अब यहाँ कर्ता नय। **आत्मद्रव्य कर्तृनय से...** इस कर्तानय का आधार आत्मा है। भारी बात, भाई! आहाहा! अधिष्ठाता पहले कहा है। वह तो स्वभाव की अपेक्षा लो तो राग का कर्तृत्व नहीं और राग का आत्मा आधार नहीं। राग का स्वामी जड़ और पुद्गल, ऐसा कहने में आता है। परन्तु जब ज्ञान की अपेक्षा से उसका सच्चा ज्ञान जो हुआ साथ में, वह ज्ञान तो कर्तानय से मेरे में है। **रंगरेज की भाँति...** दृष्टान्त दिया है। रंगरेज रंग करते हैं न? ऐसे राग का रंग जीव करता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह वेदन करे, वह ज्ञान जानता है न? कि यह वेदन है, वह ज्ञान जानता है न। मेरे में वेदन है, ऐसा ज्ञान जानता है न। यह तो अलौकिक बात है। देखो!

रागादि परिणाम का कर्ता है (अर्थात् आत्मा कर्तानय से रागादि परिणामों का कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगने के कार्य का कर्ता है।) आहाहा!

अब भोक्तृत्वनय। **आत्मद्रव्य भोक्तृनय से सुख-दुःखादि का भोक्ता है,...** भोक्ता का आत्मा आधार है। यह नय की व्याख्या है। ४७ नय एकसाथ होते हैं हाँ। आगे-पीछे नहीं कि भाई! कर्ता के समय कर्ता और अकर्ता के समय भिन्न। कर्ता की अपेक्षा से

कर्ता और अकर्ता की अपेक्षा से अकर्ता। एक समय में दो नय चलते हैं। समझ में आया? और अभोक्ता भी है और भोक्ता भी है। आहाहा! एक समय में, हाँ! अभोक्ता दूसरे समय में और भोक्ता दूसरे समय में, ऐसा नहीं। तो नय नहीं। वह तो पण्डितजी ने लिखा है न! नय का कथन एक समय दोनों ही होता है। समझ में आया? खानियाचर्चा में बहुत स्पष्ट हुआ। पण्डितजी ने बहुत स्पष्ट किया है। ओहोहो! पण्डितजी ने काम किया है। बड़ा काम किया है उन्होंने। प्रभावना में उनका—पण्डितजी का बड़ा हाथ है। अकेला झझुमा है झूठ सामने। सामने बहुत थे और अकेला इतने प्रश्नों का उत्तर। आहाहा! शोधकर कह दिया। वस्तु तो ऐसी है। योग्यता तो अपनी है। आहाहा! हमारे तो हृदय में वही था। ये कोई नयी नहीं है। वही बात उसमें आयी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत महान काम हो गया खानियाचर्चा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत काम हो गया। वह तो ऐतिहासिक हो गया। और दो ओर की बात आ गयी उसमें। व्यवहारनयवाला पक्षकार क्या कहते हैं, निश्चयवाला क्या कहते हैं दोनों ही आ गया। जिसको अष्टसहस्त्री और प्रमेय कमलमार्तण्ड देखने की बहुत जरूरत न पड़े। हमारे जैसे संस्कृत कौन देखे? ऐसी बात उसमें बहुत आ गयी। दोनों ओर की आ गयी, हों! आहाहा! लोगों को ठीक न पड़े तो बोले। वह मक्खनलालजी कहते थे, थोथा है। अरे! भगवान! बापू! वह तो आपके ओर की दलील थोथा है? भगवान! यह तो मार्ग वीतराग का है, नाथ! उसमें किसी का पक्ष चले नहीं। आग्रह न हो। हठाग्रह, कल नहीं आया था? जैनमत का जीव हठाग्रही नहीं होता। अपने आया था समयसार के अन्त में। कल पूरा हुआ न दोपहर को? उसमें आया था। आहाहा!

भोक्तृनय से सुख-दुःखादि का भोक्ता है... जीव ज्ञानी, गणधर, अरे! तीर्थंकर जब छद्मस्थ थे तब। पहले साधु थे न? भोक्तानय से **हितकारी-अहितकारी अन्न को खानेवाले रोगी की भाँति।** रोगी जैसे हितकर-अहितकर अन्न खाता है, वैसे आत्मा सुख-दुःख का भोक्ता है। आहाहा! और उस भोक्तानय का आधार—अधिष्ठाता आत्मा है। पहले कह गये हैं, वह पहले कह गये हैं। बापू! यह तो मार्ग अनेकान्त है। जैसे-जैसे जहाँ जो कहा, उसको समझना चाहिए। समझे? आहाहा! श्रीमद् में आता है न भाई, नहीं?

जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है तहां समझवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थीजन अेह।

समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने अर्थ से कहा, वह गणधरों ने सूत्र से गूंथा, उसमें से यह शास्त्र आया है। समझ में आया? आहाहा!

लो! **(आत्मा भोक्तानय से सुख-दुःखादि को भोगता है, जैसे हितकारक या अहितकारक अन्न को खानेवाला रोगी सुख या दुःख को भोगता है।)** ऐसा बहुत चला है। ४७ नय चले हैं। समयसार में ४७ शक्तियाँ द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से कही। यह पर्याय का ज्ञान और द्रव्य का दोनों, द्रव्य का और पर्याय का दोनों का ज्ञान कराने को ४७ नय है न। पहला नय है न भाई द्रव्यनय। ४७ नय में पहला नय द्रव्यनय है। द्रव्यनय, पर्यायनय, अस्तित्व, नास्तित्व, अस्ति, नास्ति, अव्यक्त, सविकल्प, अविकल्प, नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, सामान्य, विशेष, नित्य, अनित्य, सर्वगत, शून्य, अशून्य, ज्ञेय, अद्वैत, द्वैत, नियत, अनियत, स्वभाव, अस्वभाव, काल, अकाल, पुरुषार्थ, दैव, ईश्वर, अनिश्वर, गुणी, अगुणी, अकर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, क्रिया, ज्ञान, व्यवहार निश्चय, अशुद्ध और शुद्ध। लो!

४७ शक्ति चली है। जीवतरशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाशत्व, असंकुचितविकासत्व, अकार्यकारणत्व, परिणम्य-परिणामकत्व, त्यागोपादान शून्यत्व, अगुरुलघुत्व, उत्पादव्ययध्रुवत्व, अस्तित्वमात्रमयी परिणाम, अमूर्तत्व, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, निष्क्रियत्व, नियतप्रदेशत्व, स्वधर्म व्यापकत्व, साधारण असाधारण साधारणासाधारण, धर्मत्व, अनंतधर्मत्व, विरुद्धधर्मत्व, तत् अतत्, एक, अनेक, भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव, भाव, क्रिया, कर्म, कर्तृत्व, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वस्वामीसंबंध। यहाँ तो लड़कों को (सामने है)। हमारे धीरुभाई कहते हैं कि दृष्टान्त देते हो भारी। शास्त्र का आधार। धीरुभाई! आहाहा! यह तो वस्तु ऐसी है। छोटे-छोटे बालक को भी यह तो ४७ शक्ति आ गयी है अभी। छोटा बालक है। जिनेश, जिनेश। ४७ शक्ति मुखाग्र कण्ठस्थ। सड़सड़ाहट बोलते हैं एकदम। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो क्या है इतनी बात है। आहाहा! वह तो कायम पर्यटन है न, उसका स्वाध्याय नियमित चलता है। १६ गाथा पहली, ४७ नय, ४७ शक्तियाँ, २० अलिंगग्रहण, अव्यक्त छह बोल। ४९ गाथा में अव्यक्त के छह बोल सूक्ष्म हैं। समझ में आया? वह तो नियमित स्वाध्याय शुरुआत (सुबह) उठते हैं तो शुरुआत स्वाध्याय पहले यह होता है। नियमित। सोते समय भी पहला यह स्वाध्याय करके सोते हैं।

श्रीमद में भी ऐसा आता है भाई! श्रीमद् में। स्वद्रव्य की धारणा करो, धारक हो, परद्रव्य की धारक छोड़ दो। स्वद्रव्य में व्यापक हो, परद्रव्य का व्यापक छोड़ दो। स्वद्रव्य की रक्षा करो, परद्रव्य की रक्षा छोड़ दो। स्वद्रव्य का ग्राहक हो, परद्रव्य का ग्राहक छोड़ दो। स्वद्रव्य की रक्षा करो, परद्रव्य की रक्षा हो सकती नहीं, छोड़ दो। श्रीमद् राजचन्द्र। १६ वर्ष में, हों! १६ वर्ष की उम्र में (कहते हैं)। आहाहा! पूर्व का संस्कार था न! लेकर आये थे बहुत। आहाहा! स्वद्रव्य का धारक हो, परद्रव्य का धारक छोड़ दो। त्वरा से छोड़ दो, ऐसा लिखा है। आहाहा! स्वद्रव्य का व्यापक हो, परद्रव्य का व्यापक छोड़ दो। स्वद्रव्य की रक्षा करो। भगवान आत्मा स्वद्रव्य जो यह कहने में आता है न? आहाहा! उसकी रक्षा करो। परद्रव्य की रमणता छोड़ दो। स्वद्रव्य की रमणता त्वरा से ग्रहण करो। आहाहा! १६ वर्ष की उम्र में, हों! सत्य तो सत्य है। उसमें उम्र का क्या काम है वहाँ?

यहाँ कहते हैं, ऐसे **विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा...** केवलज्ञान शब्द से अकेला ज्ञान, ज्ञानपुंज। केवलज्ञान पर्याय नहीं। **ऐसा जिन भगवान सर्वज्ञ ने कहा है, वह ही स्वद्रव्य है।** उसको यहाँ स्वद्रव्य कहने में आया है। आहाहा! स्वद्रव्य का ग्राहक हो। आहाहा! स्वद्रव्य की रक्षा करो, स्वद्रव्य में व्यापक हो। आहाहा! स्वद्रव्य की रमणता करो। परद्रव्य का ग्राहक छोड़ दो। परद्रव्य की रमणता त्वरा से छोड़ दो। आहाहा! उसका अर्थ क्या आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति परद्रव्य के आश्रय से होती है, भाव (वह) त्वरा से छोड़ दो।

मुमुक्षु : त्वरा से माने?

पूज्य गुरुदेवश्री : शीघ्र त्वरा शब्द से। अपने यहाँ है। आहाहा!

यह स्वद्रव्य भगवान पूर्णानन्द ध्रुव, जिसमें विकल्प का तो प्रवेश नहीं, परन्तु जिसमें एक समय की नाशवान (पर्याय) का अविनाशी में प्रवेश नहीं। ऐसा स्वद्रव्य, उसकी श्रद्धा करो, उसका आश्रय करो, उसका अवलम्बन करो, उसमें रमण करो, बस। यह मोक्षमार्ग है। कहो, प्रकाशचन्दजी! आहाहा!

भावार्थ :- ज्ञानानन्दमय... भगवान तो ज्ञानानन्दमय है। आनन्द में मिलान किया। ज्ञान, समझन, समझन—प्रज्ञा, प्रज्ञा के साथ आनन्दमय आत्मा है। आनन्दवाला नहीं, आनन्दमय। आनन्दवाला में भेद हो जाता है। ज्ञानवाला तो भेद हो गया और ज्ञानमय अभेद हो गया। आनन्दवाला, वह भेद हो गया; आनन्दमय, अभेद हो गया। वाला (कहने से) भेद हो गया। यहाँ तो अपने अन्दर में लेना है। गुणवाला, तो यहाँ गुणमय। आहाहा!

मुमुक्षु : वाला कहने से अभेद नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। सामान्य में भेद नहीं। सामान्य में नहीं। सामान्य विशेषरूप नहीं। सामान्य विशेषवाला नहीं। पण्डितजी! यह तो अन्तर की बात है, भगवान! सामान्य विशेषवाला नहीं। वह लिखा न उसमें। कहा न! १५वीं गाथा में कहा न? सुनो! सामान्य को देखनेवाला जैनशासन को देखता है, ऐसा कहा १५वीं गाथा में। ध्रुव को देखनेवाला जैनशासन को देखता है, ऐसा कहा। अबद्धस्पृष्ट देखनेवाला जैनशासन देखता है, ऐसा कहा। १५वीं गाथा। निश्चय देखनेवाला आत्मा को देखता है जैनशासन को, यह कहा और विकाररहित आत्मा को निर्विकारी अन्तर से देखता है, वह जैनशासन को देखता है। आहाहा! भाई! मार्ग तो ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

आचार्यों ने करुणा करके जगत को सत्य प्रसिद्ध किया। सत्य की प्रसिद्धि की, प्रभु! यह प्रसिद्धि तेरी है, यह तेरी प्रसिद्धि है। आत्मख्याति नाम है न उसका? समयसार की टीका का नाम आत्मख्याति है—आत्मप्रसिद्धि। आहाहा! समझ में आया? वह अमूर्तिक है। भगवान ज्ञानानन्दमय है, अमूर्तिक है। परमेष्ठीदासजी! यह तो अलौकिक बात है, बापू! क्या कहें? लोगों को बाहर की बात में इतना रस हो गया न, यह बात... यहाँ तो कहते हैं शुभराग का रस भी मिथ्यात्व है। आहाहा! हो, राग होता है, परन्तु उसकी एकताबुद्धि नहीं। पृथक् बुद्धि रहकर राग को जानते हैं धर्मात्मा। समझ में

आया ? आत्मानन्दजी ! ऐसी बात है। आहाहा !

भगवान आत्मा स्वद्रव्य किसको कहते हैं, वह भावार्थ लिया। **ज्ञानानन्दमय...** स्वद्रव्य। **अमूर्तिक...** स्वद्रव्य। **ज्ञानमूर्ति स्वद्रव्य...** अमूर्तिक के सामने मूर्ति कहा, परन्तु ज्ञानमूर्ति। **अपनी आत्मा है, वही एक स्वद्रव्य है, अन्य सब चेतन, अचेतन,...** देखो ! आनन्दमय। आहाहा ! **वही एक स्वद्रव्य है...** उसमें भी आया न।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यकरोति किम।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥६२॥ (समयसार कलश)

राग करनेयोग्य है उस अपेक्षा से वहाँ कहा। और नय में तो परिणमन है तो परिणमे, सो कर्ता और भोगे, सो भोक्ता। आहाहा ! ध्येय समझना चाहिए। एक पक्ष में जाने से दूसरा पक्ष छूट जाता है तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं, ऐसे **चेतन, अचेतन मिश्र परद्रव्य है।** वह अपना स्वद्रव्य नहीं।

★ ★ ★

गाथा - १९

आगे कहते हैं कि... १९ गाथा। ओहोहो ! **कि जो ऐसे निजद्रव्य का ध्यान करते हैं, वे निर्वाण को पाते हैं :—** देव-गुरु-शास्त्र का ध्यान करते हैं तो निर्वाण नहीं पाते, ऐसा कहते हैं। वह तो राग है। होता है। जाननेयोग्य होता है, वेदनेयोग्य भी ज्ञान जानता है, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। वह मोक्ष का मार्ग नहीं। होता है। राग हो तो क्या ? वह मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? लोग बहुत आये थे। महोत्सव में लोग बहुत आये थे। सुनने को... शान्ति से सुनते थे। सूक्ष्म बात आयी। २५ हजार से अधिक लोग थे। बहुत लोग। विचारा नहीं था इतना। फिर भी सब अनुकूल हो गया। लोगों की जिज्ञासा, उतसाह और सब सुनने का भी प्रेम। सुनो तो सही क्या कहते हैं ? स्वरूपचन्दजी ! आहाहा ! ऐसा महोत्सव लोग बहुत प्रशंसा करते थे। सब देखते हैं न ! ऐसी बात हो गयी। राग का दु:ख चारों ओर हो, फिर भी भगवान आत्मा की शान्ति तो अन्दर पड़ी है। इस शान्ति को राग भी छूता नहीं निश्चय से तो। पर्याय से जाने तो छूता

है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! वह द्रव्य की व्याख्या किया। अब कहते हैं...

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सचरिता।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहहिं णिव्वाणं ॥१९॥

यह जिनवर के मार्ग में लगा है। आहाहा!

अर्थ :- जो मुनि... मुनि की प्रधानता से कथन है न, निर्वाण का कारण है न। **परद्रव्य से पराङ्मुख होकर...** आहाहा! चाहे तो साधर्मीजन हो, चाहे तो परमेष्ठीपद हो पाँच, उससे भी पराङ्मुख होकर। विपरीत होकर कहा। पराङ्मुख का अर्थ यहाँ विपरीत नहीं। पराङ्मुख (अर्थात्) लक्ष्य छोड़कर। इतना। नहीं तो पराङ्मुख (का अर्थ) तो विपरीत भी होता है। वह नहीं। आहाहा! देखो न, सन्तों की वाणी! आहाहा! **जो मुनि परद्रव्य से पराङ्मुख होकर...** ओहोहो! थोड़े शब्द में। परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार परदेश। ये कहते हैं न हमारा देश है। हमारे देश में हम मर जायेंगे। अरे! प्रभु! तेरा देश कैसा? तेरा देश तो असंख्यप्रदेशी यहाँ है। जिसमें अनन्त गुण हैं, वह असंख्यप्रदेशी देश तो तेरा यहाँ है। यह देश कैसा? आहाहा! वह सब परदेश है, यह देश है। आहाहा!

श्रीमद् में आता है एक टुकड़ा। 'हम परदेशी पंखी साधु, इस रे देशना नाहीं रे।' वहाँ दूसरा अर्थ है। राग से भिन्न हमारा देश है। परदेश भिन्न है। 'हम परदेशी पंखी साधु, इस रे राग का देश का नाहीं रे।' हम तो स्वरूप आनन्दकन्द के देशवाले हैं, प्रभु! हमारा सौराष्ट्र, हमारा हिन्दी, हमारा यह, हमारा यू.पी. और फलाना, वह हमारा देश नहीं। आहाहा! कहो, रतनलालजी! ये लाडनूं-बाडनूं देश नहीं अपना, ऐसा कहते हैं। कलकत्ता (नहीं)। आहाहा! असंख्यप्रदेशी वस्तु वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने जाना नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग के अतिरिक्त चैतन्य असंख्य प्रदेश है, ऐसा किसी ने देखा नहीं। यह भगवान असंख्य प्रदेश अपना स्वदेश, उसमें रहने के कारण **परद्रव्य से पराङ्मुख होकर स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य...** ऊपर कहा वह। **निज आत्मद्रव्य का ध्यान करते हैं...** निज आत्मद्रव्य का ध्यान करते हैं, परद्रव्य का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वे प्रगट सुचरित्रा... ... है न अन्दर में? तो वह चारित्र हुआ न? **निर्दोष चारित्रयुक्त होते हुए...** वह चारित्र क्या है? स्वरूप में स्थिरता, ध्यान की स्थिरता जम जाना। आनन्द में जम जाना, लीन हो जाना, वह चारित्र है। चारित्र कोई देह की क्रिया और कोई पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत को प्रसिद्ध करते हैं। ऐसा निज आत्मद्रव्य जो ऊपर कहा, उसका ध्यान करते हैं। **वे प्रगट सुचरित्रा अर्थात् निर्दोष चारित्रयुक्त होते हुए जिनवर तीर्थंकरों के मार्ग का अनुलग्न (अनुसन्धान, अनुसरण) करते हुए...** आहाहा! जिनवर का मार्ग, स्वद्रव्य की दृष्टि अनुभव करके स्वरूप के ध्यान में लीन रहता है, वह जिनवर के मार्ग में लगा है। राग में है, वह जिनवर का मार्ग नहीं। आहाहा!

जिनवर तीर्थंकरों के मार्ग का... अनुसरण करनेवाला है। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव में एकाग्र होते हैं, उसका ध्यान करते हैं, उसमें लीन रहते हैं, चारित्रसहित। वह चारित्र है लीन होना वह। वह जिनवर के मार्ग में है। (उसने) जिनवर के मार्ग का अनुसरण किया है, वह जिनवर के मार्ग का अनुकरण किया है, जिनवर मार्ग का अनुसन्धान किया है। आहाहा! वह जिनवर मार्ग में अनुलग्न है। वीतरागमार्ग का अनुसरण करके उसमें लग्न अर्थात् लीनता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो परम परमार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम परमार्थ मार्ग यही है। एक ही है, दूसरा मार्ग है नहीं। आहाहा!

जिनवर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ... आहाहा! उसने कहा मार्ग। स्वद्रव्य ज्ञानानन्दस्वरूप, अमूर्त, ज्ञानमूर्तस्वरूप उसमें लीन रहते हैं। दृष्टि तो पहले हुई है। स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन तो हुआ है, उसमें लीन रहते हैं, उसमें चारित्र में रमणता करते हैं आनन्द में। वह जिनेश्वर के मार्ग में अनुसन्धान और अनुकरण करनेवाला है। आहाहा! बापू! वीतरागमार्ग वीतरागभाव से शुरु होता है। वह तो कहा था एकबार, नहीं? अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि चारों अनुयोग का शास्त्र तात्पर्य तो वीतरागता है। सूत्रतात्पर्य तो प्रत्येक

गाथा में कहने में आया। परन्तु चारों अनुयोग का शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। उसका अर्थ ? वीतराग ने ऐसा कहा कि हमारे ओर की अपेक्षा छोड़ दे, तेरे स्वरूप की अपेक्षा कर तो वीतरागता होगी। वीतरागता पूरे शास्त्र का तात्पर्य है। आहाहा! समझ में आया ?

अनुलग्न करते हुए निर्वाण को प्राप्त करते हैं। लो! जो कोई अपना स्वद्रव्य ज्ञानानन्दस्वरूप, अमूर्त, अनुपम, शुद्ध और विकाररहित—ऐसी चीज़ में अनुलग्न रहते हैं, स्वद्रव्य के आश्रय में लीन रहते हैं, वह मोक्ष को पाते हैं। बाहर निकल के विकल्प आदि आता है तो बन्ध का कारण हो जाता है। आहाहा! पंच महाव्रत का विकल्प, वह बन्ध का कारण है। भारी बात, भाई!

मुमुक्षु : .... मोक्ष का कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मोक्ष का कारण। स्वरूप में व्रत में वींटाई जाना। वींटाई समझे ? (स्वरूप में लिपटना) वह व्रत है। महाव्रत आदि तो विकल्प है, राग है, बन्ध का कारण है, आस्रव है। वह चारित्र नहीं। आहाहा! पहली श्रद्धा में लक्ष्य तो करे यथार्थ कि चीज़ तो यह है, बाकी सब थोथा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम है, आत्मा का ज्ञानपंथी यहाँ लेना है। श्रुतज्ञान का पंथी वीतराग का भाव अनुलग्न करता है। आगम तो भावश्रुत है न! द्रव्यश्रुत तो जड़ है, पर है। परमागम की प्रतिष्ठा तो आत्मा में होती है या बाहर होती है ? आहाहा! राग से अपना आत्मा भिन्न चैतन्यमूर्ति भगवान ज्ञानमूर्ति में लीन रहना, परमागम का ज्ञान यथार्थ, परमागम अर्थात् आत्मा का ज्ञान करके लीन होना, वह परमागम की प्रतिष्ठा है। समझ में आया ? यह तो व्यवहार परमागम की प्रतिष्ठा है। आहाहा!

भावार्थ :- परद्रव्य का त्याग कर... त्याग का अर्थ लक्ष्य छोड़कर **जो अपने स्वरूप का ध्यान करते हैं...** मार्ग तो ऐसा भगवान का है, भाई! आहाहा! दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा के पास। आठ दिन रहे थे। साक्षात् परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में, वहाँ गये थे। दो हजार वर्ष हुए। आठ दिन

रहे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। भगवान का यह सन्देश है। आहाहा! जिसको कल्याण करना हो तो प्रभु का यह मार्ग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही मार्ग, एक ही सत् है।

स्वरूप का ध्यान करते हैं, वे निश्चय चारित्ररूप होकर... देखो! अन्दर स्वरूप में लीन होकर, जिनमार्ग में लगते हैं। वह वीतरागभाव में लगते हैं। **वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २०

अब **आगे कहते हैं कि जिनमार्ग में लगा हुआ योगी शुद्धात्मा का ध्यान कर मोक्ष को प्राप्त करता है तो क्या उससे स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकते हैं?** स्वर्ग तो बीच में शुभभाव आता है तो उसमें आ जायेगा। पंचम काल के मुनि हैं न, तो बात करते हैं थोड़ी। मोक्षमार्ग में लगा है। पंचम काल के साधु हैं तो मोक्ष तो होता नहीं। तो कहते हैं कि ऐसा मोक्षमार्ग में लगा हुआ, उस जीव को ऐसा शुभभाव बीच में आता है, उससे स्वर्ग मिल जाता है। स्वर्ग मिलना क्या कोई चीज दूसरी है? ज्ञानी को जो स्वर्ग मिले वह स्वर्ग कहते हैं। अज्ञानी को तो अनन्त बार स्वर्ग मिला। वह कोई चीज़ नहीं। परन्तु आत्मध्यान करते-करते बाकी रह गया भाव, उससे स्वर्ग मिले, वह निश्चय और व्यवहार दो है। समझ में आया? आहाहा!

जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥२०॥

उसमें आया था न वह? '**ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव**' आत्मा का ध्यान करते हैं उसमें '**कामदं**' विकल्प बाकी रहते हैं तो उसको स्वर्ग भी मिलता है, '**कामदं मोक्षदं**' और मोक्ष भी मिलता है। राग से स्वर्ग मिलता है और अपनी पूर्ण निर्मल पर्याय हो तो मोक्ष मिलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती को ही ध्यान होता है। रागी को ध्यान कैसा? वस्तु दृष्टि में आयी नहीं, क्या चीज़ है—ऐसी दृष्टि में आया नहीं तो ध्यान करना किसमें? आहाहा! आर्तध्यान है। रागभाव तो आर्तध्यान है। आहाहा!

यह बात कही। पंचमकाल के मुनि हैं न? तो अपने स्वरूप में लग्न रहते हैं दृष्टि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित। तो कहते हैं कि थोड़ा भाग उसमें राग रह जायेगा। पूर्ण मोक्ष की पर्याय हो, ऐसा मोक्षमार्ग पूर्ण न हो तो उसको मोक्ष बाद में मिलेगा और बीच में स्वर्ग भी मिलेगा। वैमानिक का भव होगा उसका। वैमानिक, समकिती तो वैमानिक देव होता है, वह बात जरा करते हैं अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोभ नहीं। कहते है कि जिसको... एक दृष्टान्त देंगे। एक योजन जिसकी एक दिन में चलने की शक्ति है, क्या वह अधकोश न चले? ऐसा बताते हैं। २१ गाथा में चलेगा। २१वीं है। जिसको मोक्षमार्ग वीतरागी पर्याय प्रगट हुई और उसमें पूर्णता न हो तो मोक्ष तो मिलेगा बाद में, परन्तु उसको स्वर्ग क्यों न मिले? वह तो बीच में धर्मशाला है बीच में। आहाहा! पंचम काल के मुनि हैं न तो जानते हैं कि विकल्प होगा स्वर्ग में (जाना होगा)। तो स्वर्ग तो सहज चीज़ है उनको। ध्यानी को स्वर्ग मिले वह सहज है, कहते हैं। अज्ञानी को स्वर्ग मिले, वह तो अनन्त बार मिला है। आराधक होकर स्वर्ग में जाये, उसकी बलिहारी है। यहाँ ऐसा कहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण १, शनिवार, दिनांक ०९-०३-१९७४
गाथा - २० से २३, प्रवचन-१२२

मोहक्षपाहुड़ की २०वीं गाथा।

जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं॥२०॥

अर्थ :- योगी ध्यानी मुनि है... मुनि की प्रधानता से कथन है। मोक्ष का अधिकार है न! इसलिए योगी शुद्ध द्रव्यस्वभाव में जिसका जुड़ान है, ऐसा योगी-मुनि-ध्यानी। ध्यान में ध्रुव को ध्येय बनाकर। **'सुद्धमप्पाणं'** शब्द है न? शुद्ध आत्मा जो ध्रुव त्रिकाल, उसको ध्यान की पर्याय में ध्येय बनाकर, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर जो ध्याता है। कैसे **जिनवर भगवान के मत से...** जिनवर भगवान ने जो कहा वह आत्मा, उस अभिप्राय से जो ध्यान करता है। अज्ञानी ने आत्मा कहा, वह आत्मा नहीं। सर्वज्ञ भगवान के मत में जो आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्तगुण का धाम और एक स्वरूप से विराजमान—ऐसा जो आत्मा, उसे जो ध्यान में ध्याता है। शुद्ध आत्मा वह तो द्रव्य हुआ त्रिकाली शुद्ध। वह ध्यान पर्याय हुई। उस पर्याय में ध्याता है। आहाहा! मोक्ष अधिकार है न!

उससे निर्वाण को प्राप्त होता है... मोक्ष की प्राप्ति तो आत्मा अन्तर आत्मा के ध्यान से प्राप्ति होती है। कोई विकल्प और व्यवहार और योग की क्रिया, उससे कोई मोक्ष होता नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी शुद्ध आत्मा के ध्यान से प्राप्त होता है। समझ में आया? ऐसे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी अपने शुद्धस्वरूप के ध्यान से प्राप्त होता है। वह द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा है—४ और ७। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** आहाहा! **'दुविहं पि मोक्खहेउं'** निश्चय और (व्यवहार) मोक्षमार्ग दो। **'झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** निश्चय से अन्तर स्वरूप के ध्यान से निश्चय मोक्षमार्ग प्राप्त होता है और बाकी राग रहता है जो व्यवहारमोक्षमार्ग आरोपित, वह भी ध्यान में से प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहार से प्राप्त नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार राग इतना। उससे मोक्ष नहीं होता। परन्तु व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में—कथन करने में आता है। दो प्रकार का मोक्षमार्ग नहीं। मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार का है, निरूपण दो प्रकार का है। सातवें अध्याय में पण्डित टोडरमलजी ने स्पष्टीकरण किया है। मोक्षमार्ग तो स्वद्रव्य आश्रय से (होता है)। श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अर्थात् चारित्र, वह स्वद्रव्य के आश्रय प्रगट हो वह मोक्षमार्ग, वह यथार्थ। परन्तु साथ में राग बाकी रहा, उसे उपचार करके, निमित्त देखकर अथवा सहचर—साथ में देखकर आरोप किया कि यह व्यवहारमोक्षमार्ग है। आहाहा! है नहीं, उसको कहना, उसका नाम व्यवहार। और है यथार्थ में, उसको जानना, उसका नाम निश्चय। परमेष्ठीदासजी! वस्तु ऐसी है, भगवान। ऐसी चीज़ है। मोक्षमार्ग वीतरागमार्ग में ही होता है। वह तो कहा, '**जिणवरमएण**'। कोई कहे कि दूसरे मार्ग में भी मोक्षमार्ग है, वेदान्त, वैशेषिक, सांख्य आदि अनेक प्रकार के जगत में मत हैं, उससे भी है। आत्मा की बात बहुत किया है वेदान्त ने। कूटस्थ और ध्रुव और व्यापक। वस्तु ऐसी है नहीं।

जिनवर सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने '**जिणवरमएण**'—जिनवर मत से शुद्ध आत्मा। जिनवर ने कहा, ऐसा त्रिकाली असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का धाम, 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम।' यह श्रीमद् का वाक्य है। आत्मसिद्धि। शुद्ध-पवित्र, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' असंख्य प्रदेशी। घन में असंख्य प्रदेश हैं। क्षेत्र लिया, भाव लिया। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति।' स्वयं ज्योति। उसका कोई कर्ता है या कोई दूसरे के सहारे से स्वयं ज्योति रही है, ऐसा नहीं। स्वयं ज्योति। ज्ञानसूर्य, ज्ञान का स्वयं ज्योति सूर्य। सुखधाम—आनन्द का धाम है वह। अतीन्द्रिय आनन्द का वह क्षेत्र है। आहाहा!

यह '**जिणवरमएण**' ऐसे शुद्धात्मा को ध्यावे। आहाहा! उस चीज़ को दृष्टि में लेकर ध्यान करे। आहाहा! जहाँ विकल्प का अभाव है। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी पर्याय है। निर्विकल्प स्वसंवेदन—स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष, आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन और ज्ञान से प्रत्यक्ष होना... आहाहा! ऐसा ज्ञान भी स्वध्यान से

प्राप्त होता है। और चारित्र। यह चारित्र अर्थात् स्वरूप के आश्रय से उग्रपने लीन होने से चारित्र प्राप्त होता है। चारित्र कोई पंच महाव्रत की क्रिया और देह का नग्नपना, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि जिनवर भगवान के मत से। ऐसा तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वीतराग ने जो आत्मा शुद्ध पूर्ण अभेद एक स्वरूप, ऐसा आत्मा को ध्यान में ध्याता है। उस ओर की दशा, स्वभाव ओर का झुकाव करके ध्याता है। आहाहा!

उससे निर्वाण को प्राप्त होता है... उसको तो मोक्ष ही होता है। उस पद्धति से ही मोक्ष होता है, इस रीति से ही माक्ष होता है। मोक्ष होने में कोई दूसरी चीज़ का सहारा है नहीं। अब यहाँ तो दूसरी बात कहनी है थोड़ी। पंचम काल के मुनि हैं न? मोक्ष पावे तो इस प्रकार।

तो उससे क्या स्वर्गलोक नहीं प्राप्त कर सकते हैं? बस इतना विशेष लेना है। जहाँ अन्तर में ध्यान से मोक्ष की प्राप्ति करते हैं, उसको ध्यान पूर्ण न हो तो अन्दर राग भाग रह जाता है तो उसको क्या स्वर्ग न मिले? वह धर्मशाला स्वर्ग तो बीच में आता ही है उसको। समझ में आया? मार्ग चलते-चलते पच्चीस कोस चलना हो और बैल अच्छा हो तो एक दिन में १५-१६ कोस चले। फिर रात आती है तो कहीं रुकना पड़े या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, अन्दर विकल्प आता है। वह कहा था न कल। '**कामदं मोक्षदं चैव**' '**ओंकारं**' वह बीच में आता है। आता है न? '**कामदं**' अर्थात् ... शुभभाव रहता है न। ... फल है। परन्तु अन्दर जहाँ आत्मा का स्वभाव का साधन पूर्ण न हो, वहाँ ऐसा विकल्प होता है। यहाँ तो कहने का आशय दूसरा है कि आत्मा के ज्ञान बिना जो मन्द कषाय से स्वर्ग प्राप्त करता है, उसकी कोई विशेषता नहीं—ऐसा कहते हैं। वह कड़ी आयेगी। '**सग्गं तवेण सव्वो वि पावए**' वह २३वीं गाथा है। स्वर्ग तो तप बाह्य कषाय मन्द और बाह्य क्रियाकाण्ड से पंच महाव्रत के परिणाम से '**सव्वो वि पावए**' उसमें क्या विशेषता है? आहाहा! किन्तु '**झाणजोएण जो पावउ सो पावइ परलोए**

सासयं सोक्खं॥' यह सिद्ध करना है। परन्तु जिसने भगवान आत्मा पूर्णानन्द का ध्यान किया और उस ध्यान में जो रागादि बाकी रह गया, वह स्वर्ग पाते हैं, उसकी बलिहारी है। समझ में आया? ऐसे तो नौवीं ग्रैवेयक (अनन्त बार गया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' वह कुछ नहीं है, कहते हैं। वह तो '**तवेण सव्वो**' वह तो अभव्य भी पाता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' उसका क्या अर्थ हुआ? अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत का विकल्प, वह दुःखरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : दुःख पाम्यो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख पाम्यो?

मुमुक्षु : शुद्ध महाव्रत से मोक्ष नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत राग है। निश्चय महाव्रत तो स्वरूप की दृष्टिपूर्वक अन्दर में स्थिर हो जाना, वह महाव्रत है। यह पंच महाव्रत जो अहिंसा आदि कहते हैं, वह तो आस्रव है। वह तत्त्वार्थसूत्र के छठ्ठे अध्याय में है। पण्डितजी! छठवें अध्याय में। आस्रव अधिकार है। वह विकल्प जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालना—ऐसा जो अपरिग्रह आदि, वह विकल्प है, वह तो राग है। आस्रव है, बन्ध का कारण है। और मोक्ष अधिकार में तो उसको विषकुम्भ कहा है।

मुमुक्षु : मुनि के व्यवहार को।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि के राग को जहर का घड़ा (कहा)। यह जहर का कुम्भ। कुम्भ समझे न? घड़ा। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग, प्रभु! आहाहा! क्योंकि जिनस्वरूप आत्मा, वह वीतरागस्वरूप है। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे।' जैसे स्फटिक निर्मल है। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीवस्वभाव' जीव का स्वभाव स्फटिक शुद्ध ध्रुव। शुद्ध आया न शुद्ध? निर्मल शुद्ध भगवान आत्मा। 'श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव।' राग का अभाव और स्वभाव की अन्दर की शुद्धि की प्राप्ति, ऐसे अकषायभाव को भगवान ने धर्म कहा है। आहाहा! बापू! मार्ग सूक्ष्म है। ऐसा तो अनन्त बार, कहा न, मुनिव्रत धारण किया। तो सुख तो न मिला।

आत्मज्ञान बिन सुख नहीं। वह दोपहर को चलता है न? सार क्या है? ज्ञान और सुख प्राप्त होना, वह सार। समयसार तो है त्रिकाल। त्रिकाल वस्तु समयसार तो है, परन्तु उसका आश्रय करके पर्याय में ज्ञान, सुख की प्राप्ति करना, वह सार। अन्दर में है, वह प्रगट हो तो समयसार यथार्थ अनुभव में आया, (ऐसा) कहने में आता है। समझ में आया? समयसार तो द्रव्य है। परन्तु उस समयसार की सत्ता का स्वीकार अनुभव में आया, तब सार अर्थात् ज्ञान और आनन्द प्रगट हुआ, वह सार कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! सन्तों की वाणी वह बहुत (गूढ़ और गम्भीर)।

कहते हैं, अरे! **उससे क्या स्वर्गलोक नहीं प्राप्त कर सकते हैं? अवश्य ही प्राप्त कर सकते हैं।** यहाँ तो मोक्ष अधिकार में यह क्यों लिया? कि अपना ध्यान करके वास्तविक आत्मा जिनदेव ने कहा, शुद्ध वस्तु परम पवित्र अनन्त गुण का धाम असंख्य प्रदेशी ऐसी चीज़ आत्मा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। असंख्य प्रदेशी ज्ञानधाम, यह चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने कही नहीं है और किसी ने जानी नहीं है। समझ में आया? वेदान्त आदि सर्वव्यापक-सर्वव्यापक करे। वह तो खण्ड-खण्ड हो गया। आहाहा! वह तो अलिंगग्रहण में कहा है अमेहनाकार। पाखण्डियों को प्रसिद्ध साधनरूप। सर्वव्यापक आत्मा, वह पाखण्ड ने मान लिया है। अलिंगग्रहण के हैं न २० बोल, उसमें छठवाँ बोल है। अलिंगग्रहण १७२ गाथा है प्रवचनसार। उसमें २० बोल हैं अलिंगग्रहण। भगवान आत्मा कैसा है? वह इन्द्रिय से जानने में नहीं आता। आत्मा इन्द्रिय से जानता नहीं। क्या कहा, समझ में आया? इन्द्रिय से जानने में आता नहीं और आत्मा इन्द्रिय से जानता नहीं। आहाहा! उसका नाम आत्मा। और इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होता नहीं, इसका नाम आत्मा।

मुमुक्षु : इन्द्रिय से प्रत्यक्ष भी नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। वह तीसरा बोल है। अलिंगग्रहण के २० बोल हैं न?

मुमुक्षु : छप गये हैं, वह तो गुजराती।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब छप गये हैं। बहुत बात बाहर आ गयी है। इन्द्रिय से

जानने में आता नहीं प्रभु। अलिंगग्रहण। इन्द्रिय-लिंग से जानने में नहीं आता, वह अलिंगग्रहण। आत्मा इन्द्रिय से जानता नहीं। वह तो जानने में आता नहीं। अब इन्द्रिय से जानता नहीं। इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। आहाहा! और इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होता नहीं। वह तो ज्ञान से प्रत्यक्ष होता है। समझ में आया? आहाहा! और ऐसा आत्मा—शुद्ध आत्मा जो भगवान ने कहा है, ऐसा आत्मा है कि जो दूसरे द्वारा अनुमान से भी जानने में आता नहीं, वह आत्मा। आहाहा! दूसरे द्वारा अनुमान से जानने में नहीं आता, वह आत्मा। और आत्मा अकेले अपने अनुमान से जानता है, वह आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : दूसरे द्वारा भी नहीं, स्वयं....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं भी अनुमान से जाने, वह नहीं। यह पाँच बोल हुए। पाँच बोल हुए। अब छठवाँ बाल अपने यहाँ कहना है। अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा प्रत्यक्ष आत्मा ज्ञाता है। यह छठवाँ बोल है। समझ में आया? अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। प्रत्यक्ष।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर से नहीं, परोक्ष से नहीं, पर राग से नहीं। यह लिंग, उससे नहीं। परोक्ष से नहीं।

मुमुक्षु : निमित्त से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : लिंग का अर्थ इन्द्रिय।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिंग के बहुत अर्थ हैं, लिंग के बहुत प्रकार हैं। आहाहा! २० बोल हैं। सब व्याख्यान आ गया है स्पष्ट। सब बाहर में प्रकाशित हो गया है। पुस्तक भी बाहर प्रकाशित हो गयी है। अपने स्वभाव से जानने में आता है और प्रत्यक्ष ज्ञाता है। वह विकल्प और परोक्ष से जानने में आये ऐसी वह चीज़ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ये छह बोल हुए। बीस बोल हैं।

सातवाँ बोल ऐसा है (कि) आत्मा का उपयोग परज्ञेय के अवलम्बनरहित है। परज्ञेय के अवलम्बन रहित है। आहाहा! परमेष्ठीदासजी! भगवान! यह जानना पड़ेगा,

हों! वह बाहर में ... में कुछ नहीं मिले, हों! यह मनुष्यपना मिला और जन्म-मरण का अन्त (आवे), ऐसी दृष्टि न हो (तो) कुछ किया नहीं उसने। आहाहा!

कहते हैं, वह तो आत्मा की बात की छह बोल में। अब आत्मा का उपयोग। जानना-देखना उपयोग परज्ञेय के आलम्बन रहित है। ऐई! आहाहा! और उपयोग बाहर से आता नहीं। यह आठवाँ बोल है। अन्तर में आनन्दकन्द प्रभु में लगाता है, तो उपयोग आता है, बाहर से उपयोग आता नहीं। उपयोग का हरण होता नहीं। वह नववाँ बोल है। अन्दर आत्मा पर दृष्टि पड़ी और जो उपयोग लगाया उसका हरण कैसे हो? द्रव्य का अभाव हो तो उपयोग का अभाव हो। आहाहा! सूक्ष्म बोल है। उपयोग का हरण होता नहीं। उपयोग जो ज्ञाता-दृष्टा हुआ अन्तर में उसका हरण होता ही नहीं, अभाव होता ही नहीं। उसको अभाव हो तो द्रव्य का अभाव हो जाये। ... नहीं। हरण होता ही नहीं। ... है ही नहीं। उसका आत्म उपयोग कहते हैं, भगवान! बहुत सूक्ष्म बात है। यह तो अभी चलती नहीं। यह तो बात, शुद्ध आत्मा किसको कहते हैं, उसके ऊपर से चली। जब उसके ऊपर व्याख्यान चलता है उसका तो बहुत स्पष्ट चले। उसका सामने अधिकार हो। आचार्य का और बहुत विनय से उसका वाँचन चले तो उसकी स्पष्टता बहुत होती है। समझ में आया?

उपयोग का हरण नहीं। ओहो! शुद्ध ध्रुव आत्मा की जहाँ दृष्टि, उपयोग हुआ, वह उपयोग कहाँ जाये? आहाहा! उसको उपयोग कहते हैं। और उपयोग में सूरज में जैसे उपराग नहीं, ऐसे भगवान आत्मा में शुभराग नहीं। शुद्ध उपयोगी को आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और उपयोग में कर्मग्रहण नहीं। उपयोग में कर्मग्रहण कैसा? जानने-देखने का उपयोग, उसमें कर्मग्रहण है ही नहीं। कितना हुआ? ११-११। १२वाँ आत्मा इन्द्रिय का विषय का भोक्ता नहीं। अतीन्द्रिय लेना है न? शुद्ध आत्मा लेना है न? समझ में आया? इन्द्रिय का विषय का भोक्ता भगवान आत्मा नहीं उसको आत्मा कहते हैं। आहाहा! मन और इन्द्रिय से जिसका जीवन नहीं। वह तेरहवाँ बोल। मन और इन्द्रिय से जिसका... ये कहते हैं न? महावीर का सन्देश जीओ और जीने दो। यह बात भगवान की नहीं है। हमारे रामजीभाई कहते हैं कि वह तो अंग्रेजी का शब्द है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आत्मा उसको कहते हैं कि मन और इन्द्रिय से जिसका जीवन नहीं। अलिंगग्रहण लेना है न? आहाहा! समझ में आया? और मेहनाकार नहीं। मेहनाकार यह इन्द्रिय है न मेहन—इन्द्रिय। मेहनाकार ऐसा उसमें है नहीं।

मुमुक्षु : .... लिंग नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। लिंग ही नहीं। लिंग यह जो साधनरूप जो व्यवहार का विषय है। लिंगरहित, मेहनाकाररहित है। लिंगातीत वह मेहनाकाररहित है। आहाहा! और अमेहनाकार। पाखण्डियों ने प्रसिद्ध साधनरूप आकार, ऐसा लोकव्यापक ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : पाखण्डियों के प्रसिद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वेदान्त। व्यापक कहा न। अमेहनाकार, ऐसा बोल है १५वाँ। अमेहनाकार। मेहना आकाररहित अर्थात् व्यापक सर्व। पाखण्डियों में प्रसिद्ध साधनरूप लोकव्यापक आकारवाला है नहीं। आहाहा! समझ में आया? कितना हुआ? १५। १५ हो गया न? १६-१७ है। भूल गये। प्रवचनसार है। १६ बोल। १६ बोल है। द्रव्य और भाव वेदरहित है। वह १६वाँ बोल। द्रव्यवेद-शरीर का वेद। भाववेद वासना। द्रव्य और भाव वेदरहित है, वह आत्मा। समझ में आया? और यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है, वह आत्मा है। यति अर्थात् विकल्प और नग्नपने की क्रिया, वह बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है, वह आत्मा। १७ हो गया। अब तीनों सूक्ष्म है। आत्मा ज्ञान गुणवाला—विशेषवाला नहीं। भेदवाला नहीं। गुण और गुणी के भेदवाला, वह आत्मा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान! आत्मा गुण को स्पर्शता नहीं भेद को। उसको यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : जितने प्रकार के विवाद हैं सबको....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब निकाल दिए, सब निकाल दिए। जिनवर मत के मत से शुद्ध आत्मा। यह शुद्ध आत्मा।

मुमुक्षु : दर्शन-ज्ञानमय।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्तर है, वह पीछे। अभी उसमें नहीं है। बहुत सूक्ष्म है,

भैया! आत्मा ज्ञानगुण से—विशेष से स्पर्शनेवाला नहीं। आहाहा! यह तो अलौकिक बात है भगवान! यह १८वाँ बोल है, १८वाँ बोल है। गुण को—भेद को स्पर्शता नहीं, वह आत्मा। आहाहा! यह तो शुद्ध आत्मा उसको कहते हैं। और पर्याय। गुण-विशेष को स्पर्शता नहीं, वह आत्मा। पर्याय विशेष को... शब्द ऐसा पड़ा है। अर्थावबोधरूप गुणविशेष को स्पर्शता नहीं, आलिंगन करते नहीं, वह आत्मा। ऐसा शब्द है। ऐसी संस्कृत टीका है। अर्थावबोधरूप गुणविशेष, उसको आलिंगन नहीं करता है, वह आत्मा।

मुमुक्षु : अर्थावबोधरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थावबोधरूप अर्थात् गुण। अर्थावबोध में ज्ञान भले लिया परन्तु सब गुण लिया है। अर्थावबोधरूप गुणविशेष आलिंगन नहीं करता, वह आत्मा। और अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष को नहीं आलिंगन करता, वह आत्मा।

मुमुक्षु : अव्यक्त भी हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अव्यक्त नहीं। है तो है। वक्तव्य भी कथन में आता है व्यवहार से। वक्तव्य और अवक्तव्य दोनों है, परन्तु वस्तु में कहने की शक्ति नहीं। आहाहा! यहाँ तो यह लेते हैं। जिनवरमत में कहा हुआ शुद्ध आत्मा, यह आत्मा। अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष से आलिंगनरहित वह आत्मा।

अब २०वाँ बोल। आत्मा द्रव्य को आलिंगन नहीं करता—ऐसी शुद्ध पर्याय, वह आत्मा। अब अन्तिम बात है। अन्तिम बात कठिन है थोड़ी। कहते हैं। आत्मा त्रिकाली द्रव्य को स्पर्श नहीं करते हैं, ऐसा शुद्ध पर्याय वह आत्मा। वह सब स्पष्टीकरण हुआ। क्यों ? कि अनुभव में आता है, वह मेरा आत्मा। बस। ध्रुव तो अनुभव में आता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! प्रत्यभिज्ञान का कारण। वहाँ शब्द बदल गया है। पहले बोल दो ऐसे थे, अर्थावबोधरूप गुणविशेष का आलिंगनरहित द्रव्य। अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष आलिंगनरहित द्रव्य और इसमें लिया है कि प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो द्रव्य। है... है... है... ऐसे द्रव्य को आलिंगन नहीं करनेवाली, ऐसी शुद्ध पर्याय वह आत्मा है। आहाहा! अनुभव में आया वह आत्मा। ... शुद्ध पर्याय, वह आत्मा, वहाँ यह कहा। है

तो दृष्टि द्रव्य के ऊपर। परन्तु द्रव्य पर दृष्टि होने से पर्याय में जो शुद्धता आयी, उसका वेदन है, वही आत्मा। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, देखो! **जिनवर भगवान के मत से...** समझ में आया? आहाहा! ऐसे **शुद्ध आत्मा को...** ऐसा शुद्ध आत्मा कहा ऐसा। **ध्यान में ध्याता है...** आहाहा! **उससे निर्वाण को प्राप्त करता है तो उससे क्या स्वर्गलोक नहीं प्राप्त कर सकते हैं? अवश्य ही प्राप्त करते हैं।** स्वर्ग तो बीच में आ जाता है।

भावार्थ :- कोई जानता होगा कि जो जिनमार्ग में लगकर आत्मा का ध्यान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है और स्वर्ग तो इससे होता नहीं है,... ऐसा कोई कहे। तो **उसको कहा है कि जिनमार्ग में प्रवर्तनेवाला शुद्ध आत्मा का ध्यान कर मोक्ष प्राप्त करता ही है तो उससे स्वर्गलोक क्या कठिन है?** यह तो बीच में दासरूप से आ जाता है शुभभाव। आहाहा! मुनि है न पंचम काल के। मोक्ष तो है नहीं। स्वर्ग में जाना है, यह तो निश्चित है। तो कहते हैं कि हमारे ध्यान में से, हमारे स्वरूप के ध्यान में मोक्ष तो होगा ही हमें। परन्तु ध्यान पूरा नहीं हुआ तो बीच में वैमानिक स्वर्ग के देव की स्थिति (आना) क्या कठिन बात है हमें? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध से स्वर्ग नहीं, शुभ से। शुद्ध में रहा हुआ शुभभाव। शुद्ध में रहा हुआ शुभभाव। अभी पूर्ण शुद्ध नहीं है तो शुभभाव रहा, तो स्वर्ग मिलेगा ही मिलेगा। उसमें क्या है? वह बात शुभभाव की बात है। शुद्ध का फल नहीं। आहाहा!

आगे इस अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं—यह तो सन्तों की वाणी, बापू! एक-एक गाथा अलौकिक भरी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, भव्य-अभव्य दोनों।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, भव्य अनन्त बार गया नौवें ग्रेवेयक। अनन्त पुद्गलपरावर्तन किया। भावलिंग विशेष नहीं। ३२ बार भावलिंग आता है। द्रव्यलिंग

की बात है नहीं। गोम्मटसार में जो ३२ की बात कही है, वह भावलिंग की बात है। वह तो चर्चा बहुत हो गयी थी। पहले यहाँ आये थे न शान्तिसागर। यह बात हुई। शान्तिसागर जब आये थे न। (संवत्) १९९७ के वर्ष। क्या कहते हैं? ९७ के वर्ष में। ९७ के वर्ष में आये थे शान्तिसागर। भावलिंग की बात है।

मुमुक्षु : वह ३२ बार में मोक्ष चला जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चला जायेगा। वह प्रश्न यहाँ हुआ था ९७ में। कितना वर्ष हुआ? ३३। ३३ वर्ष हुए शान्तिसागर यहाँ आये थे। कषाय मन्द था। परन्तु उनको बराबर खबर नहीं न। तो ऐसा व्याख्यान में कह दिया कि ३२ बार द्रव्यलिंग हो तो मोक्ष होगा। ऐसा बोला। इसलिए फिर धीरे से (कहा), महाराज! ऐसा है। भावलिंग है। महाराज! ऐसा नहीं। गोम्मटसार में हमको खबर है। सब देखा है हमने।

मुमुक्षु : .... द्रव्यलिंग की चर्चा ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। द्रव्यलिंग क्या चीज़ है? कोई चीज़ नहीं, वह तो बाह्य (वेश) है। आहाहा! यहाँ तो ३२ बार पावे, वह तो भावलिंग है। द्रव्यलिंग तो अनन्त बार हुआ। उसमें क्या आया? अनन्त बार। 'मुनिव्रत धार' आया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार...' द्रव्यलिंग। तो वह लोग अर्थ करते हैं कि अभव्य। ऐसा नहीं। भव्य और अभव्य दोनों है।

★ ★ ★

गाथा - २१

सुनो। **आगे इस अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं —**

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं हु ण सक्कए जाउ भुवणयले॥२१॥

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

अर्थ :- जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चला जावे, वह इस पृथ्वीतल पर आधा कोस क्या न चला जावे? यह प्रगट-स्पष्ट जानो। आहाहा! ऐसे

जिसको आत्मा के ध्यान से मुक्ति मिले उसको बीच में स्वर्ग मिले, मिले ही मिले। उसमें क्या है? आता है बीच में व्यवहार का फल। व्यवहार बाकी रहते हैं न। पूर्ण निश्चय न हो, तो व्यवहार बाकी रहता है। कहा न। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** राग बाकी रहता है। राग बाकी रहा, उसका फल स्वर्ग है। निश्चय है, उसका व्यवहार है, उसका फल है। निश्चय बिना का अकेला व्यवहार व्यवहाराभास की बात कही तो अनन्त बार मिला। वह यहाँ सिद्ध करना है। शुद्ध का फल... तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी अपराध है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया है। तीर्थंकरगोत्र बाँधे और स्वर्ग का आयुष्य बाँधे, वह भाव अपराध है। तो यहाँ स्वर्ग में जाना, वह भाव तो अपराध है। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग है।

परन्तु यहाँ तो इतना कहना है कि जिसको आत्मा के ध्यान से मुक्ति मिले, उसको स्वर्ग क्या चीज़ है? बीच में मिले ही मिले। ऐसा राग बाकी रह जाता है, इसलिए स्वर्ग मिले, उसमें क्या है? और पीछे छोड़कर मनुष्यभव पाकर, केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेगा। ऐसा कहना चाहते हैं।

भावार्थ :- जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चले, उसके आधा कोस चलना तो अत्यन्त सुगम हुआ,... आहाहा! **ऐसे ही जिनमार्ग से मोक्ष पावे तो स्वर्ग पाना तो अत्यन्त सुगम है।** आहाहा! वैमानिक देव (में) आराधक जीव जाते हैं। स्त्री में नहीं, नपुंसक में नहीं, भवनपति में नहीं, व्यन्तर में नहीं, ज्योतिष में नहीं, मनुष्य में नहीं। मनुष्य हो वह। मनुष्य हो, स्वर्ग का समकिती वह मनुष्य में जाता है। पशु में नहीं, वैमानिक देव में। ध्यान करते-करते बाकी रह गया तो स्वर्ग में जाता है। आगे मनुष्यपना पाकर केवलज्ञान लेकर मोक्ष जायेगा। यह बात सिद्ध करना है।

आगे इसी अर्थ का अन्य दृष्टान्त कहते हैं— दूसरा दृष्टान्त।

मुमुक्षु : बड़ा भार लेकर माने क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा भार बोझा-बोझा। पाँच मण का बोझा लेकर... समझ में आया? एक दिन में सौ योजन चले बोझा लेकर। तो पृथ्वीतल पर आधा कोश क्या न चला जावे? बोझा। ट्रंक लेकर चलते हैं न! मजदूर होते हैं न मजदूर। मजदूर सारी बोरी

उपाड़ते हैं। चार-चार मण की हों। यह मजदूर होता है न! चार मण की। यहाँ नहीं। पाँच-पाँच मण। लो! और दौड़ते हैं। दौड़े बहुत काम होता है न। हमारे पालेज में तो बड़ा व्यापार था न! वहाँ तो बहुत मजदूर। मजदूर (को) तीन-तीन, चर-चार रुपया मिले प्रतिदिन। उस समय में, हों! ६५ वर्ष पहले की बात है। अभी तो पैसे की कीमत घट गयी। उस समय इतना-इतना एक-एक व्यक्ति कमाता था। फिर शराब पीवे रुपये की। हमारे पालेज में। भार लेकर चले तो फिर भार बिना का साधारण प्राणी को आधा कोस में जाना, वह तो आसान है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २२

इसी अर्थ का दृष्टान्त कहते हैं :—

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिपपइ इक्किं णरेण संगामए सुहडा॥२२॥

अर्थ :- जो कोई सुभट संग्राम में सब ही संग्राम करनेवाले के साथ करोड़ मनुष्यों को भी सुगमता से जीते, वह सुभट एक मनुष्य को क्या न जीते? अवश्य ही जीते।

भावार्थ :- जो जिनमार्ग में प्रवर्ते, वह कर्म का नाश करे ही, तो क्या स्वर्ग के रोकनेवाले एक पापकर्म का नाश न करे? अवश्य ही करे। ऐसा कहते हैं। मूल पापकर्म का नाश करके, यह बात बतानी है। समझ में आया? जिनमार्ग में प्रवर्ते। वीतराग त्रिलोकनाथ स्वरूप प्रभु आत्मा, उसमें अन्दर ध्यान में लगा आत्मा में, उसे तो मोक्ष आसान है। कर्म का नाश करे ही, तो स्वर्ग को रोकनेवाला पापकर्म का नाश न करे? इतना सिद्ध करना है। समझ में आया? आठ कर्म का जो नाश करे भगवान आत्मा का ध्यान से जिनवर मत में, तो उसको वह पाप का नाश क्यों न करे? बस यह बात ली। आठ कर्म का नाश करने को चढ़े, वह पाप का नाश क्यों न करे? आहाहा!

यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है, देखो! क्योंकि ख्याल है न उनको कि हम तो

पंचम काल के साधु हैं। स्वर्ग में ही जाना पड़ेगा, वैमानिक में। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अभी वैमानिक में हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! सम्यग्दृष्टि भी जाते हैं तो वैमानिक में ही जाते हैं अभी। समझ में आया? आहाहा!

निहालभाई आत्मा का ध्यान बहुत करते थे। आनन्द का अनुभव करते थे। निहालभाई नहीं थे? निहालचन्दभाई सोगानी। बहुत ... यहाँ सम्यग्दर्शन पाया था समिति में। और फिर तो आत्मा में इतनी मस्ती आनन्द की हो गई थी कि... बहुत लाखोंपति... बहुत लाखोंपति। निहालभाई सुना न? फूलचन्द! परमेष्ठीदासजी! एक निहालचन्दभाई अजमेर के थे। फिर दिल्ली में उनका धन्धा था कपड़े का। कलकत्ता में, कपड़े की दुकान। उनका लड़का आया था। बहुत ध्यान में (बैठते थे)। इतना यहाँ कहा। बहुत वाँचन, ध्यान बहुत करते थे। बाबा के पास बहुत जाते थे। जाप, ध्यान, समाधि लगाते थे। बहुत बुद्धिवाला मनुष्य। वह यहाँ आये २००२ के वर्ष में। २००२ के वर्ष। २८ वर्ष हुए। इतना कहा, यह ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह विकल्प अर्थात् राग चाहे जितना हो तो उससे तो भगवान भिन्न है। ऐसा कहा।

आत्मा... वह आया न उसमें? दो भाग में आया है। आपने पढ़ा है या नहीं? द्रव्यदृष्टिप्रकाश दो भाग पहले। यहाँ नहीं है। इसके पहले भाग में लिखा है। भाई ने लिखा है, उनका पुत्र कि हमारे पिताजी ऐसा कहते थे कि हमें वहाँ ऐसा ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... जानन... जानन... जानन। स्वभाव, वह विकल्प अर्थात् राग से भिन्न है। ऐसा कहा और समिति में चले गये। समिति अपनी रसोई। शाम से सुबह तक ध्यान में बैठ गये। सूक्ष्म बात है, हों! लोगों को विश्वास आना कठिन बात है। एकदम दो टुकड़े भिन्न करके निर्विकल्प स्वाद लेकर सुबह में उठ गये। पूरी रात अन्दर घोलन करके। समझ में आया? फिर तो लोगों को कहा। यहाँ है किसी के पास पुस्तक? नहीं होगी। द्रव्यदृष्टि प्रकाश। मैं पंगु हूँ। शरीर को टिकाने को दो समय आहार मुझे दे दो। मैं तो पंगु हूँ। धर्मचन्दजी! वह सभी को मालूम है। उन लोगों को अनुभव है। आहाहा! अन्त में एक थोड़े अल्पकाल में देह छूट गया ध्यान में। श्रीमद् का वाँचन करते थे। दृष्टि तो अन्तर में थी। देह छूट गया। समझ में आया?

तो धर्मी समकिती तो वैमानिक में ही जाते हैं। भाई! यह बात कठिन बहुत है।

लोगों को अन्दर में आत्मा क्या चीज़ है, उसकी दृष्टि हुई नहीं और अनुभव हुए बिना उस चीज़ का माहात्म्य क्या है (जानने में आता नहीं)। आहाहा! और उस चीज़ का माहात्म्य आया अन्दर में अनुभव में, आनन्द में (वह) छूट गया। वह भव रहा, वह ज्ञान का ज्ञेय रह गया। अपना भव नहीं और भव का कारण राग भी अपना नहीं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, भगवान! आहाहा!

पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चले, उसको आधा कोस चलना तो अत्यन्त (सुगम है)। वह आ गया। **जो कोई सुभट संग्राम में सब ही संग्राम करनेवाले के साथ करोड़ मनुष्यों को भी सुगमता से जीते...** सुगमता से जीते, हों! आहाहा! **वह सुभट एक मनुष्य को क्यों न जीते?** ऐसे जो आत्मा आनन्दकुन्द प्रभु, आठ कर्म का नाश करने को अन्दर में स्वभाव का आश्रय लिया तो वह क्या पापकर्म का नाश न करे? समय-समय में आठ कर्म से रहित होता है। सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध समय-समय में छूट जाता है थोड़ा-थोड़ा। क्योंकि आठ कर्म से रहित वह तो परम अबद्धस्पृष्ट ऐसा भगवान आत्मा तो है। अबद्धस्पृष्ट। राग और कर्म से स्पृष्ट (और) बन्ध है ही नहीं। ऐसा भगवान आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई, उसका अनुभव शुद्ध उपयोग में हुआ तो कहते हैं कि उसने '**पस्सदि जिणसासणं**' सारा जैनशासन देखा। उसको व्यवहार का ज्ञान आता है, परन्तु वह निश्चय की दृष्टि हुई, वह जैनशासन है। आहाहा! जैनशासन तो पर्याय है। आत्मा जैनशासन नहीं। आत्मा तो अबद्धस्पृष्ट जो है, सामान्य है, निश्चय है, कषायरहित है। ये पाँच बोल वहाँ है। नियत है निश्चय। ऐसी अन्तर दृष्टि हुई और अनुभव हुआ तो जो अनुभव की पर्याय है वीतरागी शुद्ध उपयोग की, वह जैनशासन। उसने जैनशासन सब देखा। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! समझ में आया? वह प्राणी तो... स्वर्ग में (जाना), वह तो साधारण है। स्वर्ग मिलना तो उसको सहेला—साधारण हो गया। आहाहा! माहात्म्य तो, जिनवर मत ने कहा आत्मा के माहात्म्य की बात चलती है। उसके अन्दर ध्यान श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति से। आहाहा!

'**नमः समयसाराय**' आया न कल? तो उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों लिये हैं। सम-अय-सार। सम-अय-सार। समय अर्थात् सम्यग्दर्शन, अय अर्थात् ज्ञान, सार अर्थात् चारित्र। आहाहा! उसमें है। समझ में आया? है? यह है? यह सब वाँचन

हो गया है। (परम अध्यात्म तरंगिणी)। **'रत्नत्रयपक्षे सं सम्यक्त्वं, अयो ज्ञानं, सरणं सारः चरित्रं, द्वंद्वैकत्वं, तस्मै, शेषं पूर्ववद्यथासंभवं व्याख्येयं।'** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वह समयसार शब्द में आया है। ऐसा-ऐसा तो सब बोल लिया है। **'अरिहंतपक्षे' 'जिनपक्षे-समयसाराय सं-सम्यक् यथोक्तरूपेण, अयंति जानंति स्याद्वादात्मकं वस्तु निश्चिन्वंति, ते समयाः सातिशयसम्यग्दृष्टिप्रभृतिक्षीणकषायपर्यंता जीवाः तेषां पूज्यत्वेन सारो जिनस्तस्मै नमः।'** उसमें सार वह जिन अरिहंत है। अरिहंत में लगाया। ऐसे सिद्ध में लगाया, ऐसे आचार्य में लगाया, ऐसे उपाध्याय में, साधु में (लगाया)। **'साधुपक्षे-समयेषु कालावलिषु सारः साधुः शेषं पूर्ववत्।'** अपना स्वरूप का साधन करता है सम्यक् प्रकार से ज्ञान और आनन्द का, वह साधु। वही समयसार में अर्थ किया है। बहुत लिया है उसमें। क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम अध्यात्म तरंगिणी है। टीका की है। एक समयसार शब्द में से पाँच पद परमेष्ठी और तीन रत्नत्रय, आठ का अर्थ उतारा है संस्कृत में। यह कल कहा था थोड़ा। आहाहा!

यहाँ तो अब कहते हैं कि शुभरागरूपी तप द्वारा-व्यवहार तप द्वारा, क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत अपवास आदि, सब ही प्राप्त करते हैं। वह तो सब ही प्राप्त करते हैं। अभव्य-भव्य सब। आया या नहीं उसमें? पाठ है या नहीं? देखो! **'सग्गं तवेण सव्वो वि पावए'** अभव्य प्राप्त करते हैं, ऐसा नहीं, भव्य भी प्राप्त करते हैं। आहाहा! **परन्तु ध्यान के योग से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, वे उस ध्यान के योग से मोक्ष भी प्राप्त करते हैं—** ध्यान के योग से स्वर्ग प्राप्त करते हैं। व्यवहार धर्मध्यान। व्यवहार धर्मध्यान वह शुभराग है। निश्चय धर्मध्यान वह शुद्ध उपयोग है। ऐसा समझना चाहिए न।

जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है वहाँ समझना वही,
वहाँ वहाँ वह वह आचरे आत्मार्थीजन वही।

★ ★ ★

गाथा - २३

उस ध्यान के योग से मोक्ष भी प्राप्त करते हैं—

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तहिं वि झाणजोएण।
जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं॥२३॥

अर्थ :- शुभरागरूपी तप द्वारा स्वर्ग तो सब ही पाते हैं... कषाय की मन्दता करके अभव्य और भव्य अनन्त बार स्वर्ग में गये और स्वर्ग पाते हैं, उसकी कोई विशेषता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **तथापि जो ध्यान के योग से स्वर्ग पाते हैं,...** आहाहा! अन्तर आत्मा का ध्यान, ध्यान लगाकर और बाकी रहा राग से जो स्वर्ग पाते हैं, उसकी यहाँ बलिहारी है, ऐसा कहते हैं। **वे ही ध्यान के योग से परलोक में शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं।** स्वर्ग में जाते हैं। पीछे वहाँ से निकलकर मनुष्य में केवलज्ञान प्राप्त होकर मोक्ष होता है उसका। समझ में आया? ऐसे करके अपनी बात ही की है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारे अन्तर ध्यान से स्वर्ग तो मिलेगा ही। वैमानिक में जायेंगे, वहाँ से मनुष्य होकर... है? '**परलोए सासयं सोक्खं**' वह शाश्वत् सुख पायेंगे। आहाहा! समझ में आया? **ध्यान के योग से परलोक में शाश्वत् सुख को प्राप्त करते हैं।** स्वर्ग प्राप्त करते हैं और ध्यान के योग से बाद में पूर्ण स्वरूप को प्राप्त करते हैं। आहाहा! अपना इतिहास भी अन्दर भरा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ध्यान के योग से स्वर्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान का अर्थ शुभराग। शुभराग, वह व्यवहार ध्यान है न। ध्यान के दो प्रकार—एक निश्चयध्यान और एक व्यवहारध्यान। आहाहा! शुभराग से। बस वह। निश्चय के साथ में होनेवाला शुभराग, उसकी बात यहाँ कही है। उसको व्यवहार कहने में आया है। अज्ञानी को सम्यग्दर्शन (बिना का) अकेला क्रियाकाण्ड का व्यवहार है, वह व्यवहार नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। निश्चय जिसको आत्मध्यान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उसमें जो शुभराग आया, उसको व्यवहार कहने में आता है। निश्चय बिना व्यवहार कैसा? वह बात सिद्ध करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : लौकिक सुख....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। वह तो बाहर की बात है। लौकिक सुख आता है। परन्तु पृथक् कर दिया। परन्तु बाद में वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। कहा न? क्या कहा? '**सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तहिं वि झाणजोएण। जो पावइ**' ऐसा लेना। '**सग्गं झाणजोएण जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं**' आहाहा! व्यवहार ध्यान। वह सर्वविशुद्ध अधिकार में लिया है न? कि आत्मा अबद्ध है, ऐसा है, यह चिन्तन करता है, वह व्यवहार ध्यान है, व्यवहार धर्मध्यान है। धर्मध्यान कहा, परन्तु वह व्यवहार धर्मध्यान है। सर्वविशुद्ध अधिकार में पहले। पहली शुरुआत में। ... लिया है। वह व्यवहार धर्मध्यान शुभ विकल्प है। परन्तु वह शुभविकल्प तो यहाँ निश्चय जिसको आत्मा का अनुभव हुआ, (उसका व्यवहार राग)। यहाँ तो ज्ञान चारित्रसहित है। सन्त हैं न स्वयं। उसको जो व्यवहार राग आया, वह व्यवहार कहने में आता है। आत्मा का सम्यग्दर्शन का भान नहीं और पंच महाव्रत की क्रिया व्यवहार, (उसको व्यवहार) कहने में आता नहीं। वह तो व्यवहाराभास है। समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसे दो फाड़ करते हैं।

भावार्थ :- कायक्लेशादिक तप तो सब ही मत के धारक करते हैं... देखो! वह कायक्लेश है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और अनुभव बिना... आहाहा! **कायक्लेशादिक तप तो सब ही मत के धारक करते हैं, वे तपस्वी मन्दकषाय के निमित्त से सब ही स्वर्ग को प्राप्त करते हैं,...** देखो! मन्द कषाय से। दृष्टि मिथ्यात्व है। **परन्तु जो ध्यान के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं, वे जिनमार्ग में कहे हुए ध्यान के योग से परलोक में जिसमें शाश्वत् सुख है...** योगफल तो वहाँ लिया। स्वर्ग में जायेगा, परन्तु बाद में ध्यान के योग से मोक्ष पायेगा। समझ में आया? ये मनुष्यपना मिला, श्रवणपना मिलता है, उस कारण से वहाँ मोक्ष जायेगा, ऐसा नहीं। वहाँ भी अपने ध्यान से स्वरूप की एकाग्रता से मोक्ष पायेगा। आहाहा! बहुत बात करते, हों! **ऐसे निर्वाण को प्राप्त करते हैं।** लो!

अब जरा दृष्टान्त देकर कहते हैं। २४वीं गाथा है बाद में आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण २, रविवार, दिनांक १०-०३-१९७४
गाथा - २४ से २६, प्रवचन-१२३

गाथा - २४

२४वीं गाथा है। **आगे ध्यान के योग से मोक्ष को प्राप्त करते हैं, इस दृष्टान्त को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं—**

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाईलब्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि॥२४॥

दृष्टान्त देते हैं।

अर्थ :- जैसे सुवर्ण पाषाण... सुवर्णपाषाण। ... पाषाण नहीं। जिसमें सुवर्ण हो, ऐसा पत्थर। **शोधने की सामग्री के सम्बन्ध से...** अपनी शुद्धता का स्वभाव सोना का और बाह्य सामग्री। ऐसे सम्बन्ध से **शुद्ध सुवर्ण हो जाता है,...** यह दृष्टान्त हुआ इतना। **वैसे ही काल आदि लब्धि जो द्रव्य,...** वह अन्तरंग सामग्री कहते हैं। काललब्धि अन्तर सामग्री है। अपना स्वरूप का सम्यग्दर्शन पाया है, पीछे की बात यह है। अपना स्वभाव चैतन्य आनन्द ज्ञानस्वरूप का अवलम्बन लेकर, आश्रय से स्वसंवेदनज्ञान और सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ है। उसको यहाँ कहते हैं कि तुझे मोक्ष जब तक न हो, जब अन्तरंग सामग्री की प्राप्ति पूर्ण न हो और बाह्य की सामग्री... नग्नपना, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प वह निमित्त है, वह बाह्य सामग्री है। आहाहा! अन्तर सामग्री चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्द का अवलम्बन उग्रपने लेकर मोक्ष की अधिकारीरूप चारित्रदशा न हो तो उसको चारित्रदशा धारण जब होती है, तब भाव-साधन उसका उत्कृष्ट होता है, और बाह्य साधन नग्नपना और विकल्प आदि है, वह बाह्य साधन है।

ऐसी सामग्री की प्राप्ति से **द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप...** द्रव्य की सामग्री अपनी योग्यता से, क्षेत्र भी उस प्रकार का क्षेत्र हो वहाँ, काल अपनी पर्याय की लब्धि आदि और भाव भी शुभभाव आदि और बाह्य में निमित्त आदि। उस **सामग्री की प्राप्ति**

से यह आत्मा कर्म के संयोग से अशुद्ध है... पर्याय में कर्म के निमित्त से अशुद्ध है। सम्यग्दृष्टि हुआ तो भी पर्याय में अशुद्धता है। दृष्टि का विषय पूर्ण शुद्ध है, परन्तु पर्याय में अभी शुद्धता पूर्ण प्रगट हुई नहीं। आहाहा! वह अशुद्धता कर्म के निमित्त के संयोग से है, कर्म से नहीं। परन्तु कर्म का संयोग है उतना सम्बन्ध। उस कारण से सम्यग्दृष्टि को भी अशुद्धता तो है। वह अशुद्धता का नाश कर अन्तर शुद्ध भगवान पूर्णानन्द के नाथ का उग्र अवलम्बन लेकर अशुद्धता का नाश होकर परमात्मा हो जाता है। वह सिद्धपद को अथवा अरिहन्त पद को प्राप्त होता है। **भावार्थ सुगम है।** ऐसा कहकर भावार्थ लिया ही नहीं। भावार्थ सुगम है।

★ ★ ★

गाथा - २५

अब जरा ऐसी बात लेते हैं थोड़ी। **आगे कहते हैं कि संसार में व्रत, तप से स्वर्ग होता है, वह व्रत, तप भला है,...** सम्यग्दृष्टि को। जिसे आत्मा का अनुभव हुआ, आत्मा की शान्ति का स्वाद आया, उसको भी व्रत, तप के भाव से। व्रत, तप का भाव शुभ है। परन्तु जिसको शुभभाव व्रत-तप का हो, उसके अन्दर में निश्चय से शान्ति विशेष हो। जितना व्रत, विकल्प है, वह किसको होता है ? एक तो मिथ्यादृष्टि को होता है, उसकी तो बात यहाँ है नहीं। परन्तु सम्यग्दृष्टि को उसमें रहकर विषय-कषाय सेवन से नरक में जाना (होता है)। उसकी बात ली है। सम्यग्दृष्टि तो विषय-कषाय नरक में तो जाते ही नहीं। परन्तु बात ऐसी ली है थोड़ी। कि विषय-कषाय सेवन से नरक में जाना, उससे तो व्रत का, तप का भाव करके स्वर्ग में जाना, वह सम्यग्दृष्टि को अच्छा है। वह श्लोक तो समाधिशतक में भी आता है। ...समाधिशतक में। परन्तु इस अपेक्षा से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह श्लोक तो यहाँ है। समाधिशतक में दूसरा है। समझ में आया ?

परन्तु अव्रतादिक से नरकादिक गति होती है, वह अव्रतादिक श्रेष्ठ नहीं हैं—

इतना लेना है। सम्यग्दृष्टि हो और अव्रत भी हो तो सम्यग्दृष्टि को पहले नरक का आयुष्य बन्ध गया हो तो (नरक में) जाते हैं। परन्तु नरकगति का आयुष्य का सम्यग्दर्शन पीछ बन्ध नहीं पड़ता। सम्यग्दर्शन हुआ, पीछे नरगति का बन्ध उसको होता ही नहीं। परन्तु यहाँ इतना लेना है कि अव्रत में विषय-कषाय का तीव्र पाप है, उससे गति बिगड़ती है, इतना जरा लेना है। यह करते... यह करते क्या कहते हैं? इससे '**वर वयतवेहि सग्गो**' व्रत और तप से सम्यग्दृष्टि को स्वर्ग मिले, वह अच्छा है। ऐसा कहते हैं। वह शुभभाव परन्तु व्रत और तप का विकल्प सम्यग्दृष्टि को यथार्थ में तभी आता है कि जब अन्दर शान्ति; दूसरे कषाय की और तीसरे कषाय का नाश होकर शान्ति हुई, उसको व्रतादि का विकल्प होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इस कारण से। अन्दर में शुद्धि है, उसको विकल्प ऐसा व्रतादि का आता है। और एक स्थिति ऐसी भी है कि अन्दर में आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ और पीछे व्रत का विकल्प भी आया, परन्तु अन्दर में पंचम गुणस्थान और छठवें गुणस्थान नहीं आया। समझ में आया? द्रव्यलिंगी तीन, कहा था न एक बार? द्रव्यलिंगी साधु तीन प्रकार का होता है। एक तो अपने स्वरूप के भान बिना अकेला पंच महाव्रत की क्रिया करे, नग्नपने रहे, वह भी द्रव्यलिंगी। और दूसरा अन्तर में सम्यग्दर्शन हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव का भान अनुभव है, मुनिपना की क्रिया का विकल्प आया और पंच महाव्रत ले लिया अथवा बारह व्रत का विकल्प ले लिया, परन्तु अन्दर में पंचम और छठवाँ गुणस्थान नहीं आया। पुरुषार्थ इतना नहीं हुआ, तो वह भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है। समझ में आया? धीरे से समझने की चीज़ है।

सम्यग्दर्शन अन्तर द्रव्य के आश्रय से ज्ञान, शान्ति आदि का भान हुआ और पीछे पंच महाव्रत का विकल्प ले लिया। महाव्रत ले लिया। परन्तु अन्दर में जो भाव आना चाहिए, वह भाव ध्यान में नहीं आया। अन्दर में जो पंचम गुणस्थान की भावना, शान्ति जो आनी चाहिए, वह आयी नहीं और छठवें गुणस्थान में भी तीन कषाय के अभाव की शान्ति आनी चाहिए, वह शान्ति नहीं आयी और व्रत का विकल्प रह गया। समझ में

आया? तो सम्यग्दर्शन में रहकर पंचम और छठवें गुणस्थान का विकल्प आया, फिर भी वह द्रव्यलिंगी कहने में आता है और सम्यग्दर्शन हुआ, पंच महाव्रत लिया परन्तु अन्दर में ध्यान में न आया सातवाँ गुणस्थान, वह भी द्रव्यलिंगी कहने में आता है। समझ में आया? ...लालजी! अन्दर में ध्यान में सप्तम आया पहले, तो फिर छठवाँ आया तो वह भावलिंगी है और उसको विकल्प है, वह व्यवहार है। आहाहा! जैनदर्शन बापू! अलौकिक बात है। वस्तु की स्थिति का वर्णन है। तो यहाँ कहते हैं ....

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥२५॥

अर्थ :– व्रत और तप से स्वर्ग होता है, वह श्रेष्ठ है,... सम्यग्दृष्टि को आत्मज्ञान में रहने पर भी, पश्चात् उसको व्रतादि का विकल्प हो और अन्दर में शान्ति थोड़ी हो तो वह श्रेष्ठ है। चौथे गुणस्थान में रहना, उससे आगे बढ़ना, वह श्रेष्ठ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**वर वयतवेहि सग्गो**' अपेक्षा डाली व्यवहार की। अन्दर में सम्यग्दर्शन में रहना, उससे आगे बढ़कर व्रत का विकल्प आना और तप का विकल्प हो तो उसको स्वर्ग मिलेगा। तो वह अच्छा है। नरक में जाने की अपेक्षा, अशुभभाव से नरक में जाने की अपेक्षा ऐसा शुभभाव में स्वर्ग में जाना वह अच्छा है। समझ में आया? क्यों? दृष्टान्त दिया है।

परन्तु अव्रत और अतप से प्राणी को नरकगति में दुःख होता है... ऐसी एक अपेक्षा ली है। समझे? नहीं तो सम्यग्दृष्टि हुआ पीछे तो नरकगति होती ही नहीं।

मुमुक्षु : दोनों की तुलना की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुलना की है। बस, बात यह है। समझ में आया? आहाहा! अव्रत से अशुभभाव से नरक में जाना, उसकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि को शुभभाव में शुद्धता की वृद्धि हुई हो और शुभभाव व्रत का आया हो तो स्वर्ग में जाना अच्छा है। समझ में आया? दृष्टान्त देते हैं।

दुःख होता है, वह मत होवे, श्रेष्ठ नहीं है। सम्यग्दृष्टि को भी अशुभभाव से नरक में जाना उससे शुभभाव से स्वर्ग में जाना श्रेष्ठ है। **छाया और आतप में बैठनेवाले के**

प्रतिपालक कारणों में बड़ा भेद है। आहाहा! एक मनुष्य रास्ते पर जाता है। मार्ग में तो है, परन्तु अभी पूर्ण प्राप्त न हुआ शुद्ध उपयोग तो वह सम्यग्दृष्टि गति करता है, वह किसी वृक्ष के नीचे बैठे और पश्चात् ध्यान रखे कि समय आने पर मैं मार्ग पर चलूँ। परन्तु ऐसे छाया में न बैठे और आताप में बैठे तो उसको दु:ख होता है। समझ में आया? यह दृष्टान्त है। समाधिशतक में यह श्लोक है। दोनों का भेद बताया है। शुभ और अशुभ का अन्तर बताते हैं बस, इतना। समझ में आया? परन्तु निश्चय में तो सम्यग्दृष्टि को जब शान्ति अन्तर में उसे विशेष आती है, पश्चात् व्रत का विकल्प तो आता है, और पहले भी व्रत का विकल्प आता है और फिर अन्दर ध्यान में जाये, तब शान्ति पंचम और सातवें की आती है। तो यहाँ तो यह कहते हैं कि अशुभभाव से नरक में जाने की अपेक्षा शुभभाव से समकिती को स्वर्ग में जाना ये अच्छा है। इतनी बात लेते है। भान नहीं और अकेला व्रत ले ले उसकी तो बात यहाँ है ही नहीं।

मुमुक्षु : आप हमें ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? अपना बदलना अपने से होता है। गुरु से और केवली से भी होता नहीं। आहाहा! अपना चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्द, करनेयोग्य है तो पहले उसका अनुभव करनेयोग्य है। पहले में पहले '**णियमेण य जं कज्जं**' नियमसार की तीसरी गाथा है। '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से कर्तव्य (करने) योग्य हो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अपना अविकारी परिणाम, जो द्रव्य के आश्रय से होता है, वह कर्तव्य (करने) योग्य है। आहाहा! नियमसार है न? नियमसार मोक्ष का मार्ग। तो मोक्ष के मार्ग में तीसरी गाथा में पहले यह लिया। पहला पद। '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से जो करनेयोग्य हो, तो अपना द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ये करनेयोग्य हैं। आहाहा!

यहाँ तो एक दूसरी चीज़ लेना है कि जहाँ सम्यग्दृष्टि विषय-कषाय सेवे और कदाचित् नरक में जाना पड़े, उससे (अच्छा) तो वह शुभभाव में आता है। है तो शुभभाव हेय। समझ में आया? परन्तु शुभभाव में आता है और इतनी शान्ति यहाँ बढ़ी है। व्रत का विकल्प किसको? व्रत का विकल्प आया तो पीछे अन्दर थोड़ी शान्ति समकिती को तो बढ़ती है। स्व का द्रव्य का आश्रय है, तब उस व्रत को व्यवहारव्रत

कहने में आता है। क्या कहा, समझ में आया? अन्तर सम्यग्दर्शन में आत्मा का तो आश्रय अवलम्बन हुआ और पश्चात् व्रत का विकल्प आया, लिया। परन्तु वह व्रत का विकल्प आया, पश्चात् समकिती को तो स्व के आश्रय से सम्यक् में जो शान्ति थी, उससे अधिक शान्ति होती है। इस शान्ति की भूमिका में जो व्रत का विकल्प है, वह व्यवहार है। पण्डितजी! यह बात है। आहाहा!

और कदाचित् वह सम्यग्दर्शन में आया अनुभव में और व्रत का विकल्प ले लिया और अन्तर में शान्ति न आयी तो भी शुभभाव से वह स्वर्ग में जायेगा। भाई! समझ में आया कुछ? अन्तर अनुभव दृष्टि आनन्द का स्वाद तो आया सम्यग्दर्शन में, परन्तु बाद में व्रत का विकल्प लिया और व्रत का विकल्प लिया और अन्तर में जो व्रत की भूमिका के योग्य जो शान्ति चाहिए, वह द्रव्य के आश्रय नहीं हुई तो भी व्रत के कारण से वह स्वर्ग में जायेगा। इतनी बात है। शुभ के कारण से। शान्ति नहीं उतनी। शान्ति ... स्वर्ग में है ही नहीं। वह तो प्रश्न है ही नहीं। शान्ति थोड़ी हो या विशेष हो, उससे स्वर्ग है ही नहीं। यहाँ तो दूसरी बात कहना है कि आत्मा में सम्यक् अनुभव दर्शन हुआ, उसमें अकेले अशुभभाव में रहना, विषय-कषाय सेवना, उसकी अपेक्षा पापबन्ध होगा। उससे सम्यग्दृष्टि को '**वर**' तप और व्रत का विकल्प शुभभाव है, वह ठीक है। पीछे भले पंचम गुणस्थान पलट गया हो पंचम का और न पलटा हो तो भी उस व्रत से स्वर्ग मिलेगा उसको। यहाँ यह कहना है। पाटनीजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव। संक्लेश नहीं। शुभभाव की बात कही न। तप और व्रत का शुभभाव, परन्तु अन्तर शान्ति पंचम गुणस्थान योग्य नहीं आयी... अन्तर स्वरूप सम्यक् अनुभव है। देखो न व्यवहार कैसा है पहला? कि जब महाव्रत लेने को जाते हैं, तब छठवाँ गुणस्थान है उसको? मुनि गुरु के पास जाकर कहे, प्रभु! मुझे भाव, द्रव्यलिंग दो। ऐसा है न? प्रवचनसार। भाव और द्रव्यलिंग दो। वह कब कहते हैं? चौथे गुणस्थान या पाँचवें में हो तब। वह कहते हैं कि महाराज! हमें द्रव्यलिंग, भावलिंग दो। तो गुरु उसको देते हैं। यह चीज़ है। ऐसा द्रव्य का आश्रय उग्र करो तो तुझे भावलिंग होगा और उस समय में पंच महाव्रत आदि का विकल्प, वह द्रव्यलिंग है।

परन्तु ऐसा व्रत अर्थात् विकल्प ले लिया और अन्दर में ध्यान में उग्रपना आया नहीं तो चौथा गुणस्थान रहेगा। और क्रिया का भाव शुभभाव छठवें गुणस्थान का आ गया। समझ में आया? थोड़ी अटपटी बात है, भाई! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : आगे हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे तो हो जायेगा। परन्तु अभी शुभभाव आया और उतना प्रमाण में जिस भूमिका का शुभभाव है, ऐसी भूमिका की शान्ति नहीं आयी अन्दर ध्यान में, तो वह भी स्वर्ग में जायेगा। और पश्चात् आगे जाकर अपने काललब्धि आदि शुद्धभाव की वृद्धि करके मोक्ष जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परम्परा। ... अपनी शुद्धि बढ़ायेगा तो मोक्ष जायेगा। अरे! मार्ग ऐसा है, भाई! देखो!

भावार्थ :- जैसे छाया का कारण तो वृक्षादिक हैं... भावार्थ। भावार्थ है न? पण्डित जयचन्द्रजी ने भावार्थ भरा है। **छाया का कारण तो वृक्षादिक हैं...** वृक्ष हो, कोई मकान हो, **इनकी छाया में जो बैठे वह सुख पावे...** सुख पावे क्या? लौकिक बाह्य, लौकिक। **आताप का कारण सूर्य, अग्नि आदिक हैं, इनके निमित्त से आताप होता है, जो उसमें बैठता है, वह दुःख को प्राप्त करता है...** आताप लगे तो असाता होती है। **इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है,...** आताप और छाया का बड़ा भेद है। **इस प्रकार ही जो व्रत, तप का आचरण करता है,...** सम्यग्दृष्टि होकर, अनुभव होकर व्रत, तप का शुभभाव का आचरण करता है, **वह स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है...** समझ में आया? वह स्वर्ग में जायेगा। **और जो इनका आचरण नहीं करता है, विषय-कषायादिक का सेवन करता है...** उस अपेक्षा से बात ली है। विषय-कषाय आदि का तीव्र सेवन करता है, वह नरक के दुःख को प्राप्त करता है। **इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है। इसलिए यहाँ कहने का यह आशय है कि जब तक निर्वाण न हो, तब तक व्रत-तप आदि में प्रवर्तना श्रेष्ठ है...** शुभभाव में आना और उस शुभभाव के काल में अन्तर में शान्ति में आना, वह श्रेष्ठ ही है। आहाहा! गजब, भाई! क्योंकि व्रत का विकल्प यथार्थपने तो पंचम में होता

है और छठवें में होता है। छठवें गुणस्थान में होता है। चौथे (में) व्रत का विकल्प नहीं है। चौथे गुणस्थान में व्रत नहीं हैं। क्योंकि दूसरे कषाय का तो अभाव है नहीं। तो उसके सम्बन्धी व्रत है ही नहीं, ऐसा। परन्तु यहाँ ऐसे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को आगे बढ़कर स्वद्रव्य का आश्रय लेकर विशेष व्रत, तप का भाव हो तो स्वर्ग मिलेगा। समझ में आया?

इससे सांसारिक सुख की प्राप्ति है... लो! स्वर्ग की। **निर्वाण के साधने में भी ये सहकारी हैं।** शुभभाव है न। सहकारी का मतलब शुभभाव। उपादान तो अपना शुद्ध चैतन्य की दृष्टि अनुभव है। परन्तु उसमें शुभभाव को सहकारी निमित्तकारण साथ में है, ऐसा कहा जाता है। सहकारी का मतलब साथ में है। उससे लाभ होता है उपादान में, वह बात नहीं। साथ में है, बस। आहाहा! साथ में रहनेवाला। न्याय न्याय में अन्तर हो जाता है न! सहकारी अर्थात् मददगार है, ऐसे नहीं। साथ में है। स्वरूप के अनुभव की दृष्टि और शान्ति आयी, उसमें इस जाति की कषाय की मन्दता निमित्त साथ में है, बस इतना। उससे आत्मा का लाभ हो, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। इससे स्वर्ग मिलता है। आहाहा!

विषय-कषायादिक की प्रवृत्ति का फल तो केवल नरकादिक के दुःख हैं, उन दुःखों के कारणों का सेवन करना, यह तो बड़ी भूल है, इस प्रकार जानना चाहिए। आहाहा! यहाँ तो आचार्य महाराज इतना कहना चाहते हैं कि रास्ते में जाते प्राणी को पूर्ण मार्ग न मिला तो रास्ते में जैसे छाया में बैठता है और कोई आताप में रहता है, उतना अन्तर है। अपना रास्ता तो ले लिया है अन्दर में से। सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि रास्ता ले लिया है, परन्तु पूर्ण प्राप्ति नहीं हुई तो बीच में शुभराग में छाया है, अशुभराग में आताप है। समझ में आया?

आगे कहते हैं... अब ... **संसार में रहे, तब तक व्रत, तप पालना श्रेष्ठ कहा, परन्तु जो संसार से निकलना चाहे वह आत्मा का ध्यान करे—**जब तक आगे बढ़ सके नहीं, तब तो वहाँ व्रत और तप का भाव होता है। वह है तो संसार। व्रत, तप का भाव शुभ, वह है तो संसार और उसका फल भी संसार स्वर्ग। आहाहा! परन्तु उससे निकलना चाहते हैं, उसे क्या करना? वह बात है।

★ ★ ★

गाथा - २६

जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं॥२६॥

आहाहा! उस शुभभाव में से भी अब निकलना चाहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अर्थ :- जो जीव रुद्र अर्थात् बड़े विस्ताररूप संसाररूपी समुद्र... महा चौरासी के अवतार भवसिन्धु-भवसमुद्र। बड़ा विस्तार अनन्त भव का कारण ऐसा बड़ा सिन्धु-भवसिन्धु। ओहोहो! ये **विस्तार संसाररूपी समुद्र उससे निकलना चाहता है...** वह राग से छूटना चाहता है। आहाहा! समझ में आया? **वह जीव कर्मरूपी ईंधन को दहन करनेवाले...** कर्म तो जड़ लिया है, परन्तु अशुद्ध कर्म राग है, उसको नाश करनेवाले। कर्म को नाश करनेवाला तो आत्मा है ही नहीं। वह तो असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। जड़ को आत्मा नाश कर सकता नहीं। परन्तु वह निमित्त जहाँ अशुद्धता का नाश होता है, शुद्ध आत्मा के ध्यान से अशुद्धता का नाश होता है तो वहाँ कर्म की पर्याय ऐसे नाश होने की योग्यता से अपने कारण से नाश होता है। पण्डितजी ने लिखा है न। अकर्मरूप पर्याय होती है, ऐसा लिखा है। अकर्मरूप पर्याय उसके कारण से होती है। चार घाति का नाश होने से केवलज्ञान होता है या नहीं? वह प्रश्न चला है खानियाचर्चा में। चार घातिकर्म का नाश होता है तो कर्म की (अकर्मरूप) पर्याय होती है, जो कर्मरूप पर्याय है, वह अकर्मरूप पर्याय होती है। घाति के नाश से केवलज्ञान होता है, ऐसा कहाँ आया? समझ में आया? बड़ी चर्चा है वह। लिखा है न भैया? जुगलजी! खानिया चर्चा। प्रश्न बहुत लिया है पण्डितजी ने। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... भाव किया, परन्तु काम बहुत अच्छा किया। ऐसी ऐतिहासिक चर्चा और साधारण प्राणी को अष्टसहस्त्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड का देखने का समय न मिले, उसको सब उसमें से मिलता है। ऐसा कोई योग से ऐसी कोई चर्चा आ गयी। दो तरफ की चर्चा। व्यवहार के पक्षवाला क्या कहते हैं? और सत्यार्थ पक्षवाला क्या कहते

हैं? दोनों। हम तो मध्यस्थ होकर कहते हैं हों! यथार्थ बात। बहुत अच्छी बात। पण्डितजी का प्रभावना में बड़ा (योगदान है)। योग्य है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अरे! जो जीव संसार... आहाहा! वह शुभभाव भी संसार है। उदयभाव, वह सारा संसार है। आहाहा! इस संसार से निकलना चाहते हैं... संसार यह है, हों! स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, वह संसार नहीं। शरीर, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, वह संसार नहीं। वह तो परचीज़ है। संसार तो पर्याय में अपने स्वरूप से संसरण हटकर विकारभाव में आया, वह विकारभाव संसार है। वह संसार है। बाहर का संसार कहाँ? स्त्री, कुटुम्ब कहाँ अन्दर घुस गया है? वह संसार नहीं, वह तो पर की चीज़ है। संसार तो अपनी पर्याय में होता है, कोई पर पर्याय में संसार होता है? मोक्ष भी अपनी पर्याय में होता है और संसार भी अपनी पर्याय में होता है और मोक्षमार्ग भी अपनी पर्याय में होता है। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं, यह रुद्र विस्तार संसार। आहाहा! देखो न शब्द कैसा लिया है! **'संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ'** ...में **'संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ' 'रुद्दाओ'** शब्द है न? प्रति में रुद्र ऐसा है। **'संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ'** घोर दुःख संसार। शुभभाव, अशुभभाव, उसका फल घोर संसार। आहाहा! ऐसा विस्तार संसाररूपी समुद्र (से) निकलना चाहता है, **वह जीव कर्मरूपी ईंधन को...** भावकर्मरूपी ईंधन और द्रव्यकर्मरूपी असद्भूत व्यवहार से ईंधन। उसको **दहन करनेवाला...** आहाहा! **शुद्ध आत्मा...** भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य ध्रुव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन तो हुआ ही है, पश्चात् शुभभाव से संसार से निकलना है। आहाहा! तो अपना शुद्ध भगवान ज्ञानसमुद्र अतीन्द्रिय आनन्द का सरोवर उसमें जा, पी पानी। आहाहा! शुद्ध आत्मा के ध्यान को करता है। वह स्वरूप का आनन्द का ध्यान करता है। आहाहा! शुभरागादि तो दुःखरूप है। शुभरागादि तो दुःखरूप है। शुभराग दुःख स्वयं है। समझ में आया?

(समयसार) ७२ गाथा में कहा न कि आस्रव तो दुःखरूप है। ७२ गाथा, कर्ता-कर्म (अधिकार)। अशुचि, विपरीत और दुःखरूप। तीन बोल लिये हैं। पुण्य के भाव और पाप भाव दोनों अशुचि हैं, जड़ हैं। उसमें चैतन्य का किरण न आया उसमें। आहाहा! और दुःख है। तीन बोल लिये हैं। और दुःख है इतना। ७४ (गाथा) में दो लिये हैं। ७४

में अध्रुव, अनित्य, अशरण, जीव निबद्धा चार बोल हुअए। जीव निबद्धा, अध्रुव, अनित्या, अशरणं। यह चार लिये। दु:ख और दु:खफल लिया। दो बोल लिये, छह बोल लिये हैं। ७४वीं गाथा में छह बोल लिया है। दु:ख है। सुनो जरा सूक्ष्म बात। शुभभाव दु:ख है और उसका फल दु:ख है। क्योंकि शुभभाव से जो सामग्री मिलेगी... आहाहा! धन्य बात! वीतराग की वाणी मिले, तो भी वह दु:ख का फल है। क्योंकि उस पर लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा तुझे। पाटनी जी! मार्ग ऐसा है, भाई! यह ७४ के छठवें बोल में ऐसा लिया है कि शुभभाव दु:ख है और दु:ख का फल है। क्योंकि जो सामग्री मिलेगी शुभ से, उस ओर तेरा लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा तुझे।

मुमुक्षु : वीतराग की वाणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की वाणी पर लक्ष्य जाता है, वह दु:ख है। वाणी परद्रव्य है। ... यह वस्तु भिन्न है। वाणी और वीतराग स्वयं, ३१वीं गाथा में उसको इन्द्रिय कहा है। जैसे जड़ इन्द्रिय हैं, यह पाँच। जड़ इन्द्रिय पाँच है न। ऐसे भावेन्द्रिय पाँच। दो, और देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह इन्द्रिय है। तीनों को इन्द्रिय में ले लिया है। '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' आहाहा! भगवान का वचन कुन्दकुन्दाचार्य कहे जो कोई प्राणी इन्द्रिय को '**जिणित्ता**'। देव-गुरु-शास्त्र के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर... क्योंकि इन्द्रिय है वह। द्रव्यइन्द्रिय से लक्ष्य छोड़कर, भावेन्द्रिय क्षयोपशमभाव से लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! '**जो इंदिये जिणित्ता**' लोगों को ऐसा लगता है। वीतराग और वीतराग की वाणी (परद्रव्य)? वह परद्रव्य है। और '**परदव्वादो दुग्गइ**' है। उससे चैतन्य की गति उत्पन्न नहीं होती है। वह तो आया १६वीं गाथा, मोक्ष अधिकार। १६वीं में आया। १६ में शुरु हुआ था यहाँ।

'**परदव्वादो दुग्गइ**' गजब बात है! '**सदव्वादो हु सुग्गइ**' समझ में आया? भाई! यहाँ तो वीतराग मार्ग की बात है। परद्रव्य का आश्रय लेना, उसमें राग ही आता है। राग, वह दुर्गति है; वह आत्मा की गति नहीं। चैतन्य का वह परिणमन नहीं। आहाहा! बापू! वीतराग मार्ग समझना, अनन्त काल से उसे इस बात के ऊपर जोर आया ही नहीं। बाहर की सामग्री ऐसी मिलेगा, ऐसा होगा... ऐसा होगा... आहाहा! कहा था न। पंचास्तिकाय

की गाथा नहीं १७० कहा था। पहले पाण्डाल में। १७० गाथा है न! पाठ है। पंचास्तिकाय। पदार्थ, तीर्थंकर और आगम, उसकी जबतक रुचि रहेगी, तबतक निर्वाण दूरतर है। श्लोक है १७० पंचास्तिकाय। है या नहीं यहाँ? पंचास्तिकाय है? है। 'मिठास' है न। देखो १७०।

'**सपयत्थं**' पदार्थ की रुचि रहना, भेद है न सब? परपदार्थ है न? आहाहा! नव पदार्थ में तीर्थंकर के प्रति '**सपयत्थं तित्थयरं अभिगतबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।**' जब आगम पर है। उसकी रुचि से '**दूरतरं निर्वाणं**' वह पाण्डाल में लिया था। **संयमतपसंयुक्त होने पर भी...** सम्यग्दृष्टि और संयम, तप आत्मा के ध्यानसहित होने पर भी, **नव पदार्थों तथा तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है और सूत्रों के प्रति जिसे रुचि वर्तती है, उस जीव को निर्वाण दूरतर है।**

मुमुक्षु : गाथा कौन-सी?

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा १७०। पाण्डाल में कहा था। परमेष्ठीदासजी! आहाहा! तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति जब तक रस रहेगा और हमारा कहा आगम है, उस पर लक्ष्य रहेगा और हमारा कहा हुआ पदार्थ है, उसके ऊपर लक्ष्य रहेगा, तब तक निर्वाण मुक्ति दूर है। ऐ... सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छोड़ो, ऐसा कहते हैं तीर्थंकर। हमारा लक्ष्य छोड़ो। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी सन्मुखता छोड़ो, तेरे सन्मुख जा। आहाहा! बापू! वीतराग का मार्ग, सर्वज्ञ का मार्ग कोई दोह्यला है—दुर्लभ है। उसे समझे बिना, भान किये बिना संसार का अन्त आता नहीं। लाख क्रियाकाण्ड करे, भगवान का आश्रय ले, नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ा, ग्यारह अंग भी अनन्त बार पढ़ा तो क्या हुआ उससे? लाभ हुआ थोड़ा भी? थोड़ा भी संवर, थोड़ी भी शुद्धि (हुई)? आहाहा!

यहाँ तो आत्मा के आश्रय से... देखो! '**झायइ अप्पयं सुद्धं**' आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु का जो ध्यान करता है, ध्यान करता है, उसको अशुद्धता का नाश होता है और कर्म ईंधन का नाश उसके कारण से—कर्म के कारण से नाश होता है।

आत्मा उसको नाश करता है, ऐसा कहना असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। आहाहा! समझ में आया? कर्मरूपी ईंधन को दहन करनेवाला शुद्ध आत्मा का ध्यान। भगवान का ध्यान भी नहीं। भगवान परवस्तु है, वाणी का ध्यान नहीं, वाणी परवस्तु है। वाणी का दोपहर को आयेगा आज। सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी है, वह पूज्य है। परन्तु व्यवहार से पूज्य है। शुभभाव आता है। पूज्य ... दोपहर को श्लोक आयेगा। सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी, ऐसा कलश में आयेगा। वाणी पर है न, प्रभु! जहाँ तक वाणी का लक्ष्य रहेगा, तबतक शुभराग रहेगा। आहाहा! शुभराग से तो बन्ध होगा। अबन्धपरिणाम उसके आश्रय से नहीं होता है। भगवान अबन्धस्वरूप आत्मा है, **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** भगवान आत्मा अबद्धस्पृष्ट सामान्य है, उसके आश्रय से अबन्धपरिणाम उत्पन्न होता है। आहाहा! लोगों को एकान्त लगे, परन्तु वस्तु ऐसी है, भाई!

देखो! यह तो आत्मा के आश्रय से लाभ, पर के आश्रय से नहीं। (ऐसा) एकान्त (कहते) हैं। एकान्त ही है। सम्यक् एकान्त। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा! है ही सम्यक् एकान्त। सम्यक् एकान्त हुआ, वही अनेकान्त का यथार्थ ज्ञान कर सकता है। सम्यक् एकान्त हुआ, वही अनेकान्त का यथार्थ ज्ञान कर सकता है। आहाहा! ऐसा भाई ने लिखा है न। श्रीमद् में ऐसा आता है। एक कड़ी शब्द आते हैं। उसका एक घण्टे व्याख्यान हुआ। सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति हेतु सब कहने में आया है। और निजपद की प्राप्ति करते हैं, उसको यथार्थ अनेकान्त का ज्ञान (होता है)। पर्याय कैसी है, राग कैसा है—उसका अनेकान्त का ज्ञान उसको यथार्थ होता है। क्या वस्तु है? एक पंक्ति है।

(यहाँ) कहते हैं कि शुद्ध आत्मा के ध्यान से ही कर्म का नाश होता है। पर का आश्रय जितना है, उसमें तो राग और विकार उत्पन्न होता है। आहाहा! यह वीतराग वाणी। वह भी दिगम्बर सन्तों ने कही। उस वाणी में दूसरे का भार नहीं। समझ में आया? आहाहा! निर्वाण की प्राप्ति कर्म का नाश हो तब होती है और कर्म का नाश शुद्ध आत्मा के ध्यान से होता है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु, उसका ध्यान ध्येय बनाकर ध्यान करते हैं, उनको कर्म का नाश होता है। समझ में आया? २७ या २८ (वर्ष में है)। सारा ग्रन्थ कितनी बार (देखा है)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, निर्वाण की प्राप्ति मोक्ष जिसको (चाहिए)... मोक्ष का अर्थ क्या? पूर्ण आनन्द और शुद्धि की प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। और दुःख का सर्वथा नाश, उसका नाम मोक्ष। नास्ति से लेना है न? मोक्ष—छूटना। किससे? दुःख से। मोक्ष पूर्ण शुद्ध आनन्द की प्राप्ति वह मोक्ष। शुद्ध आनन्द की प्राप्ति-मोक्ष कैसी होती है? कि शुद्धात्मा के ध्यान से होता है। आहाहा! अपनी चीज़ जो त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव पड़ी है... ध्यान, वह पर्याय है, परन्तु ध्यान का विषय है, वह द्रव्य है। समझ में आया? ध्यान, वह अवस्था है पर्याय, परन्तु उसका विषय ध्रुव है। ध्रुव के आश्रय से ध्यान हो, उस ध्यान से कर्म का नाश होता है। दूसरा कोई अपवास करे, व्रत पाले, ऐसा करे, वैसा करे। महीने-महीने के अपवास करे, कर्म खिरे, ऐसा तीन काल-तीन लोक में है नहीं। परमेष्ठीदासजी! कल दोपहर को नहीं थे? दोपहर को। आया नहीं। ठीक। समझ में आया? आहाहा!

ध्यान आनन्द की पर्याय, चारित्र की पर्याय, ज्ञान की पर्याय के साथ में सब पर्याय है। चारित्र की पर्याय है। आहाहा! आनन्द की पर्याय, चारित्र की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की पर्याय। आहाहा! कितने वर्ष में है? यही कहा न। २९ में आया। देखो! श्रीमद् का एक वाक्य है। एक घण्टा व्याख्यान हुआ था उसके गाँव में, ववाणिया में। भक्ति-भक्ति। भक्ति से मुक्ति, भक्ति से मुक्ति बहुत कहते थे। श्रीमद् राजचन्द्र उनके २९वें वर्ष के (पत्र में है)। अनेकान्तिक मार्ग भी... 'अनेकान्त मार्ग भी, 'सम्यक् एकान्त ऐसा निजपद की प्राप्ति कराने के अतिरिक्त दूसरा अन्य हेतु से उपकारी नहीं।' आहाहा! अनेकान्तिक। एक लाईन में तो बहुत भर दिया है। यह सब व्याख्यान हो गया है वहाँ। अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरे अन्य हेतु से उपकारी नहीं। 'ऐसा जानकर लिखा है। मात्र अनुकम्पाबुद्धि, निराग्रह से, निष्कपटता से, ... लिखा है, ऐसा जो तुम यथार्थ विचारोगे तो दृष्टिगोचर होगा।' आहाहा! सम्यक् एकान्त ऐसा निजपद। आहाहा! इसके अतिरिक्त अनेकान्त मार्ग भी दूसरे अन्य हेतु से (उपकारी है) नहीं। वास्तव में तो सम्यग्ज्ञान के प्रति, आत्मा के प्रति एकान्त जहाँ आश्रय हुआ, तब जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान, पर्याय में राग बाकी है, उसका ज्ञान कर लेता है। वह अनेकान्त है। आहाहा! २९वें वर्ष में, हों! आहाहा!

निर्वाण की प्राप्ति। ओहो! जिसकी आत्मा की पूर्ण शुद्धि, निर्वाण का अर्थ पूर्ण शुद्धि, पूर्ण आनन्द। आहाहा! इसकी प्राप्ति कर्म का नाश हो, तब होती है। दु:ख का नाश, अशुद्धता का नाश, कर्म का नाश, अशुद्धता का नाश शुद्धात्मा के ध्यान से होता है। आहाहा! समझ में आया? निहालभाई तो वहाँ तक कहते हैं एक शब्द में। निहालभाई। पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ? मैं तो ध्रुव हूँ। निहालभाई हो गये हैं। पर्याय मेरा ध्यान करे तो (करो)। मैं तो त्रिकाल ध्रुव सो मैं हूँ। आहाहा! मेरे मे, पलटना और ध्यान करना मेरे में है नहीं। प्याला अन्तर का प्याला ऐसा है। अज्ञानी को एकान्त लगे, अरर! ये क्या है? पर्याय नहीं है? पर्याय है तो सिद्ध किया न? पर्याय को सिद्ध किया। मैं तो ध्रुव हूँ त्रिकाल अनादि-अनन्त। मैं कभी किसी से डिगता नहीं, परिणमन में आया नहीं। आहाहा! पर्याय में मैं ध्रुव आया नहीं कभी। आहाहा! ऐसी मेरी चीज़ सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी ओर का झुकाव पर्याय का हो तो हो, ध्यान वह करे, मैं किसका ध्यान करूँ? मैं तो ध्रुव हूँ। आहाहा!

यहाँ तो अभी परसन्मुख के ध्यान में लाभ है, मोक्ष है, यह ठहराना है लोगों को। आहाहा! अरे! भगवान! सम्यक् चिदानन्द प्रभु सन्मुख झुक जा और उसके बिना अशुद्धता का और कर्म का नाश तीन काल और तीन लोक में होगा नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' समझ में आया? आहाहा! यह सिंहनी का दूध सोने के पात्र में टिक सके। लोहे का पात्र हो और डाले तो फाड़ डाले एकदम। समझ में आया? आत्मनन्दजी! सिंहनी-सिंहनी। सिंहनी का दूध सोने के पात्र में टिके। लोहे के पात्र में डाले तो फट जाये। उसी प्रकार भगवान आत्मा राग से लाभ मानने जाये तो फट जायेगी तेरी चीज़। अन्दर आनन्दकन्द में जा। आहाहा!

कल तो नहीं आया था? ज्ञान किसको कहे? स्व के ज्ञान को ज्ञान कहे। पर का ज्ञान चाहे तो छह द्रव्य का हो दूसरे का और अशुद्ध संसारी का हो। आहाहा! राजमल जैसा गृहस्थ कितना स्पष्ट करते हैं! एक तो जन्म दिगम्बर में हुआ हो और उसका दिगम्बर की परम्परा का भान अन्दर हुआ। समझ में आया? सनातन धर्म में जन्म हुआ हो, वह महापुण्य के कारण से। आहाहा! उसमें अन्दर सनातन चीज़ क्या है, उसका

पता लग जाये, कथन केवली करे, (ऐसा) कथन वह करे। उसमें कोई तत्त्व में अन्तर नहीं। आहाहा! सिद्ध और चौथे गुणस्थान समकिती के समकित में कुछ अन्तर नहीं।

यहाँ कहते हैं, **अतः जो संसार से निकलकर मोक्ष को चाहे...** यह बात है। जिसे राग से निकलकर पूर्ण शुद्धता की भावना हो, **वह शुद्ध आत्मा, जो कि कर्ममल से रहित अनन्त चतुष्टयसहित...** (है)। आहाहा! अनेकान्त किया। कर्ममल से रहित, अनन्त चतुष्टय से सहित। अस्ति। कर्ममल से (रहित) नास्ति। आहाहा! अस्ति-नास्ति। ऐसे **(निज निश्चय) परमात्मा है...** भगवान! ऐसा परमात्मा है। **उसका ध्यान करता है।** वह अन्दर अपने परमात्मा का ध्यान करता है। **मोक्ष का उपाय इसके बिना अन्य नहीं है।** मोक्ष का उपाय उसके बिना अन्य नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ३, सोमवार, दिनांक ११-०३-१९७४
गाथा - २७, प्रवचन-१२४

गाथा - २७

अष्टपाहुड़ चलता है। २७वीं गाथा। **आगे आत्मा का ध्यान करने की विधि बताते हैं—** यह मोक्ष का अधिकार है न। तो मोक्ष का उपाय, आत्मा का ध्यान अर्थात् आत्मा का आश्रय करना, वही मोक्ष का उपाय है? शुद्ध आनन्दघन चैतन्यस्वरूप को ध्यान में ध्येय बनाकर ध्यानस्थ होना। शब्द पड़ा है न? '**झाएइ झाणत्थो**' ऐसा शब्द है। अन्तर मोक्ष का मार्ग तो ध्यानस्थ, ध्यान में रहकर ध्यान करना। ऐसा शब्द है। २७ गाथा। रागादि सब विकल्प जो है देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय, वैयावृत्य, संघ में रहना, वह सब शुभराग है। उसको भी छोड़कर। क्योंकि शुभराग है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। संघ में रहकर विनय देव-गुरु का करना, एक-दूसरे की सेवा करना, वाँचणी लेना, वाँचणी देना, ये सब शुभराग है, यह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : कब छोड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर आत्मा में ध्यान करके छोड़ना। छोड़ना क्या? छूट जाता है। उत्पन्न होता नहीं, उसका नाम छोड़ना। सूक्ष्म बात है। यह मोक्ष का मार्ग ही चिदानन्द ज्ञान-आनन्दस्वरूप में द्रव्य का आश्रय लेकर एकाकार होना, उसका नाम मोक्ष का उपाय है। बाकी कोई मोक्ष का उपाय दूसरा है नहीं। आहाहा! चाहे तो व्रत पाले, तप करे, अपवास करे, संथारा, विनय, वैयावृत्य, भक्ति सब शुभराग है। आहाहा! वह मोक्ष का उपाय नहीं। मोक्ष अधिकार है न! राग के भावबन्धन से मुक्त होने का उपाय अबन्धस्वरूपी भगवान आनन्द और शान्ति का रसकन्द प्रभु अकषायरस, उसका ध्यान करना, उसका आश्रय लेकर लीन होना, वही एक मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? तो कहते हैं कि आत्मा का ध्यान करने की विधि बताते हैं।

सव्वे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएइ झाणत्थो॥२७॥

मुनि की प्रधानता से कथन है न! मुनि मोक्षमार्ग में हैं। तो मोक्षमार्ग क्या? कि **सब कषायों को छोड़कर...** क्रोध, मान, माया, लोभ का विकल्प। आहाहा! छोड़कर। **गारव...** छोड़कर। ऋद्धिगारव, रसगारव, शब्दगारव, शातागारव सब छोड़कर।

मुमुक्षु : गारव अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान—गर्व। शब्द हमको बराबर आता है, दूसरे की अपेक्षा हमारी शब्द की धारा बहुत अच्छी चलती है। ऐसा अभिमान—गारव। ऐसे गर्व को छोड़ दे, प्रभु! तेरी चीज़ में अन्दर जाना है और आनन्द का ध्यान किये बिना आनन्द की प्राप्ति होती नहीं। आहाहा!

गारव। रसगारव। अन्दर में साता, पाचन हो सके हीरा-माणेक की भस्म आदि। ऐसी जठर हो, उसका अभिमान हो कि हम तो ऐसा पाचन कर सकते हैं, ऐसा हमारा जठर है। आहाहा!

वह तो कर्ता-कर्म अधिकार में आया है न? पण्डितजी ने याद किया। ... उसमें है। १४४ गाथा कर्ता-कर्म की। आत्मा अबद्ध है, शुद्ध है, एक है—ऐसे विकल्प में आना, उससे क्या? यह टीका है। पण्डितजी! ऐसी टीका है अमृतचन्द्राचार्य की। व्यवहारवाला हूँ, वह तो बात छोड़ दे, परन्तु मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ, एक हूँ—ऐसे विकल्प में आया उससे क्या? उससे आत्मा को क्या लाभ है? आहाहा! समझ में आया? क्योंकि एक विकल्प का कर्ता होता है और विकल्प उसका कर्म होता है, उस समय। वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! विकल्प सो ही कर्ता। आता है न? कलश आता है। आहाहा! वृत्ति उठती है कि मैं अभेद हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, पूर्णानन्द हूँ, मैं एक हूँ—ऐसा बोल तो आया न। २० गाथा २०। २० गाथा (कलश) ली है। उससे क्या? आचार्य कहते हैं। यहाँ तक आया विकल्प से, उससे आत्मा को क्या लाभ है? आहाहा! उस विकल्प को छोड़कर चिदानन्द भगवान के ऊपर अन्तर में जाना और ध्यान में लीन होना, वही मोक्ष का उपाय है।

वह कहते हैं देखो! **गारव, मद,...** अभिमान जाति, कुल आदि का। हमारी माता ऐसी थी, हमारे पिता के कुल में घात या हिंसा घात नहीं हुई है, ऐसे हमारे पिता। पिता क्या? आत्मा को पिता है ही नहीं न। हमारी माता ऐसी दीवान की पुत्री थी, लड़की। उसके हम लड़के हैं। ऐसा हम त्याग दिया है। क्या प्रभु? वह तो सब बाहर की सामग्री है उसमें क्या आया तेरे? आहाहा! पूजा। हमारी पूजा तो राजा हमको मानते हैं। यह पूजा का मद। माने उसमें क्या आया? समझ में आया? अनन्त सिद्ध हुए तो सब सिद्ध का नाम भी नहीं जानते हैं। तो क्या उसका पूज्यपना चला गया? अनन्त सिद्ध हुए। तो खबर है कि यह सिद्ध है? कोई जानते ही नहीं। तो उससे क्या हुआ? सिद्धपना चला जाता है? और कोई माने तो ही उसकी महत्ता रहती है? कोई दूसरा माने तो ही मोक्ष के मार्ग की अधिकाई रहती है? ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि मद छोड़ दे। मद की व्याख्या करेंगे नीचे। **राग, द्वेष तथा मोह इनको छोड़कर...** संस्कृत में उसका व्यामोह लिया है। '**दोसवामोहं**' ऐसा लो। दोष अथवा मोह अथवा व्यामोह। तो 'वा' उसमें मिला दिया। संस्कृत में ऐसा लिया है। '**रायदोसवामोहं**' और टीका में जरा पाठ में तो ... दोष अथवा मोह। सबको छोड़कर परसन्मुख की सावधानी। आहाहा! मुनि को तो दूसरा मोह है नहीं, परन्तु शिष्यादि का, शास्त्र लिखने का, शास्त्र बनाने का सावधानपना है, वह छोड़ दे। ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

मोह इनको छोड़कर और लोकव्यवहार से विरक्त होकर... वह स्पष्टीकरण करेंगे। लोक व्यवहार का अर्थ करेगा। संघ में रहने में परस्पर विनयाकार वह लोकव्यवहार। आप का लोकव्यवहार नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वह नहीं। यह लोकव्यवहार। संघ में रहने में परस्पर वनिय करना, एक-दूसरे को महत्ता देना, वैयावृत्य-सेवा करना।

मुमुक्षु : .... ऐसा करना चाहिए या नहीं करना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, करना चाहिए नहीं। होता है ऐसा, करना चाहिए नहीं। व्यवहारनय से आया है तो बताते हैं, परन्तु वह धर्म नहीं। समझ में आया? जैसे पंच महाव्रत का पालन, वह धर्म नहीं, वह राग है। उसी प्रकार देव-गुरु-शास्त्र का विनय करना, वह राग है, वह धर्म नहीं। आता है।

मुमुक्षु : .... का कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण बिल्कुल नहीं। आहाहा! छोड़नेयोग्य है। तीर्थंकरगोत्र का भाव भी राग है, जहर है, अधर्म है। आहाहा! विषकुम्भ कहा है। उससे आत्मा को लाभ नहीं। वह तो बन्ध हुआ। आहाहा! यहाँ तो मोक्ष के मार्ग का वर्णन करना है। यह तो चिदानन्द भगवान के आश्रय से निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति उत्पन्न हो, वह स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है, परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न होता नहीं। ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

लोकव्यवहार से विरक्त होकर ध्यान में स्थित हुआ... पाठ है न वह? ध्यान में स्थित हुआ आत्मा का ध्यान करे ऐसा शब्द है। पाठ है न? '**अप्पा झाएइ झाणत्थो**' '**अप्पा झाएइ झाणत्थो**' आत्मा का स्वभाव में रहकर, स्थिर रहकर ध्यान करना। ऐसा विकल्प में ध्यान करूँ, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! मोक्ष का मार्ग तो द्रव्य के आश्रय से ही उत्पन्न होता है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो' नहीं आता है छहढाला में? 'लाख बात की बात' करोड़ बात की बात, अनन्त बात की बात। चिदानन्द भगवान निश्चय है, उसको उर आणो। आहाहा! 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद आतम उर ध्यावो।' ओहोहो! भगवान जिसमें अनन्त शान्ति पड़ी है, अनन्त ज्ञान पड़ा है, अनन्त आनन्द है—ऐसा सामान्य स्वभाव जो ध्रुव, उसका ध्यान करो। आहाहा! इस जगत को कठिन पड़े, इसलिए बाहर से चला दिया मार्ग। व्यवहार, वह मोक्षमार्ग है... व्यवहार, वह मोक्षमार्ग है। धूल में भी नहीं है, सुन तो सही। जितना सर्वज्ञ ने जिनव्यवहार निमित्त हस्तावलम्ब जानकर कहा, उसका फल संसार है।

११वीं गाथा में आया है। ११वीं गाथा है न? यह तो अष्टपाहुड़ है। समयसार। **उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** व्यवहार। क्या कहते हैं? **प्राणियों को...** पण्डित जयचन्द्र स्पष्टीकरण करते हैं। **भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है।** पर्याय का लक्ष्य, राग का लक्ष्य ऐसा भेद का व्यवहार अनादिकाल से है। एक बात। **इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** एक-दूसरे ऐसा कहे कि भेद करो, व्यवहार करो, ऐसा करो। ऐसा परस्पर प्राणी करते हैं। **और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश, शुद्धनय का हस्तावलम्ब जानकर बहुत किया है, किन्तु उसका**

फल संसार ही है। आहाहा! बहुत स्पष्ट किया है। क्योंकि ११वीं गाथा तो आत्मा के आश्रय की बात है न!

'**भूदत्थमस्सिदो खलु**' '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' त्रिकाल वस्तु शुद्ध ध्रुव, वह शुद्धनय। उसको ही शुद्धनय कहा। नय और नय का विषय भेद नहीं किया पहले। '**ववहारोऽभूदत्थो**' सर्व परिणाम अभूतार्थ, असत्यार्थ है। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' भगवान ने भूतार्थ त्रिकाल सत्यार्थ को ही शुद्धनय कहा है। त्रिकाल को शुद्धनय कहा है। और '**भूदत्थमस्सिदो**' वह भूतार्थ भगवान ध्रुव, उसके आश्रय से सम्यग्दृष्टि होता है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' तो स्पष्टीकरण करना पड़ा कि व्यवहार का पक्ष तो अनादि का प्राणी को है। और प्राणी व्यवहार का उपदेश मांहोमांहे—परस्पर करते हैं। उसमें क्या आया? और जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का निमित्त जानकर बहुत किया है, बहुत किया है। किन्तु उसका फल संसार ही है। जिनवरदेव ने भी व्यवहार जितना कहा, उसका फल संसार है। सेठ! मार्ग समझना कठिन है। और यह बिना तुझे भव चला जाता है। आहाहा! समझ में आया? जन्म-मरण का अन्त आत्मा के आश्रय से होता है। कोई क्रियाकाण्ड विकल्प व्यवहार बाहर से (नहीं होता)। जिन ने व्यवहार कहा, जिनवरदेव ने कहा व्यवहार का फल संसार है। है? दूसरे की तो बात क्या करना? व्यवहार। व्रत और नियम ऐसा तप और ऐसी वैयावृत्ति करना ऐसा चरणानुयोग में आता है न व्यवहार। क्योंकि निश्चय जहाँ आत्मा का भान है, वहाँ ऐसा व्यवहार निमित्तरूप होता है, परन्तु है उसका फल संसार। आहाहा! समझ में आया? अभी सर्दी है न थोड़ी? ऋतु ऐसी है तो खांसी होती है। यह मिश्र ऋतु है न, मिश्र। सुबह में ठण्डी और दोपहर को गर्मी। वह तो हो, शरीर का स्वभाव ऐसा है। यहाँ तो परमात्मा... आहाहा! पण्डित जयचन्द्र ने ऐसी टीका लिखी है। बहुत स्पष्ट है।

कहते हैं, जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब निमित्त जानकर बहुत किया है। जिनवाणी का व्यवहार में कथन जिनवाणी में बहुत है। आहाहा! किन्तु उसका फल संसार ही है। संसार ही है। एकान्त ही सम्यक् एकान्त है। आहाहा! अपना चैतन्य भगवान के आश्रय से मोक्षमार्ग होता है, वह सम्यक् एकान्त है। मार्ग ऐसा है,

प्रभु! प्रकाशजी! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! चौरासी का अवतार, भाई! जन्म-मरण स्वयंभूरमण समुद्र जैसे पड़ा है, स्वयंभूरमण तो असंख्य योजन में है, यह तो भवसिन्धु अनन्त-अनन्त काल से चार गति है। भवसिन्धु। ओहोहो! उसमें से निकलना, वह तो चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ का आश्रय लेकर निकल सकते हैं, दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! देखो न, पण्डित जयचन्द जैसा (कहते हैं) कि भेद का लक्ष्य तो सबको है, पर्याय का भेद, राग का भेद और वह उपदेश परस्पर दोनों करते हैं और ठीक लगता है ऐसा व्यवहार कहा, बड़ी अच्छी बात करे। बड़ी अच्छी बात करे।

मुमुक्षु : व्यवहार तो होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार तो होता ही है। व्यवहार बिना निश्चय होता है? ऐसा परस्पर (उपदेश करते हैं)। समयसार की ११वीं गाथा है? ११वीं गाथा। पण्डित जयचन्दजी ने बहुत स्पष्ट किया है। क्योंकि अकेला सत्यार्थ परमात्मा भगवान त्रिलोकनाथ उसका आश्रय करना, वही धर्म का उपाय है। आहाहा! दूसरा कोई निमित्त और व्यवहार वह धर्म का कारण है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? और लोकरंजन के कारण से व्यवहार से लाभ है, ऐसा कहनेवाला नरक और निगोद में जायेगा। अपने अष्टपाहुड़ में आता है, भाई! अष्टपाहुड़ में आता है। लोकरंजन। तारणस्वामी में तो बहुत आता है तुम्हारे। तारणस्वामी में बहुत (आता है), लोकरंजन अर्थात् लोक प्रसन्न हो, ऐसा व्यवहार के आश्रय से लाभ होता है। नरक और निगोद में जायेगा। यह तो दिगम्बर की वाणी है। सन्तों की वाणी। नागा बादशाह से आघा। कहावत नहीं आती? नागा है न मुनि? नागा बादशाह से आघा। किसी को गिनते नहीं। क्या? आहाहा!

यहाँ तो आनन्द का नाथ प्रभु जिसमें अनन्त ज्ञान की, आनन्द की पर्याय जिसमें पड़ी है शक्तिरूप से, ऐसा शक्ति का साधन बनाकर शक्ति में ध्यान करना, ध्रुव का ध्यान करने से मोक्ष का मार्ग उत्पन्न होता है। वह कहा था न एकबार, ४७ गाथा है न द्रव्यसंग्रह की। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' द्रव्यसंग्रह में है। ४७ गाथा है। ४ और ७। सैंतालीस आपकी भाषा है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' निश्चय और व्यवहार '**झाणे पाउणदि**' अन्तर द्रव्यस्वभाव का ध्यान त्राटक लगाकर... आहाहा! जो ध्यान की उत्पत्ति होती है सम्यक् निश्चय ज्ञानादि, वह निश्चयमोक्षमाग्र है, बाकी

राग रहा, उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। परन्तु वह ध्यान में दोनों उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहा है। द्रव्यसंग्रह नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। लोगों को स्वाध्याय करना नहीं, अपना आग्रह छोड़ना नहीं और वास्तविक तत्त्व क्या है, उसको पकड़ने की सामर्थ्य प्रगट करता नहीं। और मान लेते हैं कि हम धर्म में है, धर्म में है। भैया! बापू! धर्म का मुख बड़ा है। आहाहा!

परन्तु शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं। ११वीं गाथा का अर्थ है। उसका उपदेश भी विरल है। द्रव्य के आश्रय से लाभ होगा, ऐसा उपदेश ही विरल है। शुद्धनय का पक्ष कहा न! त्रिकाली ध्रुव स्वरूप को दृष्टि में लेना और उसका ध्यान करना, वही मोक्ष का मार्ग है। उसका उपदेश विरल हो गया है, ऐसा कहते हैं। उपदेश विरल हो गया। कहीं-कहीं पाते हैं। **इसलिए श्रीगुरु ने शुद्धनय का ग्रहण फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है।** ११वीं गाथा में पण्डित जयचनद्रजी की टीका (भावार्थ) है।

संघ में रहने में परस्पर। लो! आहाहा! गुरु का, एक-दूसरे का विनय करना, वह भी विकल्प है। यह लोक व्यवहार है। देखा? व्यवहारनय को लौकिक कहा है न, भाई! द्रव्यसंग्रह में नहीं? लौकिक है वह तो व्यवहार। आहाहा! है उसमें? विनयाचार। एक-दूसरे का विनय करना, वह भी राग है, विकल्प है, छोड़कर अन्दर ध्यान में जाओ। आहाहा! वैयावृत्य। यह मुनियों की सेवा, मुनि मुनि की सेवा करे, वह राग है, विकल्प है। हो, वह दूसरी बात है, परन्तु उससे छूटकर मोक्ष के मार्ग में आना, वह तो उसको छोड़े तब ही आयेगा। उसमें से लाभ होगा (-ऐसा नहीं)। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... कर्तव्य बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहारनय से कर्तव्य बताया है, व्यवहारनय से। कर्तव्य है नहीं, उसको कर्तव्य व्यवहारनय से कहा, अभूतार्थनय से। वह तो अशुभ से बचने को व्यवहारनय को ऐसा कहा, परन्तु है उसका फल संसार। आहाहा! गजब बात, भाई! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु को भी होता है थोड़ा। अपने शिष्य, हमारे शिष्य बहुत हैं, ऐसा थोड़ा आ जाता है। हमारे शिष्य बहुत हुए। वह तो आ जाता है। छद्मस्थ है न! तो वह भी छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। हमारा ज्ञान सबसे बड़ा है। ऐसा बहुत लिया है टीकाकार ने अर्थ में। हमारे शिष्य का परिवार बहुत है, राज्य में मान्यता है, हमारे पास तो देव आते हैं, राजा हमको मानते हैं, सभा में हमारी अधिकाई है। ऐसा कोई गर्व आ जाये।

मुमुक्षु : भावलिंगी को भी आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावलिंगी को भी आता है न थोड़ा। छद्मस्थ है न! छठवें गुणस्थान का जरा राग है न! द्रव्यलिंगी का तो प्रश्न ही कहाँ है यहाँ। द्रव्यलिंगी तो अज्ञानी है, उसका प्रश्न नहीं। आहाहा! यह तो भावलिंग है, फिर भी अन्दर कषाय का अंश है न? संज्वलन का अंश है न उसमें? संज्वलन का अंश छठवें गुणस्थान में तीव्र है। सातवें में मन्द हो जाता है। पुरुषार्थ से, हों! संज्वलन का तीव्र उदय है तो छठवाँ है और तीव्र-मन्द उदय जड़ का है तो सप्तम, ऐसा नहीं। वह तो व्यवहार का कथन है। वह तो वहाँ लिया है पंचसंग्रह में। अध्यात्म पंचसंग्रह में दीपचन्दजी ने। कोई ऐसा माने कि संज्वलन का तीव्र उदय है तो छठवाँ गुणस्थान है। मन्द उदय होता है जड़ का तो सप्तम होता है। मूढ़ है तू। ऐसा जानते नहीं।

अपनी पर्याय में कषाय की संज्वलन की तीव्रता है तो छठवाँ है। अपने कारण से; कर्म के कारण से नहीं। छठवाँ गुणस्थान आता है न पण्डितजी! वत्तावत्तं। गोम्मटसार में। व्यक्त-अव्यक्त। गोम्मटसार में आता है। छठवीं भूमिका में व्यक्त-अव्यक्त। मूल पाठ में है। व्यक्त अर्थात् थोड़ा ख्याल में आये, ऐसी कषाय भी है और अव्यक्त अर्थात् ख्याल में न आवे, ऐसी भी कषाय है, छठवें गुणस्थान में। गोम्मटसार में पाठ—गाथा है। व्यक्त-अव्यक्त ऐसा शब्द पड़ा है। आचार्य ने तो गजब काम किया है! आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : गारव मद के अन्दर तो आ ही जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष बताया है। वह तो क्रोध, मान, माया, लोभ में भी आ

जाता है। गारव नहीं आ जाता है ? यह कहेंगे अभी। विशेष स्पष्ट कराने को। वह आयेगा अन्दर टीका में भी आयेगा। वरना क्रोध, मान, माया में गारव समा जाता है, मद समा जाता है। फिर भी गारव और मद विशेष स्पष्ट करने को विशेष बात कही है। आहाहा! और वह बाहर का अकेला लौकिक व्यवहार ने साधु ने सुधारा करनेवाला तो अज्ञान में फँसा, जाने लाभ होगा तो महामिथ्यात्व है उसमें। आहाहा!

यहाँ तो लौकिक व्यवहार उसको कहा, जिनेश्वरदेव ने जो व्यवहार कहा चरणानुयोग में, वह लौकिक व्यवहार है। आहाहा! व्यवहारनय को ही लौकिक कहा है द्रव्यसंग्रह में। अर्थ में है, अर्थ में। कहते हैं... आहाहा! बापू! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर। आहाहा! जिसको एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने में आवे, परन्तु उससे अनन्तगुणा हो तो जानने में आता है। लोक और अलोक से और तीन काल से अनन्तगुणा हो... ओहोहो! जिसकी एक समय की पर्याय में जानने की ताकत इतनी होती है, उनका कहा हुआ मार्ग है। यह कोई पामर का कथन नहीं है, प्रभु का कथन है। वह सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं कि परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा का ध्यान करता है।

भावार्थ :- मुनि आत्मा का ध्यान ऐसा होकर करे—प्रथम तो क्रोध, मान, माया, लोभ इन सब कषायों को छोड़े, गारव को छोड़े, मद जाति आदि के भेद से आठ प्रकार का है, उसको छोड़े, राग-द्वेष छोड़े और लोक व्यवहार जो... धर्मोपदेश छोड़े। धर्म उपदेश विकल्प है या नहीं ? आहाहा!

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि भी आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि इच्छा बिना निकलती है। वहाँ कहाँ (विकल्प है) ? यहाँ तो धर्मोपदेश कहनेवाला छद्मस्थ है, उसकी बात है। वहाँ कहाँ इच्छा है ? वह तो ॐ ध्वनि निकलती है। जड़ की पर्याय उत्पन्न होती है। पूर्व में तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध पड़ा था, उसके कारण से ॐ ध्वनि सारा शरीर में से। होंठ न हिले, कण्ठ न हिले। समझ में आया ? होंठ न हिले, कण्ठ न हिले। ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' बनारसीदास में आता है। बनारसीविलास में। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की ॐ ध्वनि सुनते हैं। उसमें अर्थ आता है

और सूत्र रचना गणधर करते हैं। 'ॐकार ध्वनि सुणी अर्थ गणधर विचारे।' आहाहा! बनारसीदास ने भी बहुत काम किया है। बनारसीदास। समझे? ॐ का बड़ा पद है उसमें बनारसीविलास में। ॐ का नहीं? ॐ का। प्रणव मन्त्र का पूरा पद है बड़ा। अपने यहाँ प्रकाशित है। जब यह (संवत्) १९९५ में ॐ की प्रतिष्ठा की न अन्दर? स्वाध्यायमन्दिर में नहीं है ॐ? वह इटली का पत्थर है, वह। अन्दर ॐ नहीं? समयसार के ऊपर। इटली के पत्थर में जब ॐ की प्रतिष्ठा की थी, तब वह प्रणव मन्त्र का छापाया था पेपर। बनारसीविलास में बहुत अच्छा है उसमें।

यहाँ कहते हैं कि आहाहा! धर्मोपदेश एक न्याय से तो ऐसी बात है... आहाहा! निहालभाई भी ऐसा कहते हैं कि सुनना है, वह दीनपना है और सुनाना, वह भी दीनपना है। आहाहा! निहालभाई। द्रव्यदृष्टिप्रकाश तीसरे भाग में है। आहाहा! समाधितन्त्र में भी ऐसा है। पर को सुनाना, वह पागलपन है। वहाँ तो ऐसा लिया है। पूज्यपादस्वामी ने तो ऐसा लिया है कि विकल्प उठता है कि सुनाना है, वह भी पागलपना है। आहाहा! अरे! राग है न? भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! आहाहा! यहाँ भी आयेगा, वह गाथा आयेगी। '**जं मया दिस्सदे रूवं**' २९ में आयेगा। यह समाधिशतक में भी ऐसी है। २९ में यहाँ आ गयी।

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णेव तम्हा जंपेमि केण हं॥२९॥

किसके साथ मैं बोलूँ? २९ गाथा में आयेगा। वहाँ पूज्यपादस्वामी ने कहा है, यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा)। आहाहा! बापू! भगवान! मोक्ष का उपाय तो चिदानन्द भगवान द्रव्य के आश्रय से ही उत्पन्न होता है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है तीन काल में। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' ओहो! लोगों को दिशा पलटना कठिन लगे। परसन्मुख की दिशा जबतक है, तबतक दशा राग की है। स्वसन्मुख की दिशा में आते हैं तो अरागी दशा उत्पन्न होती है। समझ में आया? आहाहा! धर्मोपदेश विकल्प है। आहाहा! दूसरा धर्म पावे तो लाभ होगा, ऐसा है कुछ? धर्मोपदेश करने से दूसरों को लाभ हो तो अपने को लाभ है, ऐसा है उसमें कोई? ऐसा है नहीं। भगवान! यह तो परमसत्य की बात चलती है, भाई!

मुमुक्षु : बारीक काँटा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काँटा, तौलने का काँटा है। वह काँटा नहीं। माप करने का काँटा है। पण्डितजी वह कहते थे। वह काँटा चुभे वह नहीं। बबूल का काँटा नहीं। यह काँटा तो निकालने की बात यहाँ है।

मुमुक्षु : हीरा तौलने का काँटा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सोने का गहना होता है न ? सोने का गहना। गहने को क्या कहते हैं ? जेबर-गहना। तो पाँच सेर सोना हो और सोना में लाख हो दो सेर, तीन सेर, तो उस गहने को जो पानी में तौले, पानी में, तो लाख का तौल उसमें नहीं आता। ऐसा स्वभाव है। क्या कहा, समझ में आया ? एक मनुष्य था उसके पास ... गहना बहुत था जवाहरात। तो वह झबेरी के पास गया। इस गहने में कितना सोना है काटे बिना निश्चित कहो। बाद में भाव कहो। वरना हम दूसरी जगह जाकर बेचना या नहीं, वह निश्चित करूँगा। जो झबेरी कहे कि भाई ऐसे कैसे ? पानी में। पानी समझे ? जल। एक जल में तराजू में सोना और अन्दर लाख और एक ओर में तौल पाँच सेर, दस सेर। तो लाख का तौल पानी में आता ही नहीं। उसका माप तो सोने का ही आयेगा। समझ में आया ? लाख गौण हो जाता है, तौल ही न आवे। पानी का स्वभाव ऐसा है। ओहोहो !

मुमुक्षु : .... डाले तो आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आता होगा अपने को खबर नहीं। यह पानी में तौलने की बात यह तो। जल में तौलने की बात, यह बात तो हमको खबर है। जल में तौलने से पाँच सेर लाख हो और दस सेर सोना हो तो दस सेर सोना आता है, पाँच सेर नहीं। इसी प्रकार अन्दर में सम्यग्दर्शन और ज्ञान से तौलने से अपनी चीज़ माप में आती है, राग माप में नहीं आता। ऐसा है, भाई ! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ। आहाहा ! सर्वज्ञदेव का मार्ग है, प्रभु ! यह कोई पाँच, पचास, सौ, दो सौ लोग मान ले, ऐसी चीज़ नहीं। यह तो भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं। आहाहा ! उनके पास गये थे और वह आया है। आहाहा !

पाठ है न ! '**लोयववहारविरदो**' वह लोकव्यवहार है, प्रभु ! आहाहा ! धर्मोपदेश करना, वह विकल्प लोक व्यवहार है। आहाहा ! छोड़ दे। क्योंकि उससे बन्ध होगा, तेरे

स्वभाव के आश्रय से मोक्ष का उपाय होगा। आहाहा! **पढ़ना...** शास्त्र पढ़ना छोड़ दे। पढ़ना वह विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसको मोक्ष का उपाय करना है, उसके लिये है। पहले श्रद्धा तो करे पहले पक्की ऐसी। यह सब विकल्प है। अपने आश्रय से लाभ हो, पर के आश्रय से बिल्कुल लाभ नहीं। आहाहा! श्रद्धा में ही बड़ी गड़बड़ी है अभी तो। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वाध्याय तो तप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाध्याय वह विकल्प है, व्यवहार तप है, निश्चय नहीं। निश्चय में स्व-अध्याय। आनन्द के नाथ में अध्याय ध्यान में लेना, वह स्वाध्याय तप है। आहाहा! मुनि का दो कर्तव्य आता है शास्त्र में। ध्यान और स्वाध्याय। ध्यान, वही चीज़ है मुख्य परन्तु उसमें रह सके नहीं तो विकल्प ऐसा आता है। वह विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? बारह अंग का ज्ञान, वह भी विकल्पात्मक है—ऐसा लिया है। कलशटीका। कलशटीका है न? कहाँ आयी? ये? ये?

इस प्रसंग में... देखो! **आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है?** बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है, ऐसा कोई जाने। उसके प्रति समाधान। द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है। उसमें भी ऐसा कहा है। **शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है।** भगवान पूर्णानन्द का नाथ की अनुभूति, वह मोक्षमार्ग है। बारह अंग का ज्ञान भी परलक्ष्यी बहुत विकल्प उठते हैं। आहाहा! **इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पढ़ने की कुछ अटक नहीं।** देखो! अटक नहीं कुछ। आवे, विकल्प हो, अटक नहीं। शुद्धात्मानुभूति परमात्मा आनन्द का नाथ, ऐसा अनुभव होने पर शास्त्र पढ़ने की कुछ अटक नहीं। यह राजमल टीका दोपहर को चलती है।

पढ़ना। शास्त्र सन्मुख का झुकाव होता है तो विकल्प उठते हैं। यह तो मोक्ष के उपाय की बात चलती है न? आहाहा! लोकव्यवहार उसको कहते हैं। आहाहा! बाहर

का व्यवहार सुधारा, वह बात नहीं है यहाँ। भाई! वह क्या कहलाता है तुम्हारे? पैसा लेते हैं न। कन्या के। करियावर नहीं। उसकी भाषा, दहेज। अपने दहेज कहते हैं। वह तो सब व्यवहार है, उसकी बात यहाँ है ही नहीं। दहेज न लो वह व्यवहार है। वह तो व्यवहार भी यहाँ नहीं। आहाहा! सुधार करो जाति का, कुटुम्ब का, ऐसा, फैसा। कौन करे? सुन तो सही। क्या आवश्यकता है? आवश्यकता यह एक ही है। बाकी सब शून्य है। मर जायेगा तब क्या दुनिया को सुधारो, कुटुम्ब को सुधारो। तुझे क्या लाभ हुआ उसमें? वह तो उसकी पर्याय से सुधरेगा, न सुधरेगा। तुझे क्या लाभ हुआ उसमें? आहाहा! मार्ग यह है भाई! आहाहा! यह तो नग्न मुनि। पर का सम्बन्ध क्या है? पर की दया पाल सकते नहीं। आहाहा! पर को मार सकते नहीं, पर को सुखी-दुःखी कर सकते नहीं, पर की पर्याय क्यों करे आत्मा? आहाहा! यह तो अपनी पर्याय में जो राग आता है, जैन में व्यवहार से जो कहा वह, वह भी बन्ध का कारण है, नाथ! आहाहा! मोक्ष का उपाय, वह विकल्प (जो) बन्ध का कारण है, वह नहीं। उसको छोड़कर अन्दर समा। शान्तिस्वरूप भगवान उस ओर की दृष्टि करके वहाँ लीन हो जा। वही मोक्ष का उपाय है, भाई! समझ में आया?

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह मोक्षमार्ग स्व के आश्रय से उत्पन्न होता है। व्यवहार से तो बन्ध होता है। आहाहा! जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार। बन्ध अधिकार में आता है। जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार अभव्य भी पालता है। बन्ध अधिकार में है। उसमें क्या आया? जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार, वह तो बन्ध का कारण है। वह तो अभव्य भी करता है। समझ में आया? आहाहा! धर्मोपदेश का, पढ़ने का विकल्प छोड़ दे, नाथ! आहाहा! क्योंकि पढ़ना हो, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! वह मोक्ष का उपाय नहीं।

यह तो अजर प्याला है, भाई! जिसे जन्म-मरण का अन्त लाना हो, उसकी बात है। बातें करनी हो और अपने को बड़ा मानना हो, हम बड़ा हुआ, बड़ा का काम किया, बहुत किया और अभिनन्दन दे बड़ा उसको। उसमें आया क्या? आहाहा! ऐई! सेठ! हमारे सेठ को अभिनन्दन देते थे तो ना कही। सेठ को अभिनन्दन देते थे। बुलाया था। सेठ ने काम बहुत किया। सब निश्चित हो गया था। अभिनन्दन ऐसा करना, वैसा करना।

सेठ ने यहाँ से लिख दिया। भाई को लिखा शोभालालजी को। अभिनन्दन हम नहीं लेंगे। कोई था? फूलचन्द था। वह हमें खबर नहीं। बाहर में क्या हुआ, प्रभु! अभिनन्दन तो तेरे अन्दर में से आना चाहिए। आहाहा! पाटनीजी! दुनिया महिमा करे तो संसार में बड़ा हो गया। धूल में क्या हुआ? वह तेरा रिपोर्ट दे, क्या कहलाये वह? प्रमाणपत्र दे। सर्टिफिकेट। यह अज्ञानी साधारण प्राणी सर्टिफिकेट दे, उसकी कीमत कितनी! कहो, परमेष्ठीदासजी! यहाँ तो परमेष्ठी की... की बात है, भगवान!

मुमुक्षु : परमेष्ठी होने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मोतीलालजी आये या नहीं? नहीं आये? बहुत काम होगा। तुम्हारे मगनलालजी की बात करते हैं।

पढ़ना-पढ़ाना है... बात देखो तो सही। शास्त्र की वाँचना देना, वह भी विकल्प है, राग है। दुनिया के साथ मेल नहीं खाये वह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहा न, व्यवहार-व्यवहार, निश्चय नहीं। शास्त्र स्वाध्याय करके ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व की लब्धि हुई, उसमें क्या हुआ? वह तो आ गया पहले कि आत्मा का ज्ञान बिना शास्त्र का अकेला ज्ञान, यह लौकिक ज्ञान, वह सब ज्ञान नहीं, वह सब अज्ञान है। वह आया अपने समयसार पहले कलश में। कलश में आया न? कि अजीव का ज्ञान, कर्म का ज्ञान, धर्मास्ति, अधर्मास्ति का जाननपना और अशुद्ध जीव का जाननपना, वह ज्ञान नहीं, वह ज्ञान नहीं। ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। आहाहा! गजब बात है, भाई! शुद्ध आत्मा को ज्ञान और आनन्द है। पूर्णानन्द का नाथ जो परम दशा प्रगट की, उसको ज्ञान और आनन्द है। उसको जाननेवाले को ज्ञान और आनन्द है कि ऐसा ही मैं हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : .... को भी ऐसा कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का जानना दु:ख है। आत्मा का ज्ञान बिना अकेला पर का जानना दु:ख है। क्योंकि सुख नहीं तो दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' तो पंच महाव्रत आदि शास्त्र का ज्ञान नहीं करता?

उसको नहीं था? शास्त्र ज्ञान नहीं करते थे? निवृत्त कितना! शुक्ललेश्या से नौवें ग्रैवेयक गये। 'मुनिव्रत धार ग्रीवक उपजायो।' तो उसमें ज्ञान नहीं करते थे? शास्त्र का ज्ञान नहीं था उसको? 'पै निज आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' समझ में आया?

मुमुक्षु : शास्त्रज्ञान था, आत्मज्ञान नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्रज्ञान तो, कहा न भाई ने कहा, दुःख है। वह तो कहा था। वह दुःख न हो तो आत्मज्ञान से भी सुख न पाया। तो पर के ज्ञान से सुख न मिला, दुःख है। आहाहा! गजब बातें बापू वीतराग मार्ग की! आहाहा! परमात्मा आनन्द का कन्द नाथ जिसमें ज्ञान और आनन्द में नहीं आवे, तब तक सब व्यर्थ है। आहाहा!

पढ़ाना है, उसको भी छोड़े, ध्यान में स्थित हो जावे...

मुमुक्षु : सोनगढ़ में सुनने को जाते हो क्यों?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने को जाते हैं, यह निर्णय करने को। ऐसा कहते थे एक जन। एक को प्रश्न पूछा था। वढवाण का केशुभाई है, यहाँ था, अभी गये। अपने केशुभाई नहीं? बनिया है व्यापारी। नया विवाह किया है। उसको पूछा था। होशियार व्यक्ति। निमित्त से कुछ होता नहीं, पर से कुछ होता नहीं तो वहाँ सुनने को क्यों जाते हो? कि हम सुनने इसलिए जाते हैं कि निमित्त से होता नहीं, राग से नहीं होता, यह दृढ़ करने को हम जाते हैं। पण्डितजी! ऐसा जवाब दिया। वह चले गये अभी।

मुमुक्षु : यहाँ निमित्त में दृढ़ता आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृढ़ता अपने से आयी है, पर से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... न हो ऐसी दृढ़ता आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे। बहुत बातें आयी। भाई! पूरा संसार उथला कर डाला है। पूरा संसार गुलाँट खा जाये। आहाहा! मार्ग प्रभु का अलग भाई! 'यह हरि का मारग है शूरों का, यह कायर का नहीं काम जोने। प्रथम पहेला मस्तक मूकी वणतां लेवुं नाम जोने।' व्यवहार की शून्यता रखे बिना चैतन्य सन्मुख दृष्टि नहीं जायेगी। 'प्रभुनो रे मार्ग है शूरानो।' आहाहा! 'यह कायर का...' ये पुण्य के परिणाम में रोकनेवाले पामर, कायर का यह काम नहीं। समझ में आया? परमेष्ठीदासजी! यहाँ तो यह बात है,

भगवान! आहाहा! क्या कहे? अरेरे! तीन लोक का नाथ का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में तीन लोक के नाथ नहीं रहे। भरत के भगवान, न रहे महाविदेह के भगवान यहाँ। आहाहा! उनके विरह में जगत ने मार्ग दूसरा कर डाला। उनका कहा हुआ मार्ग उसकी श्रद्धा में भी नहीं आया। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ क्या कहते हैं? **ध्यान में स्थित हो जावे...** ध्यानस्थ शब्द पड़ा है न? '**अप्पा झाएइ झाणत्थो।**' ऐसा शब्द है। '**अप्पा झाएइ झाणत्थो।**' ध्यान में स्थिर होकर ध्यान करे। ऐसे मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा विकल्प नहीं। ऐसा तो विकल्प का ध्यान तो अनन्त बार किया। उसमें आता है मोक्षमार्ग में। विनय, वैयावृत्य, सज्झाय, ध्यान भी अनन्त बार किया है। बाह्य तप और अभ्यन्तर, उसमें ध्यान लिया है मोक्षमार्ग में। विनय, वैयावृत्य, सज्झाय, ध्यान और व्युत्सर्ग। ध्यान करूँ, ध्यान करूँ, वह सब तो विकल्प है। यह विकल्प ध्यान का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? ध्यान में स्थित हो जावे। ऐसा तो ध्यान अनन्त बार किया विकल्प से कि आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है। वह तो पर्याय में रहकर, द्रव्य को भिन्न जानकर, द्रव्य ऐसा है, ऐसा है कहते हैं। परन्तु पर्याय में खड़ा होकर द्रव्य में ऐसा है, ऐसा है। परन्तु पर्याय को द्रव्य में झुकाया, तब यथार्थ ध्यान होता है। तो पर्याय को द्रव्य में झुका दे। पर्याय में रहकर यह द्रव्य है... यह द्रव्य है... वह तो विकल्प है, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में खड़ा रहकर यह द्रव्य है... यह द्रव्य है, वह तो विकल्प है। उस शब्द में कारण रखा है उसमें। ध्यानस्थ ध्याये। आहाहा! गजब बात है! सन्तों की एक-एक वाणी में बड़ा गर्भ भरा है। ध्यान हुआ नहीं, परन्तु यह मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा हूँ—ऐसा विकल्प में आया, वह ध्यान नहीं।

मुमुक्षु : ध्यान, ध्याता, ध्येय का न विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प नहीं। छहढाला में आता है। ज्ञेय, ज्ञाता ज्ञेय का विकल्प नहीं, भेद नहीं। आहाहा! ऐसे ध्यान में स्थित हो जावे। यह अर्थ किसका किया? ध्यानस्थ।

इस प्रकार आत्मा का ध्यान करे। 'ध्यानस्थ ध्याये।' ऐसे ध्यान करे कि यह

पर्याय है, यह द्रव्य है, यह अशुद्ध है, यह मैं जानता हूँ। परन्तु पर्याय में रहकर यह है, ऐसा है (करे) वह ध्यानस्थ नहीं, वह ध्यान नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में खड़ा रहकर (विकल्प करे कि) द्रव्य यह है, वह ध्यान नहीं। वह पर्यायबुद्धि में पड़ा है वह तो। पर्याय से द्रव्य भिन्न रह गया। सूक्ष्म बात है न, भगवान! आहाहा!

'झाणत्थो झाएइ अप्पा' इतना शब्द रखा है। अन्दर में ध्यान में स्थित रहकर ध्यावे। भिन्न रहकर ध्यावे कि यह ऐसा है, फैसा है, वह वस्तु बन्ध का कारण है। अब उसमें पूछता है कोई कि कषाय में तो सब आ गया गारव आदि मद न? तो भिन्न क्यों कहा? वह स्पष्टीकरण करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ४, मंगलवार, दिनांक १२-०३-१९७४
गाथा - २७ से २९, प्रवचन-१२५

... गारव और मद को छोड़कर अपने आत्मा का आश्रय लेकर ध्यान करे, यह मोक्ष का उपाय है। अन्तर चैतन्य द्रव्यस्वभाव ध्रुव भूतार्थ सत्यार्थ पदार्थ त्रिकाल का आश्रय करना, उसमें एकाग्र होना, वह मोक्ष का उपाय है। बाकी सब बात व्यवहार की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रागादि, विनय आदि कहा न। वैयावृत्य, धर्मोपदेश, पढ़ना-पढ़ाना, यह सब विकल्प राग है। व्यवहार व्यवहारनय वह तो लोकव्यवहार है। ... पर्याय प्रगट हो, वही व्यवहार है। सद्भूतव्यवहार। निश्चय तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव निष्क्रिय, वह निश्चय है और उसके आश्रय से मोक्षमार्ग सच्चा निश्चय प्रगट हो, निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट हो, वह भी व्यवहार है। निश्चय मोक्षमार्ग, वह पर्याय है। पर्याय है, वह द्रव्य की अपेक्षा से व्यवहार है।

मुमुक्षु : जैनधर्म में ऐसा व्यवहार हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म में ऐसा व्यवहार कहने में आता है। सूक्ष्म बात है। वह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिया है। परमार्थ वचनिका में लिया है बनारसीदास ने। पंचाध्यायी में है। यह तो बनारसीदासजी ने तो स्पष्ट साधारण शब्द में लिया है कि अपना द्रव्यस्वभाव शुद्ध त्रिकाली, वही निश्चय है और मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। मोक्षमार्ग— निश्चय मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : हम तो ऐसा समझते हैं, व्यवहार करते राग और राग करते करते निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो असद्भूत व्यवहार। समझ में आया ? है यहाँ मोक्षमार्ग (प्रकाशक) ? यह ? मोक्षमार्ग को साधना, वह व्यवहार। पर्याय है न ? और शुद्ध द्रव्य अक्रिय, सो निश्चय। ध्रुव निष्क्रिय है न ? उसका परिणमन कहाँ है ध्रुव में ? परिणमन

तो पर्याय में है। वह लिया। परमार्थ वचनिका है। वह पहले लिखी थी बनारसीविलास में। वह छप गयी पहले। मिलती नहीं लोगों में, कहा प्रकाशित करो। बहुत हजार छपी थी। (संवत्) १९९० के वर्ष पहले की बात है। ९० के वर्ष पहले ... ओहोहो! यह तो बड़ी अच्छी है। बाहर में तो है नहीं। तो पहले बहुत पुस्तक छपवायी। मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे डाल दिया तीनों।

क्या कहते हैं देखो! 'अन्तर दृष्टि के प्रमाण में मोक्षमार्ग सधे।' अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान ध्रुव, अन्तर दृष्टि, अन्तर ज्ञान और अन्तर की स्थिरता द्वारा मोक्षमार्ग सधे। 'और सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरण की कणिका जगने पर...' और सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदन, राग से भिन्न होकर स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष, ज्ञान का वेदन 'और स्वरूपाचरण की कणिका' तीन बोल लिये। अन्तर दृष्टि, स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूपाचरण। स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी का अभाव होता है, इतना स्वरूप आचरण चौथे गुणस्थान में होता है। यह कणिका जगने पर अन्तर दृष्टि के प्रमाण में मोक्षमार्ग साधे और सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरण की कणिका जागने पर मोक्षमार्ग सच्चा। तब मोक्षमार्ग सच्चा। आहाहा!

वस्तु चिदानन्द भगवान पूर्ण आनन्द ध्रुव, वह निष्क्रिय है। उसमें परिणमन है नहीं, वह कूटस्थ है। उसका आश्रय करके जो अन्तर दृष्टि हुई, अन्तर ज्ञान स्वसंवेदन हुआ, स्वरूपाचरण की कणिका जागी, उसका नाम सच्चा मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग को साधना, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : साधने का प्रयास।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय-पर्याय। मोक्षमार्ग को साधना, वह पर्याय वह व्यवहार है। द्रव्य, वह निश्चय और पर्याय, वह व्यवहार है। वह पंचाध्यायी में आया न, पण्डितजी! पर्याय वह व्यवहार है। भेद हुआ न पर्याय? तो व्यवहार है। भेद हुआ। वह तो अपने आ गया न उसमें कि अभेद, वह द्रव्य और भेद, वह गुण। यहाँ गुण लिया, परन्तु भेद, वह पर्याय है। गुण... गुण की पर्याय लक्ष्य में आती है। सम्यक् निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय स्वरूपस्थिरता, वह तीनों पर्याय हैं। तो त्रिकाली द्रव्य जो है, वह निष्क्रिय है और परिणमन जो होता है सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान

आदि वह पर्याय है, वह तो व्यवहार है। आहाहा! बाहर के व्यवहार तो कहीं रहा तुम्हारा और दया, दान, व्रत और विकल्प, वह व्यवहार असद्भूत तो कहाँ रह गया। परन्तु मोक्षमार्ग में भगवान ने ... समझ में आया? आहाहा! देखो न! परमार्थ वचनिका। बनारसीदास। बनारसीदास ने लिखा है। पहले जब वाँचे तब तो ओहोहो! यह बात गुप्त क्यों रह गयी? बनारसी विलास में। बनारसी विलास में है। हजारों पुस्तक बाहर आ गयी हैं।

शुद्ध स्वरूप शुद्ध द्रव्य अक्रियरूप है। इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का स्वरूप सम्यग्दृष्टि जानता है। मिथ्यादृष्टि को व्यवहार क्या और निश्चय क्या, उसकी कुछ खबर नहीं। आहाहा! मूढ़ जीव न जानता है, न मानता है, मूढ़ जीव बन्धपद्धति को साधकर मोक्ष कहता है। राग की क्रिया साधकर माने कि हमारे मोक्ष होता है, हम मोक्षमार्ग में हैं। आहाहा! मूढ़ जीव। यह बात ज्ञाता नहीं माने। धर्मी ऐसा नहीं माने कि राग से धर्म होता है और राग से मोक्षमार्ग होता है। धर्मी ऐसा नहीं माने। इसलिए बन्ध के साधने से बन्ध सधता है, मोक्ष नहीं सधता। आहाहा! लम्बी बात है। अध्यात्म सन्देश में यह सब व्याख्यान यह गया है। अध्यात्म सन्देश है? पुस्तक अध्यात्म सन्देश न? तीनों चिट्ठी का व्याख्यान आ गया है। स्पष्टीकरण। रहस्यपूर्ण चिट्ठी, परमार्थ वचनिका, उपदान-निमित्त। तीन चिट्ठी हैं बनारसीदास की। उसमें डाला है मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे। उसका व्याख्यान हुआ है। अध्यात्म सन्देश। है या नहीं? पण्डितजी! अध्यात्मसन्देश मिला है? पण्डितजी को वहाँ ले जाना। भेंट का पुस्तक है, उसमें जो उसको लेना हो वह ले लेना। दे देना, वह माँगते नहीं। यहाँ मुझे दूसरा कहना है। वहाँ भेंट का पुस्तक बहुत है। तो उसमें उसे जो-जो चाहिए उसको दे देना। सारी अलमारी भरी है। दो पण्डित को दिया। तुम्हारे थोड़ा लेना हो तो ले लेना। यहाँ आये तो ले जाओ तो सही। पुस्तक है वहाँ। पण्डितजी को भी बता देना थोड़ा। वह अलमारी में से। आत्मवैभव, आत्मा... क्या कहलावे? प्रसिद्धि। अध्यात्म सन्देश ऐसी-ऐसी बहुत पुस्तक रखी हैं भेंट की। तो पण्डित लोगों को तो दे दो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यहाँ कहते हैं अपने। वहाँ तो वह बात आयी। यहाँ तो **सब कषायों को छोड़ना कहा है...** यहाँ प्रश्न चलता है अब। **उसमें तो सब गारव मदादिक आ गये, फिर इनको भिन्न-भिन्न क्यों कहे?** प्रश्न उठा। **उसका समाधान इस प्रकार है**

कि ये सब कषायों में तो गर्भित हैं, किन्तु विशेषरूप से बतलाने के लिए भिन्न-भिन्न कहते हैं। उसका खास विशेष बताने को गारव और मद को कषाय से भिन्न कहने में आया है। **कषाय की प्रवृत्ति इस प्रकार है - जो अपने लिये अनिष्ट हो, उससे क्रोध करे; अन्य को नीचा मानकर मान करे; किसी कार्य निमित्त कपट करे; आहारादिक में लोभ करे। यह गारव है वह रस, ॠद्धि और साता ऐसे तीन प्रकार का है...** रस गारव, ॠद्धि गारव और साता गारव। टीका में शब्द गारव लिया है एक। शब्द का गारव लिया है। वह टीका है न उसमें। हमको शब्द आता है, बराबर हम बोल सकते हैं, ऐसा अभिमान। रस गारव, ॠद्धि गारव। अपनी बड़ी ॠद्धि थी। हम तो बड़े करोड़पति थे और हमने दीक्षा ली है। और हमको माननेवाला बड़े-बड़े राजा हैं, ऐसी ॠद्धि का गर्व छोड़ देना चाहिए। उसके बिना अन्तर का ध्यान होगा नहीं। आहाहा! साता गरव। शरीर बहुत सुन्दर हो। साता। हमको तो ७०-८० वर्ष हुए कभी सौंठ चोपड़ी नहीं। सौंठ-सौंठ। कभी रोग आया ही नहीं। ऐसा गर्व करे। क्या है ? यह तो शरीर जड़ की दशा है। साता-असाता हो, रोग आदि आता है। आहाहा! गर्व न करना, ऐसा कहते हैं। **ये यद्यपि मानकषाय में गर्भित हैं तो भी प्रमाद की बहुलता इनमें है, इसलिए भिन्नरूप से कहे हैं।** लो!

अब **मद-जाति,...** का मद। माता का पक्ष। हमारी माता दीवान की लड़की है, राजा की लड़की है। सिंघई की। सिंघई क्या कहते हैं ? संघवी। सिंघई कहते हैं ? सिंघई की लड़की है तो क्या हुआ उसमें तेरे ? ऐसा गर्व न करना। **लाभ,...** होता है शिष्य का, इज्जत का, पुस्तक का गर्व नहीं करना। **कुल...** पिता का। पिता का कुल हमारा, पिता का कुल बड़ा चक्रवर्ती सारा राजवंशी हम हैं। राजवंशी आत्मा है ही नहीं। **रूप,...** शरीर का सुन्दर रूप, कामदेव जैसा रूप हो। अभिमान करे कि हमारे जैसा कोई नहीं। अरे! रूप तो राख है। आहाहा! सनतकुमार को रूप का गर्व हुआ तो शरीर में ईयल पड़ गई। कीड़ा पड़े। सनतकुमार चक्रवर्ती। आहाहा! उसमें रूप का गर्व क्या ? रूप वह तो मिट्टी धूल है। एक क्षण में पलट जाये। जीवाँत-जीवाँत क्या कहते हैं ? कीड़ा पड़ जाये। आहाहा!

कहा था न ? एक बहिन की बात नहीं कही ? लड़की की एक बात थी। लाठी

की लड़की थी एक। दो वर्ष का विवाह। रूपवान लड़की। बहुत रूपवान थी। शीतला निकली शीतला। शीतला समझे न? माता। यह प्रत्येक दाने में ईयल। प्रत्येक दाने कीड़ा पड़े। ईयल-ईयल। एक-एक दाने में ईयल। छोटी उम्र, दो वर्ष का विवाह, रूपवान। ऐसे रजाई में डाले। रूपवान शरीर था, लो! ऐसे करे वहाँ हजारों कीड़े ऐसे निकले। ऐसे करे तो हजारों कीड़े ऐसे। गद्दी-गद्दी क्या कहते हैं? गद्दे में सुलावे। पीड़ा... पीड़ा... माँ! ऐसा बोली बेचारी। मरने की तैयारी अब। हे माँ! बा! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। यह क्या हुआ? मुझसे सहन नहीं होता। सोने जाए, ऐसे पड़े। कीड़े—एक-एक दाने में कीड़े। यह रूप क्या है धूल? आहाहा! किसका गर्व करना? सनतकुमार को गर्व हुआ तो ईयल पड़ गयी अन्दर, जीवांत पड़ गई। थूक। धूल-मिट्टी है। सिर में एक जीवांत पड़ जाती है। ऐसे करे तो ईयल निकले। ईयल अर्थात् कीड़ा। आहाहा! किसका मद करना?

और **तप,...** का मद। हम बहुत तप कर सकते हैं। महीना-महीना के अपवास करते हैं, ऐसा रूखा खाते हैं। क्या है? **बल,...** का मद। सुभट। **विद्या,...** का मद। शास्त्र सीखा हो, उसका विद्या का मद। **ऐश्वर्य**- मद। अपनी महत्ता हो कोई आचार्यपद आदि पदवी मिली हो। **इनका होता है, वह न करे। राग-द्वेष प्रीति-अप्रीति को कहते हैं, किसी से प्रीति करना...** यहाँ क्या कहते हैं? यह सब छोड़कर, यह छोड़े तो आत्मा का ध्यान हो सकता है। भगवान आत्मा में अन्दर लीन होना, बाहर के आश्रय में विकार छोड़े, छोड़े तो अन्दर जा सके। ऐसी कल्पना में कल्पना में रहे तो अन्दर कैसे जा सके? आहाहा! और धर्म और मोक्ष का उपाय तो स्वद्रव्य के आश्रय से है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं। आहाहा!

लक्षण के भेद से भेद करके कहा। मोह नाम पर से ममत्वभाव का है, संसार का ममत्व तो मुनि के है ही नहीं, परन्तु धर्मानुराग से शिष्य आदि में ममत्व का व्यवहार है, वह भी छोड़े। यह मेरा शिष्य है बड़ा होशियार। छोड़, क्या शिष्य और गुरु है कहाँ तत्त्व में? आहाहा! यहाँ तो आत्मा सन्मुख का झुकाव, ध्यान... यह शब्द आता है न कलश में नहीं? निभ्रत-निश्चिन्त। निभ्रत। यह कलश में आता है निभ्रत। निभ्रत का अर्थ कल्पना रहित, चिन्ता रहित। एक कलश में आता है। अमृतचन्द्राचार्य का। आहाहा!

निभ्रत। जिसको कल्पना नहीं, चिन्ता नहीं, किसी प्रकार की। धार्मिक विकल्प की चिन्ता नहीं जिसको। आहाहा! वह आत्मा का अन्दर दर्शन, आनन्द का दर्शन कर सकता है।

भगवान पूर्णानन्द ध्रुव उसके ऊपर दृष्टि कब जाये? कि बाहर से सब विकल्प की महत्ता छोड़कर, दुनिया हमको ऐसे मानते हैं, हमारा पद बड़ा है-फड़ा है, उसमें रुक जाये तो अन्दर नहीं जा सके। और अन्तर (में) गये बिना धर्म की पर्याय-मोक्ष का उपाय नहीं सध सकता। आचार्य मोक्षपाहुड़ में यह कहते हैं। ओहो! **ये ध्यान के घातक भाव हैं, इनको छोड़े बिना ध्यान होता नहीं है, इसलिए जैसे ध्यान हो वैसे करे।** अब २८।

★ ★ ★

गाथा - २८

आगे इसी को विशेषरूप से कहते हैं— आगे कहते हैं अब।

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा॥२८॥

आहाहा! भाषा कैसी है देखो! उसमें आया था न? '**झाएइ झाणत्थो**' २७वाँ ऐसा आया था। '**झाएइ झाणत्थो**' यहाँ आया '**जोयत्थो जोयए।**'

अर्थ :- योगी ध्यानी मुनि है, वह मिथ्यात्व... को छोड़ दे। मिथ्यात्व छोड़े बिना अन्तर का ध्यान हो सकता नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व,... आदि बहुत मिथ्यात्व का प्रकार है न। उसमें टीका में तो बहुत लिया है सब।

मुमुक्षु : ....पहले छोड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले ही छोड़े। उस समय उसको ध्यान करना है न। तो ध्यान करते समय मिथ्यात्व का अभिप्राय नहीं होना चाहिए, इतनी बात है। वह तो पहले योगी हुआ है, परन्तु योगी होने के पश्चात् भी कोई शल्य घुस जाये तो छोड़ देना। सूक्ष्म बात है। श्वेताम्बर आदि में है, वह सब मिथ्यात्व मार्ग। उस मिथ्यात्व को न छोड़े तो अन्दर ध्यान न हो सके, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

मिथ्यात्व, अज्ञान,... यह तो छोड़ने की बात करते हैं न ध्यान में? और **पुण्य-पाप इनको मन-वचन-काय से छोड़कर...** कोई भी विपरीत अभिप्राय का अंश नहीं रहना चाहिए। यदि विपरीत अभिप्राय का अंश रहेगा तो अन्तर्मुख ध्यान नहीं हो सके। आहाहा! समझ में आया? और अज्ञान जो रह जाये तो भी अन्तर का ध्यान नहीं हो सके और पुण्य-पाप का प्रेम रह जाये, भाव का-शुभ-अशुभभाव का प्रेम रह जाये तो अन्दर ध्यान नहीं हो सके। आहाहा! यह तो भाई! जिसको आत्मा का कल्याण करना हो, उसकी बात है। आहाहा! मोक्ष का अधिकार है न? मोक्षप्राभृत है न? तो उसका उपाय तो स्व चैतन्यमूर्ति निष्क्रिय द्रव्यस्वभाव का अवलम्बन लेना, उसमें दृष्टि का पसरना, ज्ञान की पर्याय को उसमें ध्रुव को ज्ञेय बनाना और स्वरूप में स्थिरता करना, वह स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। तीन लोक का नाथ, समवसरण और तीर्थंकर वाणी हो, उसके लक्ष्य से तो राग ही होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? पूर्णानन्द का नाथ, आहाहा! ध्रुवस्वरूप जिसकी दृष्टि में निर्विकल्प प्रतीति में आ गया, वह चीज़ है। वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। कहो, सेठ! दान दिया, पैसा दिया, उससे धर्म हो जायेगा। मन्दिर बना दे पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये का।

मुमुक्षु : सब मान कषाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान कषाय एक ओर रखो। मान से करते है तो पाप। परन्तु यह तो शुभभाव से करे। धर्मानुराग होता है, वह राग भी बन्ध का कारण है। सूक्ष्म बात, भगवान! वीतराग मार्ग यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा अनन्त कह गये, वर्तमान में परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में। वहाँ गये थे कुन्दकुन्दाचार्य। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। तेरा कल्याण करना हो तो प्रभु! भगवान तो ऐसे कहते हैं। आहाहा! भाई! तेरी द्रव्यशक्ति अनूप अमाप ऐसी पड़ी है अन्दर। इस द्रव्यशक्ति का अवलम्बन और आश्रय लेना, वही मोक्ष का उपाय है, बाकी सब बातें हैं। समझ में आया? जगत को उपदेश देकर प्रभावना करो। उपदेश देना, वह भी विकल्प है। वह तो आ गया कल, धर्मोपदेश पढ़ना, पढ़ाना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चले परन्तु, हो ये बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : .... बहुत फैलाव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी अपने में ठिकाना नहीं और उनमें कौन करता था? अभी जैन के लोगों को जैन की खबर नहीं, जैनपना कैसा है, मोक्षमार्ग उसकी तो खबर नहीं और यूरोप और अमेरिका में फैलाव करना है। वह सब विकल्प है राग। और अपना क्या है, अपना करना, उसकी तो खबर नहीं। भाई! यहाँ कोई सिफारिश कुछ चलती नहीं वीतरागमार्ग में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिफारिश तीन काल में कहीं नहीं चलती। वीतरागमार्ग है यह। आहाहा! उसकी श्रद्धा और ज्ञान के लक्ष्य में तो निश्चित करे। यह निश्चित तो करे। मैं चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, आनन्द और ज्ञान का सागर मेरा स्वभाव, उस ओर के झुकाव से आश्रय से जो पर्याय प्रगट हो, वही धर्म है, बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : जन्मजात हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्मजात दिगम्बर का भान परन्तु कब है? यह अपने कहते थे भाई इन्द्रलाल था न? जयपुर। शास्त्री। वह कहते थे कि दिगम्बर में जन्मे, उन सबको भेदज्ञान है। अरे! भान भी कुछ नहीं होता। जन्मजात क्या हुआ उसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गये। बराबर है। तो जन्मजात हुआ है। आहाहा!

यहाँ तो अन्तर स्वरूप दिगम्बर नाम दिग् अर्थात् आकाश के जैसे वस्त्र नहीं, ऐसा जिसको विकल्प की वृत्ति नहीं इसमें। निर्विकल्प आनन्द का धाम परमात्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द सागर से डोलता है। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द सागर अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल भरा है। आहाहा! उस ओर की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता

करना, वही एक मोक्ष का मार्ग है, बस। बाकी सब लाख बात करे। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो। छोड़ी जगत द्वंद फंद आतम उर ध्यावो।' आत्मा ध्यावो प्रभु! यह वस्तु है, भाई! थोड़ा किया बहुत... लिखते हैं न? थोड़ा लिखा बहुत करके जाणजो। विवाह में लिखते हैं न? यहाँ परमात्मा कहते हैं कि बापू! मैं तो इतना कहता हूँ, उसमें से जान लेना तू। आहाहा! जिसे अपना चिदानन्द प्रभु दृष्टि में लेना है, ज्ञान में वेदना है, चारित्र में स्थिर करना है, (वह) पर का आश्रय छोड़ दो। चाहे तो भगवान की वाणी सुनना, वह भी राग है। कठिन बात, भगवान! भगवान की भक्ति करना, त्रिलोकनाथ साक्षात् परमात्मा हो समवसरण में, उसकी भक्ति अनन्त बार की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जितना राग है, उतना तो है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। राग आता है, (वह) दूसरी बात है। होता है व्यवहारनय का विषय, परन्तु है बन्ध का कारण। उसमें रुचि नहीं। रुचि बिना आता है। आहाहा! भारी कठिन काम! व्यवहार आता है अवश्य, गणधर भी सुनते हैं। है विकल्प-राग। यह निश्चित करे बिना उसकी दृष्टि शुद्ध नहीं होगी। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु! हमारे सामने तुम देखते हो। तेरे सम्मुख देख। आहाहा! क्योंकि हमारे सामने देखने से तुझे तो विकल्प (होगा)। हम परद्रव्य है। तो **'परदव्वादो दुग्गइ'** परद्रव्य के लक्ष्य से तुझे राग ही आयेगा। वह चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! तीर्थंकर जैसे कहे कि हम छद्मस्थ जब थे... समझ में आया? आहार लेने को जाते थे। आहार है उनको। निहार नहीं। तीर्थंकर को जन्म से आहार हो, जन्म से निहार तो नहीं। तीर्थंकर। आहार हो। वह दीक्षित होते हैं तो आहार होता है, निहार नहीं। परन्तु कहते हैं कि हमको आहार देने का भाव भी शुभराग है। समझ में आया?

बहुत वर्ष पहले चर्चा हुई थी। भाई तुम्हारे पोपटभाई के साथ। वेवाई। १९७७ के वर्ष। ७७-७७। २३ और ३० = ५३ वर्ष हुए। वह भगवती में पाठ है श्वेताम्बर में कि रेतवी ने आहार दिया साधु को। बात तो सब झूठी है। भगवान को रोग हुआ तो यह

मुनि आहार लेने को सिंह अणगार था, वह सिंह अणगार। वह आहार लेने को गये और एक रेवती नाम की महिला थी उसने अपने घर के लिये आहार बनाया था अश्व के लिए। और एक भगवान के लिये परन्तु बनाया था। रोग था न भगवान को? तो उनके लिये बनाया हुआ नहीं लिया, उसके अश्व के लिये बनाया था वह आहार लिया। तो आहार दिया तो परितसंसार किया, ऐसा पाठ है। आहार देनेवाले जीव को संसार कट हो गया। कहा भाई! यह बात हमको बैठती नहीं। आहार दिया न मुनि को? तो संसार अल्प हो गया। ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : .... भी ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं। वह राग है, पुण्य है, संसार कट नहीं होगा। संसार कट तो अपने द्रव्य के आश्रय से होगा।

मुमुक्षु : अल्प हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपने आत्मा के आश्रय से, पर से नहीं। नरक गये तो वापस फिर नरक जायेगा। उसमें क्या? कहते हैं न, 'एक बार वंदे जो कोई नरक पशु न होई' परन्तु फिर वापस नरक-पशु में जायेगा, उस भव में नहीं जाये कदाचित्। यहाँ तो मार्ग ऐसा है। सम्मेदशिखर की वन्दना करे तो भव अल्प हो जायेगा। धूल भी नहीं होगा। एक साधु आये थे। बात की थी उसने।

मुमुक्षु : ....चक्कर लगाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लगाते हैं? शुभभाव हो तो हो। शुभभाव आता है तो ऐसा हो। परन्तु है नहीं, संसार का कट-नाश नहीं। भाव आता है व्यवहार, परन्तु व्यवहार बन्ध का कारण। हेयबुद्धि से आता है। आहाहा! कठिन बात जगत को। वह चर्चा हुई थी। महावीरकीर्ति आये थे न! यहाँ आये थे। इस कमरे में, इस कमरे में। वह कमरा है न बाहर? महावीरकीर्ति आये थे यहाँ, चार दिन रहे थे। उसने ऐसा कहा कि हमारे पास एक पुस्तक है, उसमें लिखा है कि सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो ४५ भव में मोक्ष जायेगा। कहा, वह वाणी भगवान की नहीं। यह कमरा है न, कमरा? इस कमरे में उतरे थे बाहर। बाहर का कमरा है न उसमें। तो शाम को मैं आहार करता हूँ न। आहार करके

घूमता हूँ न थोड़ा। तो बैठे थे। हम पैर नहीं छूते। बैठे थे बस इतना। तो बात निकली। विरोध नहीं करते थे। ... तो बात निकलते ऐसे निकली कि हमारे पास पुस्तक है। श्वेताम्बर में है न एक शत्रुंजय... क्या कहलाती है? शत्रुंजय माहात्म्य। ऐसा एक सम्मेदशिखर का माहात्म्य का पुस्तक था उनके पास। क्या है? क्या लिखा है उसमें? कि एक बार वन्दन जो करे तो ४५ भव में मोक्ष। परद्रव्य के आश्रय से भव का नाश हो, वह वीतराग की वाणी नहीं। चाहे तो ... लिखा हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें भी लिखा हो। जिसमें, परद्रव्य के आश्रय से संसार घट जाये ऐसा वचन हो, वह वीतराग का वचन नहीं, वह सन्तों की वाणी नहीं, समकिती की वाणी नहीं। यहाँ तो स्पष्ट बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ना। ना पीछे आयेगा। एक भव में कट जाये कदाचित्। दूसरे भव में आयेगा वापस नरक और पशु। आहाहा! वह तो एक भव की अपेक्षा कहा। शुभभाव ऐसा हो तो नरक, पशु में न जाये। परन्तु मिथ्यात्व का भाव है कि पर से मुझे लाभ होगा तो फिर वह नरक और पशु में अनन्त बार जायेगा। यहाँ ऐसी बात है, भाई! कठिन बात है। परमेष्ठीदासजी! ... आये या नहीं? नहीं आये। आहाहा!

कहते हैं, मिथ्यात्व का नाश करो। उसके बिना स्वरूप-सन्मुख दृष्टि नहीं होगी। अज्ञान का नाश करो, उसके बिना स्वरूप सन्मुख का ज्ञेय नहीं होगा, पाप-पुण्य की रुचि छोड़ दो। आहाहा! **मन-वचन-काय से छोड़कर मौनव्रत के द्वारा...** आहाहा! परन्तु वह मिथ्यात्व और अज्ञान छोड़कर मौनव्रत। मिथ्यात्व रखे और मौन बैठे तो धूल में भी होगा नहीं कुछ। अन्दर शल्य पड़ा है कि शुभभव से धर्म है और पुण्य से धर्म होगा, वह ध्यान करे, मौनव्रत करे, उसमें क्या धूल में मौनव्रत? काष्ठ मौनव्रत है। लकड़ी जैसे बोलती नहीं, ऐसा बोलते नहीं, उसमें आया क्या आत्मा में? आहाहा!

एक था वहाँ हमारे। भाई राजकोट में नहीं रणछोड़लालजी? रणछोड़लालजी था न। अन्यमति का ब्राह्मण था। बारह-बारह महीने तक बोले नहीं। उसे काष्ठ मौन कहे

काष्ठ मौन। उसकी इज्जत बड़ी थी अन्यमत में। बहुत लाखों रुपये खर्चता था। काष्ठ मौन, बोले नहीं। बोलना नहीं उसमें क्या आया। बोलना, नहीं बोलना। बोलना तो भाषा की वर्गणा है। न बोले तो भाषा की वर्गणा न हो तो न बोले। उससे आत्मा में क्या आया? आहाहा! भाई! मार्ग तो ऐसा सूक्ष्म है और ऐसा अलौकिक है कि जिसका फल मोक्ष है। यह बात करते हैं न यहाँ? आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्ष प्राप्त हो, उसका नाम ही अलौकिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका नाम अलौकिक है। बाकी... आहाहा! अब स्वर्ग मिले। पीछे स्वर्ग नहीं, पीछे नरक मिलेगा। पशु होगा स्वर्ग में से। आठवें देवलोक जाये वहाँ से मरकर पशु होगा वापस। पशु मरकर नरक में जायेगा। उसमें है क्या?

मुमुक्षु : चारों गति....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चारों गति दुःखदायक है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, पुण्य और पाप, मिथ्यात्व और अज्ञान। आहाहा! दो बोल लिये। मिथ्यात्व लिया श्रद्धा में, अज्ञान लिया ज्ञान के विरुद्ध में, चारित्र के विरुद्ध में पुण्य-पाप लिया। आहाहा!

इनका मन-वचन-काय से छोड़कर मौनव्रत के द्वारा ध्यान में स्थित होकर... आहाहा! चिदानन्द भगवान को लक्ष्य में ले, ध्यान में ले। आहाहा! **आत्मा का ध्यान करता है।** आत्मा का ध्यान करता है। राग का नहीं, पुण्य का नहीं, पर का नहीं, भगवान का नहीं। आहाहा! स्वयं परमात्मा आत्मा। परमस्वरूप परमात्मा वीतराग आनन्दकन्द है। उसमें ध्यान लगाना, वही मोक्ष का उपाय है। जगत को बहुत लगे इसमें, यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय, वह सत्य है। व्यवहार तो उपचार का कथन है। वास्तविक नहीं। आहाहा!

अरे! चौरासी लाख अवतार में कितना दुःखी। जन्म-मरण किया, वह मिथ्यात्व के कारण किया है। एक-एक नरक में अनन्त बार उपजे। समझ में आया? एक बार कहा था न! मनुष्यभव अनन्त किये, अनन्त काल में भले एक मिले तो भी मनुष्यभव अनन्त किये और अनन्त मनुष्यभव अपेक्षा नरक के भव असंख्यगुणा अनन्त किये।

अनन्त दोनों, परन्तु मनुष्य की अनन्त संख्या अपेक्षा नरक की संख्या असंख्यगुणा अनन्त, और उससे असंख्यगुणा अनन्त तो स्वर्ग के भव किये। नरक की अनन्त संख्या अपेक्षा देव की संख्या असंख्यगुणी अनन्त। तो पुण्य किया होगा तो होगा कि पाप किया (तो हुआ) ? मिथ्यात्व तो है। पुण्य किया तो स्वर्ग में गये अनन्त बार। फिर पटका चार गति में। उसमें है क्या? और उससे अनन्त भव तो निगोद का अनन्तगुणा किया। देव की अपेक्षा अनन्तगुण निगोद का किया। आहाहा! नित्य निगोद में तो अनन्तकाल रहा। बाहर निकले तो भी बाद में दो हजार सागर है न त्रस में रहने की स्थिति। दो हजार सागर त्रस में रहने की स्थिति। ओहोहो! वह दो हजार त्रस की स्थिति पूरी हो जाये (तो फिर से निगोद में जाता है)। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ जाते ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते ही हैं। दूसरे जाये कहाँ? आहाहा! नरक, पशु, पंचेन्द्रिय, मनुष्य भव आदि दो हजार सागरोपम रहते हैं। त्रस की अवधि ही भगवान ने ऐसी कही है। यदि सम्यग्दर्शन न पाये, आत्मा (का) आश्रय न ले तो यह दो हजार (सागर की) स्थिति में नरक, निगोद में जायेगा। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की यह वाणी है, भाई! आहाहा! दुनिया को ऐसा लगे यह अकेला निश्चय-निश्चय। एकान्त निश्चय है। परन्तु एकान्त निश्चय, वही मार्ग है। व्यवहारमार्ग है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार आता है अवश्य अन्दर। जब तक सर्वज्ञ न हो, व्यवहार आता है, परन्तु अज्ञानी कोई शुभभाव करे देव-दर्शन आदि तो पुण्यबन्ध होता है। समझ में आया? पुण्य छोड़कर पाप करना, वह तो कहीं है नहीं। यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव की रुचि छोड़कर द्रव्य की रुचि करो। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- कई अन्यमति योगी ध्यानी कहलाते हैं, इसलिए जैनलिंगी भी किसी द्रव्यलिंग के धारण करने से... देखो! द्रव्यलिंग धारण कर ले पंच महाव्रत आदि बाहर नग्नपना। **ध्यानी माना जाये...** ओहोहो! यह तो ध्यानी है। पंच महाव्रत पालते हैं। ओहोहो! महीने-महीने के अपवास करते हैं। **उसके निषेध के निमित्त इस प्रकार कहा है कि मिथ्यात्व और अज्ञान को छोड़कर आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानकर...** आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानकर। आहाहा! अखण्डानन्द ज्ञान की मूर्ति प्रभु तो

ज्ञायकस्वभाव से भरा पड़ा है। वह तो सर्वज्ञस्वरूपी है। आहाहा! शक्ति और स्वभाव तो सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। ऐसे स्वरूप को यथार्थ जानकर **सम्यक् श्रद्धान तो जिसने नहीं किया,...** ऐसे स्वरूप को जानकर सच्ची श्रद्धा तो की नहीं। **उसके मिथ्यात्व, अज्ञान तो लगा रहा, तब ध्यान किसका हो...** राग का ध्यान तो अनन्त बार किया है, वह तो संसार है। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य तो स्पष्ट बात करते हैं। समाज को बैठे, न बैठे उसकी इनको गरज नहीं।

एक बार लिखा था, नहीं? जगनमोहनलालजी ने लिखा था। जगनमोहनलालजी ने? जगनमोहनलालजी। तुम्हारे जैनतत्त्व मीमांस में। पण्डितों का वह काम है कि शास्त्र का रहस्य निकालकर खुल्ला करना। समाज समतौल रहे या नहीं रहे, उसकी दरकार नहीं करना। पण्डितजी ने जैनतत्त्व मीमांसा में। प्राक् कथन। वास्तव में पण्डित का तो वह काम है कि जैनदर्शन का मर्म और रहस्य क्या है, वह शास्त्र में से निकालकर जगत के पास प्रसिद्ध करना। समाज कोई समतौल रहे या न रहे, उसकी दरकार छोड़ देना। ऐसी बात है। आहाहा! उपदेशक बनना और उल्टी बात करना, वह जैनशासन का तो वैरी है। समझ में आया?

यशोविजय कहते हैं। हम तो ठाणांग पढ़ते थे। ठाणांग में छठ्ठा ठाणांग में है। 'जेम जेम बहुश्रुत... बहु शिष्ये परवरियो, जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत। जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत, बहु शिष्ये परवरियो।' यह तीन बोल लिये हैं। परन्तु छह बोल हैं ठाणांग की टीका। ठाणांग के छठवें बोल की टीका। छह बोल है। कीर्ति बड़ी हो न। 'तेम तेम जैन शासननो रे वेरी, जो नवी निश्चय नरियो।' जो ज्ञानानन्दस्वभाव के निश्चय का भान नहीं, अनुभव नहीं। वह निश्चय का भान नहीं और यह सब परिवार बढ़ गया, शिष्य बढ़ गये, कीर्ति बढ़ी, बड़े आचार्य हो गये। जैनशासन का वैरी हुआ वह तो। समझ में आया? सकषायवन्त, ऐसा पाठ वहाँ है ठाणांग में। सकषायवन्त प्राणी। परन्तु वास्तव में तो सकषाय का अर्थ वहाँ मिथ्यात्व लेना कहा। कि मैं तो उस समय कहता था। १९७८ के वर्ष पहले हों! वह कोई साधारण भाषा नहीं है। ठाणांग में। सकषायवन्त प्राणी को बहुजन संमत, बहु शास्त्र का ज्ञान आदि हो, तो भी निश्चय का भान न हो तो वह अज्ञानी जैनशासन का वैरी है। परन्तु अकषायवन्त हो। ऐसा पाठ है।

अकषायवन्त को यदि ... आदि हो तो उसको लाभ का कारण है। अकषाय, ऐसा लिया है। परन्तु अकषाय का अर्थ सम्यग्दर्शन और ज्ञान उसमें लेना है। अकेला साधारण अकषाय करते-करते उसकी दृष्टि सम्यक् न हो, तो वह कोई वस्तु नहीं है। अकषाय का अर्थ राग की जिसको रुचि नहीं और आत्मा के स्वभाव की जिसको रुचि है, और अनुभव है, वह सम्यग्दृष्टि धर्म का उद्धार करनेवाला है। आहाहा! उसका शास्त्र भी सब देखा है न? करोड़ों श्लोक संस्कृत देखा है। संस्कृत पढ़ा है सब। संस्कृत आता नहीं। अभ्यास करते-करते... हमने सब देखा था करोड़ों। ठाणांग, समवायांग, भगवती सबकी टीका देखी है संस्कृत बहुत बार। उसमें यह (बात नहीं है)। परन्तु यह गर्व नहीं अन्दर कि सम्यग्दर्शन अनुभव निश्चय बिना यह सब व्यर्थ है, ऐसी भाषा खुल्ली नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी तो स्पष्ट—चोक्खी एकदम। आहाहा!

यहाँ तो क्या कहा देखो! जिसको एक मिथ्यात्व का शल्य अंश रह जायेगा, वह आत्मा सन्मुख झुक सके नहीं, ध्यान नहीं कर सके। क्योंकि उसका परसन्मुख का झुकाव सारा है। समझ में आया? अज्ञानी वही रहेगा। कम, अधिक, विपरीत आता है वह रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। न्यूनाधिक। न्यून अधिक। कम नहीं, अधिक नहीं, विपरीत नहीं—ऐसा ज्ञान होना चाहिए। आहाहा! देखो न रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। यह तो सन्तों ने तो... कोई भी आचार्य (हो), समन्तभद्र हो, पूज्यपादस्वामी हो, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य सब बात सिद्धान्त की अपेक्षा से कथन हो, परन्तु वस्तु तो सबमें वीतरागता बतानी है।

कहा था न पंचास्तिकाय की बात में? पंचास्तिकाय की १७२ गाथा। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि सारा शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। चाहे तो चरणानुयोग का कथन हो, करणानुयोग का हो, धर्म (कथानुयोग) आदि हो, परन्तु बात वीतरागता बताना है। पर की उपेक्षा करके, पर की अपेक्षा छोड़कर स्व की अपेक्षा करना, ऐसा तात्पर्य चारों अनुयोग में है। आहाहा! समझ में आया? पर की अपेक्षा छोड़कर स्व की अपेक्षा में जाना, वह वीतरागभाव है। पर का लक्ष्य छोड़कर अन्दर में जाना, वह तो वीतरागभाव है। अन्दर में जाने का भाव वीतराग, वही तात्पर्य है। स्व आश्रय में दृष्टि, स्व आश्रय में

ज्ञान और स्व आश्रय में स्थिरता, यह चारों अनुयोग में कहने का भाव वीतरागता है। समझ में आया? परन्तु अपने पक्ष में पड़ा हो न बहुत वर्ष से, उल्टा घूंटा हो तो उसमें से निकलना बहुत दु:ख लगे।

मुमुक्षु : सच्चा सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं। बापू! भाई! आहाहा! ओहोहो!

अज्ञान तो लगा रहा, तब ध्यान किसका हो तथा पुण्य-पाप दोनों बन्धस्वरूप हैं... देखो! जिसको मिथ्यात्व और अज्ञान रहेगा, वह ध्यान कैसे कर सके? अपना चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द ध्रुव नित्यानन्द है, ऐसी तो दृष्टि हुई नहीं। दृष्टि हुए बिना उसका ध्यान कैसे करे? आहाहा! और पुण्य-पाप तो बन्धस्वरूप है। चाहे तो भगवान की भक्ति का भाव हो या तीर्थंकरगोत्र बँधने का भाव हो, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! **उनमें प्रीति-अप्रीति रहती है...** शुभभाव में प्रीति और अशुभ में अप्रीति **तबतक मोक्ष का स्वरूप भी जाना नहीं है...** आहाहा! समझ में आया? **तब ध्यान किसका हो और (सम्यक् प्रकार स्वरूप गुप्त स्व-अस्ति में ठहरकर)...** सम्यक् प्रकार स्वरूप गुप्त। स्व-अस्ति-अपना त्रिकाली अस्तिपना, उसमें ठहरकर **मन-वचन-काय की प्रवृत्ति छोड़कर मौन न करे तो एकाग्रता कैसे हो? इसलिए मिथ्यात्व, अज्ञान, पुण्य, पाप, मन, वचन, काय की प्रवृत्ति छोड़ना ही ध्यान में युक्त कहा है। इस प्रकार आत्मा का ध्यान करने से मोक्ष होता है।** लो! सम्यग्दर्शन भी आत्मा के ध्यान से होता है। सम्यग्ज्ञान... वह कहा था न? **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** ४७ गाथा, द्रव्यसंग्रह। आहाहा!

अन्तर दृष्टि गये ध्यान जब होता है, तब सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं। बाहर से कोई होता है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और ऐसे... आहाहा! वह धवल में आता है न पण्डितजी! वह लेते हैं न रतनचन्दजी? जिनबिम्ब को देखने से निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है। परन्तु जिनबिम्ब देखकर वह तो ये (स्व) जिनबिम्ब देखे तब की बात है। पर ऊपर लक्ष्य है, तब तो अपूर्वकरण और अध:करण परिणाम आयेगा कहाँ से? यह तो जिनबिम्ब है वीतरागमूर्ति। तो जिनबिम्ब देखने में वहाँ लक्ष्य

है तो अपूर्वकरण, अध:करण आया कहाँ से ? आता है कहाँ से ? वह तो उसका लक्ष्य है कि वह छोड़कर यहाँ जिनबिम्ब अन्दर का है।

मुमुक्षु : .... निमित्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यहाँ करे तो निमित्त कहने में आता है न। न करे तो क्या है ? यह तो अनन्त बार किया है।

मुमुक्षु : उस समय वह निमित्त नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। निमित्त लक्ष्य ही नहीं है। निमित्त का लक्ष्य छोड़ा, तब स्वरूप का ध्यान हुआ। तो निमित्त रहा कहाँ ? परमेष्ठीदासजी ! वह बात सूक्ष्म है। निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है, वह तो स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा ! भले निद्धत हो, उसमें क्या है ? जितना उलटा पुरुषार्थ से बँधा हो, इतना सुलटा पुरुषार्थ से खिर जाता है। उसमें क्या है ? आहाहा ! निमित्त का लक्ष्य कहाँ है, उस समय ? अन्दर जाते हैं वहाँ पर्याय का लक्ष्य नहीं, राग का लक्ष्य नहीं। वहाँ तो त्रिकाल का लक्ष्य होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, पर की बात है नहीं। अपनी पर्याय पर लक्ष्य रहेगा, तबतक उसको द्रव्यदृष्टि होगी नहीं। आहाहा ! '**पज्जयमूढा हि परसमया**' नहीं कहा ? ज्ञेय अधिकार। प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार पहली गाथा-९३। '**पज्जयमूढा हि परसमया**' एक समय की पर्याय में मूढ़ है, वह पर-आत्मा है। त्रिकाल द्रव्यस्वरूप भगवान... पर्यायबुद्धि नहीं। आता है न वह ? 'आत्म गवेशी न गृहस्थ है। स्वार्थ के साचे, परमार्थ के साचे, साचे-साचे वेन कहे, साचे जैनमति है। काऊ के विरोधी नाहीं, पर्यायबुद्धि नाहीं, आतम गवेशी न गृहस्थ है न यति है। रिद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा।' आहाहा ! 'अन्तर की लक्ष्मी सो अजाची लक्षपति है, दास भगवन्त के उदास रहे जगत सौं, ऐसा जीव शुद्ध समकिती है।' आहाहा ! बनारसीदास ने कितना लिखा है, लो ! वह लक्षपति है, लक्षपति। ये धूल के पति नहीं। लक्ष आत्मा का पति वह है। आहाहा !

★ ★ ★

गाथा - २९

आगे ध्यान करनेवाला मौन धारण करके रहता है तो क्या विचार करता है, यह कहते हैं—यह गाथा समाधिशतक में भी है। यह २९। कहते हैं कि मौन करके ध्यान करना तो क्या अपेक्षा से करते हैं?

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णेव तम्हा जंपेमि केण हं॥२९॥

यह टीकाकार है न? उसने अर्थ किया है **'जाणगं दिस्सदे णं तं' 'णं तं'** किया है। परन्तु ऐसा ज्ञायक... ऐसा देखना। संस्कृत किया है वह बराबर है। क्योंकि समाधिशतक में भी ऐसा है। जानते-देखते हैं, वह तो हमको दिखता नहीं और दिखता है, वह तो पुद्गल है, मैं किसके साथ बात करूँ? तो **'न तत्'** शब्द पड़ा है न संस्कृत में? वह बराबर है। परन्तु उसने अर्थ ऐसा किया है। **'जाणगं दिस्सदे णं तं'** जो अनन्त ज्ञानदर्शनवाला आत्मा है ऐसा। परन्तु उसकी यहाँ जरूरत नहीं। उसने लिखा है। है न नीचे?

यत् मया दृश्यते रूपं तत् न जानाति सर्वथा।
ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम्॥२९॥

वह देखने में आता नहीं। है। आहाहा! यह नीचे है बराबर लिखा है। नीचे बराबर लिखा है। **'णं तं' 'णं तं'** अर्थात् ... ऐसा चाहिए। **'न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम्'** समाधिशतक में ऐसा है। **'णं तं'** आहाहा!

अर्थ :- जिस रूप को मैं देखता हूँ... यह शरीर दिखे। मिट्टी, धूल दिखती है यह तो। **वह रूप मूर्तिक वस्तु है, जड़ है, अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है...** मिट्टी, शरीर कुछ जानता नहीं। किसके साथ मैं बात करूँ? **और मैं ज्ञायक हूँ, अमूर्तिक हूँ। यह तो जड़ अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं,...** है न **'णं तं'**। ऐसा। कुछ जानता नहीं। **इसलिए मैं किससे बोलूँ?** जड़ तो कुछ जानता नहीं और जाननेवाली चीज़ वह तो अन्दर है दूसरी। आहाहा! मौन रहने का क्या कारण है? इस कारण से मौन हूँ, ऐसा। किसके साथ मैं बोलूँ? यह मिट्टी जड़ है ये तो, वह तो समझता

नहीं। **'ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन'** जाननेवाला-देखनेवाला तो देखने में आता नहीं अन्दर में। आहाहा! और जानता-देखता तो जड़ है नहीं। जानने-देखनेवाला है, वह तो देखने में आता नहीं। **'न तत् तस्मात् जल्पामि केन'** इस कारण से मैं किसके साथ बोलूँ? आहाहा! समाधिशतक।

यहाँ तक लिया है न समाधिशतक में। किसी को उपदेश देना, समझाना, वह भी पागलपना है। ऐसा कहा है। राग आया न राग? और यह समझे, यह समझे—ऐसी दीनता आ गयी। आहाहा! सन्तों की वाणी में वीतरागता (बाहर) निकालने की चीज़ यह है। किसके साथ बोलूँ? क्या कहूँ? यह समझे तो ठीक, ऐसा विकल्प उठा। यह समझे, न समझे तो उसकी योग्यता से समझेगा। तू समझाता है तो समझेगा ऐसा है? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश, विकल्प आता है तो निकल जाता है।

मुमुक्षु : दूसरे को लाभ हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। दूसरे को लाभ हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने लाभ हुआ तो निमित्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो तब निमित्त कहलाये, लाभ करे तब न। आहाहा!

अचेतन कुछ भी जानता नहीं। **'णं तं'** ऐसा शब्द है न? **इसलिए मैं किससे बोलूँ?** विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ५, बुधवार, दिनांक १३-०३-१९७४
गाथा - २९ से ३१, प्रवचन-१२६

२९वीं गाथा। उसका भावार्थ। यहाँ मोक्ष का अधिकार है। मोक्ष का उपाय अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य का ध्यान करने से मोक्ष का उपाय उत्पन्न होता है। स्वद्रव्य चैतन्य पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्दस्वरूप जो द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्यस्वरूप ध्रुव है, उसकी श्रद्धा–ज्ञान, वह उसका ध्यान है। द्रव्य का ध्यान करने से सम्यग्दर्शन होता है, द्रव्य का ध्यान करने से स्वसंवेदनज्ञान और द्रव्य का ध्यान करने से शान्ति—चारित्र उत्पन्न होता है। जिसको मोक्ष की अभिलाषा है, वह अन्तर स्वरूप ध्यान में अपने आत्मा को लेकर वीतरागभाव का अनुभव करे। ऐसी बात है, भैया!

तो कहते हैं कि धर्मी को यह विचार आता है। **यदि दूसरा कोई परस्पर बात करनेवाला हो, तब परस्पर बोलना संभव है,...** २९वीं गाथा, भावार्थ। **किन्तु आत्मा तो अमूर्तिक है, उसको वचन बोलना नहीं है...** मौन रहने में ध्यान होता है, वह बताते हैं। **और जो रूपी पुद्गल, वह अचेतन है, किसी को जानता नहीं, देखता नहीं।** जड़ शरीर। **इसलिए ध्यान करनेवाला कहता है मैं किससे बोलूँ?** आहाहा! समाधिशतक में तो कहा है १९ गाथा में, मैं उपदेश दूँ और उपदेश सुनूँ, वह सब उन्मत्त चेष्टा है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प है न, राग है। यह तो अन्तर द्रव्यस्वभाव का आश्रय, वही मोक्ष का मार्ग है। वहाँ तो ऐसा लिया है। यह १८वीं गाथा। यह २९वीं चली न? वहाँ १८वीं वहाँ है। समाधिशतक १८वीं गाथा। वहाँ भी यही गाथा है। १९ में यह कहा है कि मैं किसके साथ बोलूँ? और सुनूँ और किसको सुनाऊँ? आहाहा! क्योंकि सुनने में भी विकल्प है राग और सुनाने में भी राग है। आहाहा! वीतरागमार्ग तो ऐसा है।

अपना चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का आश्रय करने में विकल्प मात्र चीज़ है नहीं। समझ में आया? उस कारण से मैं किसके साथ बोलूँ? जिसको मैं देखता हूँ, वह तो जड़ है और दूसरे का अरूपी चैतन्य तो देखने में आता नहीं। आहाहा! परमेष्ठीदासजी! बहुत मार्ग ऐसा है।

★ ★ ★

गाथा - ३०

आगे कहते हैं कि इस प्रकार ध्यान करने से... अपना शुद्ध ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसको ध्येय बनाकर, उसको ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर लीन होना, वह आस्रव का निरोध करनेवाला है और पूर्व का कर्म का नाश करनेवाला है। आहाहा!

सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं॥३०॥

अर्थ :– योग ध्यान में स्थित हुआ योगी... सम्यग्दृष्टि भी अपने स्वरूप में जितना एकाग्र है, उतना यह भी योगी है। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्मा, उसमें सम्यग्दर्शन हो, वह अन्तर की एकाग्रता है। वह भी एक ध्यान की अवस्था है। आहाहा! तो यह सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग है। तो कहते हैं कि **योग ध्यान में स्थित हुआ...** यह तो विशेष मुनि की बात करते हैं। योग ध्यान में अर्थात् स्वरूप की एकाग्रता। राग से हटकर चिदानन्द भगवान में एकाकार होना, वह योग है। **ध्यान में स्थित हुआ योगी...** आहाहा! **सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके...** यहाँ तो द्रव्य का आश्रय उग्रपने लिया तो सर्व प्रकार का मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय सब आस्रव रुक जाते हैं। काम कठिन है बहुत। मोक्ष अधिकार है न! मोक्ष तो अपने द्रव्य का ध्यान करने से ही होता है, दूसरा कोई उसका उपाय नहीं।

मुमुक्षु : महामुनियों को पढ़ने के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती को जानने के लिये है, ऐसा कहते हैं। अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। समयसार में ऐसा पाठ है। यहाँ तो मुनि की प्रधानता से कथन है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व, अज्ञान,

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ मिथ्यात्व, अज्ञान कहा न?

मुमुक्षु : अबुद्धस्य बोधनार्थं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। अबुद्धस्य बोधनार्थं। लोगों को व्यवहार ऐसा प्रिय लगा न तो उसकी रुचि छोड़ना उन्हें बहुत कठिन पड़ता है।

आहाहा! वहाँ समयसार में कहा कि अप्रतिबुद्ध को बोधनार्थं। पण्डितजी ने कहा वह पुरुषार्थसिद्धि उपाय की गाथा है। अबुद्धस्य बोधनार्थं। और समयसार में जो है अप्रतिबुद्ध को हम समझाते हैं, मूढ़ जीव को हम समझाते हैं। आहाहा! अप्रतिबुद्ध आता है। आहाहा! जिसको राग की एकताबुद्धि पड़ी है, उसको हम सुनाते हैं कि तेरी चीज़ राग से भिन्न है। आहाहा! विभाव जो राग है, वह मलिन है, दुःख है, जहर है। भगवान आत्मा का स्वभाव निर्मल है, आनन्द है, शान्ति है। उसके साथ वह राग की एकता मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यादृष्टि को कहते हैं कि सुन। '**सुदपरिचिदाणुभूदा**' जो तूने अनन्त काल में नहीं सुना, वह बात तुमको सुनाता हूँ। चौथी गाथा में है। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**'। भगवान! तूने राग की कथा, राग से लाभ, राग चीज़ मेरी—ऐसी बात तो अनन्त बार सुनी है। शुभराग से धर्म होता है, शुभराग मेरी चीज़ है, ऐसी बात तो तूने अनन्त बार सुनी है और तेरे परिचय में, अभ्यास में भी आ गया है और राग का अनुभव भी तुझे अनन्त बार आ गया, भाई! आहाहा!

'**एयत्तस्सुवलंभो**' परन्तु पर से पृथक् और अपने स्वभाव से एकत्व, वह बात कभी सुनी नहीं। आहाहा!

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

आहाहा! यह व्यवहार के विकल्प से भिन्न भगवान... वह अभी कहेंगे यहाँ ३१वीं गाथा में। यह ३०वीं चलती है न, कि राग का विकल्प चाहे तो भगवान की भक्ति का हो, पंच महाव्रत का हो, परन्तु राग से भिन्न तेरी चीज़ है... आहाहा! ऐसा कभी सुना नहीं और यह इस बात का परिचय, आदत, अभ्यास हुआ नहीं और राग से भिन्न का अनुभव हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आता है ? तो उसके लिये अज्ञानी को कहते हैं। यहाँ तो मुनि की प्रधानता से कथन है। क्योंकि ध्यान की उग्रता छठवें-सातवें (गुणस्थान) में मुनि को होती है। चौथे-पाँचवें में ध्यान होता है परन्तु अल्प होता है और अल्पकाल रहता है। चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दर्शन जब होता है, तब तो अन्दर ध्यान से ही होता है। आहाहा! '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ४७ गाथा है। ४७ कहते हैं न ? द्रव्यसंग्रह। सम्यग्दर्शन भी ध्यान में प्राप्त होता है। अन्दर विकल्प से रहित

होकर... आहाहा! सूक्ष्म बात। ध्यान होता है। सब बताते हैं। छठवें में ध्यान हों, चौथे में न हो, ऐसा नहीं। अल्प है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजता है। तेरी चीज ही परमात्मस्वरूप है। आहाहा! उसकी अन्तर दृष्टि करने में तो एकाग्र अन्दर हो ध्यान में, तब एकाग्र होता है। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होता है और पंचम गुणस्थान भी विशेष अन्दर एकाग्र होता है ध्यान में, तब पंचम आता है और विशेष एकाग्र होता है, तब सप्तम में होता है। फिर सप्तम में से गिरने से छठवाँ आता है। पहले छठवाँ नहीं आता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं। वह तो ऐसा कहते हैं कि ध्यान चौथे होता है या नहीं? ध्यान मुनि को है? चौथे गुणस्थान में भी कभी-कभी किसी-किसी समय बार शुद्धोपयोग होता है तो ध्यान जम जाता है।

मुमुक्षु : मुनिवत्।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मुनिवत् नहीं परन्तु मुनि जैसा थोड़ा। मुनि को तो ऐसी दशा होती है। ऐसी थोड़ी। समझ में आया? और पंचम गुणस्थान में भी दो कषाय का अभाव है उतना तो ध्यान है कायम। आहाहा! और शास्त्र में तो ऐसा लेख है कि किसी-किसी समय सामायिक में आते हैं सम्यग्दृष्टि जीव तब उसको शुद्ध उपयोग आ जाता है अन्दर। आहाहा! पंचम गुणस्थान में भी शुभ विकल्प को छोड़कर शुद्ध उपयोग आ जाता है अन्दर में। वह शुद्ध उपयोग की भावना कहने में आती है। प्रवचनसार में जयसेनाचार्य की टीका में ऐसा है। आहाहा! लोगों को अन्दर निश्चय वस्तु द्रव्यस्वभाव का माहात्म्य आये बिना, यह माहात्म्य सब व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, व्यवहार का माहात्म्य (आये), वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा!

ध्यान में स्थित हुआ योगी मुनि सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके संवरयुक्त होकर... पहले संवर होता है शुद्धि प्रगट। **पहिले बाँधे हुए कर्म जो संचयरूप हैं, उसका क्षय करता है...** वह निर्जरा। अन्दर में ध्यान में चढ़ने से अशुद्धता रुक जाती है और पूर्व का बन्ध है, वह निर्जरा हो जाती है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! **इस प्रकार जिनदेव ने कहा है,...** इस प्रकार त्रिलोकनाथ जिनदेव ने ऐसा समवसरण में इन्द्रों

और गणधरों के बीच में यह कहा है। आहाहा! **वह जानो।** ऐसा है न? **'जोयत्थो जाणए'** दूसरे पद में है। ऐसा जानो। यह जिनदेव ने कहा है ऐसा जानो—ऐसा कहते हैं। कोई साधारण प्राणी ने कल्पित किया छद्मस्थ ने, (ऐसा नहीं है)। यह तो जिनदेव त्रिलोकनाथ आहाहा! जिसकी पर्याय सर्वज्ञ हो गयी है। तीन काल—तीन लोक अपनी पर्याय को जानने में जान जाते हैं। अपनी पर्याय को जानने में जान जाते हैं। ऐसे जिनदेव ने यह कहा है।

भावार्थ :- ध्यान से कर्म का आस्त्रव रुकता है... आहाहा! **इससे आगामी बन्ध नहीं होता है...** शुद्ध चैतन्य का ध्यान ध्येय बनाकर अन्दर में ध्यान करते हैं तो नया आस्त्रव रुकता है। उससे आगामी बन्ध नहीं होता। **और पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा होती है...** संवर और निर्जरा दोनों होते हैं। वह आत्मध्यान से और आत्मा के आश्रय से। **तब केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष प्राप्त होता है,...** आहाहा! चौथे गुणस्थान से शुद्ध उपयोग प्राप्त कर ध्यान में सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् विशेष स्वरूप की एकाग्रता करके पंचम गुणस्थान प्राप्त होता है। और विशेष एकाग्रता होकर सप्तम गुणस्थान प्राप्त होता है। तब उस ध्यान में आस्त्रव रुक जाता है और नया कर्म बँधता नहीं। पुराना कर्म बँधा है, वह निर्जरी जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों, शुद्ध और शुद्धि की वृद्धि। दोनों। ध्यान में शुद्धि उत्पन्न होती है, उतना संवर और शुद्धि की वृद्धि होती है, उसका नाम निर्जरा और शुद्धि की पूर्णता, उसका नाम मोक्ष। समझ में आया? नयी शुद्धि उत्पन्न हुई, वह संवर और पूर्व की अपेक्षा से शुद्धि की वृद्धि हुई, वह निर्जरा और पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति हुई, वह मोक्ष। यह संवर, निर्जरा और मोक्ष की व्याख्या। आहाहा! अरे! जन्म-मरण के चक्कर चौरासी के, भाई! दुःखी मिथ्यादृष्टि दुःखी है। साधु हुआ, वह भी राग को धर्म मानता है, तो वह मिथ्यादृष्टि दुःखी है। बड़ा राजा, रंक, सेठ, पैसेवाले सब दुःखी है। संकल्प-विकल्प की जाल में वह गुँथा है। आहाहा! उससे छूटकर भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव, ध्रुव का ध्यान पर्याय में वर्तमान पर्याय में त्रिकाली को लक्ष्य में लेकर स्थित होना, इस ध्यान से संवर-निर्जरा होते हैं।

यह आत्मा के ध्यान का माहात्म्य है। आहाहा! और वह ध्यान सम्यग्दृष्टि ही कर सकते हैं, सम्यग्दर्शन बिना ध्यान हो सकता नहीं। क्योंकि वस्तु क्या है, वह तो अनुभव में आयी नहीं। तो किसमें लीन होना? आहाहा! समझ में आया? अब यह गाथा वहाँ आयी है न भाई मोक्षमार्गप्रकाशक। मोक्षमार्गप्रकाशक। व्यवहाराभास में यह गाथा आयी है। मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमलजी ने काम बहुत किया है मोक्षमार्गप्रकाशक में। ओहोहो! हजारों शास्त्रों का निचोड़ रहस्य खोलकर रखा है उसमें। आहाहा! उद्‌घाटन किया है। शास्त्र के रहस्य का उद्‌घाटन किया है। परन्तु गृहस्थ थे और पण्डित थे, इसलिए उसकी कोई कीमत साधारण जन को नहीं आती।

मुमुक्षु : आचार्यकल्प कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है, आचार्यकल्प। आहाहा! टोडरमल तो टोडरमल हैं। आहाहा! उसमें यह गाथा आयी है।

★ ★ ★

गाथा - ३१

आगे कहते हैं कि जो व्यवहार में तत्पर है, उसके यह ध्यान नहीं होता है:—

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छप गये हैं। यह है। वहाँ यह शब्द है। जो जगे ही। जगे है। अज्ञानी रात्रि में जगते हैं राग में। वहाँ ज्ञानी सो जाते हैं। ज्ञानी जागते हैं वहाँ आत्मा के ध्यान में। ऐसी बात है वहाँ। आहाहा! रात्रि में, राग और विकार वह रात्रि है, उसमें अज्ञानी जागते हैं, ज्ञानी उसमें सो जाते हैं। उससे हट जाते हैं और अपने आनन्द में जागृत हो जाते हैं। आहाहा! अरे! मार्ग तो देखो प्रभु का। अभी जिसको सुनने में मिले नहीं, वह विचार में और प्रतीति में कैसे ले? लोग व्यवहाराभास में पड़े और माने कि हम कुछ करते हैं और करते-करते कुछ होगा। व्यवहार करते-करते कुछ होगा।

मुमुक्षु : व्यवहाराभास।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहाराभास। वहाँ व्यवहार है कहाँ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं,

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे॥३१॥

अर्थ :- जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहार में सोता है... वह विकल्प की क्रिया पंच महाव्रतादि या विनय, वैयावृत्य आदि का भाव, उससे हट जाते हैं, सो जाते हैं। आहाहा! देखो! **वह अपने स्वरूप के कार्य में जागता है...** धर्मात्मा तो अपने शुद्ध स्वरूप आनन्द में जागते हैं, राग से सो गये हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग, उससे सो गये हैं; जागृत है अन्दर। आहाहा! यहाँ तो मोक्ष अधिकार है न। मोक्षप्राभृत। मोक्षप्राभृत तो आत्मा शुद्ध चैतन्य निश्चय से मुक्तस्वरूप ही है। अबद्धस्पृष्ट है अर्थात् मुक्तस्वरूप ही है। उसका अन्दर में लीन होने से पर्याय में मुक्ति का उपाय उत्पन्न होता है। आहाहा! कठिन पड़े, सूक्ष्म पड़े परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! दूसरे प्रकार से लोगों को प्रसन्न करके रंजन हो जाएगा, भव नहीं घटेंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भव बढ़े हुए ही पड़े हैं। मिथ्यात्व है, वहाँ भव बढ़ता है। आहाहा! यह राग की क्रिया, व्रत की, तप की, जप की, भक्ति की क्रिया मुझे धर्म है और उससे मैं क्रम-क्रम से धर्म पाऊँगा। मिथ्यात्व है। आहाहा! आत्मानन्दजी! भारी कठिन बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की क्रिया है वह। मुनिव्रत है। 'मुनि व्रत धार...' आया न? 'अनन्त बार...' वह राग की व्रत, तप आदि क्रिया बहुत की, परन्तु वह तो शुभभाव है। शुक्ललेश्या है, वह तो संसार है, बन्ध का कारण है। आहाहा! एक भव करना भी दु:ख का कारण है, कलंक है ऐसा लिखा है लो योगसार में। योगीन्द्रदेव। कलंक है। अमितगति। कलंक है। योगीन्द्रदेव। आहाहा! जैसे पाँच अंगली में वह अंगुली होती है न जरा ऐसी लटकती, उसी प्रकार भगवान पंच परमेष्ठीस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा! उसमें भव तो कलंक है। आहाहा!

कहते हैं, **'जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।'** आहाहा! व्यवहार की क्रिया में सो गये धर्मात्मा, उससे हट गये हैं। आहाहा! अपने स्वरूप के काम में जागता है। आनन्दस्वरूप भगवान सच्चिदानन्द प्रभु की जागृति करके उसमें रहते हैं। आहाहा! वह जागृत दशा है। राग का काम करना, राग में रहना, वह तो अजागृत रात्रि दशा है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति, भाई! भगवान आत्मा... बीच में व्यवहार आता है। मुनि को भी पंच महाव्रत का विकल्प आदि, चौथे गुणस्थान में भक्ति आदि का भाव आता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। वह मोक्ष का मार्ग और मोक्ष के मार्ग में सहायक वह चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'जो सुत्तो ववहारे' बाह्य विनय, वैयावृत्य, गुरु की, मुनि आदि की जो है, यह सब व्यवहार विकल्प है। आहाहा! पंच महाव्रत का भाव भी राग है। व्यवहार समिति गुप्ति भी राग है। उसमें जो मुनि सोता है अथवा उसमें जागृत नहीं। वह है, उसको जाननेवाला रहता है। वह अपने में जागृत है। आहाहा! इसलिए कुछ लोग ऐसा कहते हैं न, सोनगढ़ का निश्चय बहुत। परन्तु सोनगढ़ का है या वह यह? वह कहते थे उस समय बेचारे नहीं? इन्दौरवाल बंसीधरजी। २०१३ के वर्ष में गये थे न वहाँ? तो सुनकर बोले गदगद कण्ठ से। ओहो! स्वामीजी का विरोध करे, वह कुन्दकुन्दाचार्य का विरोध है। ऐसा कहते थे। बोले थे वहाँ।

मुमुक्षु : भोपाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ईसरी में, ईसरी में। भाई! मधुवन में। तुम थे उस पैसे में। रात्रि को ... ग्यारह हजार हो जायेगा ... पाँच हजार कहते थे, ग्यारह हजार हो गया। वर्णीजी कहते थे। सब खबर है। यह तो बहुत वर्ष हुए १७। १७ समझे? १० और ७। २०१३ के वर्ष। १३-१३ खबर है न। हम तो दो बार गये हैं। यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! कि राग की क्रियामात्र बन्ध का कारण है। आहाहा! धर्मी तो उसमें सो जाते हैं, हट जाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व? राग से लाभ होगा तो मिथ्यात्व बँधता होगा, परन्तु

अकेला राग है तो मिथ्यात्व है नहीं। राग दोष जानते हैं। वह चारित्र का दोष है। व्यवहार आया तो व्यवहार, वह मिथ्यात्व है—ऐसा नहीं। राग को अपना माने और राग से लाभ माने तो मिथ्यात्व है। व्यवहार तो आता है, मुनि को, गणधर को आता है। सुनने का विकल्प आता है। राग है, वह मिथ्यात्वभाव नहीं। राग को अपना मानना और लाभ मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। और यहाँ तो राग से हटकर ध्यान करना, वह बात चलती है। मिथ्यात्व नहीं। परन्तु राग आया, वह आत्मा को बन्ध का कारण उसमें हुआ। आहाहा! जितनी व्यवहाररत्नत्रय की क्रिया जिनदेव ने कहा व्यवहार, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि व्यवहार, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! यह बात लेते हैं। व्यवहार है तो मिथ्यात्व है, ऐसा नहीं। क्योंकि सम्यक् का भान है। मैं तो शुद्ध आनन्द हूँ—ऐसा भान, दृष्टि है तो राग आता है तो उसको व्यवहार कहने में आता है। परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है। स्वभाव के आश्रय से जितनी दृष्टि और निर्मलता प्रगट हुई, वही मोक्ष का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

समाधिशतक में तो वहाँ तक कहा है १९ गाथा। उन्मत्त चेष्टा। है न समाधिशतक? १८वीं है, भाई!

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥१९॥

पूज्यपादस्वामी का। विकल्प है न, राग है न। अन्तरात्मा विचार करता है, जो कुछ मैं दूसरे से उपाध्याय आदिकों से समझावता हूँ और जो कुछ दूसरों को शिष्यों को मैं समझाता हूँ, वह सब मेरी उन्मत्तपने की चेष्टा है। मोह के आधीन, राग के आधीन मेरे मन का यह विकल्पजाल है। बावले की क्रिया है। मुनि दठवें गुणस्थान में विराजते हैं। विकल्प आया तो... आहाहा! १९। मैं तो निर्विकल्प हूँ। आहाहा! विकल्प से रहित आत्मा वचन-विकल्प से कभी ग्रहण में नहीं आ सकता। सो ही मैं हूँ। मैं तो आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव में स्थित वह मैं हूँ। वह विकल्प... आहाहा! निहालभाई लिखे कि उपदेश सुनना वह राग है और सुनाना यह राग है। तो (लोग कहने लगे) निश्चयाभास है। यह आचार्य क्या कहते हैं? समझ में आया? आचार्य स्वयं पूज्यपादस्वामी हैं। जिनकी तत्त्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि। आहाहा! मुनिराज ३०० वर्ष बाद हुए,

कुन्दकुन्दाचार्य के बाद। आहाहा! जो मैं पर से प्रतिपाद्य। पर से मैं समझनेयोग्य और पर को मैं समझाता हूँ, बावले की क्रिया है। राग है न, भाई! राग भूतड़ा है भूतड़ा। आहाहा! आनन्दकन्द प्रभु में राग कैसा और वाणी कैसी? आहाहा! ऐसी सम्यग्दृष्टि अन्दर में ध्यान में एकाग्रता हो, वही मोक्षमार्ग है। आहाहा! और जो व्यवहार में जागत हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, गुरु विनय, वैयावृत्य आदि ऐसे राग में जागता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है।

मुमुक्षु : गुरु की वैयावृत्य नहीं करेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था? करे कौन? हमारे परमेष्ठीदासजी ठीक आ गया। बराबर वस्तुस्थिति में आये।

मुमुक्षु : उचित कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उचित ... प्रसंग में आ गये हैं। ... आहाहा! प्रभु! यह मार्ग है, भाई! आहाहा!

व्यवहार में जागता है... देखो! राग को अपना मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं परन्तु राग में रहते हैं, वह भी जागता है और अपने कार्य में सोता है। अपने निर्विकल्प स्वरूप में सो गये। उसमें जागते हैं वही उसमें अनादर हो गया। अनादर तो ... आहाहा! यह गाथा वहाँ रखी है। टोडरमल(जी)। सातवें अध्याय में। टोडरमल(जी)। २५७ पृष्ठ? २५१ है। मोक्षपाहुड़ गाथा ३१। लिखा है उसमें। **जो योगी (ध्यानी मुनि) व्यवहार में सोता है, वह अपने स्वरूप के कार्य में जागता है और जो व्यवहार में जागता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है।** इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करनायोग्य है। आहाहा! 'व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को और उनके भावों को कारण-कार्य में किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है। आहाहा! देखो! कितना स्पष्ट कर दिया। स्वद्रव्य-परद्रव्य को, स्वभाव अपने भाव को परभाव में और परभाव को अपने (भाव में) और राग कारण है और आत्मा का धर्म कार्य है, ऐसा कारण कार्य को किसी को किसी में मिलाकर व्यवहारनय निरूपण करता है। ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। इसलिए उसका

त्याग करना। निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है। किसी को किसी में नहीं मिलाता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से समकित होता है; इसलिए उसका श्रद्धान करना। आहाहा! कितना स्पष्टीकरण! यह गाथा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। सच्ची बात है। आचार्य का वचन, वह यथार्थ है। आचार्यकल्प ... सत्य सम्यग्दर्शन सिद्ध का सम्यग्दर्शन और समकित चौथे गुणस्थान के (सम्यक्)दर्शन में कोई फर्क है? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। उसका अर्थ किया है। यह उसकी भाषा नहीं, वचन तीन काल के लिए बात है। आहाहा! अरे! दुःखी प्राणी है, भाई! तुझे दया नहीं। भाई! तेरी तुझे दया नहीं। आहाहा! अरे! चौरासी लाख में अवतार करते-करते चार गति। 'चार गति दुःख से डरे।' योगसार में आता है। चारों गति में दुःख है प्रभु! कहीं भी सुख नहीं। सुख तो आत्मा में है। आहाहा! आत्मा के आनन्द की रुचि और श्रद्धा की नहीं और व्यवहार की रुचि में पड़ा चार गति में भ्रमता है। आहाहा!

माता के पेट में सवा नौ महीने उल्टे सिर। प्रभु! वह क्या होगा तुझे खबर है? आहाहा! शास्त्र तो ऐसे कहते हैं, भगवान! माता के गर्भ में कोई जीव तो बारह वर्ष तक रहते हैं। छोड जिसे कहते हें। बारह वर्ष तक। आहाहा! वहाँ से मरकर दूसरी माता में अथवा उस ही माता में फिर से बारह वर्ष। चौबीस वर्ष की गर्भ की स्थिति गिनने में आयी है शास्त्र में। कायस्थिति। चौबीस वर्ष गर्भ में रहे। आहाहा! एक यहाँ जरा हवा न आवे तो उंहूं... उंहूं... हो जाये अन्दर। चौबीस वर्ष। एक बार बारह, दूसरी बार बारह। ऐसे। कायस्थिति है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में। वह की वह माता में भी आवे अथवा बारह वर्ष वहाँ और दूसरी माता में जाये। वही बात है। बाकी तो सवा महीने सब।... लग जाये तो तीन-तीन वर्ष तक सुना है यहाँ अभी। एक स्त्री को तीन वर्ष तक प्रसव नहीं होता था। तीन वर्ष। उसे छोड़ कहते हैं। ये बारह वर्ष। आहाहा! ऐसा चौबीस वर्ष, ऐसे अनन्त बार हुआ। आहाहा! भाई! तेरे दुःख की पीड़ा तूने सहन की। तेरे दुःख से मुक्त होने की चीज़ तुझे प्रतीति में नहीं आती। आहाहा!

अकेला ज्ञायकस्वरूप पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसमें व्यवहार है ही नहीं। व्यवहार

के विकल्प का स्वभाव में अत्यन्त अभाव है। आहाहा! दुनिया माने, न माने, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वस्तु तो यह है। बहुत सभा ऐसी लगे, व्यवहार अच्छा लगे। आहाहा! देखो! भक्ति करो।

मुमुक्षु : कभी दुनिया सबको माने....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! न माने सब। सम्मेदशिखर की यात्रा करो, कल्याण हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि भगवान! यात्रा, वह शुभभाव है। तेरी लाख यात्रा कर सम्मेदशिखर की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। बीच में राग आता है, परन्तु वह धर्म नहीं। और उससे जन्म-मरण रहित हो, वह नहीं। अरे! तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं, वहाँ अनन्त बार गया, अनन्त बार वाणी सुनी, अनन्त बार पूजा की तो क्या हुआ? वह तो व्यवहार राग है, शुभराग है। पाप से बचने को भाव आता है, परन्तु धर्म नहीं और वह धर्म का कारण नहीं। आहाहा! यह बात...

वही यहाँ कहते हैं। बहुत गाथा... **'जो सुत्तो ववहारे'** जो राग की क्रिया से सो गये है, उससे हट गये हैं। **'सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।'** स—कार्य। देखो, यह अपना कार्य। शुद्ध चैतन्यघन में दृष्टि एकाकार होना, वह अपना कार्य है। आहाहा! है पाठ? **'सकज्जम्मि'** यह अपना स्वकार्य है। आहाहा! **अपने आत्मकार्य में...** लिखा है न अर्थ में। **अपने आत्मकार्य...** राग, वह अपना आत्मकार्य नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का (राग) वह आत्मकार्य नहीं, उस कार्य में दूषण है। आहाहा! फिर सोनगढ़ के नाम चढ़ावे। ऐई! सोनगढ़ ने यह चलाया निश्चयाभास। परन्तु यह मुनि कहते हैं। किसका लिखा हुआ है? भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! मार्ग तो सन्त तो अनादि ऐसा ही कहते आये हैं। श्रद्धा तो कर, श्रद्धा तो कर, ज्ञान के लक्ष्य में तो ले कि मार्ग यह है, दूसरा मार्ग नहीं। आहाहा! लाख तेरी भगवान की भक्ति और यात्रा लाख करोड़ कर। शत्रुंजय और सम्मेदशिखर।

मुमुक्षु : पाप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाप से हटकर स्वभाव में आ जायेगा। अनादि से राग को मानते हैं, उसमें है क्या? आहाहा! पुण्यभाव हो, परन्तु पुण्य छोड़कर पाप में आना, यह कोई बात यहाँ है नहीं। परन्तु पुण्य की रुचि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि कर और स्वभाव के आश्रय के बिना कभी कल्याण और संवर निर्जरा होती नहीं। शुभभाव संवर-निर्जरा नहीं, यह शुभभाव आस्रव और भावबन्ध है। आहाहा! होता है, जबतक वीतराग न हो, तबतक समकिती को शुभभाव तो होता है या नहीं? मुनि को शुभभाव होता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। आत्मा की शान्ति को रोकनेवाला है। आहाहा! 'यह अजर प्याला पीवो मतवाला। किनी अध्यात्म वासा। आनन्दघन चेतन व्है खेले, देखे लोक तमासा।' आनन्दघनजी कहते हैं। आहाहा! श्वेताम्बर में आनन्दघनजी (हो गये)।

व्यवहार में जागता है... व्यवहार मेरा है और लाभ होगा, (ऐसा माननेवाला) वह तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु व्यवहार में वर्तता है, तब निश्चय का कार्य नहीं है। आहाहा! **अपने आत्मकार्य में सोता है।** आहाहा! वह सिंहनी का दूध सोने के पात्र में टिके। वह लोहे के पात्र में (रखे तो) फट जाये। आहाहा! यह मार्ग वीतराग का ऐसा है। समझ में आया? 'जो पंथे सिंह संचर्या, रजु लागी तरणा।' सिंह की रज उड़कर तृण को (लगी)। 'अे तरणा उभा सुकाशे, नहि चरे अेने हरणा।' हिरण नहीं चरे, उसकी गन्ध उसे कठिन लगे। आहाहा! ऐसे वीतराग की वाणी में चलनेवाले पुरुष सिंह जैसे होते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सच्ची बात कही। समझ में आया? आहाहा!

ध्यानी मुनि... पाठ में तो इतना है न। **'जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।'** बस इतना। जो कोई व्यवहार के वर्तन में रहनेवाला है, तब तो निश्चय का उसको भान नहीं अथवा निश्चय में आया नहीं। और निश्चय में ध्यान में है, वह व्यवहार से सो गया है। व्यवहार हेय जानकर अन्तर में स्थिर हो गया है। आहाहा! बन्ध अधिकार में आया न वह १७३ कलश में : **'सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै...।'** वीतरागदेव ने ऐसा कहा। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि पर को मार सकता हूँ, जिला सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ, दु:खी कर सकता हूँ, दूसरे को बन्ध करा सकता हूँ, दूसरों को मोक्ष करा सकता हूँ, यह अध्यवसाय छोड़ दे। यह तुम नहीं कर सकते।

पर को जिलाना, दु:ख देना तुम नहीं कर सकते। भगवान ने जब अध्यवसाय छुड़ाया, तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि पर के आश्रय जितना व्यवहार है, वह सब छुड़ाया है। बन्ध अधिकार में है। '**तन्मन्ये**' जितना पर के आश्रय से भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत, यह व्यवहार को सब छोड़ना दृष्टि में। दृष्टि में छोड़ना। दृष्टि में रखे कि यह भी लाभदायक है तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : मूल में भूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में भूल है। वह पुस्तक आयी न, भाई! तुमने ही दिया था। तुमने ही करके दिया था उसका नाम। तुम्हारे कारण नाम दिया था। मूल में भूल। यह पण्डितजी को कहा था कि इसमें 'मूल में भूल' रखो नाम। अपने उपादान-निमित्त रखा था। पण्डितजी ने कहा था। मूल में भूल उसका शब्द है। अपने रखा था। मूल में भूल। आहाहा! गजब गाथा है। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार का जितना परिणाम उत्पन्न हो, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! और चिदानन्द भगवान ध्रुव नित्यानन्द का आश्रय करके जो पर्याय उत्पन्न हो, उतना मोक्ष का उपाय है। 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ। छोड़ि जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' आहाहा! लोगों को साधारण जीव को ऐसा लगे।

व्यवहार की दृष्टि छुड़ाते हैं, रुचि छुड़ाते हैं। व्यवहार तो कब छूट जायेगा? शुद्ध उपयोग में आता है तो। समझ में आया? व्यवहार छूट जायेगा, छूट जायेगा। कब? अन्तर ध्यान में शुद्ध उपयोग में आता हो तब। तबतक व्यवहार है सही, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा! हमारे पण्डितजी बोलते नहीं? पाखण्डियों का ... कुछ भाषा है। जुगलकिशोरजी नहीं? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भगवान! आज मानो, कल मानो, बाद में मानो। मार्ग तो नाथ तेरा यह है। यह पुकार अन्दर से आयी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'**सकज्जम्मि**' तो व्यवहार, वह स्वकार्य नहीं? नहीं। ऐसा आया न उसमें? देखो! '**जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।**' वह स्वयं का—अपना कार्य जो शुद्ध का उपयोग, शुद्ध उपयोग अन्दर में... लो! अभी तो कहते हैं शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। ऐसा पण्डित लिखते हैं कोई रतनचन्दजी। अरे! भगवान! शुभ उपयोग, वह धर्म

नहीं; शुभ उपयोग, वह धर्म का कारण नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह बन्ध का कारण है, ऐसा समझना चाहिए। आहाहा! ऐसे करके पुण्य छुड़ाकर पाप में जाना, ऐसा नहीं है। यहाँ तो पुण्यभाव बन्ध का कारण है, उसको छोड़कर अन्तर में जाना। पुण्यभाव है, उसको छोड़कर पाप में आना, वह बात होती है? यह बात ही नहीं। आहाहा! अशुभ में जाने से पाप है। उससे (बचने को) तो शुभ होता ही है, परन्तु उस शुभ में दृष्टि है कि यह धर्म है और धर्म का कारण है, वह दृष्टि छोड़ दे। और पीछे दृष्टि छोड़ने के बाद भी शुभभाव से हटकर स्वरूप में जा, ध्यान कर, वह तेरे कल्याण का मार्ग है। आहाहा! कहो, सेठ!

मुमुक्षु : किस काल की बात है यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीनों काल की। यह पाँचवें काल की बात है। काल-फाल की बात नहीं, यह तो आत्मा की बात है। आरा काल-बाल उसमें लागू नहीं पड़ता। त्रिकाल वस्तु ऐसी है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' काल-फाल उसमें है नहीं। समझ में आया? आहाहा! हो, राग हो। राग का व्यवहार भी हो, परन्तु हो वह बन्ध का कारण उसको जानना चाहिए। धर्मी को तो अशुभराग भी आता है चौथे-पाँचवें में। आर्तध्यान, रौद्रध्यान नहीं होता है? विषयवासना नहीं होती है? परन्तु वह जानता है कि यह दुःखरूप है, बन्ध का कारण है, मैं उसका जाननेवाला हूँ। मैं उसका करनेवाला कर्तव्यरूप से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- **मुनि के संसारी व्यवहार तो कुछ है नहीं...** भावार्थ। **यदि है तो मुनि कैसा?** स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का पोषण करना, लेना-देना, पैसा उगाहकर देना, वह तो मुनि है नहीं। मेरा कुटुम्बी है, पैसा लाओ, खर्चा दो। अरे! मुनि का काम है वह? समझ में आया? **संसारी व्यवहार तो कुछ है नहीं...** कुछ है नहीं। **यदि है तो मुनि कैसा?** आहाहा! साथ में मनुष्य रखे, मनुष्य के लिए पैसा उगाहे, भोजन के लिए कहे कि इसको कुछ भोजन कराओ। वह मुनि कैसा?

मुमुक्षु : ग्रन्थमाला चलावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ग्रन्थमाला चलावे, पैसा उगाहे, यह मुनि का कर्तव्य है? ठीक कहते हो तुम। ग्रन्थमाला में पैसा लाओ, इतना पैसा दो, ग्रान्ट करो। यह कोई मुनि

का कर्तव्य है ? आहाहा! उसको विकल्प आता है तो पंच महाव्रतादि आता है। परन्तु यह है ? बहुत गड़बड़ी कर दी। ग्रन्थमाला में फिर नामा लिखे। एक व्यक्ति कहता था। पैसा। चोपड़ा नामा लिखे, लो! क्षुल्लक-क्षुल्लक। हेमराजजी! खबर है न? आहाहा! नामा लिखे। अरे! यह वह काम है, भाई? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था न उसे। मेरे पास बचाव किया था इसने कि उदयभाव तो अनेक प्रकार का होता है। उसमें क्या है ? कहा, उदयभाव उसको अनेक प्रकार का होता है, वह हद के प्रमाण में होता है। वह आता है न उदयभाव, चिट्ठी में। वह लेकर हमारे पास एकान्त में आया था। उसमें उदय है तो क्या है? ऐसा बचाव करना है तुम्हारे ? ऐसा तो नहीं कहा था। परन्तु मन में ऐसा आया। ऐसा कि क्षुल्लक को ऐसा ही उदय हो कि नामा लिखे, पैसा उगाहे। अरे! ऐसा उदय होता ही नहीं। आहाहा! मुनिवत् आचरण (होता है)। जिसे मुनि वन में रहते हैं, उसके साथ में रहते हैं वह तो। मुनिवत है। क्षुल्लक किसे कहे, बापू! आहाहा! जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन का विकास हुआ है और जिसने अन्दर में उसके लिये भोजन बनाया हो, वह ले नहीं, प्राण जाये तो न ले। छोटा मुनि। सच्ची बात है। यह तो वस्तु की स्थिति है, हों! अपने किसी व्यक्ति के लिये नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मुनि को संसारी व्यवहार तो कुछ है ही नहीं। हो तो पाखण्डी है। **धर्म का व्यवहार संघ में रहना,...** देखो! यह। **महाव्रतादि पालना...** व्यवहार, **ऐसे व्यवहार में भी तत्पर नहीं है,...** ऐसे व्यवहार में ज्ञानी तत्पर नहीं है। तत्पर तो अपने स्वरूप में है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से कथन है। पालना कहते हैं न। कुन्दकुन्दाचार्य ने महाव्रत पाला है। वह तो व्यवहारनय का कथन चरणानुयोग का चले तो ऐसास ही चले न। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार में तत्पर नहीं। आहाहा! उसको तो भिन्न रखकर उसे जानते हैं। पंच महाव्रत का विकल्प आता है जो सम्यग्दृष्टि आत्मा अनुभवी हो, धर्मी हो, छठवें-सातवें गुणस्थान जिसको प्रगट हुआ है। वह चीज़ अलौकिक है, बापू! आहाहा!

सब प्रवृत्तियों की निवृतित करके ध्यान करता है... लो! महाव्रत का परिणाम और संघ में रहना, उस प्रवृत्ति को भी त्यागकर ध्यान आत्मा में (लगाता है)। क्योंकि आत्मा का आश्रय लेना, वही चीज़ है। बाकी बाहर का जितना विकल्प उठता है, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! कहा नहीं वह? अमृतचन्द्राचार्य अपने तीसरे कलश में यह कहते हैं न? मुझे कलुषित परिणति है। कल्माषितायां। राग परिणति शुभ है। उसको शुभ है। आचार्य तो मुनि है, शुभभाव है। उसे छोड़कर मुझे स्वरूप में एकाग्र होकर छूट जाये, ऐसी मेरी भावना है। आहाहा! रहता है शुभभाव तो मरणपर्यन्त होता है। महाव्रत का भाव। परन्तु वह दुःखरूप है, (मैल) है, तत्पर उसमें नहीं रहना। अन्दर स्वरूप में तत्पर रहना, ध्यान में, आनन्द में वह मुक्ति का मार्ग है।

ध्यान करता है वह व्यवहार में सोता हुआ कहलाता है और अपने आत्मस्वरूप में लीन होकर देखता है,... अपने आत्मस्वरूप में लीन होकर **देखता है, जानता है, वह अपने कार्य में जागता है,...** कितनी स्पष्टता है! आहाहा! लोगों को स्वाध्याय करना नहीं और अपनी हठ छोड़ना नहीं। चीज़ तो ऐसी वीतरागमार्ग में है। ऐसी तो कोई दूसरे को है ही नहीं। आहाहा! **परन्तु जो इस व्यवहार में तत्पर है, सावधान है, स्वरूप की दृष्टि नहीं है...** ऐसा लिया। महाव्रतादि के व्यवहार के परिणाम में तत्पर रहता है, स्वरूपदृष्टि शुद्ध नहीं है, आहाहा! **वह व्यवहार में जागता हुआ कहलाता है।** वह राग में जागता है। राग, यह चीज़ मेरी है, ऐसा मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? आता है तो गणधरों को भी। चौदह पूर्व की रचना करते हैं शास्त्र की, तो उसे विकल्प नहीं है? आता है, वह दूसरी चीज़ है, परन्तु तत्पर नहीं उसमें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्पर नहीं। दृष्टि तो स्वरूप के ऊपर है। यह चीज़ मैं हूँ, यह नहीं। आहाहा!

स्वरूप की दृष्टि नहीं है, वह व्यवहार में जागता हुआ कहलाता है। जिसको आनन्दकन्द प्रभु ऐसी दृष्टि नहीं और राग में एकाकार है, वह राग में जागता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अब विशेष गाथा ३२ में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ६, गुरुवार, दिनांक १४-०३-१९७४
गाथा - ३२ - ३३, प्रवचन-१२७

गाथा - ३२

अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़ अधिकार, उसमें ३२वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि योगी...** धर्मी। **पूर्वोक्त कथन को जान के व्यवहार को छोड़कर आत्मकार्य करता है:—**

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं॥३२॥

अर्थ :- इस प्रकार पूर्वोक्त कथन को जानकर... क्या? जो व्यवहार में तत्पर है, वह निश्चय में सोता है। जो व्यवहार विकल्प आदि पंच महाव्रत आदि या भक्ति आदि का विकल्प, उसमें जो तत्पर है, वह अपने स्वरूप के ध्यान से च्युत है। अपने स्वभाव में वह सोता है और जो राग विकल्प से तत्पर नहीं, वह अपने स्वरूप में जागता है। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ—ऐसा ध्यान में लेकर आत्मा जागता है। वह जागता है, कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सावधान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सावधान अन्तर में। यह मोक्षपाहुड़ है न! नहीं आये, भाई? नवनीतभाई गये हैं?

यहाँ तो प्रथम सम्यग्दर्शन, विकल्प और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप शुद्ध चैतन्य का एकाग्र होकर अनुभव हो, वह स्व के आश्रय से होता है। वह व्यवहार से या निमित्त से कुछ होता नहीं। और पीछे भी मुनिव्रत धारण करे पंच महाव्रतादि, तो भी पंच महाव्रत के विकल्प में मुनि तत्पर नहीं। जानते हैं कि आता है ऐसा भाव। समझ में आया? अशुद्धभाव आया, होता है, उसमें तत्पर नहीं। धर्मी मुनि को उसमें एकत्वबुद्धि नहीं। आहाहा! अपना शुद्ध चैतन्य आनन्द, उसमें जिसकी सावधानी रहती है, वह स्व के आश्रय से मोक्ष का उपाय उत्पन्न होता है।

'इय जाणिऊण' व्यवहार में तत्पर न रहना और निश्चय स्वभाव में तत्पर रहना ऐसे **'जाणिऊण' योगी ध्यानी मुनि है, वह सर्व व्यवहार को सब प्रकार से ही छोड़ देता है...** आहाहा! मुनि को व्यवहार तो दूसरा है नहीं कुछ। पंच महाव्रत का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र का विनय, संघ में रहना तो साधु आदि का वैयावृत्य आदि, वह भी विकल्प राग है। आहाहा! वह राग बन्ध का कारण है। समझ में आया? यह मोक्ष का उपाय नहीं। उस राग को लक्ष्य में से छोड़कर स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्द का ध्यान करना, ऐसे जानकर **सर्व व्यवहार को...** देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति... आहाहा! पंच महाव्रत का विकल्प आदि सबको छोड़कर। सर्व व्यवहार को और सर्व प्रकार से। आहाहा! चैतन्य आनन्दस्वरूप ध्रुव के अवलम्बन में विकल्प का आश्रय होता नहीं। समझ में आया? मोक्ष अधिकार है न। ऐसी श्रद्धा में तो पहले ले कि चैतन्य भगवान ध्रुव ज्ञायकभाव, उसमें दृष्टि से लीन होना और स्थिरता से लीन होना, वह मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? आहाहा!

और परमात्मा का ध्यान करता है... सर्व प्रकार का व्यवहार, सर्व व्यवहार। आहाहा! **छोड़ देता है और परमात्मा...** अपना परमात्मा, हों! आहाहा! ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य का ध्यान करता है। **जैसे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा...** यह आत्मा भी जैसा जिनवर ने (कहा ऐसा) असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण का धाम है 'शुद्ध बुद्ध (चैतन्यघन) ज्योति सुखधाम।' जिनवर सर्वज्ञ ने कहा वह आत्मा। उसके अतिरिक्त अज्ञानी आत्मा-आत्मा करते हैं, वे आत्मा को जानते ही नहीं। समझ में आया? **जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने...** पाठ में यह है न। **'जिणवरिंदेहिं'** जो आत्मा कहा। राग, पर्याय होने पर भी राग से रहित। कर्म संग में निमित्त होते हैं, परन्तु कर्म से रहित, शरीर होने पर भी शरीर से रहित और एक समय की पर्याय होने पर भी पर्याय से (भी) रहित। शुद्ध बुद्ध आगे लेंगे यह। ३५ में लेंगे। **'सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी'** ऐसा भगवान आत्मा उसका ध्यान करे। वह स्वरूप का ध्यान, वही मोक्ष का उपाय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तीनों स्वरूप की ध्यानदशा है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों द्रव्यस्वभाव का ध्यान है, द्रव्यस्वभाव में एकाग्रता है। वह मोक्ष का मार्ग द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होता है तो द्रव्य में लीन होना। आहाहा! तो ये सब तूफान

क्या? वह तो बीच में विकल्प आता हो। वह तो बाह्य की क्रिया तो बाहर से होती है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प हो शुभभाव, तो वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर भगवान आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वभाव में लीन होना, ध्यान करना, उसको ध्येय बनाकर उसमें रहना, वही मोक्ष का उपाय है। मोक्ष उपाय दो... दो... करते हैं न? दो मोक्ष के मार्ग हैं। एक व्यवहार और निश्चय। दो आते हैं या नहीं? वह तो कथन दो प्रकार का है। व्यवहारमोक्षमार्ग बन्ध का मार्ग है। आहाहा! बहुत कठिन बात जगत को।

मुमुक्षु : तो मोक्ष दो हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो के दो मोक्ष हो। व्यवहारमोक्षमार्ग तो राग को आरोप करके कहा है। है तो बन्ध का ही कारण। मोक्ष का कारण तो एक ही चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का विचार अन्तर में रुककर, एकाग्र होकर पर्याय का प्रगट होना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले निर्णय करे न। यह निर्णय किये पीछे की बात है न यह? पहले निर्णय करना कि आत्मा शुद्धघन आत्मा है, उसको ज्ञेय बनाकर ज्ञान की वर्तमान पर्याय में पूर्ण ज्ञेय बनाकर अनुभव करके निर्णय करना, यह पहली चीज़ है। आयेगा वह। समझ में आया? आहाहा! आगे आयेगा। **शास्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निर्णय है...** वह गाथा ३३ में अन्तिम पद है। ३३ गाथा में। परमात्मा अर्थात् आत्मा परमस्वरूप, परम आत्मा परम स्वरूप, परमपारिणामिकस्वभाव, अकेला ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव। ध्रुव हों त्रिकाल। वीतरागस्वभाव, स्वच्छस्वभाव, प्रकाशस्वभाव। प्रकाश स्वसंवेदन प्रकाशगुण स्वभाव। ऐसे स्वभाव में स्वभाव-सन्मुख होकर निर्णय करना। पहली चीज़ यह है। यह निर्णय धारणारूप नहीं। आहाहा! अन्तर स्वरूप के लक्ष्य में आकर 'यह चीज़ है'—ऐसा अन्तर निर्णय निर्विकल्प हो, वह वास्तविक सम्यग्दर्शन और निर्णय कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझे? यह मार्ग है। आहाहा! लोगों को

ऐसा लगे कि यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय ही सत्य है। बीच में व्यवहार आता है, वह उपचार है, वस्तुस्वरूप नहीं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को स्वरूप का अनुभव होने पर भी शुभराग भक्ति आदि दान, दया आदि का आता है, परन्तु आता है, वह बन्ध का कारण है। स्वभाव के आश्रय से जितना परिणाम उत्पन्न हो, वही अबन्ध परिणाम है। क्योंकि आत्मा अबन्धस्वरूपी मोक्षस्वरूप है। राग के सम्बन्ध बिना की चीज़, वह अबन्धस्वरूप है, वह मुक्तस्वरूप है। उसके अन्दर एकाग्र होकर अबन्धपरिणाम प्रगट होता है। अबन्धस्वभाव के आश्रय से अबन्धपरिणाम उत्पन्न होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। भारी सूक्ष्म, भाई! मार्ग यह है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' परमार्थ का सुखी होने का पंथ तो यह एक है। बाकी तो दु:खी होने के रास्ते हैं सब। आहाहा! यह आत्मा के सम्यग्दर्शन के आश्रय बिना अकेले विकल्प करे दया, दान, व्रत, वह भी दु:खी होने के रास्ते हैं। आहाहा! और संसार के आर्तध्यान, रौद्रध्यान, अशुभभाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषय आदि, वह तो महादु:ख का ही कारण है। आहाहा!

भावार्थ। '**जिणवरिंदेहिं**' शब्द पड़ा है। तीन शब्द लगाये। '**भणियं जिणवरिंदेहिं**' ऐसा कहा है न? '**झायइ परमप्पाणं**' तीसरा पद। जिनवरदेव, तीर्थंकरदेव, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, ऐसे आत्मा का ध्यान करना। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार करते-करते निश्चय हो जायेगा, वह बात है नहीं। बहुत को बहुत अभी व्यवहार करो... व्यवहार करो... शुभराग, शुभ उपयोग करो, करते-करते शुद्ध उपयोग हो जायेगा। आयुष्य पूरा होगा, जिन्दगी चली जायेगी। आहाहा! शुभराग की भी रुचि छोड़कर अपना भगवान ध्रुवस्वरूप नित्य स्वभाव, जिसको परम स्वभावभाव कहा, उसका आश्रय करना, एक ही बात है।

भावार्थ :- सर्वथा सर्व व्यवहार को छोड़ना कहा, उसका आशय इस प्रकार है... सर्वथा और सर्व व्यवहार। आहाहा! टीकाकार ने बात साधारण कर डाली। लौकिक व्यवहार छोड़ना। लौकिक-लौकिक। यहाँ तो सब लोकोत्तर व्यवहार विकल्प, वह छोड़नेयोग्य है। टीकाकार बहुत साधारण, श्रुतसागर। यहाँ तो आचार्य का यह कहना है कि अपने स्वरूप का अनुभव दर्शन होने पर भी, जो बीच में व्यवहार आता है (पूर्ण)

वीतराग हुए पहले, समकिती को रागादि, भक्ति आदि आता है, पंचम गुणस्थान में व्रतादि का विकल्प है, छठवें (में) पंच महाव्रत का राग है, उस व्यवहार को सर्वथा छोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो कहे, भगवान की भक्ति और देव-गुरु की भक्ति करते-करते कल्याण होगा। यह इनकार करते हैं, बापू! उन लोगों को यह विवाद आवे। गुरु की भक्ति में जो लगे हैं, उन्हें वहाँ से मुक्ति होगी—ऐसा माननेवाले। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि देव अरिहन्त की भक्ति से शुभराग है। राग से आत्मा का कल्याण हो, ऐसा कभी बनता नहीं। आहाहा! अपने स्वरूप में... है? **लोक व्यवहार तथा धर्म व्यवहार सब ही छोड़ने पर ध्यान होता है...** देखो! पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ भी उसमें है ऐसा किया है। लोक व्यवहार, स्त्री, कुटुम्ब का पोषण करना, व्यापार करना, धन्धा करना, यह सब लोक व्यवहार पाप। समझ में आया? वह भी छोड़। **धर्म व्यवहार सब ही छोड़ने पर...** यह विनय, पर का वैयावृत्य और शास्त्रश्रवण और शास्त्र कथन करना। अहाहा! वह सब विकल्प, वह व्यवहार है। यह **सब ही छोड़ने पर ध्यान होता है...** पर-सन्मुख का झुकाव सब छोड़ने से स्वसन्मुख का झुकाव होता है। गजब! यहाँ तो आत्मा का ध्यान एक ही मोक्ष का उपाय—एक सिद्धान्त है। तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा का ध्यान है। आहाहा!

मुमुक्षु : शून्य हो जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर से शून्य हो जाओ, अन्दर में जागृत हो जाओ। शून्य हो जाओ तुम्हारे रजनीश कहता है, ऐसा नहीं। ऐई! सेठ! तुम्हारे रजनीश कहा। रजनीश ऐसा कहता है, शून्य हो जाओ। वह तो जड़ हो जायेगा। सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा कहा उसका भान ही कहाँ है? समझ में आया? भाषा की जरा चतुराई है तो लोग माने। लोग मूढ़ जैसे है, वह ऐसी भाषा की वर्णन (से आकर्षित हो जाये)।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिनवरदेव ने जो आत्मा द्रव्यस्वभाव कहा और उसका गुणस्वभाव कहा और उसका पर्यायभाव कहा, इन तीनों में से द्रव्य का ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। पर का तो नहीं... आहाहा! परन्तु द्रव्य, गुण और पर्याय—ऐसा तीन भेद का भी ज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान ने कहा ऐसा द्रव्य, गुण, पर्याय, हों! सर्वज्ञ

परमेश्वर तीर्थंकरदेव के सिवाय यह चीज़ दूसरे में है नहीं। इसलिए कहा कि भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, द्रव्य और उसका स्वभाव ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त है, वह गुण और उसकी पर्याय वर्तमान में दृष्टिवन्त को तो निर्मल ही पर्याय होती है। यहाँ तो स्वभाव और स्वभाव की दृष्टि से कथन है न! समझ में आया? इन तीनों का विचार भी छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? जन्म-मरण चौरासी के अवतार, भाई! भव का अंत... अनन्त काल हुआ, ऐसी कर्मकाण्ड की क्रिया अनन्त बार की। उससे तो कोई संसार का अन्त आया नहीं। वह स्वयं संसार है न, यह शुभभाव ही संसार है। आहाहा! शुद्धस्वरूप ध्रुव चैतन्य में से 'संसरणं इति संसार:'—ऐसा स्वभाव से हटकर राग में आया वही संसार है। आहाहा!

कहते हैं, सब छोड़कर ध्यान करना। **इसलिए जैसे जिनदेव ने कहा है, वैसे ही परमात्मा का ध्यान करना।** परमस्वरूप। परमात्मा या परमस्वरूप, ऐसा। यह परमात्मा, यह पर परमात्मा नहीं। अपना परमस्वरूप परमात्मा ध्रुव का ध्यान करना। तो ध्रुव, वह परमात्मस्वरूप है। ध्रुव मुक्तस्वरूप है, परमस्वभाव है, परिपूर्ण स्वभाव है उसका, परमात्मा ने कहा वह आत्मा, उसका ध्यान करना। आहाहा! **अन्यमती परमात्मा का स्वरूप अनेक प्रकार से अन्यथा कहते हैं...** अन्यमती परमात्मा का स्वरूप अनेक प्रकार से अन्यथा कहते हैं। कुछ न कुछ सर्वव्यापक है या एक थोड़ा इसमें है कां अल्पज्ञ रह सके सदा, परमेश्वर पूर्ण है, ऐसा हो सके नहीं—ऐसा एक-एक आत्मा का स्वरूप ऐसा कहते हैं, वह सब विपरीत है। एक-एक आत्मा परमात्मा हो सके, ऐसी शक्तिवाला है। समझ में आया? अन्दर स्वरूप तो अन्दर पूर्ण परमात्मस्वरूप ही ध्रुव में है। पर्याय भी अपरमभाव है। आहाहा! राग तो कहीं रहा। उसकी पर्याय अपरमभाव है। परमभाव तो ध्रुव है। आहाहा! ऐसा आत्मा का परमात्मा ने कहा, ऐसे का ध्यान करना।

अन्यथा उपदेश करते हैं, उसका निषेध किया है। अन्यमती अन्य विचार करे ऐसा है, प्रकाश है, ऐसा है। एक आया था यहाँ सात प्रतिमावाला। तो पूछा कि आत्मा अन्दर कैसा है कि पहले दिखे लाल और बाद में दिखे सफेद। खबर न होती कुछ। पहले दिखे लाला। आँख ऐसे भींसे और तो लाल जैसा दिखे न। वह तो जड़ है लाल तो। बाद में दिखे तो सफेद। सफेद, वह तो रंग है। वह आत्मा कहाँ है? अन्दर में राग

उत्पन्न है भगवान की भक्ति आदि का, वह भी आत्मा नहीं, वह तो राग आस्रव है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर (ऐसा कहते हैं), आत्मा तो रागरहित है और एक समय की पर्याय में भी वह आता नहीं। आहाहा! और एक समय की पर्याय, उसको छूती नहीं। आहाहा! व्यक्त को स्पर्शता ही नहीं। आहाहा! छठवीं गाथा में आया। अव्यक्त में आया ४९ गाथा में। व्यक्त-अव्यक्त का जानन होने पर भी व्यक्त को स्पर्शता नहीं। आहाहा!

ज्ञान दो का करे। पर्याय और द्रव्य का। तथापि द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। ओहोहो! तब कहा था न पण्डितजी ने? विवक्षाभेद है। ... सुना नहीं न विवक्षाभेद है। विवक्षाभेद नहीं। तात्पर्य भाव यह है। विवक्षाभेद करके साधारण अरे! ऐसा कहा, ऐसा कहा। ऐसा नहीं। वस्तु का प्रयोजन सिद्ध करने की यह चीज़ है। विवक्षाभेद नहीं। थे या नहीं तुम? थे या नहीं वो? कैलाशचन्दजी ने कहा था न कैलाशचन्दजी ने, पण्डाल में। ऐसा कि एक समय की पर्याय को स्पर्शता नहीं आत्मा। पर्याय से भी भिन्न है। वह विवक्षाभेद है। विवक्षाभेद नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

मुमुक्षु : विवक्षा भी स्वरूप के कारण से हो या ऐसा का ऐसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि वह तो एक अपेक्षा से ऐसा भी कहलाये, ऐसा इसका अर्थ। ऐसा कहते हैं बहुत, खबर है।

यहाँ तो परमात्मा। आहाहा! पूर्ण ध्रुव शुद्ध चैतन्यबिम्ब अकषाय रसकन्द, परमस्वरूप पारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, वही आत्मा। इस द्रव्य को लक्ष्य में लेने के कारण पर्याय को स्पर्शता नहीं, ऐसा कहा जाता है। पर्याय उसको मानती है, जानती है, परन्तु पर्याय उसमें एकमेक नहीं होती। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! ऐसी बात। पर्याय वस्तु है, परन्तु त्रिकाली वस्तु में पर्याय का प्रवेश नहीं। वह वस्तु को ध्येय बताने और द्रव्य को सम्यग्दर्शन विषय बताने को कहा है। अकेला कथन करना, ऐसा भी है— ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद होती नहीं। अभेद तो परसन्मुख का लक्ष्य था, वह

अन्तर में झुकी तो अभेद कहने में आता है। बाकी पर्याय और द्रव्य दो भिन्न रहते हैं। पर्याय का अंश जो त्रिकाल अंश में प्रवेश कर जाये तो द्रव्य भी अंशरूप हो जाये और त्रिकाली द्रव्य जो पर्याय में आ जाये तो वह भी अंशरूप हो जाये। ऐसा है नहीं। जुगलजी! लॉजिक से तो यह है न। आहाहा!

यह शरीर, वाणी, मन तो धूल-मिट्टी कहाँ रह गयी। यह तो जगत के तत्त्व भिन्न हैं। कर्म भी भिन्न तत्त्व है, अन्दर पुण्य और पाप का विकल्प है, वह तो विकार आस्रवतत्त्व भिन्न रहा, परन्तु उसकी पर्याय क्षयोपशम आदि है... आहाहा! अरे! क्षायिक पर्याय हो, तो वह पर्याय को द्रव्य छूता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ये द्रव्य की दृष्टि कराने को और द्रव्यस्वभाव का आश्रय कराने को कहा है। विवक्षाभेद कथनमात्र कहने से भी है, ऐसा नहीं। ऐई! सेठ! आहाहा! भगवान से भेंट कराने को यह कहा है। आहाहा! भगवानजीभाई! ऐसी वस्तु है, भाई! आहाहा! दुनिया को न बैठे।

यह कहा न, देखो! **जिनदेव ने परमात्मा का तथा ध्यान का स्वरूप कहा, वह सत्यार्थ है,...** परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप ध्रुव जो कूटस्थ है, कभी हिलता नहीं, कभी परिणमता नहीं। आहाहा! परिणमे, वह पर्याय। ध्रुव परिणमे नहीं, ध्रुव हिले नहीं, ध्रुव हीन होता नहीं, ध्रुव में पर्याय का प्रवेश नहीं, पर्याय में ध्रुव का आना नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब तो ठण्डा मौसम है न। बहुत तो गया धीरे-धीरे। आहाहा! तेरी चीज़ ही इतनी बड़ी है। आहाहा! एक समय की पर्याय में वह आती ही नहीं। ऐसे आत्मा का स्वरूप परमात्मा और उसका ध्यान.. सर्वज्ञ ने कहा कि उस ओर का झुकाव, तो ऐसे कोई ध्यान करना, त्राटक करना, विकल्प करना, वह ज्ञानार्णव में आता है। पृथ्वी धारणा, जल धारणा। वह तो विकल्प अशुभ में से हटने को ऐसा पहले आता है। परन्तु वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा!

जिनदेव ने परमात्मा... इसलिए आत्मा पूर्ण ब्रह्म आनन्दकन्द प्रभु जो कहा और उसका ध्यान का स्वरूप कहा। अन्तर में एकाग्रता, वह पर्याय। अन्तर में एकाग्रता, वह पर्याय ध्यान। **वह सत्यार्थ है,...** यह बात सच्ची है। **प्रमाणभूत है...** प्रमाणभूत है। आहाहा! **वैसे ही जो योगीश्वर करते हैं...** ऐसे ही योगीश्वर यह ध्यान (करते हैं)। विकल्प से शून्य हो जाओ, विकल्प से शून्य हो जाओ। यह बहुत कहता है रजनीश।

परन्तु विकल्प से शून्य होना... कहाँ से जाने ? पैर रखते हैं तो नीचे से उठाते हैं तो ऊपर रखते हैं न ? उसी प्रकार अन्तर में जाये, सत्ता कितनी है ? उस सत्ता पर दृष्टि जाये तो विकल्प शून्य हो जाये। सत्ता में आये बिना विकल्प शून्य कहाँ से आया ? सत्ता कैसी है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया ? परम महासत्ता में प्रवेश किये बिना विकल्प की एकता टूटती नहीं कभी। शून्य कहाँ से हो ? जड़ हो जाये शून्य। महासत्ता के अवलम्बन बिना विकल्प तोड़ने जाये और विकल्प से शून्य होने जाये तो जड़ हो जायेगा। समझ में आया ? रजनीश ने कहीं बैठाया होगा या नहीं सेठ ? ऐई! सेठ! रजनीश ने किसी समय तुम्हारे मेला में बैठाया होगा या नहीं ? मेला-बेला में कहीं किसी जगह ? ऐई! सेठ! किसी मेला में। तारणस्वामी ने मेला में कहीं बैठाया था न उसको भाषण करने को। आया था, सुना है। तुम्हारी बात यहाँ सब आती है। पहले हों, पहले। पहले कोई भाषण दिया था। सेठ पहले आये थे थोड़े वर्ष पहले। बहुत वर्ष पहले सुना था। तारणस्वामी के मेला में वह भाषण करने को आये थे। ऐसों का भाषण-बाषण नहीं। समझ में आया ?

एक तो उसकी भक्त थी महिला। बहुत भक्त थी बहुत। बाद में उसको कुछ पोल दिखी उसकी, तो लेख आया। लेख आया था। कि हे भगवान! हिन्दुस्तान में ऐसे नास्तिक को जन्म नहीं देना। ऐसी महिला थी एक। स्त्री कोई भक्त-भक्ताणी। नाम आया था। समाचारपत्र में आया था। फिर कहा प्रभु! यह हिन्दुस्तान में ऐसा नास्तिक नहीं। चार्वाक जैसा नास्तिक है। चार्वाक, ऐसा लिखा था उसने, हों! और देखी होगी कोई पोल सब। आहाहा!

यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर। आहाहा! जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक की पर्याय जानने में आ गये। जानने में। आहाहा! यह भगवान ने जो आत्मा असंख्य प्रदेशी क्षेत्र (कहा) यह कहाँ है जगत में ? सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहाँ है वह ? है तो सही न पहला शरीर प्रमाण ? तो असंख्य प्रदेशी और एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण। ऐसे अनन्त गुण व्यापे हैं। आहाहा! ऐसे परमात्मस्वरूप और उसकी एकाग्रता ध्यान, यह भवगान ने कहा वह सत्यार्थ है।

प्रमाणभूत है, वैसे ही जो योगीश्वर करते हैं, वे ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

यह भगवान ने कहा ऐसा आत्मा में सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप का ध्यान करते हैं, वह मोक्ष को पाते हैं। मोक्ष अधिकार है न?

★ ★ ★

गाथा - ३३

अब जरा कहते हैं, **आगे जिनदेव ने जैसे ध्यान-अध्ययन की प्रवृत्ति कही है, वैसे ही उपदेश करते हैं:—** ऐसे कि ऐसा स्वरूप का ध्यान (करे) और उसमें ध्यान में न रह सके तो शास्त्र का अध्ययन (करे)। क्योंकि अध्ययन शास्त्र में भी परमात्मा के स्वरूप का ही निर्णय कहा है। आहाहा! शास्त्र चाहे जिस प्रकार का हो, परन्तु उसमें परमात्मा वीतरागस्वरूप क्या है, उसका निर्णय कराने को शास्त्र कहा है। आहाहा! समझ में आया? चरणानुयोग में कथन हो महाव्रत आदि, बारह व्रत का, परन्तु उसमें उससे रहित आत्मा शुद्ध परमात्मा है—ऐसा निर्णय कराने को वह बात सब की है। समझ में आया?

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सया कुणह॥३३॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं... कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। **जो पाँच महाव्रतयुक्त हो गया...** क्योंकि जिसको सम्यग्दर्शन तो है और तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव होकर चारित्र भी है और उसके पास पंच महाव्रत का विकल्प है छठवाँ गुणस्थान, यह बात करते हैं। समझ में आया? अन्तर द्रव्यस्वभाव का अनुभव है, उसके उपरान्त स्वरूप की स्थिरता भी चारित्र की है। उसको जो पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह महाव्रतयुक्त हो गया व्यवहार। **पाँच समिति...** अर्थ करेंगे। व्यवहार समिति ये, हों! देखकर चलना, विचार कर बोलना, **तीन गुप्तियों से युक्त हो गया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नत्रय से संयुक्त हो गया...** अकेला पंच महाव्रतादि का नहीं। परन्तु भगवान आत्मा का त्रिकाली शुद्ध ज्ञायकस्वभाव, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, इन तीन रत्नसहित हो गया है।

ऐसे बनकर... देखो ! ऐसे बनकर, ऐसे होकर। मार्ग ऐसा है, भाई ! धमाधम चली। क्या कहा ? चेतनजी ! यशोविजय ने कहा न ? 'धामधूमे धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर।' यह कहा सही, परन्तु उसे कुछ गड़बड़ निकली नहीं। आहाहा ! यह करो और यह करो और यह करो। शान्तियज्ञ करो, सिद्धपूजा करो और यह करो। धमाधम। लाखों-करोड़ों रुपये का खर्च हुआ, लाखों लोग इकट्ठे हुए। ओहोहो ! तो क्या हुआ ? वह तो क्रिया पर है। उसमें राग आया, वह तो शुभ है। उसमें धर्म मानता है तो मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करे कौन ? वह तो होती है। ऐ... सेठ ! यह पच्चीस हजार लोग उनके कारण से आये और उसके कारण से पर्याय उसमें उनकी हुई।

मुमुक्षु : अपने आमन्त्रण दिया था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आमन्त्रण दे कौन ? यह वाणी करे वह आमन्त्रण दे। ऐ.. जेचन्दभाई ! यह सब गजब भाई ! २५-२५ हजार लोग। लोग (थे) परन्तु एक ऊंहकारा नहीं होता था। शान्त। पच्चीस हजार से अधिक व्यक्ति थे। सुनते, जहाँ आवाज निकले वहाँ शान्त। इतनी तो सुनने की लोगों को जिज्ञासा। भाई ! मार्ग तो यह है, प्रभु ! बहुत संख्या हो तो धर्म सच्चा है, ऐसी कोई चीज़ नहीं। आहाहा ! वह शुभभाव हो, परन्तु बाहर की चीज़ बनने की हो तो बनो, वह कोई अपने अधिकार की बात है नहीं। आहाहा ! एक अँगुली फेरने की शक्ति आत्मा में नहीं। ऐसे हिले तो जड़ के कारण से (हिलती है)। आहाहा ! आँख की पलक ऐसे होती है, वह जड़ से होती है, आत्मा से होती नहीं। क्या करे पर का ? आहाहा ! और परसन्मुख का लक्ष्य हुआ भक्ति आदि का तो वह शुभभाव है। वह आते हैं बीच में, परन्तु वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे। पूर्ण वीतराग न हो, तब निश्चयसहित में व्यवहार आता है। अज्ञानी को व्यवहार नहीं और केवली को व्यवहार नहीं। परन्तु है व्यवहार बन्ध का कारण, वह जानना चाहिए। भाई ! यह तो मार्ग वीतराग का है। उसमें कम, अधिक, विपरीत कुछ न चले। आहाहा !

कहते हैं कि पंच महाव्रत के विकल्पसहित, पाँच समिति-गुप्तिसहित, वह व्यवहार। और निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय के सहित हो गये। **ऐसा बनकर हे मुनिजनों!** हे मुनिजनो! आहाहा! **तुम ध्यान और अध्ययन-शास्त्र के अभ्यास को सदा करो।** तुम तो आत्मा का ध्यान करो। आहाहा! निर्विकल्प में रहो। न रह सके तो शास्त्र का अध्ययन करो। (और) तुम्हारे तीसरी चीज़ होती नहीं। आहाहा! शास्त्र के अध्ययन का विकल्प आता है (जो) अन्दर रह न सके। दृष्टि तो ध्रुव पर है। ध्रुव पर दृष्टि और ध्रुव का आश्रय होने पर भी उग्र आश्रय नहीं, इसलिए बीच में ऐसा शास्त्र अध्ययन का विकल्प आये बिना रहे नहीं। परन्तु उस विकल्प में भी निर्णय तो ऐसा करना कि यह पूर्णानन्द प्रभु है, उसमें जाना है मुझे। समझ में आया? शुद्ध चैतन्यघन परमात्मा आनन्द का धाम चैतन्यज्योति स्वयं ज्योति, ऐसी चीज़ में मुझे ध्यान करना है। ऐसी दृष्टि रखकर ऐसा भाव आता है।

मुमुक्षु : हमारे लिये यह बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके लिये बात है।

मुमुक्षु : बिना आत्मज्ञान होती नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मज्ञान करना, वह तो बात करते हैं। आत्मज्ञान नहीं है; इसलिए तो करना है—ऐसा कहते हैं। ज्ञान नहीं है तो आत्मज्ञान करना। पहली चीज़ यह है। नियमसार में कहा न वह? '**णियमेण य जं कज्जं**' ये लक्षणावली में डाला है, हों! यह लक्षणावली है न पुस्तक? उसमें यह शब्द डाला है। '**णियमेण य जं कज्जं**' तीसरी गाथा नियमसार की। उसमें डाला है। बोल आवे न 'न' नी।

मुमुक्षु : नियम से कर्तव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नियम से कर्तव्य। '**जं**' नियम से कर्तव्य है। तीसरी गाथा का पहला पद है। यह लक्षणावली में डाला। वापस दूसरी गड़बड़ डाली। मार्ग तो एक सच्चा हो, वही होना चाहिए, उसमें गड़बड़ नहीं। भले निश्चय में न रह सके स्थिर, व्यवहार विकल्प आता हो, परन्तु वह विकल्प बन्ध का कारण है, ऐसा जाने बिना उसका निश्चय सच्चा नहीं रहता। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि की अपेक्षा से बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती की बात है यहाँ। आहाहा! उत्कृष्टपने तो मुनि हैं न? समकिती लघुनन्दन है न? यह बड़ा नन्दन है मुनि। जिनेश्वर का बड़ा नन्दन, बड़ा पुत्र। समकिती लघुनन्दन है। परन्तु उसकी क्रिया तो एक ही आत्मा के आश्रय हो, वही मुक्ति का मार्ग है—दोनों को एक ही बात है। समकिती को या मुनि को। आहाहा! **तुम ध्यान और अध्ययन-शास्त्र के अभ्यास को सदा करो।**

भावार्थ :- अहिंसा... महाव्रत। **सत्य,...** महाव्रत। **अस्तेय,...** चोरी नहीं। **ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग...** ये पंच महाव्रत। है वह विकल्प, है आस्रव। आहाहा! परन्तु व्यवहार ... निश्चय का अनुभवसहित आये बिना रहता नहीं। **ईर्या, भाषा, ऐषणा,...** देखकर चलना, विचार के बोलना, निर्दोष आहार लेना। **आदाननिक्षेपण,...** मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक लेना, रखना यत्ना से। **प्रतिष्ठापना...** बलगम, पेशाब, दस्त छोड़ना। **पाँच समिति और मन, वचन, काया के निग्रहरूप तीन गुप्ति, यह तेरह प्रकार का चारित्र जिनदेव ने कहा है, उससे युक्त हो...** तेरह व्यवहार हों ये सब। **और निश्चय-व्यवहाररूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा है...** भगवान ने, निश्चय सम्यग्दर्शन अपना चैतन्यस्वरूप का अनुभव में प्रतीति और व्यवहार सम्यग्दर्शन देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, दोनों जिनदेव को कहा है। व्यवहार से युक्त-सहित कहा न? और निश्चय सम्यग्ज्ञान। अपने आत्मा का ज्ञान, वह निश्चय सम्यग्ज्ञान और शास्त्र आदि का ज्ञान, वह व्यवहारज्ञान। निश्चय चारित्र। आनन्दस्वरूप में लीन हो जाना। चरना, रमना, जमना, आनन्द का भोजन करना, वह निश्चयचारित्र। यह क्या होगा? और साथ में पंच महाव्रत आदि व्यवहार चारित्र। **इनसे युक्त होकर ध्यान और अध्ययन करने का उपदेश है।** मुनि बने समयग्दर्शन-ज्ञानसहित और निश्चयचारित्रसहित, (उन्हें) व्यवहार ऐसा आता है, दर्शन-ज्ञान (और) विकल्प व्यवहार, इसके सहित होकर ध्यान और अध्ययन करने का उपदेश है। लो!

इनमें भी प्रधान तो ध्यान ही है... मुख्य तो ध्यान ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अध्ययन कहा, वह तो ध्यान में रह सके नहीं, तथापि दृष्टि और ज्ञान की स्थिरता स्वरूपसन्मुख तो है, तो उसमें **ध्यान और अध्ययन करने का उपदेश है। इनमें भी**

प्रधान तो ध्यान ही है और यदि इसमें मन न रुके तो शास्त्र के अभ्यास में मन को लगावे... परन्तु वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्थिरतासहित की बात है। आहाहा! बात तो यह है। शास्त्र में अभ्यास में मन को लगावे, **यह भी ध्यानतुल्य ही है,...** तुल्य है। ध्यानस्वरूप नहीं, परन्तु उसके समान। अर्थात् क्या? **क्योंकि शास्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निर्णय है,...** देखो भाषा! शास्त्र में सब कथन चाहे जितने आवे, परन्तु उसमें आत्मा द्रव्य क्या है? गुण क्या है? स्वभाव क्या है, वही वर्णन उसमें है। आहाहा! चाहे तो भक्ति की व्याख्या आवे, महाव्रत की आवे, परन्तु उसका तात्पर्य क्या? तू परमात्मा पूर्णानन्द है, यह बताने के लिये यह विकल्प और व्यवहार आया है। समझ में आया? व्यवहार परमार्थ को बतानेवाला है कि यह वस्तु परमस्वरूप आनन्द है। आहाहा! उसका निर्णय करने के लिये शास्त्र है। ऐसा आया न? **शास्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निर्णय है, सो यह ध्यान का ही अंग है।** शास्त्र अध्ययन, वह विकल्प है परन्तु उसमें से स्व का आश्रय उग्र है तो शुभभाव आया। यदि मन्द है तो अशुभ होता है, आश्रय विशेष है तो शुभभाव (होता है)। तो अशुभ में से... द्रव्य के आश्रय से अशुभ नाश हुआ। उस अपेक्षा से अध्ययन को ध्यान का एक अंग कहने में आया है। आहाहा! गजब, भाई! व्यवहार के रसिक को यह बात ऐसी लगे। व्यवहार-व्यवहार अन्धा।

मुमुक्षु : .... छोड़कर ऐसा कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बाद में कहा न। इसलिए विकल्प को छोड़कर ध्यान कर। तथापि ध्यान में स्थिर न रह सके तो शास्त्र का अध्ययन कर, ऐसा कहा। है तो विकल्प। करना तो ध्यान प्रधान कहा न। प्रधान तो ध्यान ही है। परन्तु उसमें रह सके नहीं तो उसे शास्त्र का अध्ययन (करना)। वह दृष्टिपूर्वक की बात है।

मुमुक्षु : लम्बा काल।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लम्बा काल स्थिर न रह सके। सातवें गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त, तुरन्त छठवाँ आता है। आहाहा! यह तो अपूर्व मार्ग है, भाई! साधारण बात में ऐसा मिलान नहीं होगा। आहाहा! संसार का अन्त स्वभाव के अनुभव बिना, दर्शन बिना होता नहीं। और बाद में भी जो विकल्प है, कहते हैं कि वह बन्ध का कारण है। परन्तु

स्वरूप में विशेष स्थिर न हो सके तो अध्ययन करना। अध्ययन में निर्णय तो यहाँ ही करना है। वीतरागता तात्पर्य है न? तो सर्व शास्त्र में तो वीतरागता तात्पर्य कहा है। तो पर से उपेक्षा, स्व की अपेक्षा—ऐसा शास्त्र में निर्णय करना। आहाहा! शास्त्र में से ऐसा निकालना। व्यवहार से हटकर अन्दर में जाना, परमात्मस्वरूप में जाना—ऐसा उसमें निकालना। विकल्प से अध्ययन करे तो भी उसमें से यह निकालना। आहाहा!

यहाँ तो स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य कहने में आया है। सिद्धान्त तो ऐसा है कि जो आत्मबल है न, बल? उस बल का स्वरूप क्या? कार्य क्या? यह तो स्वरूप की शुद्धता की रचना करे, वह वीर्य है। बीच में व्यवहार आता है, वह स्वरूप की रचना का वीर्य नहीं। आहाहा! गजब बात, वीतराग की बात! सम्यग्दृष्टि को, ज्ञानी को भी शुभभाव आता है, वह स्वरूप की रचना का कार्य नहीं। यह नपुंसकता है उतनी। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ ने तो ऐसा कहा। उससे पंचम काल है तो फेरफार करना, ऐसा है? काल के दोष से अभी तो शुभयोग से धर्म होता है, ऐसा कहो। प्रभु! तीन काल में ऐसा होता नहीं। सम्यग्दर्शन में शुभराग की कोई अपेक्षा है ही नहीं। व्यवहार की अपेक्षा अन्तर दृष्टि-ज्ञान में है ही नहीं। परन्तु जो अन्तर दृष्टि-ज्ञान हुए, तथापि स्थिर न रह सके तो शास्त्र अध्ययन करना। लो एक ओर कहा कि धर्म उपदेश और शास्त्र अध्ययन राग है। परन्तु वह विकल्प में भी, शास्त्र अध्ययन में भी ऐसा परमात्मा का निर्णय कराते हैं, उस चीज़ में जाओ, उस चीज़ में जा यह कहते हैं शास्त्र। वीतरागता तात्पर्य है न चारों अनुयोग का? वह कहते हैं, द्रव्यानुयोग पढ़ो। परन्तु चारों ही अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। चाहे तो चरणानुयोग, करणानुयोग... क्या हो? भगवान! तूने मेरे आत्मा को लुटाया है। बाहर से लाभ होगा, ऐसे लुटाया है। आहाहा!

भगवान आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय रस पड़ा है। ऐसा जिसको भान हुआ, (उसकी) पर में आनन्दबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! विषयवासना हो परन्तु आनन्द है, वह बुद्धि उड़ जाती है धर्मी की। आहाहा! शुभभाव में भी सुखबुद्धि नाश हो जाती है। शुभभाव में सुख है तो शुभभाव से लाभ है, वह बुद्धि उड़ जाती है। तब सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो अलौकिक बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकोत्तर बात वीतराग की है, भाई! आहाहा! कितना दु:ख सहन करते हैं, देखो न! शरीर में पीड़ा, बुखार। ओहोहो! १०६-६ डिग्री बुखार हो तो ऐसा लगे धाणी सिंकती हो, ऐसा लगे उसे। अरर! उससे तो अनन्तगुणी पीड़ा नरक में है। अन्तर दृष्टि का भान किये बिना मिथ्यात्व के फल में कोई शुभभाव हो तो स्वर्ग मिले, अशुभ हो तो नरक। परन्तु वह गति चार गति है। उसमें कोई आत्मा है नहीं। आहाहा! अर्थकार ने क्या कहा, समझे?

शास्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निर्णय है, सो यह ध्यान का ही अंग है। शास्त्र पठन में तो वह आत्मा ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... उसमें लीन होना। वह उसमें कथन करना है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ७, शुक्रवार, दिनांक १५-०३-१९७४
गाथा - ३४ से ३७, प्रवचन-१२८

(मोक्षपाहुड़) चलता है। ३४वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जो रत्नत्रय की आराधना करता है, वह जीव आराधक ही है:—**

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो।
आराहणविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं॥३४॥

अर्थ :- रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... जो आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञान और आनन्द का पिण्ड-कन्द, उसकी अन्तर दृष्टि, अन्तर ज्ञान और अन्तर रमणता—यह रत्नत्रय—मोक्ष का मार्ग। **आराधना करते हुए...** यह तीन आराधना है, सेवन। शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु के स्वसन्मुख की दृष्टि, स्वसन्मुख का ज्ञान और अन्तर में रमणता—यह आराधना। आराधना करना और जीव आराधक। तीन बोल हैं इस गाथा में। आराधना, आराधक, आराधना का फल। मोक्षप्राभृत है न! रत्नत्रय, यह निश्चयरत्नत्रय, हों! सूक्ष्म बात तो है न! मोक्ष का अधिकार। स्वद्रव्य चैतन्य नित्यानन्द ध्रुव की श्रद्धा और उसका ज्ञान और उसमें रमणता—इन तीन की आराधना करते हुए, तीन की सेवा करते हुए **जीव को आराधक...** उसे आराधना करनेवाला कहा जाता है। समझ में आया?

यह नहीं कहते बाहर में कि इस देवी को आराधते हैं, देव को आराधते हैं। वह आराधना अर्थात् सेवना। यहाँ तो पर्याय का सेवना, ऐसा कहा है। उसका अर्थ कि त्रिकाल जो आत्मा अपने द्रव्यस्वभाव की सेवना करता है तो आराधना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ही सेवना करता है। पर्याय और पर्यायवान अभेद गिनकर यह आत्मा तीन की आराधना करे, वह आत्मा आराधक है। अब थोड़े लोग हो गये न, इसलिए हिन्दी थोड़ा हो गया। अब हिन्दी चले जाने की तैयारी हो गयी। सेठ भी अब जानेवाले हैं न एक-दो दिन में। सेठ! कल जाना है या परसों? हिन्दीवाले गुजराती... आहाहा!

वस्तु सार में सार यह गाथा है। चैतन्यस्वरूप जो भगवान आत्मा... वह व्याख्या करेंगे ३५में। कैसा आत्मा वह ? यह आत्मा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय की सेवना करे, ऐसा लिखा है। उसकी आराधना करे। आहाहा! यह जीव आराधक है, आराधक है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा की दृष्टि, आत्मा का ज्ञान और आत्मा की रमणता—तीन की आराधना करनेवाला जीव आराधना करता है, वह आराधक है। ओहो! **और आराधना के विधान का फल केवलज्ञान है।** तीन की सेवना करनेवाला आराधक जीव, उसको फल में केवलज्ञान मिलता है। आहाहा! कहो, बहुत सूक्ष्म संक्षिप्त! समझ में आया ?

मोक्ष का अधिकार है न, मोक्षप्राभृत, मोक्षसार। भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है, सिद्ध स्वयंसिद्ध है, शुद्ध है। आगे कहेंगे। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। ऐसी चीज़ जो वस्तु, उसकी आराधना करना, वह पर्याय की आराधना करना, ऐसा यहाँ लिया है। समझ में आया ? जिसने अपने ध्रुवस्वरूप की अन्तर में सेवा की, उसने दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवा की। आहाहा! द्रव्य की जो आराधना की, वह पर्याय की आराधना करता है, ऐसा कहा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : द्रव्य की आराधना और तीन की आराधना।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन की आराधना, वह आराधक। परन्तु वह आराधना है, वह पर्याय है। पर्याय की सेवना आराधक और वह पर्याय द्रव्य की है, इसलिए आराधक जीव भी आराधक। आराधना करनेवाला जीव, वह आराधक। आहाहा!

और '**तस्स फलं केवलं णाणं**' भगवान आत्मा अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवा करनेवाला, आराधक जीव आराधते हैं अपनी पर्याय निर्मल, उसका फल केवलज्ञान है। मोक्षप्राभृत लेना है न। आहाहा! यह व्यवहार-फ्यवहार बीच में आता है, वह बन्ध का कारण है, उसकी आराधना करना नहीं, ऐसा कहते हैं। पुण्य पंच महाव्रतादि आदि बीच में विकल्प हो, उसकी आराधना नहीं करना है, उसकी सेवा नहीं करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : महाव्रत आराधना है या विराधना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत, वह चारित्र की विराधना है। चारित्र में दोष है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र का अंग मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? किसका अंग? कौन कहता है? अंग कहा नहीं, वह तो दूसरी बात कही थी। परमात्मा के स्वरूप का निर्णय, वह ध्यान का अंग कहा था। वह तो व्यवहार अंग। यह तो अध्ययन करना। स्वरूप परमात्मा का अध्ययन करता है, उसमें निर्णय निकालना, शास्त्र का अध्ययन करता है, उसको निर्णय निकालना कि मैं तो परमात्मा हूँ। शास्त्र का ऐसा कहना है और ऐसा निकालना। चाहे जो शास्त्र पढ़ो चारों ही अनुयोग, परन्तु उसमें से मैं परमात्मा हूँ, ऐसा निर्णय निकालना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! 'अप्पा सो परमअप्पा।' बहुत आता है। तारणस्वामी में बहुत आता है। सेठ! उसमें वह ज्ञानसार (ज्ञानसमुच्चयसार)। उसमें बहुत आता है। 'अप्पा सो परमअप्पा।' आत्मा, वह परमात्मा है। परमात्मा शास्त्र में से निकालकर ऐसा निर्णय करना। मैं परमात्मा हूँ। मैं अल्पज्ञ हूँ, यह पर्यायबुद्धि निकालना नहीं उसमें से, ऐसा कहते हैं। मैं रागवाला हूँ, ऐसा निर्णय नहीं निकालना। ज्ञान जाने (कि) पर्याय में रागादि है। परन्तु निर्णय निकालना उसमें से (कि) मैं तो परम शुद्ध चैतन्यघन परमात्मस्वरूप ही मैं हूँ। ऐसा आराधना सम्यग्दर्शन में भी ऐसी प्रतीति, सम्यग्ज्ञान में ऐसा ज्ञान और चारित्र में द्रव्यस्वभाव में लीनता। तो यहाँ तो यह तीन की आराधना करते हैं, ऐसा लेना है। क्योंकि धर्मपर्याय और धर्मीजीव दोनों अभेद हैं। गुण और गुणी अभेद हैं, एक जानकर तीनों को आराधना करनेवाला जीव आराधक और उसका फल मोक्ष। आहाहा!

लोगों को निश्चय ऐसा लगे। कठोर लगता है। '**ईक्षन्ते**' आया है न अपने चौथे कलश में नहीं आया? तो अपने देखते हैं, ऐसा लिखा है। परन्तु वह देखते हैं, इसका अर्थ उसने परमार्थ निकाला है। प्रत्यक्ष जानना। देखने का अर्थ यह है। और (परम) अध्यात्म तरंगिणी में भी ऐसा लिया है 'अवलोयंति इति साक्षात् कुर्वंति' 'अवलोयंति

इति साक्षात् कुर्वंति' वह साधारण भाषा है न, देखे अर्थात् साधारण लगे उसे। इसलिए राजमलजी ने स्पसष्ट किया है कि साक्षात् प्रत्यक्ष कुर्वंति। यह देखने का अर्थ है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

विकल्प से पार परमात्मस्वरूप भगवान को ज्ञान में प्रत्यक्ष करना, ऐसी श्रद्धा करना और उसमें लीन होना, यह तीनों की आराधना कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? इसमें बीच में महाव्रत और भगवान की सेवा करना, यह उसमें आया नहीं। बीच में आता है, परन्तु वह राग है। राग से मुक्ति होती है, ऐसा नहीं। आता है व्यवहार बीच में, परन्तु वह बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति व्यवहार, भगवान की भक्ति, पूजा, नामस्मरण आदि आता है, परन्तु वह आराधना करनेयोग्य नहीं। आहाहा! जाननेयोग्य है, सेवा करनेयोग्य नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अपनी निर्मल स्वदृष्टि लक्ष्य से हुआ दर्शन, स्वलक्ष्य से हुआ ज्ञान और स्वलक्ष्य चीज़ में जिसकी रमणता, ये तीनों की सेवा करता है, ऐसा लिया है। पर्याय की सेवा ली है। है न?

चारित्र की आराधना करते हुए... आहाहा! बहुत ही संक्षेप में आराधना, आराधक, आराधना का फल (ले लिया है)। आराधक जीव, आराधना निर्मल पर्याय, उसका फल पूर्ण निर्मल पर्याय केवलज्ञान। समझ में आया? ऐसा अन्तर में दृष्टि में निर्णय करना, कहते हैं। आहाहा! बापू! मोक्षमार्ग यह तो अलौकिक बात है। कोई साधारण जनता को तो ऐसी बात रुचे नहीं, ऐसी बात है। मार्ग यह है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा, उसकी ध्येय बनी हुई अवस्था, उस अवस्था को मोक्ष का मार्ग कहते हैं, उसे आराधना कहते हैं। इसलिए वह जीव आराधक, निर्मल पर्याय का सेवन करनेवाला जीव आराधक, उसे केवलज्ञानरूपी फल मिलता है, उसे केवलज्ञान का फल पकता है। ऐसी बात है।

भावार्थ :- जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करता है, वह केवलज्ञान को प्राप्त करता है, वह जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। वीतरागमार्ग में यह तो प्रसिद्ध बात कही हुई है। आहाहा! पहला तो सम्यग्दर्शन की पर्याय की आराधना। उसका अर्थ कि द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होकर जो प्रतीति होती है, तो उस प्रतीति की सेवना करना, ऐसा यहाँ तो कहा है। क्योंकि प्रतीति और प्रतीति करनेवाला, दो अभेद गिनकर प्रतीति की

सेवना करना, ऐसा कहा। और अन्तर स्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूपी चैतन्य, ज्ञान को पकड़कर पर की दिशा से हटकर अपनी दिशा स्वरूप त्रिकाल में ले जाकर जो सम्यग्ज्ञान की पर्याय (उत्पन्न हो), यह आराधनेयोग्य है। यह करनेयोग्य है, यह सेवनयोग्य है और उसका फल केवलज्ञान मोक्ष है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ज्ञान दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान दिखता नहीं, यही दिखता है। 'दिखता नहीं' ऐसा किसने निर्णय किया? ज्ञान ने। ज्ञान ज्ञान को पकड़े, वह ज्ञान ज्ञान को पकड़े, वही वस्तु है। अरूपी स्वभाव से जानने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करना सही, यह करना है। चैतन्यस्वभाव का ज्ञान, वह तो अन्तर्मुख स्वभावसन्मुख हो तो होता है। बात तो अपूर्व है। अनन्त काल में नहीं किया और अनन्त काल में फल मिला नहीं, वह बात है। राग का आराधन किया पुण्य का, दया, दान, व्रतादि। वह तो विकार है। विकार का सेवन किया तो विकार संसार फला। उसमें संसार फलता है, ऐसा कहते हैं मूल तो। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३५

आगे कहते हैं कि शुद्धात्मा है, वह केवलज्ञान है... यह शुद्धात्मा है, वह केवलज्ञान है। केवलज्ञान, हों! अकेला ज्ञान **और केवलज्ञान है, वह शुद्धात्मा है—** शुद्धात्मा... यह बात करते हैं। ३५ (गाथा)।

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य।
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवल णाणं॥३५॥

'**सिद्धो**' अर्थात् सिद्ध नहीं। स्वयंसिद्ध वस्तु। आत्मा ऐसा कहा, उसे तू जान, वह केवलज्ञान। वह ज्ञान कहो या आत्मा कहो, दो, एक अभेद से बात ली है। आहाहा!

अर्थ :- आत्मा को जिनवर सर्वज्ञदेव ने ऐसा कहा है, कैसा है? कि सिद्ध है—

किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है, स्वयंसिद्ध है,... है, वस्तु अनादि स्वयंसिद्ध अपने से है। कोई पर से उत्पन्न हुई, पर उसका कर्ता है—ऐसी कोई चीज़ नहीं। अपनी स्वयंसिद्ध अपने से ही है आत्मा। शुद्ध ज्ञानघन अपने से ही है। **शुद्ध है,...** कर्म और रागमल से रहित आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! **सर्वज्ञ है...** भगवान आत्मा सर्वज्ञ... सर्व-ज्ञ—सर्व को जाननेवाला स्वभाव उसका है। आत्मा त्रिकाली सर्वज्ञस्वरूपी है। आहाहा! क्योंकि जो आत्मा है, वह ज्ञान है। तो ज्ञान है, वह तो पूर्ण ज्ञान है और पूर्ण है तो सर्वज्ञ है। ऐसी शक्ति और उसका स्वभाव सर्वज्ञ ही है आत्मा। राग तो नहीं, निमित्त का आश्रय तो नहीं, अल्पज्ञ भी नहीं। आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म! व्यवहार के अर्थियों ने व्यवहार में आत्मा को फँसा डाला है कि जो व्यवहार आत्मा में है ही नहीं, है ही नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ है... प्रभु। आत्मा उसे कहते हैं कि जो सर्वज्ञस्वभाव है, उसको आत्मा कहते हैं। आहाहा! सर्वदर्शी। **सब लोकालोक को जानता है और सर्वदर्शी है...** लोक और अलोक को जाननेवाला है। वह पुण्य-पाप अधिकार में गाथा आयी न, '**सव्वणाणदरिसी**' (गाथा १६०) अपने अपराध से... पुण्य-पाप के अधिकार में। यह आये थे। अपना अपराध है। वहाँ कर्म का अपराध, परन्तु कर्म भावकर्म है वहाँ। ... सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होने पर भी राग और द्वेष के अपराध से चार गति में भटकते हैं। वे जीवन्धरजी आये थे न पहले, तब यह गाथा चलती थी। उन लोगों का वाँचन विद्वता का अपनी अपेक्षा का। वस्तु क्या है? क्या है? अपना हित कैसे हो? अपने हित के लिये वाँचन चाहिए। दुनिया को समझाऊँगा और दुनिया को कहूँगा, वह कोई ज्ञान है? वाँचन है? आहाहा! वह तो आया है मोक्षमार्गप्रकाशक में, नहीं? कि सच्चा ज्ञान होने पर भी प्रयोजन दूसरा है उसमें, तो वह ज्ञान नहीं; अज्ञान कहने में आता है। आता है? चौथे अधिकार में आता है। अपना प्रयोजन तो अपनी दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, यह अपना प्रयोजन है। यह प्रयोजन लक्ष्य में न रखकर पठन करने में पढ़ते हैं और दुनिया को बताते हैं, उससे अपनी प्रसिद्धि हो कि हमको (आता है), वह तो ज्ञान नहीं। प्रयोजन दूसरा हुआ तो वह ज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

सर्वदर्शी है—सब लोक-अलोक को देखता है,... उसका स्वभाव ही लोकालोक

देखने का स्वभाव है। लोकालोक की पर्याय (का) किसी द्रव्य-गुण को करना, ऐसा स्वभाव नहीं। **इस प्रकार आत्मा है,...** इस प्रकार आत्मा है **वह हे मुने!** सम्बोधन करते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! **उसे ही तू केवलज्ञान जान...** यह आत्मा ऐसा स्वयंसिद्ध, शुद्ध, कर्ममलरहित, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, उसे तू केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञानस्वरूप जान। उस गुणी को ही अकेला ज्ञानगुणस्वरूप जान अभेद करके। आहाहा! अकेला ज्ञानपुंज प्रभु ध्रुव नित्यानन्द, उसको आत्मा जान, उसे केवलज्ञान जान। अर्थात् वह ज्ञान कहो या आत्मा कहो, दोनों एक चीज़ हुई। गुण और गुणी को अभेद किया।

अथवा उस केवलज्ञानी को ही आत्मा जान। आत्मा को केवलज्ञान जान और केवलज्ञान को आत्मा जान। आहाहा! ऐसा करना भारी कठिन पड़े न, इसलिए उकताहट लगे कि यह वह किस प्रकार की क्रिया? यह तो स्वरूप जो आत्मा स्वयंसिद्ध शुद्ध सर्वदर्शी सर्वज्ञ, यह केवलज्ञान है और केवलज्ञान, वह आत्मा है। समझ में आया? राग, पुण्य और शरीर, वह कहीं आत्मा नहीं, वह तो परवस्तु है। आहाहा! **आत्मा में और ज्ञान में कुछ प्रदेशभेद नहीं है,...** आत्मा... जब शक्कर और उसकी मिठास, उसका कोई अंशभेद नहीं, प्रदेशभेद नहीं कि गुण दूसरे में रहे और आत्मा दूसरे में रहे। जहाँ आत्मा वहाँ ज्ञान और जहाँ ज्ञान, वहाँ आत्मा। दो के बीच में प्रदेशभेद नहीं। **गुण-गुणी भेद है, वह गौण है। यह आराधना का फल पहिले केवलज्ञान कहा, वही है।** लो! ऐसा भगवान आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूप, इस ज्ञानस्वरूप का आराधन करना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से, इसका फल केवलज्ञान है। बहुत संक्षिप्त में मोक्ष अधिकार। यह पंचम काल के जीवों को कहते हैं। पंचम काल के जीव को केवलज्ञान, मोक्ष तो है नहीं, परन्तु उसकी दृष्टि में आया तो उसका फल केवलज्ञान, ऐसा प्रतीति में आ जाता है। पूर्ण मोक्षस्वरूपी आत्मा। ज्ञानस्वरूप कहो, आत्मा कहो, मुक्तस्वरूप कहो—दोनों एक ही बात है। उसकी दृष्टि, ज्ञान हुआ तो पर्याय में भी उतनी मुक्ति हो गयी। राग से भिन्न हुआ और पूर्णानन्द का स्वीकार पर्याय में हुआ तो वह पर्याय उतनी मुक्त हुई। वस्तु मुक्त है और पर्याय मुक्त है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, परन्तु मुक्त का उपाय वह मुक्त ही है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३६

आगे कहते हैं कि जो योगी... धर्मी। **जिनदेव के मत से...** वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहे हुए अभिप्राय से, उन्होंने कहे हुए मार्ग से **रत्नत्रय की आराधना करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है**—यह रत्नत्रय की आराधना अर्थात् कि आत्मा का ध्यान, ऐसा। आहाहा! सेवा कहा था न वह? आराधना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना कहा था। फिर आत्मा कहा। ऐसा कहकर कहा कि जो कोई धर्मी जीव जिनदेव के अभिप्राय से—मत से रत्नत्रय की आराधना करता है। भगवान सर्वज्ञ ने कहा, वह आत्मा। और भगवान सर्वज्ञ ने कही, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है। वह आत्मा का ध्यान करता है। पर्याय का ध्यान करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकारी पर्याय—अवस्था, मोक्ष का उपाय, उसकी जो सेवा करता है, वह आत्मा की सेवा करता है। समझ में आया? ३६ गाथा।

रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो॥३६॥

अर्थ :- जो योगी ध्यानी मुनि... आत्मा के स्वरूप का सावधानी जीव **जिनेश्वरदेव की मत की आज्ञा से...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जो परमात्मा का हुकम है, वह **आज्ञा से रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निश्चय से आराधना करता है...** रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान मोक्ष के उपाय को बतलाना है न? **वह प्रगट रूप से आत्मा का ही ध्यान करता है,...** लो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करनेवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसमें से उत्पन्न होता है, ऐसे आत्मा की सेवा करता है, आत्मा का ध्यान करता है। ध्रुव का ध्यान, सामान्य का ध्यान, निश्चय आत्मा का ध्यान। ध्यान की पर्याय की सेवना करता है, वह आत्मा की सेवा करता है, ऐसा कहते हैं। भारी रूखी बात! आहाहा! सुनना भी कठिन पड़े।

भाई! तू सिद्ध शुद्ध है। तेरी शुद्धदशा स्वयंसिद्ध वस्तु है। अनादि की चीज़ है। इस चीज़ की आराधना न कहकर, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की आराधना करना,

वही आत्मा की सेवा और आराधना है। क्योंकि वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना तो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो ध्येय—स्वरूप के ध्येय से उत्पन्न हुआ है। तो जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवना करता है, वह आत्मा की सेवा करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है। समझ में आया? आहाहा!

क्योंकि रत्नत्रय आत्मा का गुण है... गुण शब्द से (यहाँ) पर्याय। रत्नत्रय आत्मा का गुण है, पर्याय है, निर्मल दशा है। आहाहा! और गुण-गुणी में भेद नहीं। निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आत्मा, दो में भेद नहीं। **रत्नत्रय की आराधना है, वह आत्मा की ही आराधना है,...** लो! अपना शुद्ध भगवान परमानन्द की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की सेवना करता है, वह आत्मा की आराधना करता है, सेवना करता है। क्योंकि निर्मल पर्याय और आत्मा दोनों अभेद एक हैं। ऐसा लिया है। **वही परद्रव्य को छोड़ता है,...** देखो! '**सो झायदि अप्पाणं**' निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करनेवाला आत्मा का ध्यान करता है और वह **रत्नत्रय की आराधना है, वह आत्मा की ही आराधना है, वह ही परद्रव्य को छोड़ता है,...** विकल्प को छोड़ता है। परद्रव्य अर्थात् विकल्प। चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो, भगवान की भक्ति का विकल्प, वह सब राग है, वह परद्रव्य है। आहाहा! वह तो पहले आ गया था १६वीं गाथा में। '**परदव्वादो दुग्गइ**' अरे... गजब बात है!

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ समवसरण में विराजते हों और वीतराग की वाणी हो, उस ओर के झुकाव से तो राग ही उत्पन्न होता है। वह दुर्गति है, वह चैतन्य की गति नहीं है। समझ में आया? यह सामायिक करता हूँ और प्रतिक्रमण करता हूँ, विकल्प करता है न? सामायिक थी कहाँ उसे? विकल्प करता है कि यह करूँ और यह करूँ, वह सब दुर्गति है। आत्मा की गति, आत्मा की दशा नहीं। आहाहा!

स्वद्रव्य की सेवा करता है, वह परद्रव्य को छोड़ता है। लो, यह संक्षिप्त में कहा। समझ में आया? जो प्राणी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल वीतरागी दशा की सेवा करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है—आत्मा की सेवा करता है और आत्मा की सेवा करनेवाला रागादि को—परद्रव्य को छोड़ता है। ओहोहो! देव-गुरु-शास्त्र को भी

छोड़ देते हैं लक्ष्य में से, ऐसा कहते हैं। और परद्रव्य का लक्ष्य छूटे बिना स्वद्रव्य में लक्ष्य आता नहीं और स्वद्रव्य में लक्ष्य आता है तो परद्रव्य का लक्ष्य छूट जाता है। आहाहा! मार्ग... मार्ग... मार्ग। साक्षात् तीर्थंकर विराजते हो, तो भी उनके सन्मुख में लक्ष्य करके तो राग ही होता है। वाणी सुनने में भी राग, वाणी परद्रव्य है। आहाहा! परद्रव्य से तो दुर्गति (होती है), चैतन्य की गति अन्तर्मुख नहीं होती। वह तो बहिर्मुख गति हो गई, राग। आहाहा! कहो, है या नहीं उसमें? ऐई... सुजानमलजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यहाँ तो उसमें है या नहीं, इतना। यह तो (लोग) कहते हैं कि सोनगढ़वालों ने निकाला। नया धर्म निकाला, ऐसा कहते हैं। यह तो सोनगढ़वालों ने नया निकाला। नया नहीं, यह तो अनादि से है, वह है। आहाहा! बाहर लाये, वह दूसरी बात है, परन्तु नया निकाला है, ऐसा नहीं है। अनादि का यही मार्ग है। यहाँ सन्त पुकार करते हैं। आहाहा! छठवें-सातवें गुणस्थान में रहते हुए विकल्प आया तो उसमें यह कहते हैं। आहाहा! विकल्प की सेवना नहीं करना। आहाहा! निर्विकल्प भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की सेवना करना और वह पर्याय की सेवना करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है अथवा आत्मा की सेवा करता है। आहाहा! क्योंकि पर्याय की सेवना का लक्ष्य जाये, वह द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जायेगा। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का लक्ष्य तो द्रव्य के ऊपर है, त्रिकाली ध्रुव। आहाहा!

पूरे शरीर में वायु का रोग हो न, वा (वायु)। ऐसा पड़ा हो मुर्दे की भाँति। एक महिला को देखा था। पूरे शरीर में वा (वायु)। उमराला में थे खोडा पूंजाभाई! ऐसे पड़ी बस। आहाहा! और वापस वायु की पीड़ा हो। पूरे शरीर में, हों! यह पीड़ा पर की एकताबुद्धि का फल है। संयोग के कारण से दुःख है, ऐसा नहीं। उसमें एकत्वबुद्धि यह... यह... यह मुझे होता है, मुझमें होता है—ऐसी एकत्वबुद्धि भ्रमणा, यह उसको भ्रमणा का दुःख है। उस दुःख टालने का उपाय यह एक है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करना और वह आराधना करनेवाला द्रव्य का ही ध्यान करता है तो स्वद्रव्य का ध्यान करनेवाला परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ता है। पर तो पर ही है।

समझ में आया ? सम्यग्दर्शन में भी यह है। स्वद्रव्य की जहाँ दृष्टि करता है, वहाँ परद्रव्य का लक्ष्य छूट जाता है। परद्रव्य का लक्ष्य छूटे बिना स्वद्रव्य का लक्ष्य आता नहीं। समझ में आया ?

परद्रव्य को छोड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। लो! कया कहते हैं ? चैतन्य भगवान पूर्णानन्द की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उसकी सेवना करनेवाला आत्मा की सेवना करे, तो आत्मा का ध्यान करता है तो आत्मा के ध्यान में परद्रव्य लक्ष्य में से छूट जाता है। परद्रव्य छोड़ता है, परद्रव्य का लक्ष्य छूटता है, वह परद्रव्य छोड़ता है। परद्रव्य कहाँ घुस गया था ? आहाहा! ध्यान ही मोक्षमार्ग एक कहा है यहाँ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ध्यान की ही पर्याय है, ऐसा कहा। लो! ठीक! आहाहा! पाठ ऐसा है न, देखो! '**सो झायदि अप्पाणं**' सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल, उसको आराधता है, वह आत्मा को आराधता है, आत्मा का ध्यान करता है। आत्मा का ध्यान करता है, वह परद्रव्य को छोड़ता है। परद्रव्य का लक्ष्य छूट जाता है, उसको 'परद्रव्य छोड़ता है' ऐसा कहने में आया है। आहाहा! लो, यह परम आगम की प्रतिष्ठा अन्दर में होती है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप ज्ञानस्वरूप की दृष्टि में जो ज्ञान की पर्याय आयी, उस पर्याय की सेवना करनेवाला, पर्याय का धरनेवाला द्रव्य, उसका ध्यान करता है तो वह द्रव्य की सेवा करता है। पर्याय की सेवा करनेवाला द्रव्य की सेवा करता है। क्योंकि पर्याय और गुण और गुणी, दो भिन्न नहीं हैं। यह लेना है। आहाहा!

'**ण संदेहो**' उसको परद्रव्य छूट जाता है, (इसमें) सन्देह नहीं। चैतन्य भगवान आत्मा अपनी निर्मल पर्याय की सेवना करता है। उसमें आया कि रागादि विकल्प हो तो उसकी सेवना नहीं। आहाहा! यह पर्याय की सेवना करनेवाला आत्मा की सेवना करता है और आत्मा की सेवना करनेवाला परद्रव्य को छोड़ता है। उसका परद्रव्य का लक्ष्य छूट जाता है। राग का भी लक्ष्य छूट जाता है। आहाहा! भारी महँगा मार्ग है यह, भाई! एक व्यक्ति कहता था, कुछ सरल मार्ग है इससे दूसरा कुछ ? यह वहाँ भी कहते थे। निश्चय की बात तुम्हारी बराबर है, परन्तु उसका कुछ साधन ? अगास में (पूछा था)। ऐसा कि यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करना, पूजा करना, विनय करना, वह साधन।

साधन कुछ कहो। वह अगास में निहालभाई रह गये थे वहाँ। आये नहीं उसमें भी। भूराभाई के काका। अगास-अगास। उनके चिरंजीवी आये थे। उनका मकान है यहाँ भूराभाई का। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी थोड़ा काम है तो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें क्या काम है? विवाह कहाँ किया है? ब्रह्मचारी है। आहाहा!

अब यह दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो कहा कि उसकी सेवा करनेवाला आत्मा की सेवा करता है ध्यान और आत्मा का ध्यान करनेवाला... समझ में आया? परद्रव्य को छोड़ता है। ऐसा अस्ति-नास्ति किया। यहाँ आत्मा के द्रव्य में लीन है तो परद्रव्य छूट जाता है। आहाहा! भगवान की भक्ति का लक्ष्य ही छूट जाता है। आहाहा! शास्त्र वाँचन का लक्ष्य छूट जाता है, शास्त्र सुनने का लक्ष्य छूट जाता है। आहाहा! नेमचन्दभाई! गजब बात आयी। कहो, मगनभाई! ऐसा होगा? परन्तु दुकान में जाना, ध्यान रखना और यह ध्यान दो होते नहीं, ऐसा कहते हैं। राग होता है। आहाहा!

अब यहाँ कहते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र किसको कहना? तुमने बात तो की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवा करो, यह अन्दर आत्मा की सेवा, वह पर को छोड़ते हैं, वह तो बराबर है, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र किसको कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह।

★ ★ ★

गाथा - ३७

आगे पूछा था कि आत्मा में रत्नत्रय कैसे है, इसका उत्तर अब आचार्य कहते हैं:—

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं॥३७॥

अब इसमें स्पष्ट लिया है, पुण्य-पाप की पर्याय वह चारित्र। ३८ में कहा '**चारित्तं परिहारो**' उसमें टीकाकार ने कहा कि यह पाप का परिहार, वह चारित्र। लो, वहाँ ऐसा कहा।

मुमुक्षु : पुण्य और पाप का।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उन्हें तो वह पाप का कहना है। आहाहा! यहाँ तो यह आया पुण्य-पाप का त्याग।

अर्थ :- जो जाने वह ज्ञान है,... भगवान आत्मा को जानना, वह ज्ञान है। दूसरे को जानना, वह बात यहाँ है नहीं। अपनी ज्ञानपर्याय में आत्मा को ज्ञेय, आत्मा को ध्येय बनाकर जो ज्ञान हुआ, वह जाने, वह ज्ञान, अपने को जाने, वह ज्ञान। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य तो पंचम काल के साधु हैं, भगवान (महावीर) के बाद तो ६०० वर्ष में हुए। यह बात करते हैं। महाराज! यह पंचम काल हल्का है तो कोई दूसरा रास्ता बताओ। रास्ता तो यह एक है। चाहे तो पंचम काल हो, चाहे तो चौथा काल हो, चाहे तो तीसरा काल हो।

मुमुक्षु : उसमें फेरफार ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फेरफार कुछ होता ही नहीं। हलुवा बनाते हैं तो क्या घी, आटा और शक्कर। फेरफार नहीं किया। शक्कर के बदले कीचड़ डाले तो? घी के बदले पेशाब डाले तो? पानी डाले तो नहीं बने। वह तो तीन चीज़ है, वह तीन ही चीज़ है— आटा, शक्कर और घी। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन है, वह तीन ही चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! पूरा संसार का अन्त लाना है, भाई! मार्ग। उदयभाव आत्मा

में है ही नहीं। संसार कहो या उदयभाव कहो। आहाहा! भगवान स्वयंसिद्ध ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसमें उदयभाव कैसा? अर्थात् संसार कैसा? आहाहा! ऐसा संसाररहित जो स्वभाव, उसका ज्ञान, वह ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? उदयभावमात्र संसार। तो उदयभाव स्वरूप में तो है ही नहीं। स्वरूप संसाररहित है। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट कहो या मुक्त कहो या संसाररहित कहो—एक ही बात है। आहाहा!

जो जाने वह ज्ञान है, जो देखे वह दर्शन है और जो पुण्य और पाप का परिहार है, वह चारित्र है,... कहो, यह शुभराग का त्याग, वह चारित्र। पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग और राग का अभाव, वह चारित्र। आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो, है न? '**णेयं**' आया न अन्तिम?

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं॥३७॥

आहाहा! अब जरा इसका थोड़ा स्पष्ट करते हैं।

भावार्थ :- यहाँ जाननेवाला तथा देखनेवाला और त्यागनेवाला दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहा, ये तो गुणी के गुण (पर्याय) हैं, ये कर्ता नहीं होते हैं,... यहाँ उसका द्रव्य कर्ता है, ऐसा सिद्ध करना है। पर्याय कर्ता नहीं होती, ऐसा सिद्ध करना है। निश्चय में तो पर्याय पर्याय की कर्ता है, परन्तु वह बात यहाँ नहीं लेनी है। **दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहा, ये तो गुणी...** अर्थात् द्रव्य की पर्याय है। गुण अर्थात् पर्याय। **ये (पर्याय) कर्ता नहीं होते हैं, इसलिए जानन, देखन, त्यागन क्रिया का कर्ता आत्मा है,...** ऐसा लेना है। आत्मा जानन का कर्ता, आत्मा देखन का कर्ता, आत्मा चारित्र का कर्ता। आहाहा! भगवान आत्मा अपने को जाने तो यह जानन का कर्ता आत्मा है। अपने को देखे—श्रद्धा करे और श्रद्धा तथा देखने का कर्ता आत्मा है। और राग पुण्य-पापरहित (स्वरूप में) स्थिर हो, वह चारित्र। उस चारित्र का कर्ता चारित्र नहीं, परन्तु चारित्र का कर्ता आत्मा है, ऐसा लेना है। गजब! समझ में आया?

इसलिए तीनों आत्मा ही हैं,... ये दर्शन, ज्ञान और चारित्र, यह पर्याय है। तो पर्याय की कर्ता पर्याय यहाँ न लेकर, पर्याय का कर्ता आत्मा है। सम्यग्दर्शन की पर्याय

का कर्ता आत्मा है, सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता सम्यग्दर्शन न लेकर आत्मा उसका कर्ता है। और सम्यग्ज्ञान की पर्याय का कर्ता सम्यग्ज्ञान की पर्याय न लेकर सम्यग्ज्ञान की पर्याय का कर्ता आत्मा है और चारित्र की पर्याय चारित्र कर्ता न लेकर, चारित्र की पर्याय का कर्ता आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

गुण-गुणी में प्रदेशभेद नहीं होता है। उस अपेक्षा से। पर्याय और गुणी द्रव्य उसका कोई प्रदेश भिन्न नहीं। यहाँ यह अपेक्षा लेना है। आहाहा! जब दो के बीच में भेद करे। यह तो पर से भिन्न करते हैं। दो के बीच में करे तो पर्याय का प्रदेश भिन्न है, द्रव्य का प्रदेश भिन्न है। आहाहा! यहाँ प्रदेश भिन्न का क्या अर्थ? कि वह पर्याय और द्रव्य को अभेद गिनकर, वह पर्याय पर्याय की कर्ता न कहकर, पर्याय का कर्ता द्रव्य (कहा)। सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता आत्मा, सम्यग्ज्ञान की पर्याय का कर्ता आत्मा, स्वरूप की स्थिरता का कर्ता आत्मा। कर्ता का वह इष्ट है, इसलिए कर्ता और कर्ता का यह इष्ट है, वह कर्म। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकारी, वह कर्ता का इष्ट कार्य है। आहाहा! कर्ता का वह कार्य, लो! पर्याय का कार्य न लेकर कर्ता का कार्य, ऐसा लिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चयनय है, वह अभेद करके (कहता है)। निश्चयनय है। अनेकान्त मार्ग है। जैसे अनेकान्त सिद्ध हो, वैसे सिद्ध करना। पर्याय का कर्ता पर्याय है, वह दूसरी बात है। परन्तु यहाँ आत्मा, पर्याय और आत्मा को एक गिनकर, स्वभाव और स्वभाववान प्रभु, मोक्षमार्ग स्वभाव और स्वभाववान एक गिनकर, पर्याय का कर्ता स्वभाववान है, ऐसा यहाँ कहने में आया है। भारी सूक्ष्म, भाई! ऐसी कथा। वह राजा था, फिर उसने दीक्षा ली, फिर स्त्री छोड़ी, ऐसा हो तो समझ में आये। लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद है। पर्याय और द्रव्य दो अभेद लेना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता। त्याग नहीं। पुण्य-पाप का त्याग, ऐसे। अस्थिरता हो

गयी न। यह भले नास्ति से समझाना है। शुभभाव का अभाव और शुद्धभाव की प्राप्ति। उसमें नास्ति से बात की है। पुण्यभाव चारित्र नहीं, ऐसा बताने को ऐसा लिया है। महाव्रत का परिणाम, वह चारित्र नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह चारित्र नहीं। इतना बताना (है तो कहा कि) पुण्य से रहित। पुण्य-पाप से रहित अर्थात् स्वरूप भाव की स्थिरतासहित, वह चारित्र है। अरे! भारी कठिन। समझ में आया?

गुण-गुणी में प्रदेशभेद नहीं होता है। इस प्रकार रत्नत्रय है, वह आत्मा ही है। ऐसा लिया। रत्नत्रय है, वही आत्मा है। **इस प्रकार जानना।** यह जिस अपेक्षा से कहते हैं, उस प्रकार से जानना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर से भिन्न करके विकल्प से भिन्न किया, परन्तु वह पर्याय और द्रव्य अभेद करके पर्याय का कर्ता द्रव्य है, ऐसा लिया है। बहुत निश्चय लेने जाये तो पर्याय का कर्ता पर्याय है। समझ में आया? द्रव्य भी कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। यह ३७ गाथा हुई। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ९, रविवार, दिनांक १७-०३-१९७४
गाथा - ३८ से ४१, प्रवचन-१२९

३८वीं गाथा है।

मुमुक्षु : आज तो गुजराती चलेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने सेठ है एकाध दिन तो लेते हैं। आज सेठ जानेवाले हैं। इसमें गुजराती चलता है, ऐसा कहते हैं। कल से। मैंने ऐसा कहा कि आज सेठ है, अब बाद में।

★ ★ ★

गाथा - ३८

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो परूवियं जिणवरिंदेहिं॥३८॥

जिनवर देव **तत्त्वरुचि को समकित कहते हैं,...** तत्त्व अर्थात् ज्ञायकभाव चैतन्य-स्वरूप, अजीव उससे पर है, उसमें है नहीं। पुण्य-पाप आस्रव भी उसमें है नहीं। भावबन्ध भी उसमें है नहीं और संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय है, वह अन्दर में है नहीं वस्तु में। तो ऐसा जो तत्त्व ज्ञायकस्वभाव... उसमें सातों तत्त्व उसमें आ गये। उसकी रुचि। रुचि का अर्थ? अन्तर में उसका भान होकर प्रतीति, रुचि, श्रद्धा होना। यह ज्ञायक का प्रत्यक्ष भान होकर रुचि होना, उसका नाम तत्त्वरुचि है। आहाहा!

... वह पर्याय है, परन्तु किसकी पर्याय? श्रद्धागुण की। परन्तु उस श्रद्धागुण की पर्याय में होता क्या है? कि आत्मा शुद्ध ज्ञायक तत्त्व है, उसे ज्ञान में ज्ञेय बनाकर भावभासन अन्दर में हो और उसमें रुचि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। '**तच्चरुई सम्मत्तं**' है न? अनादि से यह राग और जड़ शरीर आदि... यह अजीव धूल है यह। और अन्दर में दया, दान आदि का परिणाम उत्पन्न होता है, वह आस्रव है। यह मेरा है,

ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। यह चार गति में परिभ्रमण करने का उपाय है। परिभ्रमण करने का उपाय है। यह तत्त्वरुचि, वह परिभ्रमण मिटाने का उपाय है। आहाहा!

तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है,... ज्ञायकस्वरूप भगवान परिपूर्ण ध्रुवस्वरूप आत्मा है। उसमें, वह तत्त्व सात हैं, दूसरे छह उसमें हैं नहीं। तो उसका भान होकर सातों तत्त्व की श्रद्धा अन्दर में होती है। उसका नाम अपूर्व अनन्त काल में नहीं किया, नहीं बनाया, ऐसा समकित कहा जाता है। **तत्त्व का ग्रहण...** ग्रहण शब्द से ज्ञान। जीव-अजीव आदि भाव हैं, उनका ज्ञान करना, यह तत्त्व का ग्रहण करना, वह ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है। और **परिहार चारित्र है,...** पहले आया था न? पाटनीजी ने कल प्रश्न किया था न? कि भाई! यह परिहार... नास्ति से क्यों लिया? पाटनीजी! छनावट करने को। कि लोग ऐसा दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को धर्म मानते हैं, चारित्र मानते हैं, यह चारित्र नहीं। वह विशेष स्पष्ट करने को यह कहा। यहाँ भी यह कहा। '**चारित्तं परिहारो**' ये शुभ-अशुभभाव, पुण्य-पाप का भाव आदि परद्रव्य, उसका परिहार और अपने स्वद्रव्य के आश्रय में अंगीकार-स्थिरता, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? परिहार चारित्र।

इस प्रकार जिनवरेन्द्र... जिनेश्वरदेव वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ऐसे तीर्थंकर **सर्वज्ञदेव ने कहा है।** इतने विशेषण प्रयोग किये। जिनवरदेव सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभु की वाणी में ऐसा आया। उन्होंने कहा, ऐसा कहा न? '**परूवियं जिणवरिंदेहिं**' '**परूवियं**' अर्थात् कहा। '**परूवियं**' है न? प्ररूपित किया। प्रजल्पितं। प्रजल्पितं ऐसा है न? प्र—विशेष जल्पितं। भगवान की वाणी में ऐसा आया। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ तीर्थंकर जिनवरदेव की वाणी में ऐसा आया कि तेरी चीज़ जो भगवान आत्मा तत्त्व... वह छहढाला में आता है न? परद्रव्य से रहित आत्मरुचि भला है। परन्तु यह रुचि का अर्थ जरा सूक्ष्म है। यह ज्ञायकभाव, चैतन्य ध्रुवभाव ज्ञान में जानने में आया, उसकी रुचि। मति-श्रुतज्ञान से पृथक् जानने में आया। आहाहा! उसको रुचि कहते हैं। समझ में आया? यह **जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है।** आहाहा!

भावार्थ :- जीव,... चैतन्यस्वरूप भगवान। **अजीव...** जड़स्वरूप शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी आदि धूल अजीव। **आस्रव...** अन्दर पुण्य-पाप का भाव होता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, करुणा, कोमलता, यह पुण्यास्रव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय,

भोगवासना, वह पाप आस्रव है। **बंध,...** यह राग में रुकना, यह बन्ध है। **संवर...** राग से रहित होकर शुद्धता प्रगट करना। '**शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा है**' इस प्रकार राग से हटकर स्वरूप में एकाग्र होने से शुद्धता, आनन्दता, पवित्रता जो प्रगट हो, उसका नाम संवर कहते हैं। और वह शुद्धि की वृद्धि हो, उसका नाम **निर्जरा...** कहते हैं और शुद्धि की पूर्णता हो, उसका नाम **मोक्ष** कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आया, दूसरा आया नहीं। दोपहर में यही आया। यह बात है यहाँ। यह शब्द में भले अन्तर हो, उसमें कुछ नहीं।

इन तत्त्वों का श्रद्धान, रुचि, प्रतीति... अपूर्व अनन्त काल में नहीं हुई। ऐसा अन्तर में ज्ञान में भास—भावभासन, भाव का भासन ज्ञान में होकर रुचि करना, प्रतीति वह **सम्यग्दर्शन है,...** आहाहा! **इन ही को जानना सम्यग्ज्ञान है...** ग्रहण है न? ग्रहण शब्द? तो स्पष्टीकरण किया कि ग्रहण अर्थात् क्या? '**तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं**' तत्त्व का जानना, वह सम्यग्ज्ञान है। जैसा आत्मा ज्ञायक है, पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है, ऐसा जानना। आहाहा! उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। यह संसार परिभ्रमण नाश करने का यह उपाय है।

और परद्रव्य के परिहार सम्बन्धी क्रिया की निवृत्ति चारित्र है,... देखो! पाठ में तो इतना था न? '**चारित्तं परिहारो**' रागादि विकल्प जो विकार है, वह परद्रव्य की क्रिया है। उस सम्बन्धी की निवृत्ति, बाह्य-अभ्यन्तर क्रिया से निवृत्ति और अन्तर स्वरूप आनन्द में रमणता, उसका नाम चारित्र है। **इस प्रकार जिनेश्वरदेव ने कहा है, इनको निश्चय-व्यवहारनय से आगम के अनुसार साधना।** जानना। निश्चय स्व आश्रय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम का राग व्यवहार चारित्र और व्यवहार ज्ञान शास्त्र का। ऐसे व्यवहार और निश्चय जैसे हैं, वैसा जानना। समझ में आया? मोक्ष अधिकार है न? मोक्ष का उपाय तो यह है।

★ ★ ★

गाथा - ३९

आगे सम्यग्दर्शन को प्रधान कर कहते हैं— लो! है न अपने 'दर्शनशुद्धि से आत्मशुद्धि।' सामने। वह इस गाथा में है। इस गाथा में से लिया है। दर्शनशुद्धि से आत्मशुद्धि। चार ट्रेडमार्क बड़े हैं। पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत। पूर्ण सिद्धपद के लक्ष्य से अन्तर आत्मा में से धर्म की शुरुआत होना। यहाँ '**दंसणं मूलो धम्मो**' चारित्र, वह धर्म है, उसका मूल सम्यग्दर्शन है और द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि। वस्तु चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिसमें पर्याय का भी अभाव। आहाहा! उसकी दृष्टि, वह सम्यग्दर्शन है। चार चौके (पाटिया) हैं या नहीं? यह बात करते हैं।

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।
दंसणविहीणपुरिसो ण लहइ तं इच्छिय लाहं॥३९॥

जो कोई आत्मा **पुरुष दर्शन से शुद्ध है...** सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, **वह ही शुद्ध है,...** शुरुआत वहाँ से होती है। आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा और ज्ञायकस्वरूप चैतन्य प्रभु के सन्मुख होकर, उसका ज्ञान करके प्रतीति, यह दर्शनशुद्धि है। यह दर्शनशुद्धि, यही शुद्धि है। **वह ही शुद्ध है,...** दर्शनशुद्धि का भान नहीं और व्रतादि लेकर रहे, वह शुद्ध नहीं, वह तो अशुद्ध में है। समझ में आया? आहाहा! **दर्शन से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है,...** पहली पवित्रता... भगवान आत्मा ज्ञान और पवित्रता के स्वभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा तो है। उसकी श्रद्धा, उसके दर्शन से शुद्ध है, ऐसी श्रद्धा से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है। जिसको दर्शनशुद्धि नहीं, वह चाहे तो क्रियाकाण्ड व्रत, नियम अनन्त बार करे, परन्तु वह शुद्ध नहीं, वह तो अशुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

दर्शन से शुद्ध है, वह ही (आत्मा) शुद्ध है,... आहाहा! जिसकी सम्यग्दर्शन दशा शुद्ध है, वही शुद्ध है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिया है कि चाण्डाल हो चाण्डाल। सम्यग्दर्शन... देवो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गणधर उसको देव कहते हैं। चाण्डाल का आत्मा हो बाहर से। अन्तर में दर्शनशुद्धि है। तो जैसे अग्नि राख... भस्म होती है न भस्म? ढँकी

हुई है, परन्तु है अग्नि अन्दर। उसी प्रकार चाण्डाल का शरीर नीच हो, हल्का हो। वह नात में अन्तर है, जाति में अन्तर है परन्तु अन्दर की जाति चैतन्य भगवान का जहाँ भान हुआ, तो गणधर कहते हैं कि चाण्डाल का आत्मा, वह देव है। समझ में आया? और बाह्य में बनिया, ब्राह्मण, नागर आदि उच्चकुल हो, परन्तु अन्दर में राग से एकत्वबुद्धि, जो तत्त्व भिन्न है, उससे एकत्वबुद्धि। राग भिन्न है, वैसे जड़ शरीर आदि भिन्न है। तो भिन्न में अभिन्नबुद्धि। यह मिथ्यादृष्टि अपवित्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कर्तृत्व नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से किया नहीं। कर्तृत्व क्या? तुमको भान कब था अभी तक। पैसेवाले, इसलिए थोड़े पैसे दे तो महिमा करे तुम्हारी। सेठिया! नवरंगभाई! उसे क्या हाँ, वह हाँ थी सब। तारणस्वामी में है, उसकी तुमको कहाँ खबर थी? सेठ! तारणस्वामी ने तो बहुत ऊँची चीज़ कही है। जिन... जिन... जिन... शब्द प्रयोग किये हैं। अध्यात्म की बात बहुत आ गयी। उसके व्याख्यान भी आ गये न! दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं न दो पुस्तके? तीसरी आयेगी? कब? आहाहा! पैसा खर्च करे। हम खर्च करते हैं, प्रयोग किये। वह तो मिथ्यात्वभाव है। जड़ का व्यापार तुम कर सकते हो?

मुमुक्षु : एक तो पैसे गये और....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे कहाँ इसके बाप के थे?

मुमुक्षु : उसके कब्जे में हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कब्जे में राग है, पैसा कब्जे में नहीं। पैसा मेरा है—ऐसा राग कब्जे में है। आहाहा! धूल तो धूल है, वह तो अजीव होकर रही है। आहाहा! और यह राग भी अपना स्वभाव नहीं और उसको अपना माना है तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! दुःखी प्राणी है, वह दुःखी है। अरबोंपति प्राणी हो, परन्तु उस लक्ष्मी की रक्षा करनेवाला मैं हूँ, लक्ष्मी मिलानेवाला हूँ, लक्ष्मी का उपयोग, सदुपयोग करनेवाला हूँ—ऐसी मान्यता है, वह मूढ़ है। परद्रव्य का हम सदुपयोग कर सकते हैं। समझ में आया?

वही कहते हैं न यहाँ देखो! **दर्शन से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है,...** बाकी भले

चाण्डाल हो, अरे! नारकी हो और मेंढ़क। मेंढ़क-मेंढ़क हो। परन्तु दर्शनशुद्धि, यह शुद्ध है। कहो, मगनभाई! बाहर के शरीर रूपवान हो, नागर ब्राह्मण जैसा हो। आहाहा! बाहर से शरीर सुन्दर हो, लक्ष्मी बहुत हो, कीर्ति बड़ी हो, घर की स्त्री अप्सरा जैसी हो, लड़का बहुत कमावे ऐसा हो। सब धूल है। यह मेरा है और मैं उसका हूँ, यह मान्यता ही महा भ्रमणा अज्ञानी अशुद्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना? करना, यह दर्शनशुद्धि करना। आहाहा! देखो न, यह मूल गाथा है मोक्षसार की। मूल में यह बात है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म का तो जिसमें अत्यन्त अभाव है—भगवान आत्मा में। और अत्यन्त सद्भाव तो आनन्द और ज्ञान का उसमें है। ऐसा अन्तर में भाव अर्थात् पदार्थ, उसका भासन ज्ञान में होकर अन्तर में दर्शनशुद्धि प्रगट करना, वही शुद्धि है। पश्चात् बाह्य से चाहे जितने व्रत पालता हो, अपवास करता हो और संथारा किया हो दो-दो महीने के, परन्तु दर्शनशुद्धि नहीं, वह शुद्ध नहीं, वह तो अपवित्र है। आहाहा! बारम्बार अभ्यास चाहिए। मगनभाई! मगनभाई कहे ऐसा समझ में नहीं आता। ऐई! कहाँ गया शैलेष? यह तेरे नाना कहते हैं कि बराबर समझ में नहीं आता। परन्तु वह बाहर का अभ्यास जड़ का। तो इतना तो बोले कि बराबर समझ में नहीं आता। आहाहा! सम्प्रदाय में तो कहे व्रत करो, तपस्या करो, यह नहीं खाना, यह खाओ, यह खाओ। अब उसमें यह बात सुनने को मिली न हो। समझे कहाँ से? धूल। और इसके लिये प्रयास चाहिए, अधिक प्रयत्न चाहिए। यह जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! मृत्यु के सन्मुख देह है। आहाहा! देह छूट जायेगी। तेरा अकेला आत्मा रहेगा, जैसी मान्यता है इसमें। आहाहा! यह तो मिट्टी है, धूल है, राख हो जायेगी। यह क्या तेरी चीज़ है? यह तो आत्मा है। और अन्दर में कोई शुभभाव किया हो तो उससे कर्मबन्धन परमाणु का बन्ध हुआ, वह तेरी चीज़ में क्या आया उसमें? समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, चेतना भगवान प्रभु आत्मा, अकेला जानन-देखन स्वभाव, उसका ज्ञान में भास होकर रुचि, प्रतीति करना, वह दर्शनशुद्धि, यह शुद्ध है। आहाहा! देखो! यह मोक्ष अधिकार में उसको शुद्ध कहा है।

मुमुक्षु : ध्यान में भास हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भास कहो या जाने। वह तो भास शब्द से जाने ज्ञान। भास कहो या जाने कहो। ज्ञान में जानने में आया कि यह आत्मा पवित्र शुद्ध अखण्ड अभेद है। ऐसा भास हो, ज्ञान हो और उसमें रुचि, प्रतीति निर्विकल्प हो, वह दर्शनशुद्धि, यह शुद्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय ज्ञान में भास हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय कहा, फिर राग कहाँ आया? आहाहा! जरा कल आया था न, '**ईक्षन्ते**' में आया था। अवलोकन में आया था। प्रत्यक्ष ज्ञान की वर्तमान दशा अन्तर्मुख होने से यह पर्याय में उसका भान हुआ, यह आत्मा शुद्ध पवित्र अखण्ड है। ऐसा पर्याय में भान हुआ, ऐसी प्रतीति कि यह 'आत्मा ऐसा है'। निर्विकल्प प्रतीति। मति और श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होकर। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब धूलधाणी है। सब अरबोंपति हो, बड़ी लम्बी इज्जत, पूँछड़े नाक बड़े लम्बे हों इज्जत के। वह नाक जलकर राख होगी। समझ में आया?

भगवान चैतन्य हीरा अन्दर आनन्द का नाथ, जिसमें अनन्त गुण के पासा पड़े हैं, ऐसा वह हीरा है। आहाहा! ऐसी चीज़ की श्रद्धा, शुद्ध अन्तर दर्शन से शुद्ध है। वह ही शुद्ध है। ऐसा पाठ लिखा है। आहाहा! **क्योंकि जिसका दर्शन शुद्ध है, वही निर्वाण को पाता है...** मोक्ष अधिकार है न? जिसका मूल सुरक्षित है। आहाहा! मूल यह है दर्शन। '**दंसण मूलो धम्मो**'

मुमुक्षु : अधिकारी हो गया वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष का अधिकारी। यह मोक्ष ही हुआ उसको। दूज उगी है, वह पूनम होगी, होगी और होगी। दूज उगी है न चन्द्र? तो दूज हुई हो और पूनम न हो, ऐसा बने? दूज उगी हो तो पूनम होगी ही तेरे ...। इसी प्रकार अपना शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्ण पवित्र शुद्ध का ज्ञान में भास होकर श्रद्धा—सम्यग्दर्शन होना, वही प्राणी शुद्ध है। चाहे तो बाह्य शरीर में मैल हो। समझ में आया? आहाहा! स्त्री का शरीर तो महा अशुद्ध है। मासिक आता है। परन्तु सम्यग्दर्शन है तो वह शुद्ध है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो शरीर का धर्म है खून। लोही क्या कहते हैं? लोही

कहते हैं ? रुधिर। रुधिर सब हो, वह तो जड़ की—मिट्टी की दशा है। परन्तु अन्दर में जिसको आत्मा आनन्द का नाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने कहा। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने इन्द्रों और गणधर के बीच यह भगवान की वाणी आयी कि जिसकी दर्शनशुद्धि है, वही शुद्ध है। बाह्य से रोग हो, शरीर में कीड़ा पड़ा हो। क्या है ? वह तो मिट्टी, धूल है। उसमें न पड़े तो क्या आत्मा में पड़ेगा ? आहाहा!

यह गाथा मोक्ष के लिये प्रथम दर्शनशुद्धि, वह शुद्ध कहा जाता है यहाँ तो। आहाहा! **वही निर्वाण को पाता है...** मोक्ष पाता है। जिसकी दर्शनशुद्धि शुद्ध हुई, वही मोक्ष को पाता है। आहाहा! और **जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है...** तीसरा पद। **'दंसणविहीण-पुरिसो'** सम्यग्दर्शन से रहित **पुरुष ईप्सित लाभ अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है। 'ण लहइ तं इच्छिय लाहं'** मोक्ष जो इष्ट है, इसको प्राप्त नहीं कर सकता। लाख क्रियाकाण्ड करे व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया, अरबों रुपये का दान दे। देते हैं न अभी ? पाँच-दस लाख दे तो ओहोहो! डालो इसका नाम अन्दर। मकान (मन्दिर) में।

मुमुक्षु : बाहर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में सब मूर्ख इकट्ठे हों तो उसे मान न दे ? सेठ! उसे तो पैसे चाहिए हों कि भाई! यह दो लाख। ओहोहो! हमारे पास दो करोड़ है, उसमें से पाँच लाख दिये। बड़ी रकम दी हों, तुमने, ऐसी महिमा करे वे सब। इसमें आया क्या ? उसमें आत्मा को क्या लाभ है ? राग की मन्दता कदाचित् करता हो, मन्दता। दुनिया में अभिमान के लिये, दुनिया में प्रसिद्धि के लिये, दूसरों में मैं मुख्य दिखाई दूँ, इसके लिये करते हैं तो अकेला पाप है। समझ में आया ? परन्तु राग की मन्दता करो तो वह पुण्य है। उसमें धर्म क्या आया ? समझ में आया ? **जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है, वह पुरुष...** महा अपवित्र और अशुद्ध है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- लोक में प्रसिद्ध है कि कोई पुरुष कोई वस्तु चाहे... कोई पुरुष कोई वस्तु चाहे **और उसकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न हो तो उसकी प्राप्ति नहीं होती है...** समझ में आया ? धर्म का मूल पहली चीज़ यह है। आहाहा! **इसलिए सम्यग्दर्शन ही निर्वाण**

की प्राप्ति में प्रधान है। आहाहा! निर्वाण का अर्थ मोक्ष, मोक्ष का अर्थ अनन्त आनन्द की दशा प्रगट होना, पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति और सुख प्राप्त होना, उसका नाम मोक्ष। उस मोक्ष में पहला साधन यह है। सम्यग्दर्शन, यह निर्वाण की प्राप्ति (का) प्रधान मुख्य कारण वह है। सम्यग्दर्शन हो तो सम्यग्ज्ञान-चारित्र हो, सम्यग्दर्शन न हो तो ज्ञान-चारित्र होता नहीं। **सम्यग्दर्शन ही...** भाई! कथंचित् करो न! 'ही' तो शब्द होता नहीं। यहाँ तो लिखा है। **ही निर्वाण की प्राप्ति में प्रधान है।** सम्यक् एकान्त किया है। आहाहा! **सम्यग्दर्शन ही निर्वाण की प्राप्ति में प्रधान है।** आहाहा! मूल चीज़ में ही विवाद अनादि से। बाकी तो व्रत, नियम, तपस्या, भक्ति, पूजा और दान अनन्त बार किया। इसमें कोई जन्म-मरण मिटने की चीज़ नहीं। समझ में आया? आहाहा! बहुत अच्छी गाथायें हैं दोनों।

★ ★ ★

गाथा - ४०

आगे कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दर्शन को ग्रहण करने का उपदेश सार है,... सम्यग्दर्शन को ग्रहण करने का उपदेश सार है। **उसको जो मानता है, वह सम्यक्त्व है—** आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन का उपदेश सुनकर जिसको सम्यग्दर्शन सार लगे। समझ में आया? उसको मानते हैं समकिती है। और ऐसा सम्यग्दर्शन का उपदेश सुनकर... यह तो कहीं व्रत और नियम और तप की बात करते नहीं और सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन। सुजानमलजी! आहाहा! **ऐसे सम्यग्दर्शन को ग्रहण करने का उपदेश सार है,...** आहाहा! देखो, भाई! इसमें यह आया यह तो। कि यह उपदेश ही सार है। आहाहा! यह व्रत पाले..। पाठ में है, देखो! **उसको जो मानता है, वह सम्यक्त्व है—**उपदेश में यही पहले प्रधान-मुख्य आना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिनके सौ इन्द्र तलिया चाटते हैं, रज मस्तक चढ़ाते हैं, उन भगवान की वाणी यह है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का उपदेश, यह सार है। क्योंकि उसमें '**जरमरणहरं खु मण्णे जं तु।**' जन्म-मरण का हरण का कारण है, जन्म-मरण के नाश का वह कारण है। बाकी सम्यग्दर्शन बिना यह व्रत, तप और प्रतिमा, वे सब संसार के कारण हैं।

जन्म-मरण रहित के कारण नहीं। आहाहा! यहाँ तो आचार्य स्वयं कहते हैं, देखो!

इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णे जं तु।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि॥४०॥

देखो! यह उपदेश सार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

साधु और श्रावक दोनों के लिये यह है। आहाहा! दुनिया को पसन्द आये, न पसन्द आये, इस पर उसका सारपना नहीं। आहाहा! समाज ... पड़ी तो सुनना पड़ा लो। सम्यग्दर्शन-सम्यग्दर्शन। आत्मा... आत्मा... आत्मा... भाई! तेरा आत्मा तेरी खबर तुझे नहीं। भगवान! तेरे आत्मा में तो अनन्त रत्न, चैतन्य रत्न पड़े हैं। यह चैतन्यरत्नाकर है। यह चैतन्य के रत्न का समुद्र, वह आत्मा है। आहाहा! ऐसी पवित्र चीज़ का ज्ञान करके प्रतीति करना, यह उपदेश का सार है। और यही उपदेश सार है, ऐसा कहते हैं वापस। यही उपदेशसार है और इस उपदेश का सार यह है।

मुमुक्षु : उपदेश ही यह हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हुआ। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने भी बात ऐसी की है। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ तेरे भान में, प्रतीति में न आवे (तो) सार किसको कहे? आहाहा! ... यह उसमें आता है, उन लोगों को, नहीं? ... उसमें गाथा आती है बहुत नाम में। स्थानकवासी में आती है। दंसणं सारं। ... भूल गये। आती है। ... गाथा में आता है न, उसमें आता है। ....

अर्थ :- इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपदेश सार है... इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप में रमणता, यह उपदेश सार है। **जो जरा व मरण को हरनेवाला है,...** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द, पूर्ण पवित्र की प्रतीति, भान में और उसका ज्ञान और उसमें रमणता, यह मोक्ष का उपाय, जन्म-मरण से रहित होने की यह पद्धति है। आहाहा! बाकी तो यह अरबोंपति ऐसे खम्मा-खम्मा करते हों। मरकर नीचे पशु में—ढोर में जाये। आहाहा! यह पर्दा जहाँ गिरा यहाँ बन्द, वहाँ जाये छिपकली के कूख में। ढेढगरोळी समझते हैं? छिपकली। दीवार के साथ। उसे छिपकली कहते हैं। आहाहा! अरे! गधी के गर्भ में जाये बड़ा अरबोंपति। आहाहा! ब्रह्मदत्त

चक्रवर्ती लो न, जिसे ९६ हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव सेवा करते थे, नौ निधान। एक रानी उसकी, जिसकी हजार देव सेवा करें। यहाँ हीरा के क्या कहलाता है? ढोलिया-ढोलिया। पलंग। हीरा के पलंग में सोता था। एक-एक हीरा करोड़-अरबों रुपये का। ऐसी जहाँ देह पूरी हुई, छूटा, सातवाँ नरक। सातवाँ नरक अपरिठाणा रव-रव नरक में है अभी ब्रह्मदत्त। आहाहा! जिसमें दर्शनशुद्धि नहीं आयी और मिथ्यात्व में पड़ा है, चाहे इतनी सामग्री हो, कोई शरण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... सामग्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामग्री बाहर में माने लोग। आहाहा! ऐसे हीरा के पलंग, हीरा लगे हों ऐसे एक-एक। वापस करोड़ों हीरा ऐसे। ऐसे पलंग के ऊपर (सोता था)। आहाहा! सोलह हजार देव तो सेवा करे। वह मरकर जाये नरक में। रव-रव नरक नीचे। अपरिठाणे सातवें नगर का रव-रव नरक में अभी पड़ा है वह ब्रह्मदत्त। अपरिठाणा नरक में है। अभी तो थोड़े वर्ष हुए हैं। अभी तो असंख्य अरब वर्ष, असंख्य अरब वर्ष वहाँ रहनेवाला है। यहाँ सात सौ वर्ष तक चक्रवर्तीपद भोगा। क्या आया उसमें? धनजीभाई!

मुमुक्षु : ५६९७५ पल्योपम एक श्वास में।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक श्वास का यहाँ का सुख भोगा, उसके फल में इतना कहा यह। ५६९७५ पल्योपम। एक पल्योपम के काल में असंख्यवें भाग में असंख्य अरब (वर्ष) जाते हैं। एक पल्योपम के काल के माप में उसके असंख्यवें भाग में असंख्य अरब (वर्ष) जाते हैं। ऐसे-ऐसे ५६९७५ एक श्वास के, यहाँ एक श्वास के सुख में इतना वहाँ दुःख। आहाहा! धूल में भी नहीं, परन्तु ... मूर्ख। आहाहा! कहो, समझ में आया? ५६९७५, इतने पल्योपम, हों! इतनी गिनती आयी। ७०० वर्ष के श्वास हों तो एक श्वास में इतना दुःख। ५६ (९७५) हजार पल्योपम। पल्योपम। गजब बात है न! आहाहा! ऊँचा आना, बाहर निकलना मुश्किल पड़े उसे तो। आहाहा!

और जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, उसको मोक्ष अनन्त आनन्द भी अल्पकाल में पूर्ण होगा। आहाहा! समझ में आया? **जरा व मरण को हरनेवाला है, इसको जो**

मानता है,... इसको जो मानता है, इसका जो श्रद्धान अन्दर में करता है, **वह ही सम्यक्त्व कहा है।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मोक्ष का उपाय है और उससे मोक्ष मिलता है, ऐसा उपदेश सार है और वह उपदेश सुनकर 'यह बात यथार्थ है' ऐसी अन्तरदृष्टि करता है, वह समकिती कहने में आता है। ऐसा उपदेश क्या यह ? लोग समझते नहीं, हमको ख्याल आता नहीं। परन्तु तू अनन्तकाल से समझा नहीं। मूढ़ता करके। दुनिया की चतुराई करने बैठा हो तो ऐसी बातें करे। मानो देव का पुत्र नीचे उतरा। आहाहा! इसका ऐसा हो, फलाना यह मुम्बई से मलहम लाया जाये, फलाना अफ्रीका से लाया जाये, ढींकणा यहाँ से लाया जाये। यह सब दुनिया के होशियार। दुनिया में भटकने के लिये। कहो, मगनभाई!

मुमुक्षु : मोक्ष के द्वार बन्द कर दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष था ही कब वहाँ? द्वार बन्द ही है। आहाहा! यह गाथायें बहुत अच्छी हैं।

'इयं उवएसं सारं' यह उपदेश सार। मूल तो दर्शनशुद्धि के बाद की यह बात है। जो इस उपदेश में, आत्मा का शुद्ध सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वही शुद्ध है—ऐसा जो उपदेश आया, ऐसा सार जिसको अन्तर में दृष्टि में रुचा, वह सम्यग्दृष्टि है। **वह मुनियों को तथा श्रावकों को सभी को कहा है,...** लो, सेठ! यह मुनि के लिये है, ऐसा नहीं। श्रावक के लिये यह है। यह तो लिखा हुआ किसका है ? यहाँ का लिखा हुआ नहीं है। भाई का है। पण्डित जयचन्दजी का अर्थ है। और यह तो मूल में कुन्दकुन्दाचार्य का है। देखो! **'तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं'** साधु और श्रावक के लिये यह समकित शुद्धि जगत के समक्ष प्रसिद्ध की है। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रावक और साधु....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि होता है साधु, परन्तु साधु नाम धरावे, वह द्रव्यलिंगी भी अनादि से करता है न। श्रावक भी बारह व्रतधारी आदि द्रव्यलिंग अनन्त बार धारता है। परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन हो तो सार, वरना सब धूल है। आहाहा! **वह मुनियों को तथा श्रावकों को सभी को कहा है, इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान-चारित्र को अंगीकार**

करो। प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करके पश्चात् ज्ञान और चारित्र को अंगीकार करो। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- जीव के जितने भाव हैं, उनमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सार है, उत्तम हैं, जीव के हित हैं... ओहोहो! अपने पूर्णानन्दस्वरूप का अन्तरभान, श्रद्धा और ज्ञान तथा रमणता, यह जीव का सब भाव में यह भाव सार है। कहो, ऐसा कहकर यह कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का भाव हो, परन्तु उस भाव में यह भाव सार है। आहाहा! **इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है,...** हित है, उत्तम है और प्रधान है। तीन बोल लिये। सार है। चार। **क्योंकि इसके बिना...** सम्यग्दर्शन, शुद्धि, प्रतीति प्रगट किये बिना ज्ञान में चारित्र भी मिथ्या कहलाता है। उसका पठन-पढ़ना और उसके व्रतादि सब मिथ्या है। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन अर्थात् बस भगवान की श्रद्धा। एक व्यक्ति को पूछा दर्शनशुद्धि अर्थात् क्या? पूछा एक बार। यह भगवान के दर्शन करना, वह दर्शनशुद्धि। ठीक! कुछ प्रतिमाधारी था। दर्शनशुद्धि क्या यह? दर्शनशुद्धि भगवान का दर्शन करना, वह दर्शनशुद्धि। लो, ठीक! आहाहा! भगवान के दर्शन करना, वह तो अशुद्धभाव, पुण्यभाव है। दर्शनशुद्धि कहाँ से आयी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मानते थे, लो, यह सब। यह दिगम्बर हैं जन्म से। आहाहा! सम्यग्दर्शन, इसके बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या कहलाता है।

इसलिए सम्यग्दर्शन को प्रधान जानकर... सम्यग्दर्शन को मुख्य जानकर **पहले अंगीकार करना,...** लो! पहले यह प्रयत्न करके अंगीकार करना। समझ में आया? **यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सभी को है।** द्रव्यलिंगी श्रावक और द्रव्यलिंगी सबको यह उपदेश है।

★ ★ ★

गाथा - ४१

आगे सम्यग्ज्ञान का स्वरूप कहते हैं— अब सम्यग्ज्ञान की बात करते हैं।

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं ॥४१ ॥

अर्थ :- जो योगी मुनि... धर्मात्मा योगी। मुख्य मुनि को लक्ष्य कर बात है न? अन्दर आ गया है श्रावक को, दोनों को। **जीव-अजीव पदार्थ के भेद जिनवर के मत से जानना है...** वीतराग ने कहे हैं, ऐसे जीव-अजीव का भेद जानना। अज्ञानियों ने जीव-अजीव की बात की, वह यथार्थ नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप जीव और यह शरीर, वाणी आदि सब अजीव, धूल, मिट्टी है। आहाहा! ऐसा जिनवरदेव ने कहा है, ऐसा जीव-अजीव का भेद जानता है, **वह सम्यग्ज्ञान है, ऐसा सर्वदर्शी— सबको देखनेवाले सर्वज्ञदेव ने कहा है,...** है न? **'अवियत्थं सव्वदरसीहिं' 'अवियत्थं'** सत्य ऐसे सर्वदर्शी भगवान ने यह कहा है। आहाहा! **अतः वह ही सत्यार्थ है,... 'अवियत्थं'** कहा न? भगवान ने कहा कि जीव और अजीव भिन्न चीज़ है। ऐसा जीव और अजीव का भिन्न ज्ञान करना, वह सम्यग्ज्ञान है, यह सत्यार्थ भगवान ने कहा है।

अन्य छद्मस्थ का कहा हुआ सत्यार्थ नहीं है,... उसमें निकाला। छद्मस्थ अपनी कल्पना से कहे, वह यथार्थ नहीं होता। आहाहा! परन्तु इस संसारी प्राणी को संसार के दुःख हैं, यह लगता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनावे? कहा था न कि ... कथनी और करनी में अन्तर पड़ गया। कथनी अध्यात्म की करते हैं और करनी में तो आयेगा बड़ा, आहाहा! .... ऐई! कौन करे? भाई! तुझे खबर नहीं। उसके काल में—उस समय में पुद्गल परावर्तन की पर्याय में वह बननेवाली पर्याय बनती है। यह कोई रामजीभाई से बनती है। मुझसे है नहीं। यह दो व्यक्ति करनेवाले। बाबूभाई, नेमचन्दभाई।

मुमुक्षु : व्यवस्था कर सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं कर सके व्यवस्था। विकल्प करे। आहाहा! यह तो बाहर में लोग ऐसा कहते हैं कि ओहोहो! बाबूभाई और नेमचन्दभाई बहुत व्यवस्था... दोनों के लिये कुछ शब्द है। व्यवस्था ... नेमचन्दभाई को। बाबूभाई को सब। ऐसा कुछ कहते थे कोई। कोई कहता था। कोई कहता था। आयोजन। बाहर के काम कौन करे? भाई! आहाहा! ऐसा कि बात करे कि एक विकल्प भी दु:खरूप। वापस शुरु करे २२-२२ लाख के मकान। मशीन से उत्कीर्ण अक्षर, जिन की वाणी मशीन से उत्कीर्ण हुई। वह तो अन्दर उस समय में होनेवाली थी तो हुई। आत्मा का शुभ विकल्प हुआ, इसलिए हुई है? (-ऐसा नहीं है)। समझ में आया? लोगों को बैठता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा लगे लोगों को। व्यवहार करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहे और व्यवहार किया करे। यह शुभभाव आवे। व्यवहार का अर्थ कोई यह क्रिया नहीं। शुभभाव हो। और उस समय में वह बनने की क्रिया बनती है। शुभभाव हुआ है, इसलिए बनी है और यह बनने की क्रिया हुई, इसलिए यहाँ शुभभाव हुआ—ऐसा भी नहीं है। क्या कहते हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? यह पुण्य का योग हो, वह बना करे बाहर।

मुमुक्षु : अज्ञानी क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी कुछ करता है कोई? रजकण को भी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदल सकता है आत्मा? आहाहा! भाई! भिन्न तत्त्व, इसलिए कहा न। जीव-अजीव भिन्न है। विभक्त है। जीवाजीव विभक्ति। अजीव की पर्याय अजीव से होती है, जीव की पर्याय जीव से होती है। आहाहा! इतनी-इतनी पुस्तकें १२-१३ लाख। और ३ लाख जयपुर की अलग। १६ लाख पुस्तकें। कहो, नेमचन्दभाई! यह नेमचन्दभाई वहाँ के मन्त्री हैं। तीन लाख लिखी हैं। हुकमचन्दजी कहते थे। वहाँ से ३ तीन लाख, यहाँ से १३ लाख। १६ लाख पुस्तकें। बापू! वह पर्याय जिस समय में जड़ की होनेवाली हो, उस समय में (होती है)।

मुमुक्षु : परन्तु उसी काल में क्यों हुई ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह काल उसका स्वकाल हो, तब होवे न ? उसका स्वकाल है। आहाहा ! भिन्न तत्त्व को भिन्न तत्त्व क्या करे ? जाने कि होता है, हुआ (है), ऐसा।

मुमुक्षु : यह तो सोनगढ़ की मान्यता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़। क्या कहते हैं यहाँ ? '**जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण**' जिनवर के मत में दो की भिन्नता जाने। आहाहा ! बहुत सरस। जीव-अजीव की भिन्नता '**जाणेइ जिणवरमएण**' जिनवर ने कहा कि अजीव की पर्याय जीव कर सकता नहीं। कहो, आहाहा ! उस प्रकार का भाव हो शुभ, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म नहीं। धर्म तो अपने द्रव्य के आश्रय से पर्याय उत्पन्न हो, वह धर्म है। आहाहा ! समझ में आया ? जीव-अजीव की भिन्नता। '**जाणेइ जिणवरमएण**' आहाहा !

वह ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थ का कहा हुआ सत्यार्थ नहीं है, असत्यार्थ है, सर्वज्ञ का कहा हुआ, वही सत्यार्थ है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनको एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञान की पर्याय (में) जानने में आ गये। ऐसे भगवान ने जिनवर मत में जो कहा जीव और अजीव। अन्यमति तो कुछ फेरफार करते हैं। जीव सर्वव्यापक है, जीव थोड़ा माना है। अन्दर कहेंगे। लिखा है वह। अजीव कोई है ही नहीं। अजीव हो तो उसमें शक्ति नहीं। जीव करे तो ही अजीव की शक्ति काम करे। ऐसा अज्ञानी मानते हैं। ऐसा नहीं है। '**जिणवरमएण**' जिनवर के मत से जाने। आहाहा ! समझ में आया ? विशेष व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

फाल्गुन कृष्ण १०, सोमवार, दिनांक १८-०३-१९७४
गाथा - ४१ से ४४, प्रवचन-१३०

... अर्थ चला है। फिर से। धर्मात्मा मुनि **जीव-अजीव पदार्थ के भेद...** जीव और अजीव की भिन्नता **जिनवर के मत से जानता है...** वीतराग ने कहे जीव और अजीव का स्वरूप, उस रीति से जानना। **वह सम्यग्ज्ञान है, ऐसा सर्वदर्शी-सबको देखनेवाले सर्वज्ञदेव ने कहा है, सर्वज्ञ का कहा हुआ ही सत्यार्थ है।** '**अवियत्थं**' है न? '**अवियत्थं सव्वदरसीहिं**' इसके अतिरिक्त, सर्वज्ञ परमात्मा ने तत्त्व कहे, इसके अतिरिक्त छद्मस्थ के कहे हुए सत्यार्थ नहीं। दूसरों ने कल्पना से तत्त्वों की बात की हो, वह सच्ची नहीं। **सर्वज्ञ का कहा हुआ ही सत्यार्थ है।**

भावार्थ :- सर्वज्ञदेव ने... देव ने अर्थात् देव ने। **जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये जाति अपेक्षा छह द्रव्य कहे हैं।** भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं। संख्या अपेक्षा से... यह मिलान बिना का लिखा है। ऊपर से लिखा है न कुछ? यह कुछ मेल बिना का है। संख्या अपेक्षा से जीव हो तो वहाँ पहले अनन्त चाहिए, पुद्गल अनन्तानन्त चाहिए, धर्म एक-एक ऐसा चाहिए। क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इस प्रकार से मेल नहीं। घर का करने जाये डाले अन्दर। क्योंकि संख्या है पहले जीव की, तो पहले जीव में अनन्त-अनन्त आना चाहिए, फिर पुद्गल का अनन्त-अनन्त आना चाहिए। फिर धर्म-अधर्म और आकाश का एक (-एक) आना चाहिए, काल का असंख्य आना चाहिए। क्रम ऐसा है न? घर की होशियारी करके डाला है, मेल बिना का। यह अनुवाद करे, उसमें घर का कुछ नहीं डालना चाहिए और साधारण ऐसे के लिये तो अनुवाद करने का साधारण व्यक्ति का काम नहीं। यह कोष्ठक में नहीं। वह मूल में नहीं।

सर्वज्ञदेव ने जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये जाति अपेक्षा छह द्रव्य कहे हैं। (संख्या अपेक्षा से...) ऐसे लेना अब वापस। धर्मास्ति एक, अधर्मास्ति

एक, आकाश एक, काल असंख्य और जीव-पुद्‌गल अनन्त-अनन्त। ऐसा ले तो मेल खाये। पण्डित जयचन्द्रजी ने किया हो, वह तो बहुत न्याय से किया हो। यह वर्तमानवाले घर की कल्पना से करने जाये, अनुवाद में डालने जाये। पाटनीजी! **इनमें जीव को दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप कहा है,...** जीव जो है, वह तो दर्शन-ज्ञानमय चेतनास्वरूप है। **वह सदा अमूर्तिक है...** त्रिकाल अमूर्तिक है। कोई ऐसा कहते हैं न, कर्म के निमित्त से है, तब तक मूर्त कहलाता है। कहते हैं न? वह तो उपचार से कथन है। सदा त्रिकाल अमूर्त है। उसका द्रव्य अमूर्त, गुण अमूर्त, पर्याय अमूर्त। आहाहा!

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण से रहित है। भगवान आत्मा। उसमें स्पर्श, गन्ध आदि है नहीं। **पुद्‌गल आदि पाँच द्रव्यों को अजीव कहते हैं...** जीव के अतिरिक्त। पुद्‌गल आये न बाद में? उसे अजीव कहा है, जड़ कहा है, अचेतन और जड़ है। **इनमें पुद्‌गल स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्दसहित मूर्तिक (रूपी) है, इन्द्रियगोचर है, अन्य अमूर्तिक हैं।** दूसरे पदार्थ। **आकाश आदि चार तो जैसे हैं, वैसे रहते हैं। जीव और पुद्‌गल का अनादि-सम्बन्ध है।** दोनों को।

छद्मस्थ के इन्द्रियगोचर पुद्‌गलस्कन्ध है, उनको ग्रहण करके जीव राग-द्वेष-मोहरूप परिणमन करता है,... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा है अमूर्तिक, परन्तु अनादि पुद्‌गल का सम्बन्ध है, इसलिए इन्द्रियगम्य जो पुद्‌गलस्कन्ध हैं, उन्हें ग्रहण करने का भाव करता है। यह वस्तु है, उसकी खबर नहीं। (यह) अणीन्द्रिय वस्तु है, इसकी खबर नहीं, इसलिए उसके इन्द्रियगम्य में जो पुद्‌गलस्कन्ध दिखते हैं, उन्हें ग्रहण करता है, उन्हें भोगना—ऐसा मानता है; उन्हें छोड़ूँ—ऐसा मानता है, उनके कार्य करूँ—ऐसा मानता है। **जीव राग-द्वेष-मोहरूप परिणमन करता है,...** यह वस्तु तो कहीं ग्रहण की नहीं जा सकती, परन्तु उसे ग्रहण करूँ, ऐसा करके राग, द्वेष और मोह (रूप) परिणमता है। ... होता है न पूरा महोत्सव में?

शरीरादि को अपना मानता है... जो स्वयं चीज़ आनन्दस्वरूप है, उसके साथ सम्बन्ध कर्म का, शरीर का हुआ है। वह स्वयं क्या है, यह जानता नहीं। इसलिए अपना अस्तित्व शरीर, वह मैं; वाणी मैं और राग-द्वेष मैं, ऐसा मानकर **इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेषरूप होता है, इससे नवीन पुद्‌गल कर्मरूप होकर बन्ध को प्राप्त होता है, यह**

निमित्त-नैमित्तिक भाव है, इस प्रकार यह जीव अज्ञानी होता हुआ... अहो! अपना आनन्द और ज्ञान पूर्ण स्वरूप के भान बिना पर्यायबुद्धि से **जीव-पुद्‌गल के भेद को न जानकर...** शरीर और वाणी तथा कर्म, वह सब परचीज़ है, मैं स्व भिन्न चीज़ हूँ, उसका भान नहीं करके। **मिथ्याज्ञानी होता है।** यहाँ ज्ञान की प्रधानता से बात है न?

इसीलिए आचार्य कहते हैं कि जिनदेव के मत से... वीतराग देव ने जो जीव-अजीव के भेद कहे, उन दोनों को भिन्न **जानकर सम्यग्दर्शन का स्वरूप जानना। इस प्रकार जिनदेव ने कहा, वही सत्यार्थ है, प्रमाण नय के द्वारा ऐसे ही सिद्ध होता है,...** प्रमाण और नय से भगवान ने कही, वह वस्तु सिद्ध होती है। अज्ञानी ने कही हुई वस्तु सिद्ध नहीं होती। **इसलिए जिनदेव सर्वज्ञ ने सब वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर कहा है।** और जिनदेव ने कहे हुए तत्त्वों का ज्ञान। मूल तो सम्यग्दर्शनसहित की बात है। समझ में आया? इसलिए पहले सम्यग्दर्शन लिया है ४० (गाथा) में, उसके सहित की ज्ञान की बात है और उसके पश्चात् सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र की बात है। मोक्ष का अधिकार है न!

अन्यमति छद्मस्थ हैं, इन्होंने अपनी बुद्धि में आया, वैसे ही कल्पना करके कहा है,... जानने में तो तत्त्व आया नहीं, तो कल्पना जैसे हुई कि ऐसा होना चाहिए, ऐसा होना चाहिए, ऐसा है। **वह प्रमाणसिद्ध नहीं है।** प्रमाण से यह वस्तु साबित नहीं होती। **इनमें कोई वेदान्ती तो एक ब्रह्ममात्र कहते हैं,...** सर्वव्यापक ब्रह्म। उसका अभी बहुत आता है सुधरे हुए में। सर्वव्यापक एक। झूठी बात है। **अन्य कुछ वस्तुभूत नहीं है,...** एक आत्मा के अतिरिक्त दूसरी कोई चीज़ ही नहीं। आहाहा! उसे तो पाखण्ड कहा है अलिंगग्रहण में। अमेहनाकार—पाखण्डियों को प्रसिद्ध ऐसा जो आकार सर्वव्यापक, वह कोई चीज़ ऐसी नहीं, वह तो पाखण्डियों ने मानी है।

मायारूप अवस्तु है,... सब माया है। या-मा—यह नहीं, यह नहीं। यह वस्तु ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। **कई नैयायिक, वैशेषिक जीव को सर्वथा नित्य सर्वगत कहते हैं,...** सर्वथा नित्य सर्वगत। **जीव के और ज्ञानगुण के सर्वथा भेद मानते हैं...** गुणगुणी भेद। ज्ञान भिन्न है, जीव भिन्न है। दो समवाय होकर—संयोग होकर ज्ञानी होता है। यह अज्ञानी की बात है। **और अन्य कार्यमात्र है, उनको ईश्वर करता है,...** जगत के

जितने कार्य हैं... है न? **अन्य कार्यमात्र है, उनको ईश्वर करता है...** कहते हैं। सब कार्यों का कर्ता ईश्वर। है न? **अन्य कार्यमात्र है, उनको ईश्वर करता है, इस प्रकार मानते हैं।** पत्ता भी नहीं हिलता भगवान के बिना। एक बार वहाँ देखने गये थे। स्वामीनारायण का गढडा में। नरसीभगत साथ में थे। तो उनके साधु धोते थे। हमको देखकर कहे कि यह एक पत्ता भी ईश्वर के बिना नहीं हिलता। (संवत्) १९६९ का वर्ष होगा। दीक्षा लेने पहले की (बात है)। ऐसे के ऐसे। ऐसे अज्ञानियों ने कल्पना के मत माने हैं, ऐसा कहते हैं।

कई सांख्यमति पुरुष को... अर्थात् आत्मा को उदासीन **चैतन्यस्वरूप मानकर सर्वथा अकर्ता मानते हैं,...** आत्मा कर्ता-बर्ता है नहीं। वह तो प्रकृति करती है। **ज्ञान को प्रधान का धर्म मानते हैं।** आत्मा के ज्ञान को रजो, सत्व और तमो का धर्म मानते हैं। आत्मा का ज्ञान धर्म है, ऐसा मानते नहीं। यह तो सब व्याख्या लम्बी है। **कई बौद्धमति सर्व वस्तु को क्षणिक मानते हैं,...** बौद्ध है न? सर्वत्र क्षणिक। **सर्वथा अनित्य मानते हैं, इनमें भी अनेक मतभेद हैं, कई विज्ञानमात्र तत्त्व मानते हैं,...** एक विज्ञान ही सर्व जगत में है बस, दूसरा कुछ है नहीं। **कई सर्वथा शून्य मानते हैं,...** सब शून्य है। **कोई अन्य प्रकार मानते हैं। मीमांसक कर्मकाण्डमात्र ही तत्त्व मानते हैं,...** करना राग और क्रिया और कार्य, वह सब, वही वस्तु है। कर्मकाण्ड। राग-द्वेष-शरीर-वाणी-मन क्रिया, वही मात्र आत्मा है। **जीव को अणुमात्र मानते हैं तो भी कुछ परमार्थ नित्य वस्तु नहीं है...** अणुमात्र कहे, परन्तु परमार्थ नित्य वस्तु मानते नहीं। **इत्यादि मानते हैं। चार्वाकमति जीव को तत्त्व नहीं मानते हैं, पंचभूतो से जीव की उत्पत्ति मानते हैं।** लो!

इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्त्व मानकर परस्पर में विवाद करते हैं, वह युक्त ही है,... वह उचित है, कहते हैं। **वस्तु का पूर्णरूप दिखता नहीं है,...** सर्वज्ञ ने जो देखा, ऐसी पूर्ण वस्तु तो दिखाई दी नहीं। **जैसे अन्धे हस्ती का विवाद करते हैं,...** एक कहे कि सूंढ़ जैसा हाथी है, एक कहे पूँछ जैसा हाथी है, एक कहे पेट जैसा हाथी है। आहाहा! **यह प्रमाण और नयों के द्वारा अनेकान्तरूप सिद्ध होता है।** मात्र जिनदेव ने कही हुई बात, वह प्रमाण, नय, निक्षेप से सिद्ध होती है। **इनकी चर्चा हेतुवाद के जैन के न्याय-शास्त्रों से जानी जाती है, इसलिए यह उपदेश है, जिनमत में जीवाजीव का स्वरूप**

सत्यार्थ कहा है,... लो, यह योगफल लिया। भगवान ने जो जीव अनन्त, अनन्त अजीव भिन्न-भिन्न (देखे हैं)। जीव का स्वरूप तो चेतनास्वरूप, जड़ का—पुद्गल का स्वरूप रंग, गन्ध आदि। दूसरे का रंग, गन्ध, रस रहित का अरूपी, वह भगवान ने देखे, उसे जानना, वह सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शनसहित है न यहाँ? **इस प्रकार जानकर जिनदेव की आज्ञा मानकर सम्यग्ज्ञान को अंगीकार करना, इसी से सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है,...** यह सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो तो सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो और चारित्र आ जाये, ऐसी वस्तु है नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ४२

आगे सम्यक्चारित्र का स्वरूप कहते हैं—लो, चारित्र आया। ४० में दर्शन, ४१ में ज्ञान, ४२ में चारित्र।

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं अवियप्प कम्मरहिएहिं॥४२॥

योगी, मुनि। मुनि की प्रधानता से कथन है। वरना तो अन्दर आ गया (कि) श्रावक और मुनि दोनों को समकित ग्रहण करना चाहिए पहले। आहाहा!

अर्थ :- योगी ध्यानी मुनि उस पूर्वोक्त जीवाजीव के भेदरूप... जीव और अजीव भिन्न-भिन्न, ऐसा **सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान को जानकर पुण्य और पाप इन दोनों का परिहार करता है,...** यह शुभ और अशुभ को छोड़े, तब स्वरूप में स्थिरता और चारित्र आवे। यह पहले आ गया था। ३७, ३७ गाथा में आया था। '**तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं।**' पाटनीजी ने प्रश्न किया था न इस गाथा में, ३७ गाथा में। खबर है। समझ में आया? उसका कारण है कि चारित्र तो स्वरूप में स्थिरता, वह है, परन्तु वह स्थिरता पुण्य-पाप के विकल्प से रहित हो, उसे होती है, ऐसा। व्रत के परिणाम हों और यह हो और चारित्र हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। शुभभाव हो, इसलिए वह चारित्र है, यह नहीं। शुभभाव से रहित होकर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में स्थिर हो, रमणता करे, उसे चारित्र मोक्ष का कारण होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका अभाव हो वही कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव इसका। अभाव है न।

दोनों का परिहार करता है,... परिहार। ऐसा पाठ तो ऐसा है न? '**परिहारं कुणइ**' करता है इसका अर्थ यह कि स्वरूप में स्थिर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान करके उसमें स्थिर होता है, तब पुण्य-पाप का परिहार हो जाता है, उसे पुण्य-पाप को छोड़ता है, ऐसा कहा जाता है। **त्याग करता है, वह चारित्र है, जो निर्विकल्प है,...** चारित्र तो आत्मा में रागरहित निर्विकल्पदशा है। आहाहा! **अर्थात् प्रवृत्तिरूप क्रिया के विकल्पों से रहित है,...** मैं पर की दया पालन करूँ, सत्य बोलूँ, ब्रह्मचर्य पालन करूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह तो राग है। राग से रहित, प्रवृत्ति की क्रिया से रहित, **वह चारित्र घातिकर्म से रहित ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा है।** है न पाठ? '**कम्मरहिएहिं**' कर्मरहित ऐसे भगवान केवलज्ञानी। ऐसा। '**कम्मरहिएहिं**' '**अवियप्प**' अविकल्पं कहा चारित्र को। आहाहा! टीका वह भी... **घातिकर्म से रहित...** इन चार घातिकर्मों का जिन्होंने नाश किया, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा ने चारित्र का स्वरूप ऐसा कहा है।

भावार्थ :- चारित्र निश्चय-व्यवहार के भेद से दो भेदरूप है, महाव्रत... अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ऐसा जो महाव्रत का भाव, वह व्यवहारचारित्र शुभराग है। **समिति-गुप्ति...** यह भी शुभराग का भाव है। आहाहा! यह व्यवहार है। **इसमें प्रवृत्तिरूप क्रिया शुभकर्मरूप बन्ध करती है...** उसमें जो शुभराग है, वह प्रवृत्तिरूप क्रिया शुभकर्म का बन्ध करती है। आहाहा! **और इन क्रियाओं में जितने अंश निवृत्ति है...** इस राग की क्रिया से जितने अंश में अन्दर भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप में लीनता (होती है), वह चारित्र है। **उसका फल बन्ध नहीं है, उसका फल कर्म की एकदेश निर्जरा है।** सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित स्वरूप में रमणता का अंश, वह एकदेश निर्जरा है। उसमें आंशिक कर्म का खिरना और अशुद्धता का नाश होता है।

सब कर्मों से रहित अपने आत्मस्वरूप में लीन होना, वह निश्चय चारित्र है,... सब कर्मों से रहित... सर्व क्रियाकाण्ड की कल्पना से रहित अपना आत्मस्वरूप भगवान

चिदानन्द धाम। आहाहा! **आत्मस्वरूप में लीन होना, वह निश्चय चारित्र है,...** यह सच्चा चारित्र है। **इसका फल कर्म का नाश ही है,...** उस शुभभाव में प्रवृत्ति थी न? उसमें जितने अंश में अशुभ से निवृत्त हुआ है, उतने अंश में वहाँ बन्ध नहीं, ऐसा कहा। और सर्वथा जिसका नाश हो गया है शुभाशुभभावरहित, ऐसा जो चारित्र, ऐसा। **वह पुण्य-पाप के परिहाररूप निर्विकल्प है।** आहाहा! **पाप का तो त्याग मुनि के है ही और पुण्य का त्याग इस प्रकार है—**मुनि द्रव्यलिंगी बाह्य नग्न हो द्रव्यलिंग बाह्य में, अन्तर में आनन्दस्वरूप का भान हो, ऐसे मुनि को पाप का तो त्याग ही होता है। **पुण्य का त्याग इस प्रकार है—**

शुभक्रिया का फल पुण्यकर्म का बन्ध है, उसकी वांछा नहीं है,... मुनि को पंच महाव्रत के विकल्प आवे, समिति, गुप्ति का राग हो, वह पुण्यबन्ध का कारण है, परन्तु उसकी वांछा नहीं है। **बन्ध के नाश का उपाय निर्विकल्प निश्चयचारित्र का प्रधान उद्यम है।** आहाहा! मुनि को तो अन्तर में शुद्ध चैतन्य के आनन्द में लीनता का प्रयत्न है। आहाहा! **इस प्रकार यहाँ निर्विकल्प अर्थात् पुण्य-पाप से रहित ऐसा निश्चय चारित्र कहा है। 'अवियप्प'** आया था न? **'अवियप्प कम्मरहिएहिं'** इसका अर्थ किया। **चौदहवें गुणस्थान के अन्तसमय में पूर्ण चारित्र होता है,...** लो! **उसमें लगते ही मोक्ष होता है...** पूर्ण हुआ अर्थात् तुरन्त ही मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। चौदहवें में चारित्र पूर्ण होता है। आहाहा! **ऐसा सिद्धान्त है।** सम्यग्दर्शन—आत्मा के अनुभव में प्रतीति; सम्यग्ज्ञान-आत्मा का अनुभव और चारित्र-स्वरूप में रमणता, उसकी शुरुआत तो चौथे गुणस्थान से होती है। पूर्ण चौदहवें में होता है। लो, ठीक! वैसे तो चारित्र बारहवें गुणस्थान में कहा। परन्तु पूरा चारित्र—आत्मा की पूर्ण रमणता, वह आत्मा का चारित्र। वह चारित्रगुण की दशा। लोगों को सूक्ष्म पड़ता है, इसलिए फिर वह बाहर में... आहाहा! **अन्त समय में पूर्ण चारित्र होता है,...** देखो! केवली को भी अभी पूर्ण चारित्र नहीं। आत्मचारित्र। वह चारित्र अलग, यह तो आत्मा का। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ४३

आगे कहते हैं कि इस प्रकार रत्नत्रयसहित... तीनों आ गये अब। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। ४०-४१ में। **इस प्रकार रत्नत्रयसहित...** रत्नत्रय कहा। शुद्ध भगवान आत्मा का भान होकर प्रतीति, वह रत्नत्रय है। शुद्ध आत्मा का ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान भी रत्नत्रय में का एक रत्न है और स्वरूप में रमणता भी रत्नत्रय में का एक रत्न है। इतना मूल्य देकर माल लिया जाता है। इतना मूल्य दे, तब उसे मोक्षरूपी माल मिलता है। यह कहा न, इतना रत्न देना पड़ता है उसे।

इस प्रकार रत्नत्रयसहित होकर तप, संयम, समिति को पालते हुए शुद्धात्मा का ध्यान करनेवाला मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है—लो, इतना आया। अन्दर भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का ध्यान करने से मुक्ति को प्राप्त करता है। कोई प्रवृत्ति व्यवहार के व्रत की-फ्रत की, वह सब राग का बन्धन का कारण है। आहाहा!

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं जायंतो अप्पयं सुद्धं॥४३॥

स्वशक्ति से, हों! शक्ति के प्रमाण में करे, ऐसा कहते हैं।

अर्थ :- जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त होता हुआ... जो कोई आत्मा अपना सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य का ज्ञान और शुद्ध चैतन्य की रमणता से सहित होता हुआ। ऐसा है न? **संयमी बनकर...** मुनि की बात है न? मोक्ष की। **अपनी शक्ति के अनुसार...** हठ न करे, ऐसा कहते हैं। तप आदि की बात है न? तप है न? दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो हुआ है, परन्तु अब इच्छा निरोधरूप तप करना। वह शक्ति प्रमाण करे। हठ करके, न हो सके और फिर खेद हो, ऐसा धर्मी नहीं करता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है, पश्चात् विशेष उग्र पुरुषार्थ, स्वरूप का प्रतपन—आनन्द की प्र—विशेष तपन शोभा-शोभा। जैसे सोने को गेरू लगाकर शोभाते हैं न? ओप-ओप। उसी प्रकार आत्मा को ओप देते हैं। स्वरूप की दृष्टि हुई है, स्वरूप का ज्ञान हुआ है, स्वरूप में संयम है। अब उग्र पुरुषार्थ से इच्छा की उत्पत्ति न होकर अमृतस्वरूप की उत्पत्ति हो, उसे तप कहा जाता है। लो, यह तप। गजब!

यहाँ उन तीन सहित की बात है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, इन सहित की बात है न? तीन गाथा उनकी आयी। चौथी आयी तप की। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने यह क्रम रखा है। प्रथम तो सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव को ध्येय में लेकर अन्तर में प्रतीति-श्रद्धा प्रगट करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और भगवान ने कहे हुए जीव-अजीव का विभाजन—भिन्नता, उसका अन्तर में ज्ञान करना, वह सम्यग्ज्ञान है। जीव आ गया न अन्दर इकट्ठा? और स्वरूप में रमण करने के लिये शुभ-अशुभभाव जो बन्ध के कारण, उन्हें छोड़कर स्वरूप में लीनता, वह चारित्र। उससहित उग्र पुरुषार्थ से आत्मा में तप की इच्छा निरोध करके (अर्थात्) इच्छा उत्पन्न न हो और अन्दर आनन्द की प्रतपन दशा उग्र उत्पन्न हो, उसे तप कहा जाता है। कहो, मगनभाई! ऐसा तो वहाँ सुना नहीं होगा कभी तो फिर अपवास करो और यह करो लंघन। शिवलालभाई! तुम्हारे समधी कहे, भाई! इसमें समझ में नहीं आता। परन्तु कभी सीढ़ियाँ चढ़ी हैं कहाँ इसमें? तप किये, ऐसा माने। धूल भी तप नहीं। जिसमें आत्मा क्या चीज़ है, वह जहाँ श्रद्धा और ज्ञान में उसका भाव भासित हुआ नहीं; भाव अर्थात् चैतन्य आनन्द का भासन हुआ नहीं तो उसमें स्थिर होना, यह उसे कहाँ से आवे? समझ में आया?

अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है, वह शुद्ध आत्मा का ध्यान करता हुआ... ऐसा। देखो! शुद्धस्वरूप परमात्मा स्वयं, भगवान स्वयं शुद्ध आत्मा अन्दर है। उसका ध्यान करते हुए **परमपद निर्वाण को प्राप्त करता है।** लो! जिसे सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, वह जब इच्छा निरोध करके उग्र पुरुषार्थ से शक्ति प्रमाण तप करे, वह आत्मा का ध्यान करता हुआ। क्योंकि उसकी दृष्टि तो वहाँ है, इसलिए ध्यान (उसका) करता है। **परमपद निर्वाण को प्राप्त करता है।** लो! **'परमपयं जायंतो अप्पयं सुद्धं'** परमपद को प्राप्त करता है अब। **'सो पावइ परमपयं जायंतो अप्पयं सुद्धं'** ऐसा लेना। अपना शुद्ध भगवान आत्मा परम शुद्ध पवित्र पवित्र दृष्टि में, अनुभव में आया, उसका ध्यान करता हुआ परमपद को प्राप्त करता है। परमपद शब्द से (आशय) मोक्ष—निर्वाण।

भावार्थ :- जो मुनि संयमी, पाँच महाव्रत, पाँच समिति,... ईर्या, भाषा इत्यादि।

तीन गुप्ति, यह तेरह प्रकार का चारित्र, वही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र संयम है,... प्रवृत्तिरूप शुभराग। जिसे निश्चय चारित्र होता है, जिसे आत्मा परमशुद्ध आनन्द का भान हुआ है और जिसमें उसकी रमणता चारित्र की होती है, उस जीव को व्यवहार ऐसे पंच महाव्रत आदि के परिणाम होते हैं। समझ में आया? वस्तु परमात्मस्वरूप, परम-आत्म, परम स्वरूप, उसका जिसे भान, श्रद्धा और भासन ज्ञान में हुआ है, वह जीव। उस जीव को यह पंच महाव्रत आदि के विकल्प व्यवहारचारित्र होता है कि जो बन्ध का कारण है।

वह **प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र संयम है, उसको अंगीकार करके...** ठीक! भाषा तो ऐसी ही ली जाये न! **और पूर्वोक्त प्रकार निश्चय चारित्र से युक्त होकर...** अन्दर आत्मा में लीनता प्रगट करके **अपनी शक्ति के अनुसार उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करता है...** शक्ति अनुसार तप करे। एक उपवास, दो उपवास, पाँच उपवास। शुद्ध उपयोग को बढ़ाने का कारण है। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में। नहीं? शुद्ध उपयोग बढ़ाने के लिये करे, ऐसा आता है। अन्तर में शुभभाव से रहित होकर शुद्ध उपयोग का आचरण करने के लिये निवृत्ति के लिये इस प्रकार का विकल्प उसे होता है। आहाहा!

वह मुनि अन्तरंग तप ध्यान के द्वारा... देखा! बाहर का तप शक्ति अनुसार इतना और **अन्तरंग तप ध्यान के द्वारा...** ओहोहो! बाह्य तप आदि है, वह शक्ति प्रमाण करे, ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरों (को) देखो न, दो उपवास करके मुनि हुए न? शक्ति की योग्यता। वरना महा वीर्यवन्त होते हैं। जैसे भगवान ऋषभदेव ने छह महीने के उपवास किये। भगवान को दो दिन का उपवास। वह जितनी योग्यता थी, तत्प्रमाण व्यवहार तप आया और वह शुद्ध उपयोग में स्थिर होने के लिये यह निमित्त है। समझ में आया? माल है यह तो अन्दर वस्तु है, अन्तरंग तप और यह जो बाह्य तप के विकल्प आदि कहे, वह तो कोथला—बारदान है। आहाहा! समझ में आया?

शक्ति के अनुसार उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करता है, वह मुनि अन्तरंग तप ध्यान के द्वारा शुद्ध आत्मा का एकाग्र चित्त करके... लो! **ध्यान करता हुआ निर्वाण को प्राप्त करता है।** यह तो आ गया है अन्दर में। पंच महाव्रतादि कहा न वहाँ?

अंगीकार करके कहा न, वह तो आ गया है पाठ में। अंगीकार करता है, वहाँ छठवें गुणस्थान में विकल्प है।

★ ★ ★

गाथा - ४४

आगे कहते हैं कि ध्यानी मुनि ऐसा बनकर परमात्मा का ध्यान करते हैं—

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई॥४४॥

अर्थ :- 'त्रिभिः' मन-वचन-काय से तीन वर्षा, शीत, उष्ण तीन काल योगों को धारण कर... सर्दी में, गर्मी में और चातुर्मास में। यह तीन। तीन योग से रहित होकर। **'त्रिकरहितः' माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यों से रहित होकर...** त्रिशल्ली करणेणं आता है न? तस्सउत्तरी में आया था न तुम्हारे? देवशीभाई! तस्सउत्तरी किया था न? तस्सउत्तरी? किया नहीं होगा? उस समय किया होगा। उसमें आता है त्रिशल्ली करणे। तस्सउत्तरी करणेणं, ... त्रिशल्ली करणेण। तुमने तो किया था या नहीं, तस्सउत्तरी का? नहीं किया? पहले पहले। तीन योग है न। सर्दी में उसका मुख्य कारण ध्यान में रहे। सर्दी में सरोवर के किनारे रहे, गर्मी में पर्वत के ऊपर रहे, वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे रहे, यह तीन योग कहलाते हैं। सर्दी में—ठण्डी के दिनों में सरोवर के किनारे रहे। गर्मी में पर्वत के ऊपर, वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे। ऊपर पानी गिरे धड़ाधड़। इन तीन काल में तीन (मन), वचन, काय से यह कालयोग धारण कर। मन, वचन, काया से धारण करके। **परमात्मा उनका ध्यान करता है।** लो! है न? भावार्थ में है।

भावार्थ :- मन, वचन, काय से तीन काल योग... यह सर्दी, गर्मी। तीन-तीन ऋतु। **योग धारण कर परमात्मा का ध्यान करे...** परम आत्मा स्वयं भगवान, हों! आहाहा! परमस्वरूप भगवान का ध्यान करे। **इस प्रकार कष्ट में दृढ़ रहे...** प्रतिकूलता की पवन चलती हो, सरोवर के किनारे हो। लो! आहाहा! शान्त... शान्त... शान्त... आनन्दस्वरूप में रमते हुए। समता के परिणाम से रहे, वह **कष्ट में दृढ़ रहे, तब ज्ञात होता है कि इसके ध्यान की सिद्धि है,...** प्रतिकूलता का संयोग आने पर भी अन्तर

आनन्दस्वरूप के ध्यान में लीन हो, तब जानना कि इसे ध्यान की सिद्धि हुई है। अन्तर्लीन हो गया, लीन हुआ लीन।

मुमुक्षु : एकाग्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्र लीन हो गया।

कष्ट आने पर चलायमान हो जाये, तब ध्यान की सिद्धि कैसी? आहाहा! रामचन्द्रजी जब ध्यान में बैठे थे और केवलज्ञान पानेवाले थे, लो! सीताजी आये स्त्री का रूप धारण करके। वहाँ देव हैं। डिगाने के लिये (आये)। रावण से डिगे नहीं, स्वयं राम को डिगाने के लिये आये। यह विकल्प का जाल। हे राम! तुम निदान करो, यहाँ से हम स्वर्ग में साथ में रहेंगे। वे तो आत्मा के आनन्द में ध्यान में थे। लीन होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। रामचन्द्रजी अपने स्वरूप के ध्यान में लीन होकर केवलज्ञान पाये हैं, यह सीताजी डिगाने के लिये आयीं। देखो न विचित्रता चारित्रमोह की! अनेक प्रकार की उस समय की योग्यता होती है न, ऐसा आता है। आहाहा!

किसी भी प्रकार की शल्य रहने से चित्त एकाग्र नहीं होता है,... मायाशल्य हो, मिथ्यात्वशल्य हो, या निदानशल्य हो। वह शल्य हो, तब तक चैतन्य में एकाग्रता नहीं हो सकती। आहाहा! (चित्त में) **किसी भी प्रकार की शल्य रहने से चित्त एकाग्र नहीं होता है, तब ध्यान कैसे हो? इसलिए शल्य रहित कहा। श्रद्धान, ज्ञान, आचरण यथार्थ न हो, तब ध्यान कैसा?** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र न हो तो उसका ध्यान कैसा हो? उसके स्वरूप में जाये कहाँ से? क्योंकि स्वरूप तो दृष्टि में आया नहीं। अकेली मक्खन की बातें हैं यह सब अभी! **इसलिए शल्यरहित कहा,... इसलिए दर्शन, ज्ञान, चारित्र मण्डित...** लो! इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र **मण्डित कहा,...** तीन से सहित कहा।

और राग-द्वेष-इष्ट-अनिष्टबुद्धि रहे, तब ध्यान कैसे हो? यह कहा न? **'दोदोसविप्पमुक्को'** तीसरा पद। राग और द्वेष रहे तो ध्यान कहाँ से आवे? अन्दर में कहाँ से रह सके? आहाहा! बाहुबलीजी को एक जरा सी खटक रह गयी, श्रेणी का ध्यान नहीं जमा। आहाहा! यह बाहुबली बारह महीने तक ऐसे (ध्यान में खड़े रहे)। भरत को कैसे होगा? भरत को कैसे होगा? आहाहा! ऐसा एक सूक्ष्म भाव रह गया

राग—चारित्रमोह का वह, हों! नहीं हुई, श्रेणी नहीं हुई। ऐसे जहाँ भरत आते हैं और पूजा करते हैं। ओहो! इन्हें तो कुछ हुआ नहीं। एकदम अन्दर में उतरे। केवलज्ञान जलहल ज्योति चैतन्य प्रभु। हमारे वहाँ कहा जाता था। (संवत्) १९८५ में एक व्याख्यान बहुत सूक्ष्म चलता था। बोटाद में हजारों लोगों की वहाँ सभा। पाँचवाँ अध्ययन था। उन बाहुबलीजी के दृष्टान्त में फिर ऐसा... आहाहा! यह तो केवलज्ञान घूमता-फिरता है बाहुबलीजी का आने के लिये। बाहर आता होगा? केवलज्ञान चक्कर लगाता है परन्तु अभी अन्दर में... केवलज्ञान तो अन्दर में से आता है।

मुमुक्षु : महाराज को केवलज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी कहा था उसने। यह कहा था। उस समय कुछ झपट चलती थी। लोकसार अध्ययन। और वहाँ तो हजारों लोग। तीन सौ तो घर। (संवत्) १९८० के वर्ष की बात है। आहाहा! लोग कहे कि आहाहा! महाराज को ऐसे केवलज्ञान घूमता है, हों! अधिकार आवे न! आहाहा! लोगों का प्रेम था न। ५० वर्ष पहले की बात है।

यहाँ तो कहा न? कि '**तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ**' है न? '**तिहि तिण्णि धरवि**' मन, वचन और काया छोड़कर तीन—वर्षायोग, सर्दीयोग में ध्यान करना। '**णिच्चं तियरहिओ**' (मिथ्यात्व), माया, निदान शल्य से रहित। '**तह तिएण परियरिओ**' दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित। '**दोदोसविप्पमुक्को**' राग-द्वेष को छोड़कर। आहाहा! क्योंकि जब तक किसी भी पदार्थ में इष्ट-अनिष्टबुद्धि रह जाये तो उसे अन्तर वीतरागी ध्यान नहीं हो सकता। आहाहा! **इसलिए परमात्मा का ध्यान करे, वह ऐसा होकर करे,...** ऐसा। जो कोई आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में जो ध्यान करे, लीन हो, वह ऐसा करके करे, ऐसा कहते हैं। माया, निदान छोड़कर, दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण कर और तीन काल योग में राग-द्वेष छोड़कर ध्यान करे। गजब मार्ग, भाई! इसमें बाहर प्रवृत्ति क्या करना, यह इसमें नहीं आता। अन्तर प्रवृत्ति विकल्प है, उसे भी छोड़कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि प्रवृत्ति के परिणाम का लक्ष्य तो बाहर के ऊपर जाता है और यहाँ तो अन्तर के ध्येय को, ध्यान में ध्येय को लेना है। जो त्रिकाली शुद्ध है, उसे ध्यान में लेना है। आहाहा! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण ११, मंगलवार, दिनांक १९-०३-१९७४
गाथा - ४५ से ४८, प्रवचन-१३१

यह मोक्षपाहुड़ है। ४५ गाथा। पहले दर्शन का अधिकार आ गया दर्शन—सम्यग्दर्शन, पश्चात् सम्यग्ज्ञान, पश्चात् सम्यक्चारित्र, पश्चात् तप। और अब पीछे रहे थोड़े कषाय, उनके अभाव का यह वर्णन है। मोक्षपाहुड़ है न! अन्तिम गाथा में अन्त में तो ऐसा कहा है आचार्य ने स्वयं, जो इस मोक्षपाहुड़ को पढ़े, सुने, भावे, वह शाश्वत् सुख का प्राप्त करेगा। अन्तिम गाथा में है। जो कोई पढ़े, सुने और भावे। इस मोक्षप्राभृत को प्रीति से सुने, पढ़े और भावे, वह शाश्वत् सुख को प्राप्त करेगा, ऐसा कहा है। वैसे तो पढ़ने में, सुनने में तो शुभविकल्प है, परन्तु उसमें से जो ज्ञान में लक्ष्य में आवे कि यह ऐसा कहना चाहते हैं, तत्पश्चात् अन्तर में दृष्टि करे, तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। समझ में आया? इसलिए यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप की व्याख्या आ गयी और यह अब थोड़े कषाय बाकी हैं, उनसे रहित हो तो उसे यथाख्यातचारित्र होकर पूर्ण सुख की प्राप्ति करे।

★ ★ ★

गाथा - ४५

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार होता है... यह जो कहेंगे, इस प्रकार से होता है, **वह उत्तम सुख को पाता है—**

मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओय जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं॥४५॥

मद में मान डाला है। मूल तो क्रोध, मान, माया, लोभ चार हैं।

अर्थ :- जो जीव मद,... अर्थात् मान, अभिमान **से रहित हो... माया...** कपट से रहित हो। **क्रोध से रहित हो और लोभ से तो विशेषरूप से रहित हो...** है न? मूल पाठ में है न? '**लोहेण विवज्जिओय**' विशेष वर्णन करे। पहला तो आत्मा शुद्ध चैतन्य पूर्ण

आनन्द है, उसकी अन्तर दृष्टि करके सम्यग्दर्शन करना और उसके पश्चात् विशेष निर्मल ज्ञान करना और उसके पश्चात् स्वरूप में रमणतारूप चारित्र करना, उसके पश्चात् उग्र पुरुषार्थ करके, इच्छा निरोध करके तप करना। ऐसा क्रम लिया है इसमें। **लोभ से तो विशेषरूप से रहित हो...** चार कषाय बाकी रहे अभी, उन्हें टालकर। यथाख्यातचारित्र कहेंगे अर्थ में। **वह जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त होकर...** निर्मल विशुद्ध, शुद्ध आनन्द और शान्ति के चारित्रयुक्त होकर **उत्तम सुख को प्राप्त करता है।** परमानन्दरूपी मुक्ति को प्राप्त करता है।

भावार्थ :- लोक में भी ऐसा है कि जो मद अर्थात् अति मानी... हो, वह दुःख पावे, सुख न पावे। लौकिक लोक में—साधारण में ऐसा कहते हैं। **और माया कपट और क्रोध इनसे रहित हो और लोभ से विशेष रहित हो,...** तो लौकिक में उसे साधारण रीति से आकुलता कम होती है। **तीव्र कषायी अति आकुलतायुक्त होकर...** अति मानी, कपटी, लोभी और क्रोधी। **अति आकुलतायुक्त सहित होकर निरन्तर दुःखी रहता है, अतः यही रीति मोक्षमार्ग में भी जानो...** संसार के मार्ग में भी तीव्र मानी, अभिमानी दुःखी होता है, तीव्र आकुलता होती है। तो मोक्षमार्ग में भी ऐसा जानो। **जो क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषायों से रहित होता है, तब निर्मल भाव होते हैं...** है न? यथाख्यात तक ले जाते हैं। **तब यथाख्यातचारित्र पाकर उत्तम सुख को प्राप्त करता है।** सम्यग्दर्शन से लेकर कषाय का अभाव (हो), तब उसे मुक्ति का सुख मिलता है।

★ ★ ★

गाथा - ४६

आगे कहते हैं, जो विषय कषायों में आसक्त है, परमात्मा की भावना से रहित... बाह्य के पदार्थ के ऊपर के लक्ष्य में, विषय में और कषाय में आसक्त है, वह अन्तर के परमात्मा के विषय में नहीं आ सकता। समझ में आया? वह **परमात्मा की भावना से रहित है, रौद्रपरिणामी है, वह जिनमत से पराङ्मुख है, अतः वह मोक्ष के सुखों को प्राप्त नहीं कर सकता—**

विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो।
सो म लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो॥४६॥

रुद्र की व्याख्या दी शंकर की।

अर्थ :- जो जीव विषय-कषायों से युक्त है,... हर्षसहित विषय-कषाय में प्रवर्तना है। **रौद्रपरिणामी है, हिंसादिक विषय-कषायादिक पापों से हर्षसहित प्रवृत्ति करता है...** हर्ष-हर्ष। पाप के भाव में, विषय के भाव में जिसे हर्ष है, उत्साह है, उसे परमात्मस्वरूप के प्रति उत्साह, रस और रुचि नहीं आती। ऐसा जिसे हर्ष है, उसे आत्मा में हर्ष नहीं आता, ऐसा कहते हैं। **जिसका चित्त परमात्मा की भावना से रहित है, ऐसा जीव जिनमुद्रा से पराङ्मुख...** दिगम्बर मुद्रा बाह्य में और अन्तर वीतराग मुद्रा। अन्तर वीतराग जिसकी मुद्रा—स्वरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर के ऊपर लक्ष्य करके रागादि।

मुमुक्षु : सब? बाहर के सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर के सभी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का विषय कहा था न इन्द्रिय तीनों। जड़ इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय, सब इन्द्रिय कहे जाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रुद्र, यहाँ रुद्र का तो दृष्टान्त दिया है शंकर का। बड़ी कथा है। टीका में बड़ी कथा है। बहुतों पृष्ठों में टीका है। परन्तु यहाँ तो साधारण रीति से जिसके परिणाम रुद्र होंगे, कठोर तीव्र कषाय के प्रति, उसे भगवान परमात्मा के प्रति दृष्टि नहीं होगी। जिसकी पर में सावधानी है, उसे स्व में सावधानी नहीं होगी। यह कहा है, देखो न! विषय-कषाय '**जुदो रुद्दो**' कठोर परिणाम हैं, ऐसा लिया साधारण। बाकी है तो रुद्र और जिनमुद्रा। '**जिणमुद्दपरम्मुहो**' जिनमुद्रा अन्तर वीतरागभाव। 'समामृत सेईये।'

आता है न यह ? 'राग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' राग की आकुलता छोड़कर, जिसे राग की आकुलता रही, वह परमात्मा के प्रति निराकुलता की ओर नहीं जा सकेगा। जो परमात्मा अपना परमस्वरूप, परमात्मा स्वयं परमस्वरूप ध्रुव नित्यानन्द, उसकी जिसे सावधानी है, उसे पर के प्रति सावधानी नहीं होती।

ऐसा जीव जिनमुद्रा से पराङ्मुख... वह तो जिनमुद्रा वीतराग दिगम्बर वेश धारण किया हो तो भी उससे भ्रष्ट हो जायेगा। यह शंकर की बड़ी बात है इसमें। रुद्र शब्द पड़ा है न उसमें। **ऐसे सिद्धिसुख जो मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।** विषय-कषाय की जिसे प्रीति और रुचि अन्दर है, उसने बाह्य में जिनमुद्रा धारण की हो तो भी वह भ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया ? दिगम्बर मुद्रा धारण की हो बाह्य में, परन्तु जिसे विषय-कषाय के प्रति हर्ष, हर्ष है विषय-कषाय में, वह जिनमुद्रा भाव में भी नहीं रह सकती और द्रव्यमुद्रा भी वह नहीं रह सकती। उसे नग्नपना नहीं रह सकता। मुनिपना धारण किया था न वह ? शंकर की बात है। फिर भ्रष्ट हो गये विषय-कषाय की लोलुपता में। फिर तो बाहर की मुद्रा भी भ्रष्ट हो गयी, नग्नपना रहा नहीं। **ऐसे सिद्धिसुख जो मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।**

भावार्थ :- जिनमत में ऐसा उपदेश है कि जो हिंसादिक पापों से विरक्त हो,... हिंसा, झूठ, विषयभोग आदि से विरक्त हो। **विषय-कषायों से आसक्त न हो...** जिसे विषय-कषाय में तीव्र हर्ष न हो **और परमात्मा का स्वरूप जानकर...** यह तो अन्तर निवृत्तस्वरूप, भगवान आत्मा निवृत्तस्वरूप है, उसकी जिसे भावना हो, **वह जीव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है...** अन्तर स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द के प्रति जिसे सावधानी है, वह मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा और जिसे विषय-कषाय की सावधानी है, उसे आत्मा का तो ... हो। लौकिक सुख में रहेगा और दुःखी होगा। आहाहा! ऐसा कहकर यह भी कहते हैं कि जैनमुद्रा, जैनदर्शन में तो नग्नपना, वह मुद्रा होती है। वस्त्रसहितपना, वह जिनमुद्रा नहीं, वह मुनिपने का वेश नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर में वीतरागता स्वरूप की सावधानी, श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की प्रगट हुई है, उसे बाह्य मुद्रा, नग्न मुद्रा ही हो जाती है। बाह्य में वस्त्रादि हों और ऐसा कहे कि हमारे अन्तर में मुनिपना प्रगट हुआ है, यह बात एकदम झूठी है।

मुमुक्षु : उसे अनुभव होवे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे ?

मुमुक्षु : बाहर वस्त्र हो और अन्दर में उसे अनुभव हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव होता नहीं मुनिपने का। किसी ने वस्त्र डाल दिया हो तो भले, ध्यान में। वस्त्र पड़ा है। नौ कोटि से त्याग नहीं, काया द्वारा भी जिसका वस्त्र का त्याग नहीं, उसे कभी मुनिपना आ सकता ही नहीं। ऐसा मार्ग है। जिनमुद्रा का अन्दर ... इसके लिए।

जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है पहला तो, यह तो सब बात करते जाते हैं, पश्चात् सम्यग्ज्ञान की शुद्धि बढ़ी है, पश्चात् स्वरूप में चारित्र की रमणता भी करते हैं, पश्चात् विशेष पुरुषार्थ करके तप करते हैं, वह तप अर्थात् इच्छा निरोध करके अमृत के सागर को अन्दर उछालते हैं। आहाहा! उस जीव को कुछ क्रोध, मान, माया आदि रहे हों, वह उन्हें छोड़कर वीतराग मुद्रा पक्की करे और ऐसी मुद्रावाले को नग्नपना ही होता है। मुनि हो, उसे नग्नपना ही होता है। कोई कहे कि हम वस्त्र रखकर हमको मुनिपना आया है अन्दर में, यह बात एकदम झूठी अज्ञानी की मानी हुई है, ऐसा कहना चाहते हैं। वस्त्र रखने का भाव है, वह राग है, तीव्र राग है। पात्र रखने का, वस्त्र रखने का। उसे मुनिपना हो सकता ही नहीं। सम्प्रदाय की यह बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

इसलिए जिनमत की मुद्रा से... वीतरागभाव अन्दर और बाह्य वीतराग मुद्रा, नग्न मुद्रा। बाद की गाथा में कहेंगे कि **'जिणमुद्दं सिद्धिसुहं'** बाह्य नग्नपना निमित्तरूप से है, अन्तर वीतरागभाव, वह जिनमुद्रा निश्चय है। आहाहा! **वह तो संसार में भ्रमण करता है।** लो! **यहाँ रुद्र का विशेषण दिया है, उसका ऐसा भी आशय है कि रुद्र ग्यारह होते हैं...** देखो! शंकर। यह होते हैं न ग्यारह रुद्र। **ये विषय-कषायों में आसक्त होकर जिनमुद्रा से भ्रष्ट होते हैं,...** पहले नग्नपना धारण किया था। पश्चात् बहुत विद्यायें साधी, उसमें विषय-कषाय में लोलुपी हो गये। जिनमुद्रा से भ्रष्ट हो गये। **इनको मोक्ष नहीं होता है, इनकी कथा पुराणों में जानना।** लो! बड़ी कथा है उसमें। बहुत पृष्ठ भरकर लम्बी... लम्बी... लम्बी... रुद्र की कथा। ऐसे भाव से रुद्रपना जिसे है, उसे भी

जिनमुद्रा नहीं प्रगट होती। राग की तीव्रता, पाप की तीव्रता और बाह्य नग्नपना नहीं रह सकता और उसके अन्दर में वीतरागता भाव नहीं आ सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रुद्र शंकर की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी नहीं। यहाँ तो यह रुद्र शंकर का लेना है। और बाह्य से जो रूप लिया। कहा न रुद्र? यह बात की थी। उसमें कहा **हिंसादि विषय-कषायों में पापों में हर्षसहित प्रवृत्ति, वह रुद्र।** रुद्र परिणामी।

मुमुक्षु : रुद्र परिणाम, वह रौद्रध्यान?

पूज्य गुरुदेवश्री : रौद्रध्यान। वह तो ठीक।

यहाँ तो आत्मा त्रिकाल जो स्वभाव शुद्ध है, उस ओर की सावधानी जिसे है और स्वरूप की चारित्रदशा है, उसे जिनमुद्रा नग्न ही हो सकती है और जो जिनमुद्रा नग्न... परन्तु विषय-कषाय में पर में तत्पर रहे वह.... सकेगा नहीं। मुनि किसे कहना, यह बात... अभी सब साधु हैं और साध्वी हैं... वे सब गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। ओहो! अन्तर में वीतराग मुद्रा स्वभाव के आश्रय से वीतराग धारा बहे, उसे बाह्य में नग्न मुद्रा हो जाती है। परन्तु नग्नमुद्रा धारण करे और अन्दर में वीतरागभाव नहीं और विषय-कषाय में लोलुपी हो जाये तो उसे बाह्य नग्नपना भी नहीं रह सकेगा। समझ में आया? आहाहा! बड़ी कथा पुराण में है।

★ ★ ★

गाथा - ४७

आगे कहते हैं कि जिनमुद्रा से मोक्ष होता है, किन्तु यह मुद्रा जिन जीवों को नहीं रुचती है,... नग्नपना भी स्वप्न में आवे तो रुचे नहीं, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। नग्नदशा, दिगम्बरदशा देखकर भड़के। ऐसा मार्ग होगा? समझ में आया? '**जिणमुद्दं सिद्धिसुहं**' यहाँ तो सीधी बात की है, देखो!

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठं।
सिविणे वि ण रुच्चइ हुण जीवा अच्छंति भवगहणे॥४७॥

मूल तो नग्नपना, दिगम्बरपना बाह्य और अभ्यन्तर से वर्णन करते हैं।

अर्थ :- जिन भगवान के द्वारा कही गयी... भगवान जिनवर ने कही हुई। है न उसमें? '**जिणवरुद्दिट्ठं**' वीतराग ने तो कही है नग्न मुद्रा बाह्य। यह वीतराग के मार्ग में होती है। यह सब फिर तत्त्वदृष्टि से भ्रष्ट हुए, तब यह श्वेताम्बर पंथ निकला। उसमें स्थानकवासी अभी निकले, सब सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट होकर। समझ में आया? ऐसा है यह। मार्ग लोगों को ऐसा लगे। **जिन भगवान के द्वारा कही गयी जिनमुद्रा है, वही सिद्धिसुख है,...** बाह्य की जिनमुद्रा तो निमित्तरूपी कारण है और अन्तर की वीतराग मुद्रा, वह वास्तविक कारण है। यह तो आगे आ गया है न अपने, नहीं? भावपाहुड़ में। तीर्थंकर भी हो, परन्तु वस्त्रसहित हो तो मुनि नहीं हो सकते, मोक्ष नहीं जाते। तीर्थंकर जैसे, जिन्हें मोक्ष निश्चित् है उस भव में। जिनकी दीक्षा में इन्द्र आता है, जिनके जन्म में (इन्द्र आता है)। वह भी यदि वस्त्रधारी जब तक रहेंगे, तब तक साधु नहीं हो सकते। समझ में आया? यह गाथायें आ गयी हैं सब।

सिद्धिसुख है, मुक्तिसुख ही है, यह कारण में कार्य का उपचार जानना,... है न? बाह्य मुद्रा तो कारण निमित्त है, परन्तु उसमें कार्य उससे सुख मिलेगा, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! **ऐसी जिनमुद्रा जिनभगवान ने जैसी कही है, वैसी ही है। ऐसी जिनमुद्रा जिस जीव को साक्षात् तो दूर ही रहो,...** ऐसा नग्नपना, दिगम्बरपना, भाव दिगम्बर और बाह्य दिगम्बर, उसे देखकर तो भ्रष्ट भले हो, परन्तु **स्वप्न में भी कदाचित् नहीं रुचती है,...** स्वप्न आ जाये कि मुनि ऐसे नग्न दिगम्बर। ऊंहूं! बापू! मार्ग ऐसा

सूक्ष्म है। दिगम्बर धर्म, वह कोई सनातन चीज़ है और इसके पश्चात् पंथ निकले सब श्वेताम्बर और स्थानकवासी और यह तेरापंथ और तुलसी-तुलसी, वे सब जैनधर्म नहीं, वह जैनमार्ग ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निह्नव कहे, दिगम्बर को निह्नव कहते हैं लोग। गाथाओं में विशेष आयेगा। बड़ी कथा है। विशेष आयेगा। आहाहा! अपना बचाव करने को तो खड़ा तो किया हो न।

वीतराग तीर्थंकरदेव। है न? '**जिणवरुद्दिट्ठं**' जिनवर ने जो कहा, वह मार्ग अनादि का बाह्य दिगम्बर हो और अन्तर वीतरागभाव हो, उसे भगवान ने मुक्ति का मार्ग कहा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो कठिन काम, भाई! विवाद... वाद-विवाद और झगड़ा। आहाहा! अभी तो यह २५०० वर्ष भगवान का मनाते हैं। किसी के साथ वैर विरोध नहीं करना। प्रेम रखना। परन्तु वस्तुस्थिति है, ऐसी उसे जानना चाहिए। भगवान को मोक्ष पधारे २५०० वर्ष हुए। तो उसे सब इकट्ठे होकर प्रमोद से महोत्सव मनावे उस प्रकार का। उस प्रकार का एक शुभभाव है। शुभभाव, हों! शुभभाव। भाई ने कहा था, ऐसा उन्होंने कहा था जयपुर में। शाहूजी। शाहूजी ने पूछा कि यह क्या? कि भाई यह विरोध करे, वहाँ विरोध अभी नहीं करना। किया था न वह चन्द्रशेखर और रामविजय बहुत विरोध करते हैं। वह तो कहे पचास लाख जो देते हैं, वह बन्द करो। कौन करे, भाई! अब क्या काम है तुझे? सबकी शक्ति प्रमाण बेचारे करेंगे। तुमको न रुचे तो तुम्हारे अनुसार करो। कौन इनकार करता है? परन्तु करते हैं, उसका बहुत विराधे, बहुत विरोध। चन्द्रशेखर है न वह? जीवाप्रताप का पुत्र हैं। उसका भतीजा, भतीजा है, जीवाप्रताप का। बहुत विरोध, बहुत विरोध। मानो जैनधर्म तो राष्ट्रीय धर्म में मनाया जाता है, इसलिए जैनधर्म का निकन्दन हो जायेगा। वे तो लोग बेचारे अपनी दृष्टि प्रमाण (माने)। शुभभाव हो, भगवान का स्मरण करे, याद करे, जगत में प्रसिद्ध करे कि भगवान हो गये हैं। २५०० वर्ष पहले परमात्मा वीतरागदेव जिनकी मुक्ति हुई है। आहाहा! उनके स्मरण में... आता है न पाँचवें में भाई, नहीं? पाँचवीं गाथा में। जिनका नामस्मरण भी... व्यवहार है न। भाव याद आते हैं। नाम के लिये ऐसा उनका भाव था। आहाहा!

चारित्र वीतरागता जो भगवान की थी, वह नामस्मरण में उसका स्मरण आता है वह। आहाहा! ऐसी वीतरागता। शान्तरस में, शान्तरस में झूलते थे। आहाहा! मुनिपना तो बापू! नमूना मिलना मुश्किल है। समझ में आया? आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता, उसे मुनिपना कहाँ से आवे? कहो, वीरचन्दभाई! ऐसी बात है। परन्तु वाड़ावालों को ऐसा लगे। परन्तु इतनी खबर नहीं कि उसमें हम थे और छोड़ा है तो कुछ कारण होगा या नहीं? ... बापू! दोनों पक्ष होते हैं न! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो अनुभव करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर दृष्टि में विचार करे, मनन करे, मिलान करे तो खबर पड़े। यह वीतराग मार्ग तो, तीर्थंकरों ने तो जैसा जन्मजात जन्मा है, वैसा रूप उनका देखा हुआ है। माता से जैसा जन्मा, वैसा मुनि का रूप होता है। स्त्री को तो मुनिपना आ सकता ही नहीं। समझ में आया? उसे तो मुनिपना होता ही नहीं। परन्तु पुरुष को मुनिपना होता है, वह नग्नदशा हो जाये और अन्दर में वीतरागभाव आवे, उसे जिनवर और जिनमुद्रा कहा जाता है। आहाहा!

वीतरागभाव मोक्ष का कारण है न? तो वीतरागभाव तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता हो, तब वीतरागभाव अधिक होता है। आहाहा! और दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता हो, वहाँ आगे शरीर में वस्त्र-पात्र हो सकते ही नहीं, रह सकते ही नहीं। आहाहा! तब और वह ऐसा कहते हैं रतनचन्दजी... उसे बेचारे को बैठा हो, वैसा कहे न। क्या करे? कि जब परद्रव्य का कुछ नहीं कर सकता तो नग्नपना आत्मा नहीं कर सके, तो नग्नपना न हो तो भी मुनिपना आवे। ऐसा डाला। अरेरे!

मुमुक्षु : यह नग्नपना प्रगट....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अपने आप ऐसा हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु : वह तो उसके कारण से।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से होता है। आत्मा वस्त्र उतार सकता है? वस्त्र उतार सकता है? जड़ की क्रिया आत्मा कर सकता है? भारी कठिन काम, भाई! आहाहा!

जिनमुद्रा भगवान ने कही है। **जैसी कही है, वैसी ही है। ऐसी जिनमुद्रा जिस जीव को साक्षात् तो दूर ही रहो, स्वप्न में भी कदाचित् भी नहीं रुचती है...** आता है न? '**सिविणे वि**' तीसरा पद है। स्वप्न में भी ऐसी नग्नमुद्रा दिखाई दे। ऊंहूं.. हूँ.. हूँ... यह नग्न। **उसका स्वप्न आता है तो भी अवज्ञा होती है तो वह जीव संसाररूप गहन वन में रहता है,...** है न? '**ण रुच्चइ हुण जीवा अच्छंति भवगहणे**' महा भवसमुद्र अनन्त संसार। आहाहा! भवसिन्धु में गहरा उतरेगा। आहाहा! **अवज्ञा होती है...** अरे यह! मार्ग ऐसा होगा? नंगा? यह तो भगवान ने कहा है कुन्दकुन्दाचार्य ने नग्न। 'नग्गे मोक्खो भणियो, शेष उमग्गा।' नग्न को मोक्ष है। इसके अतिरिक्त जितने मार्ग, वे सब उन्मार्ग हैं। यह गाथा आ गयी है। आया है। ... 'जाति वेश का भेद नहीं...' भाई तब लिखा था वह परन्तु वापस कहा है न दूसरा। 'नग्गे मोक्खो भणियो' पाठ है उसमें। नग्न को मोक्ष होता है, इसके अतिरिक्त जितने मार्ग, वे सब उन्मार्ग हैं। आहाहा! जिसे यह नग्नमुद्रा और वीतरागभाव रुचता नहीं, उसे राग और बाह्य रुचते हैं, वह संसाररूपी गहन वन में भटकेगा। आहाहा! **मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।**

भावार्थ :- जिनदेवभाषित... वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने **भाषित जिनमुद्रा मोक्ष का कारण है...** दिगम्बरदशा—बाह्य-अन्तर दिगम्बरदशा। वस्त्र की वृत्ति नहीं, विकल्प की वृत्ति नहीं और वस्त्र रखने की वृत्ति नहीं। आहाहा! भारी कठिन, भाई! वे आनन्दघनजी कहे, 'जेनो पक्ष लईने बोलुं ते मनमां सुख माणे। आहाहा! यह ठीक। 'जेनो पक्ष मूकीने बोलुं ते मनमां सुख ताणे।' कहो, समझ में आया? गिरधरभाई! अब तुम्हारे कहाँ है? अब तुम तो आये हो इसमें। वस्तुस्थिति ऐसी है। अनादि-अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ मार्ग बाह्य और अभ्यन्तर नग्नदशा, दिगम्बरदशा, उसे मार्ग कहा है। इसके अतिरिक्त जितने शास्त्र में लिखा हो कि वस्त्रसहित भी मुनिपना (होता है), वह शास्त्र नहीं, वह कुशास्त्र है। छोटुभाई!

जिनदेवभाषित जिनमुद्रा मोक्ष का कारण है, वह मोक्षरूप ही है,... वीतरागभाव वह। अन्दर का अकषायस्वभाव वीतरागभाव, वह **मोक्ष (रूप) ही है...** मोक्ष का कारण कहो तो उसे मोक्ष भी कहो। मोक्षरूपी है, आता है। मोक्षतत्त्व आता है न प्रवचनसार में? मोक्षमार्ग, मुनि है, वे मोक्ष तत्त्व ही हैं। अन्तिम पाँच गाथाओं में। वह वाडा

बाँधकर बैठे, उन्हें भारी कठिन पड़े लोगों को। लो, एक व्यक्ति तो ऐसा कहता है कि वह दिगम्बर के शास्त्र में ऐसा (कहा है), हमारे शास्त्र में तो महाव्रत को संवर कहा है। और ऐसा कहता है वह। दिगम्बर के शास्त्र में भले महाव्रत को आस्रव कहा हो, परन्तु हमारे शास्त्र में महाव्रत को संवर कहा। बात सच्ची, उनके शास्त्र में निर्जरा कहा है। ठाणांग में पाँचवें ठाणे में। कल्पित बनाये हुए शास्त्र सब ३२-४५ (सूत्र)। भगवान के कहे हुए नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा, ऐसा कौनसा उपदेश है कि सर्व को ठीक पड़े? आहाहा! बात यह है।

क्योंकि जिनमुद्रा के धारक वर्तमान में भी स्वाधीन सुख को भोगते हैं,... अन्दर आनन्द को भोगते हैं। मुनि हैं, वे अन्तर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र से अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करे, उसे मुनि कहते हैं। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द की बात भी नहीं, गन्ध भी नहीं हो वहाँ। आहाहा! **स्वाधीन सुख को भोगते हैं,...** देखो! स्व-आधीन। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के सुख का स्वाद आंशिक आवे और पंचम गुणस्थान में श्रावक होने पर आनन्द का अंश विशेष आवे और मुनि होने पर तो आनन्द स्वसंवेदन प्रचुर आवे। अब यह तो बात—गन्ध नहीं होती है। यह महाव्रत पालो और यह करो और यह छोड़ो और यह करो, दीक्षा ले लो। आहाहा! **जिस जीव को वह नहीं रुचती है, वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता,...** यह ४७ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ४८

आगे कहते हैं कि जो परमात्मा का ध्यान करता है... परमात्मा अर्थात् अपना निज स्वरूप शुद्ध ज्ञानघन, आनन्दघन, परमपारिणामिकस्वभावरूप परमात्मा स्वयं। आहाहा! अपना जो ध्यान करता है, **वह योगी लोभरहित होकर... 'मलदलोहेण'** ऐसा है न? **नवीन कर्म का आस्रव नहीं करता है—**

परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेई मलदलोहेण।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं॥४८॥

आहाहा! देखो न, कुन्दकुन्दाचार्य को भी गाथा में जिनवर ने कहा... जिनवर ने कहा... ऐसा कहना पड़ता है। वरना तो वे तो मुनि हैं, वे कहते हैं, वह सत्य है। भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! जिनवरदेव वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने तो ऐसा कहा है। आहाहा!

अर्थ :- जो योगी ध्यानी परमात्मा का ध्यान करता हुआ रहता है... मुनि को तो अन्दर ध्यान और स्वाध्याय दो ही चीज़ होती है, दूसरी चीज होती नहीं। आहाहा! जो कोई आत्मा। योगी अर्थात् स्वरूप में जुड़ान करनेवाला। शुद्ध आनन्दघन प्रभु आत्मा में जिसकी परिणति जुड़ान हो गयी है। आहाहा! जिसकी वर्तमान शुद्ध परिणति—पर्याय ध्रुव में जिसका जुड़ान हो गया है, उसे यहाँ योगी कहा जाता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी जघन्य योगी है। मुनि हैं, वे उत्कृष्ट योगी हैं। वे अन्यमत के बाबा कहे, वह नहीं, हों! वे बाबा योगी कहलाये, वे तो सब बिना भान के भ्रष्ट हैं। यह तो परमात्मा जिनवर ने कहा हुआ आत्मा, उसमें जिसकी दृष्टि जुड़ गयी है और जिसमें स्थिरता द्वारा जम गये हैं अन्दर। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की लहर उठती है, अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे लहर का स्वाद आता है अन्दर। आहाहा!

वह मल देनेवाला लोभकषाय से छूटता है... ऐसा लिया, देखा! **'मलदलोहेण'** ऐसा है न? **'मलदलोहेण'** ऐसा। मल का देनेवाला लोभ। पर के प्रति कोई भी इच्छा मैल को देनेवाला लोभ, ऐसा। ऐसी भाषा ली है। 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःख मूल।' इस लोभ का जो मल का देनेवाला—मैल का देनेवाला लोभ है। आहाहा! उसे छोड़कर **उसके लोभ मल नहीं लगता है... वह मल देनेवाला लोभ-कषाय से छूटता है, उसके लोभ मल नहीं लगता है, इसी से नवीन कर्म का आस्त्रव उसके नहीं होता है...** ठेठ लोभ का अंश लिया। अन्तिम जाता है। क्रम लिया है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप और पश्चात् कषाय का अभाव।

इसी से नवीन कर्म का आस्त्रव उसके नहीं होता है, यह जिनवरेन्द्र... जिनवर इन्द्र। जिनवर तो गणधर को भी कहा जाता है, उनके भी इन्द्र। जिन तो चौथे गुणस्थानवाले समकिती को भी जिन कहा जाता है। ऐसे यह जिनवर, उन गणधर मुनि को जिनवर

कहा जाता है और केवली को जिनवर इन्द्र, जिनवरेन्द्र। आहाहा! **यह जिनवरेन्द्र...** स्पष्ट करते हैं कि जिनवरेन्द्र अर्थात् कौन? कि **तीर्थंकर...** वे कैसे? कि सर्वज्ञदेव ऐसे जिनवरेन्द्र तीर्थंकरदेव **सर्वज्ञदेव ने कहा है।** आहाहा!

भावार्थ :- मुनि भी हो और परजन्मसम्बन्धी प्राप्ति का लोभी होकर... ऐसा लिया है। स्वर्ग मिले, कुछ यह मिले या सेठाई मिले। आहाहा! **निदान करे उसके परमात्मा का ध्यान नहीं होता है...** उसे आनन्दस्वरूप भगवान का ध्यान नहीं हो सकता। यह कुछ आचरण करते हैं, क्रिया, उसका हमको कुछ फल मिलो। स्वर्ग मिलो या सेठाई मिलो। वासुदेव करते हैं न नियाणु? वे साधु होने के पश्चात् उन्हें नियाणु (निदान) होता है। सम्यग्दृष्टि हो, साधु हो, फिर निदान करे। मिथ्यादृष्टि को वासुदेवपना आता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व आ जाये न फिर। परन्तु पहला सम्यग्दर्शन हो, साधुपना हो वह फिर निदान करे। ऐसा। अकेला मिथ्यादृष्टि हो अनादि का और वह निदान करे और वासुदेव हो, ऐसा नहीं है। ऐसा। समझ में आया? यह पुण्य वासुदेव का पुण्य, तीर्थंकरदेव का पुण्य, वह सब सम्यग्दर्शन और चारित्र की दशा में बँधता है। भले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से नहीं, परन्तु उस भूमिका में बँधता है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा है कि यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को ही तीर्थंकरगोत्र और आहारकशरीर बँधता है। यह ज्ञान, दर्शन और आनन्द के कारण से बँधता है? नहीं। उनकी भूमिका में होता है। बँधता है राग से। शुभ उपयोग का अपराध। आहाहा! चौथे में, पाँचवें में, छठवें में, सातवें में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। शुभ उपयोग का अपराध है, कहते हैं। लो, अब उस अपराध का वेदन है या नहीं? अप-राध। राध—आराधन नहीं। इतना राग का आराधन है, वह अपराध है, राग की सेवा है, इतना अपराध है। समकिती को भी। अरे! मुनि को—भावलिंगी सन्त दिगम्बर मुनि वनवासी—उन्हें भी तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह शुभभाव के अपराध से बँधता है। आहाहा! वह अपराध अशुद्ध है या शुद्ध? शुभ अपराध है। उसमें दिया न, कल पढ़ा या नहीं? अशुभ से बचने के लिये शुभभाव सुख में आने के

लिये। बचाव कितना करते हैं! आहाहा! अरे! भगवान, भाई! वस्तु तो जैसी है, वैसी रहेगी। किसी की तोड़ी-मरोड़ी होगी नहीं। आहाहा! शुभराग है, वह दुःख नहीं, ऐसा (उन लोगों को) सिद्ध करना है न? दुःख को वेदन करे, वह तो मिथ्यादृष्टि वेदे, तीव्र कषाय है, ऐसा लिखा है। वह पहले से है। दुःख को वेदे, वह तीव्र कषायवाला होता है। यहाँ कहते हैं कि दुःख को वेदे, वह मुनि गणधर भी वेदे और संज्वलन की कषायवाला हो, (वह भी वेदे)। आहाहा! बहुत भारी काम, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फुरसत। दुःख को वेदने की फुरसत कहाँ है, ऐसा लिखा है। पण्डितजी ने पढ़ा है या नहीं? फुरसत, दुःख को वेदने की फुरसत कहाँ है ज्ञानी को? क्या इसका अर्थ? एक समय में जो द्रव्य का आश्रय जितना लिया, उतना आनन्द है और जितना पर का आश्रय होकर राग शुभ होता है, उतना दुःख है। एक पर्याय में दो भाग हैं। दोनों का वेदन है। आहाहा! कहो, पाटनीजी! स्पष्ट बात है? परन्तु ऐसे, अरेरे! क्या हो? ऐसा वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है वहाँ...

वास्तव में तो ऐसी बात है कि जिसने आत्मा की शान्ति देखी हो, वेदन की हो, उसे राग का दुःख लगता है, परन्तु शान्ति अन्दर अकषायस्वरूप सम्यक्त्व नहीं, उसे उस कषाय का भाग दुःखरूप नहीं लगता। आहाहा! किसके साथ मिलान करे? यह राग दुःखरूप है, ऐसा किसके साथ मिलान करे? जब शान्ति भगवान आत्मा राग से रहित होकर जितना शान्तभाव प्रगट हुआ है, उसके साथ देखने से राग है, वह अशान्ति है और दुःख है, ऐसा तुलना में आता है। परन्तु जिसने शान्ति और सम्यग्दर्शन ही देखा—हुआ नहीं, वह राग को दुःखरूप किसके साथ मिलान करेगा? बाबूभाई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! अरेरे! भगवान का विरह पड़ा, ज्ञान घट गया, पक्षपात बढ़ गया। विपरीत हो गये। आहाहा!

यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव को भी कहना पड़ता (है कि) जिनवर ऐसा कहते हैं न भाई! '**जिणवरुद्दिट्ठं**' वह जिनवर का यह उपदेश है कि राग में दुःख है और जितनी दशा अरागी होती है, वह सुख है। आहाहा! कल नहीं आया था भाई अपने? वह

अशुद्ध-अशुद्ध। शुद्ध-अशुद्धभाव पर्याय के दो भाग। नौ तत्त्व में कितने ही शुद्ध और कितने ही अशुद्ध। तो अशुद्ध है या नहीं ? वह तो आता है। सब है चारों ओर वस्तु तो हो वह आवे न, दूसरी आवे ? अशुद्ध है। आहाहा ! मुनि को भी अशुद्ध पर्याय है। यह शुभराग है, वह अशुद्ध पर्याय है। आहाहा ! और संवर, निर्जरा की जितनी शुद्धता प्रगटी है, उतनी वीतरागता है। इतना सुख है। आहाहा ! उसमें बापू ! चला जाना है, कोई साथ में संग (नहीं) और कोई नहीं दे सहायता। मैंने फलाने को मनाया था। मेरी बात बहुतों ने मानी थी। इससे कहीं तुझे सहायता होगी ? आहाहा !

अभी नहीं आया था कोई भाई ? वनस्थली में बड़ा एक्सीडेंट हुआ। बीस लोग मर गये। कहो, आहाहा ! कहाँ बेचारे जानेवाले होंगे ? यह बैठे होंगे। एकदम उतर गयी नीचे। एक व्यक्ति आया था, लड़का आया था परसों। वह कहे, वे मुर्दे मैंने निकाले थे। आया था न भाई था। अन्दर उल्टे पड़कर दब गये, कितने ही मर गये बेचारे। निकाला अन्दर से। देखो ! यह एक दशा ! आहाहा ! जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी दृष्टि और रुचि हुई नहीं, वह किसकी शरण लेगा ? ऐसे प्रसंग में शरण किसकी लेगा ? आहाहा ! भगवान... भगवान करे, तो वह शुभराग है। आहाहा !

इसलोक और परलोक सम्बन्धी... यह आया न ? **प्राप्ति का लोभी होकर निदान करे... मुनि भी हो और परजन्मसम्बन्धी प्राप्ति का लोभी होकर...** परजन्मसम्बन्धी, हों ! परजन्मसम्बन्धी। **निदान करे, उसके परमात्मा का ध्यान नहीं होता है...** आहाहा ! उसका घोंटन तो राग में रहेगा। आहाहा ! रागरहित भगवान आत्मा का रटन-घोंटन उसे नहीं रहेगा। आहाहा ! **इसलिए जो परमात्मा का ध्यान करे, उसके इसलोक-परलोक सम्बन्धी परद्रव्य का कुछ भी लोभ नहीं होता है...** इस लोक का कुछ और परलोक का कुछ लोभ न हो, तब अन्तर में ध्यान कर सकता है। आहाहा ! बाहर में लोभ में ललचा जाए, उसे अन्तर में ध्यान हो नहीं सकता। आहाहा ! ध्यान ही मोक्ष का कारण है, ऐसा भाई आता है, हों, खानियाचर्चा में। फूलचन्दजी ने डाला है एक जगह। फूलचन्दजी ने ऐसा डाला है। ध्यान ही मोक्ष का कारण है, ऐसा डाला है। अन्तर का ध्यान, वही मोक्ष का कारण है। यह खानियाचर्चा में आता है।

इसलिए उनके नवीन कर्म का आस्रव नहीं होता... परद्रव्य की, इस भव में और

परभव के किसी भी परद्रव्य की जिसे इच्छा नहीं। स्वद्रव्य की ही जिसे अन्तर दृष्टि और भावना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इसलिए उनके नवीन कर्म का आस्रव नहीं होता—ऐसा जिनदेव ने कहा है। यह लोभ-कषाय ऐसा है कि दसवें गुणस्थान तक पहुँच जाने पर भी अव्यक्त होकर आत्मा के मल लगाता है।** भले लोभ है, वह लोभ नहीं बाँधता, परन्तु लोभ है, वह छह कर्म को बाँधता है। दसवें में लोभ है, वह लोभ को नहीं बाँधता। वह अन्तिम अंश है। छह को बाँधे। तो इतना अव्यक्त भी है न! **अव्यक्त होकर आत्मा के मल लगाता है।** लो! यह भी मल है, कहते हैं। दसवें में अबुद्धिपूर्वक है न! **इसलिए उसको काटना ही युक्त है अथवा जबतक मोक्ष की चाहरूप लोभ रहता है...** अरे! मोक्ष की चाहरूप लोभ रहता है। **तबतक मोक्ष नहीं होता, इसलिए लोभ का अत्यन्त निषेध है।** लो! अन्तर की भावना में लोलीभूत होने के लिये पर के लोभ का त्याग उसे होना चाहिए। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण १२, बुधवार, दिनांक २०-०३-१९७४
गाथा - ४९ से ५३, प्रवचन-१३२

गाथा - ४९

होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ।
जायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई॥४९॥

अर्थ :- पूर्वोक्त प्रकार जिसकी मति... ...किसे ध्यान होता है? जिसकी मति पहली दृढ़ समकित से संस्कारित हो गयी हो, भावित हो। शुद्ध चैतन्यघन आनन्द ऐसी अन्दर संस्कार दृष्टि पक्की हो गयी हो। भाषा ऐसी ली है न? **जिसकी मति दृढ़ सम्यक्त्व से भावित है...** ऐसी प्रतीति मति से भायी हुई हो। **ऐसे योगी ध्यानी मुनि दृढ़चारित्रवान...** होता है। दोनों में दृढ़ लिया है। '**दिढसम्मत्तेण**' और '**दिढचरित्तो**' आहाहा! दोनों दृढ़ हैं। वस्तु जो शुद्ध चैतन्यघन वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी जिसे मति से दृढ़ समकित हुआ है। ... होता है। ... चारित्र होता है। स्वरूप की रमणता की दृढ़ता होती है।

दृढ़चारित्रवान होकर आत्मा का ध्यान करता हुआ परमपद... मोक्ष अधिकार है न मोक्ष? प्रथम दृढ़ समकित से दृष्टि निर्मल न हुई हो, उसे चारित्र होता नहीं और चारित्र न हो, वहाँ ध्यान नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। विशेष दृढ़ समकित और चारित्रसहित का ध्यान, ऐसा कहना है न? आहाहा! वह **आत्मा का ध्यान करता हुआ...** अपना स्वभाव शुद्ध है, उसकी दृढ़ मति से समकित हुआ है और स्वरूप में जिसकी चारित्रदशा है। दृढ़ चारित्र है, ऐसा। वह **ध्यान करता हुआ परमपद को प्राप्त करता है।** उसके अन्तर के ध्यान में पूर्ण पद की प्राप्ति उसे होती है। कहो, समझ में आया? **परमपद...** परमात्मपद। पर्याय में पूर्ण आनन्ददशा, पूर्ण ज्ञान-श्रद्धा आदि दशा उसे प्राप्त होती है।

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन... शुद्ध ध्रुव चैतन्य की अन्तर प्रतीति, सम्यग्ज्ञान—उस

शुद्ध चैतन्यघन का अन्तर्मुख का ज्ञान और **चारित्ररूप...** और स्वरूप में दृढ़रूप से स्थिर होता है। वह **परीषह आने पर भी चलायमान न हो,...** ऐसा दृढ़ का अर्थ किया। ऐसा स्थिर होता है अन्दर कि प्रतिकूलता के ढ़ेर बाहर में आने पर भी स्वरूप से डिगे नहीं, चलित न हो। **इस प्रकार से आत्मा का ध्यान करता है...** लो! आहाहा! **वह परमपद को प्राप्त करता है—ऐसा तात्पर्य है।** लो गाथा तो यह ऊँची आयी। पहली आयी गाथा। ....४९ गाथा में।

★ ★ ★

गाथा - ५०

आगे दर्शन, ज्ञान, चारित्र से निर्वाण होता है... चैतन्य शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, **ऐसा कहते आये वह दर्शन, ज्ञान तो जीव का स्वरूप है,...** लो! **उसको जाना, परन्तु चारित्र क्या है?** दर्शन और ज्ञान तो उसका स्वरूप है। उसका स्वरूप दृष्टा और ज्ञाता स्वरूप है, ऐसी जिसने प्रतीति और ज्ञान किया है, वह तो, कहते हैं, जानने में आता है। परन्तु चारित्र क्या चीज़ है? चारित्र चीज़ क्या? चारित्र कहना किसे? **ऐसी आशंका...** शंका नहीं परन्तु आशंका। जानने की अभिलाषा। तुम्हारा कहना खोटा है, ऐसा नहीं। परन्तु वह चारित्र क्या है अन्दर? आहाहा! उसका **उत्तर कहते हैं**—ऐसी जिसे जानने की आशंका उत्पन्न हुई हो, उसे यह उत्तर दिया जाता है।

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो॥५०॥

यह चारित्र की व्याख्या। कोई नग्नपना, वह कहीं चारित्र नहीं, बीच में पंच महाव्रत के विकल्प आवे, वह भी कहीं चारित्र नहीं। चारित्र तो **स्वधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है...** देखो! **वह चरण अर्थात् चारित्र है।** जैसे दर्शन और ज्ञान उसका धर्म है, वैसे चारित्र भी उसका धर्म है। त्रिकाल स्वभाव है और उसमें त्रिकाल स्वभाव में रमणता, वह चारित्र, वह जीव का स्वभाव है। लो! वह प्रश्नचर्चा आती थी न कि सिद्ध में चारित्र नहीं होता। बहुत चर्चा आती थी। यह तो स्वभाव है। त्रिकाल स्वभाव है

चारित्र और उसका जो वर्तमान परिणाम, वह भी चारित्र समभावी परिणाम दशा है। वह जीव का ही स्वभाव है, जीव का स्वरूप है। समझ में आया?

धर्म है, वह आत्मसमभाव है,... यह उसमें यह गाथा रखी है न। चारितं खलु धम्मो, धम्मो... प्रवचनसार। टीकाकार ने डाला है यह श्लोक। यह श्लोक टीकाकार ने डाला है अन्दर, प्रवचनसार का। **धर्म है, वह आत्मसमभाव है, सब जीवों में समानभाव है।** आता है न उसमें, 'सर्व जीव है ज्ञानसम।' नहीं आता योगसार में? 'सर्व जीव है ज्ञानसम', ज्ञानसम। 'धारे समता भाव।' समता धारे ... प्रत्येक आत्मा केवलज्ञान का कन्द है। आहाहा! पर्याय में अन्तर हो, परन्तु वस्तु तो केवलज्ञान की मूर्ति सब भगवान आत्मा है। ऐसा जिसे सम्यग्दर्शनसहित समभाव वर्तता है, उसे यह चारित्र कहा जाता है। समझ में आया? **सब जीवों में समानभाव है। जो अपना धर्म है, वही सब जीवों में है...** ठीक! जैसा अपना ज्ञान, दर्शन और आनन्द, चारित्र स्वभाव है, वैसा सब भगवान आत्मा का ज्ञान, दर्शन और चारित्र और आनन्द, यह सभी आत्माओं का स्वभाव ही है। अभव्य का भी यह स्वभाव है। जानना, देखना और स्थिर होना, यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र जैसे गुण हैं, तो गुण का कार्य श्रद्धा, ज्ञान और समभाव, ऐसा उसका स्वभाव है। इस स्वभाव में रहकर जो अन्तर में ध्यान करता है, उसे मुक्ति—परमपद की प्राप्ति होती है।

अपना धर्म है, वही सब जीवों में है... अपना जो स्वभाव ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ऐसा ही त्रिकाल सब प्राणियों में स्वभाव है। सब प्रभु वीतरागमूर्ति से भरपूर हैं। आहाहा! **सब जीवों को अपने समान मानता है...** लो! द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से बात है न? द्रव्यस्वभाव वीतरागस्वरूप आत्मा, ऐसा ही प्रत्येक जीव का स्वभाव धर्मी जानता है और मानता है। आहाहा! इसलिए किसी के ऊपर विषमता होने का प्रसंग उसे नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। गजब बातें! अन्तर के अवलम्बन बिना यह बात उसे बैठती नहीं। शान्ति का रस स्वरूप उसका है और जैसा उसका स्वरूप है, वैसा सभी आत्माओं का शान्तरस स्वरूप है। ऐसा जिसे अन्तर में राग-द्वेष रहित समभाव प्रगट हो, उसे चारित्र कहते हैं।

और जो आत्मस्वभाव से ही राग-द्वेष रहित है... पाठ तो यह है न। '**रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो**' यह पर्याय की बात की है, परन्तु उसका स्वभाव ही

वीतराग है, उसका स्वरूप ही राग-द्वेषरहित है। ऐसे स्वरूप को जाना, स्थिर हुआ तो उसके परिणाम में भी राग-द्वेषरहित समभाव प्रगट होता है। आहाहा! मार्ग ऐसा। वे कहते हैं, व्यवहारचारित्र पालते हैं तो निश्चयचारित्र होगा। परन्तु निश्चयचारित्र तो, यहाँ कहते हैं कि तेरा स्वभाव है और स्वभाव को जहाँ दृष्टि / श्रद्धा में लिया, तब स्थिरता प्रगट हुई, वही चारित्र है। वही चारित्र सच्चा कहो, निश्चय कहो, सत्य कहो। वह कहीं व्यवहार के क्रियाकाण्ड से निश्चय प्रगट हो, ऐसा है नहीं। आहाहा!

आत्मस्वभाव से ही राग-द्वेष रहित है,... आत्मा का स्वभाव ही राग-द्वेष रहित है और इसलिए उसका अवलम्बन लेनेवाले को, उसमें स्थिर होनेवाले को समभाव प्रगट है, उसमें से आता है, ऐसा कहते हैं। **किसी से इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है...** चारित्र लेना है न! किसी भी व्यक्ति ज्ञेय के प्रति—जानने-देखने के योग्यवाला भगवान सभी चीज़ें ज्ञेय है, उसमें कहीं इष्ट-अनिष्ट वह नहीं करता। आहाहा! **इष्ट-अनिष्टबुद्धि नहीं है—ऐसा चारित्र है, वह जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है... वह जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है...** ऐसा। वह, जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है, **वैसे ही अनन्य परिणाम है,...** ऐसे ही उसके चारित्र परिणाम हैं। जैसे दर्शन-ज्ञान परिणाम है तो चारित्र कुछ दूसरी चीज़ है, ऐसा नहीं। दर्शन ज्ञाता-दृष्टा जैसा स्वभाव है, वैसे दर्शन-ज्ञान परिणाम हुए, वैसा चारित्र स्वभाव है तो चारित्र परिणाम हुए। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण में, गुण का परिणाम जो है, वह स्वतन्त्र है। समभाव।

मुमुक्षु : दर्शन और ज्ञान से कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहाँ कहा? दर्शन-ज्ञान हो, ऐसा चारित्र स्वभाव हो, ऐसा कहना है। दर्शन-ज्ञान है, इसलिए उनसे हुआ, ऐसा कहीं नहीं कहना। दर्शन-ज्ञान हो, उसे चारित्र हो, इतना। परन्तु दर्शन-ज्ञान है, इसलिए उनसे चारित्र होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? शास्त्र में तो ऐसा भी आता है बन्ध अधिकार में कि चारित्र का मूल कारण सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। वे नहीं, उसे चारित्र होता नहीं। यह बन्ध अधिकार में ऐसा आता है। वह तो सम्यग्दर्शन कारण-व्यवहार कारण, निश्चय तो चारित्र का

चारित्र कारण है। अथवा चारित्र हो उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते ही हैं, ऐसा। जिसे चारित्र हो, उसे दर्शन-ज्ञान होते ही हैं और दर्शन-ज्ञान नहीं, उसे चारित्र हो, ऐसा नहीं होता। इसलिए दर्शन-ज्ञान से चारित्र होता है, ऐसा कहीं कहना नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यह मोक्ष का अधिकार है। ओहोहो! पंचम काल में। पंचम काल के जीव को ऐसा एकदम बड़ा! चारित्र की जाति कैसी होती है? वह संवर-निर्जरा का स्वरूप कैसा होता है? ऐसा जाने बिना की श्रद्धा सच्ची हो कहाँ से? नौ तत्त्व में संवर, निर्जरा और मोक्ष। संवर शुद्धि; निर्जरा शुद्धि की वृद्धि और मोक्ष शुद्धि की पूर्णता। इसका उसे ज्ञान तो चाहिए न? जिसे-तिसे मान ले चारित्र और क्रियाकाण्ड को तो श्रद्धा में ही विपरीतता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

चारित्र है, वह जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है, वैसे ही अनन्य परिणाम है,... अनन्य परिणाम अपना वीतरागी भाव है। आहाहा! **जीव का ही भाव है।** चारित्र, वह जीव का भाव है। जीव का स्वभाव है, ऐसी जीव की पर्याय प्रगट हुई, वह जीव का ही भाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो**' पर्याय की बात है यह, हों! '**सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो**' अभिन्न परिणाम हैं उसके। आहाहा! कुछ अन्य वस्तु नहीं। अनन्य परिणाम हैं। आहाहा!

भावार्थ :- चारित्र है, वह ज्ञान में राग-द्वेष रहित निराकुलतारूप स्थिरभाव है... देखो! चारित्र उसे कहते हैं कि ज्ञान में अर्थात् आत्मा के ज्ञानभाव में राग-द्वेषरहित, विकल्परहित, आकुलतारहित निराकुलतारूप स्थिरताभाव है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी आकुलतावाले हैं, वह चारित्र नहीं। **स्थिरताभाव है, वह जीव का ही अभेदरूप परिणाम है,...** अनन्य परिणाम है न? '**अणण्णपरिणामो**' स्थिरता-स्थिरता अन्तर में जम जाये अन्दर। आहाहा! उसे चारित्र कहते हैं। जैन जिनबिम्ब प्रभु। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म।' ऐसा जिनस्वरूप जो वीतराग, ऐसे जिनबिम्ब चैतन्य प्रभु में जम जाना, लोलीभूत होना। आहाहा! उसे चारित्र कहा जाता है।

वह जीव का ही अभेदरूप परिणाम है,... वे जीव के चारित्र परिणाम हैं, परन्तु अनन्य परिणाम हैं। अन्य नहीं, उसमें अभेदरूप परिणाम है। आहाहा! समझ में आया?

लो! ॐ ध्वनि में यह आया था, ऐसा कहते हैं। यह तुम्हारे ॐ है न आज? भगवान की ॐ ध्वनि में ऐसा चारित्र का वर्णन आया था। आहाहा! **कुछ अन्य वस्तु नहीं है।** चारित्र कोई भिन्न / अलग चीज़ है, ऐसा नहीं। आहाहा! स्वरूप जो ज्ञान और दर्शन की मूर्ति प्रभु, उसका ज्ञान और दर्शन प्रगट करके, उसी स्वरूप में लोलीभूत—लीन हो जाना। आहाहा! इसका नाम चारित्र कहते हैं। कोई नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, वे कहीं चारित्र नहीं। आहाहा!

अलिंगग्रहण में तो एक बोल ऐसा आया है। यति की बाह्य क्रिया का भाव जिसमें नहीं। बीस बोल है न अलिंगग्रहण के? यति की बाह्य क्रिया अर्थात् शुभ विकल्प और नग्नपना, वह जिसके स्वभाव में नहीं। समझ में आया? यति की बाह्य क्रियाएँ, विकल्प आदि अट्ठाईस मूलगुण और बाह्य अजीव की नग्नदशा, वह अजीव की नग्नदशा और ऐसे विकल्प, वे आस्रवभाव कि जिसके जीव में नहीं, उसे अलिंगग्रहण कहा जाता है। उसे यति का लिंग विकल्प और नग्नपना जिसमें नहीं, उसे अलिंगग्रहण आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि स्वरूप की दृष्टि और ज्ञानसहित लीनता में यह क्रियायें उसमें नहीं। पंचम महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण उसे है नहीं। ऐसे अट्ठाईस मूलगुण उन्हें—साधु को होते हैं, परन्तु वह राग है, आकुलता है। आहाहा! यह निराकुलता है। समझ में आया? एक ओर अट्ठाईस मूलगुण कहना और कहना कि आकुलता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूलगुण तो व्यवहार से कहे हैं। मूलगुण तो अन्दर ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द, वह है। आहाहा!

यहाँ तो कहना है कि **चारित्र है, वह ज्ञान में...** अर्थात् आत्मा में **राग-द्वेषरहित निराकुलतारूप...** आनन्दरूप, शान्तिरूप। आहाहा! **स्थिरभाव है...** और पंच महाव्रत आदि के परिणाम आकुलतारूप अस्थिरभाव है। आहाहा! **वह जीव का ही अभेदरूप परिणाम है, कुछ अन्य वस्तु नहीं है।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५१

अब **जीव के परिणाम की स्वच्छता को दृष्टान्तपूर्वक दिखाते हैं:**—समयसार में आता है न यह?

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अणण्णविहो॥५१॥

अर्थ :- जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है,... यह विशुद्ध निर्मलता के अर्थ में है। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की...' 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीवस्वभाव। श्री जिन वीर ने रे धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव। ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, ऐसा जीवस्वभाव। श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव।' लो, वहाँ तो ऐसा लिया। कषाय का अभाव। प्रबल कषाय का अभाव, ऐसे मन्द करके कर डालते हैं, परन्तु जहाँ शुभराग भी कषाय है, शुभराग भी आकुलता है, वह चारित्र नहीं। आहाहा! निराकुलतारूपी भाव। लो!

स्फटिकमणि विशुद्ध है, निर्मल है, उज्ज्वल है... तीन शब्द प्रयोग किये। **वह परद्रव्य जो पीत, रक्त, हरित पुष्पादित से युक्त होने पर...** निर्मल स्वच्छ स्फटिक होने पर भी **अन्य सा दिखता है...** पर के कारण से लाल, पीले फूल के सम्बन्ध से उसमें अन्यथा भाव दिखता है। **अन्य सा दिखता है...** वह स्फटिक उसमें स्वच्छ नहीं दिखता। फूल ऐसे रखे, वह झांईं अन्दर दिखती है। वह अन्य झांईं उसमें दिखती है। आहाहा! **पीतादिवर्णमयी दिखता है, वैसे ही जीव विशुद्ध है...** भगवान चैतन्यस्वभाव स्फटिकमणि की भाँति स्वच्छ स्वभाव है। **परन्तु राग-द्वेषादिक भावों से युक्त होने पर...** यह बीच में डालते हैं, ऐसा सब। अनुवादकर्ता का यह नहीं मूल का, दूसरे का डाला है।

'रागादिविजुत्तो' यह राग के सम्बन्ध से जीव **'अणण्णविहो'** **राग-द्वेषादिक भावों से युक्त होने पर अन्य-अन्य प्रकार हुआ दिखता है...** है तो निर्मल भगवान आत्मा। स्फटिकमणि को जैसे परपदार्थ के सम्बन्ध में दूसरी झांईं दिखती है, उसी प्रकार भगवान आत्मा निर्मलानन्द है, परन्तु राग-द्वेष के सम्बन्ध से उसमें मलिनता दिखती है। वह जीव का स्वभाव नहीं। है न? **'अणण्णविहो'** अन्य-अन्य प्रकार से

दिखता है, ऐसा कहते हैं। रागरूप, पुण्यरूप, दयारूप भाव विकल्परूप से वह तो पर के सम्बन्ध से ऐसा दिखता है। वस्तु का स्वभाव वह नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी अन्य प्रकार से दिखते हैं, वे अन्य प्रकार हुए वे तो। आहाहा!

अन्य-अन्य प्रकार हुआ दिखता है, वह प्रगट है। वह प्रगट है। कहते हैं कि जैसे स्फटिकमणि में लाल, पीले फूल के सम्बन्ध से झांईं दूसरे अनेक प्रकार की, उसमें स्वच्छता में दिखती है, उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से वह स्वच्छ है, परन्तु कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से उसमें झांईं जो राग और द्वेष दिखते हैं, वह अन्य झांईं है, उसके स्वभाव की जाति नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, दया, दान के विकल्प, वह अन्य जाति है।

भावार्थ :- यहाँ ऐसा जानना कि रागादि विकार है, वह पुद्गल के हैं और ये जीव के ज्ञान में आकर झलकते हैं... ज्ञान में स्वच्छता में वे ज्ञात होते हैं। **तब उनसे उपयुक्त होकर इस प्रकार जानता है...** उपयोग उसमें लीन हो जाये, झलके, मात्र जानने में आवे, तथापि वह जानने में आते हैं, वह चीज़, वह मैं हूँ। **इस प्रकार जानता है कि ये भाव मेरे ही हैं,...** भारी सूक्ष्म बात है, भाई! ज्ञान निर्मल स्वच्छ स्वभाव, उसमें कर्म के परिणाम पुद्गल के, उसे यहाँ राग-द्वेष की पर्यायरूप से भासित होते हैं। इसलिए उसे ऐसा है कि यह राग-द्वेष, वे मेरे परिणाम हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पुद्गल के ही कहा है वह पर। यह लाल, हरे फूल की झांईं दिखती है, वह उसके कारण से है। अपना स्वभाव नहीं। आहाहा! वह परद्रव्य के कारण से होता है, ऐसा नहीं। परन्तु परद्रव्य का सम्बन्ध हो और उपयोग वहाँ अन्दर जाये तो उसे राग-द्वेष परिणाम मेरे हैं, ऐसा भासित हो जाता है। परन्तु राग-द्वेष रहित मैं चैतन्य हूँ, स्फटिक जैसा निर्मल हूँ, ऐसा भासित नहीं होता, यह उसे भ्रम है। समझ में आया?

भाव मेरे ही हैं, जबतक इनका भेदज्ञान नहीं होता है... देखो! वहाँ समयसार में आता है। ज्ञान में स्वच्छता है, इसलिए उसमें पुद्गल का निमित्त और उसमें झांई राग-

द्वेष की दिखती है, वह राग-द्वेष वह मैं हूँ, ऐसा अज्ञानी को हो जाता है। समझ में आया? इसलिए उन्हें पुद्गल के परिणाम कहा तो सही। जिस निमित्त से हुए वे उसके, मेरे नहीं। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं कोई बाहर में कुदक्का मारे, व्रत पालन किये और यह किया (इसलिए मिल जाये, ऐसा नहीं है)। आहाहा! धीर। धीर अर्थात् धी। धी—बुद्धि जिसे 'र' अर्थात् आत्मा में प्रेरणा की है जिसने, ऐसे धीर का काम है यह। धीर और वीर। वीर अर्थात् वीर्य को जिसने चैतन्यस्वभाव में 'र' अर्थात् प्रेरणा की है, ऐसे वीर के काम हैं यह। आहाहा! यह कायर का काम नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी तो स्थूल विवाद है सब बाहर का।

जबतक इनका भेदज्ञान नहीं होता है... यह राग की झलक, पुण्य-पाप के भाव की झलक जो दिखती है, वह कर्म की झांईं है। है अपनी दशा, परन्तु वह कर्म की झांईं है। उससे जब तक भेदज्ञान न हो, आहाहा! **तबतक जीव अन्य-अन्य प्रकाररूप अनुभव में आता है।** राग और द्वेष ऐसे जो पुद्गल के संग से उत्पन्न हुए भाव, उनका भेदज्ञान जब तक न हो। यह राग, वह नहीं; मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा जब तक दो के बीच का भेदज्ञान न हो, तब भगवान अन्य-अन्य प्रकार से है, ऐसा दिखता है। आहाहा!

जैसे दर्पण में दूसरी चीज़ें दिखती हैं, वह कहीं दूसरी चीज़ नहीं। दर्पण की स्वच्छता की पर्याय उसरूप हुई है। पर्याय, हों! पूरा दल नहीं। उसी प्रकार भगवान चैतन्य-दर्पण,... वह क्या कहे नहीं? बिलोरी काँच नहीं आता? जाड़ा दलवाला काँच। दलवाला काँच आता है न? ऐसे और फिर ऐसे। ऐसे जरा पतला हो ऐसा। बहुत दलवाला हो। नहीं? बिलोरी काँच। बिलोरी-बिलोरी। बड़ा दल जाडा हो और पीछे वह लकड़ी हो और इस ओर जरा ऐसे झुकता हो वह। दोनों ओर। चारों ही ओर पासा।

यह भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य दल है, पवित्रता का सागर है। उसमें राग-द्वेष जो झलकते हैं, वह वास्तव में तो उसकी दिशा और उसका स्वभाव नहीं। वे पुद्गल के निमित्त के सम्बन्ध से अन्दर झांईं दिखती है। उस झांईं को और भगवान आत्मा को भेद है, ऐसा जब तक ज्ञान नहीं, तब तक मैं रागवाला और पुण्यवाला और पापवाला, ऐसा वह मानता है। अन्य-अन्यरूप से मैं हो गया, ऐसा वह मानता है। आहाहा!

'अनुभव में आता है।' अन्य-अन्य प्रकार-रूप अनुभव में आता है। आहाहा! राग के वेदनरूप से, द्वेष के वेदनरूप से, अन्य-अन्य प्रकार से उसके अनुभव में विकारभाव आता है। आहाहा! **यहाँ स्फटिकमणि का दृष्टान्त है, उसके अन्य द्रव्य पुष्पादिक का डांक लगता है, तब अन्य सा दिखता है,...** इसका दृष्टान्त देकर कहते हैं न कि देखो, यह आत्मा में राग-द्वेष होते हैं, वे परद्रव्य के कारण से होते हैं। यह गाथा बोली गयी थी वहाँ राजकोट। तुम्हारे थे पंचकल्याणक। कब? २००६ (वि.सं.) वर्ष। छठी-छठी। देखो! परद्रव्य से... हिम्मतभाई ने किया है इसका। परद्रव्य के कारण से नहीं? ऐसी गाथा बोली थी तब। परद्रव्य के कारण से राग-द्वेष होते हैं, अपने से नहीं। यह तो स्वभाव है, वह अपना है, विभाव अपने से होता है, ऐसा नहीं। निमित्त के आश्रय से होता है, ऐसा कहा है। परन्तु वह निमित्त ने कराया है और कर्म है, इसलिए विकार होता है—ऐसा नहीं। छह के वर्ष में (वि.सं. २००६) बोला गया था। तुम थे? २४ वर्ष हुए। बहुत प्रश्न निकले थे। जीव राग करे तो कर्म बँधे, राग न करे तो कर्म नहीं बँधते। तब यह प्रश्न आया था। राग की व्याख्या यह (कि) राग है, वहाँ कर्मबन्धन उसके कारण से—कर्म के कारण से बँधता है, राग के कारण से नहीं। इसी प्रकार कर्म का उदय है, इसलिए यहाँ राग होता है, ऐसा नहीं। उस झलक को झेलता है राग को, इसलिए वहाँ राग होता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म... काम करे नहीं फिर बाहर में ऐसे का ऐसा किया करे, क्या हो?

राजकुमार क्षायिक समकिती जीव हो, लो! अरे! यह श्रेणिक लो न! देह छोड़ने के समय सिर पछाड़ा। वह भाव कौन सा होगा अन्दर? सुखरूप होगा? तथापि वह रागधारा दूसरा काम करती है और ज्ञानधारा दूसरा काम करती है। क्षायिक समकिती, जिसने तीर्थंकरगोत्र बाँधा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बँधता है समय-समय। अभी नरक में बँधता है। तीर्थंकर (प्रकृति के) परमाणु बँधने का समय का अन्तराल पड़ता नहीं। छोड़ा तब ... बँधता है। वह राग, राग का काम करे, ज्ञानानन्द ज्ञानधारा ज्ञान का काम करे। दो धाराएँ भिन्न हैं। आहाहा! वे भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। सौ इन्द्र जिनके तलिया चाटेंगे। जो माता

के गर्भ में जायेंगे, उसके पहले इन्द्र छह महीने पहले तो उनकी माँ की सेवा करेंगे। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन की बलिहारी है। यह राग ऐसा आया, तथापि उसका स्वामी नहीं, तथापि वह हुए बिना रहा नहीं, तो भी उसके वेदन में आये बिना रहता नहीं। आहाहा! गजब! सिर फोड़ा होगा, वह भाव आनन्द है वह? उदयभाव है। उदयभाव तो दु:खरूप है। आहाहा! वह दु:ख अन्दर ज्ञानानन्द में वह ज्ञात अवश्य होता है। स्वयं जाने कि इस मेरी चीज़ से यह भिन्न है, परन्तु पर्याय का वेदन है, वह मेरा है। वह वेदन मुझे नहीं, ऐसा नहीं। तो ज्ञान खोटा होता है। ज्ञान खोटा होने पर दृष्टि खोटी हो गई। आहाहा! ऐसी बातें, भाई! चारित्रमोह का उदय उस समय ऐसा काम करता है पर्याय में। श्रद्धा-ज्ञान का काम वहाँ श्रद्धा-ज्ञान करते हैं। श्रद्धा-ज्ञान है, वे कहीं खाली पड़े हैं? श्रद्धा और ज्ञान हुए हैं आत्मा में से, वे श्रद्धा-ज्ञान, श्रद्धा-ज्ञान का कार्य किया ही करते हैं। यह राग का कार्य है उनका? आहाहा! चारित्रदोष और दर्शनदोष में अन्तराल नहीं पड़ता, उसे सब एकमेक लगता है। समझ में आया? आहाहा!

यह जैसे **पुष्पादिक का डांक लगता है, तब अन्य सा दिखता है, इस प्रकार जीव के स्वच्छभाव की विचित्रता जानना।** आहाहा! जिस काँच में काजल चोपड़ा हो ऊपर उसमें कुछ दिखता है? स्वच्छ है, उसके कारण दिखता है। इसी प्रकार भगवान स्वच्छ स्वरूप, निर्मल स्वरूप में यह राग-द्वेष के डांक दिखते हैं, है पर। पर अर्थात् अपना स्वभाव नहीं, ऐसा। है अपनी पर्याय में। परन्तु उस पर्याय में अन्य अनेक प्रकार से जीव दिखता है, वह व्यवहारनय का विषय है। एकरूप दिखता है, वह निश्चय का विषय है।

मुमुक्षु : ज्ञानधारा और कर्मधारा...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एकरूप है ज्ञान। ऐसा मार्ग है। यह कहीं दूसरे के साथ वाद-विवाद करने से पार पड़े, ऐसा नहीं है। अरे! काल थोड़ा, काम बड़ा, समय चला जाता है। किसके लिये रुकता है? यह स्वच्छभाव की विचित्रता कही, हों! कर्म के उदय की विचित्रता, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! असिद्धभाव है न? वह उदयभाव है सब। अन्य-अन्य प्रकार है वह। ऐसे अन्य प्रकार होने पर भी ज्ञान जानता है कि यह मेरी पर्याय में है। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५२

इसलिए आगे कहते हैं कि जबतक मुनि के राग-द्वेष का अंश होता है, तबतक सम्यग्दर्शन को धारण करता हुआ भी ऐसा होता है:- सम्यग्दर्शन को धारण करता हुआ भी... चारित्रदोष के कारण से ऐसा उसे होता है। क्या होता है, यह बात करते हैं।

देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणओ होदि जोई सो॥५२॥

लो! रागांश है वह। लो!

अर्थ :- जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्व को धारण करता है... शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद हूँ, ऐसी तो अनुभव दृष्टि है। **और जबतक यथाख्यातचारित्र को प्राप्त नहीं होता है,...** पूर्ण चारित्र यथाख्यात। **तबतक अरिहन्त सिद्ध देव में और शिक्षा दीक्षा देनेवाले गुरु में तो भक्तियुक्त होता ही है...** जो रागांश है, इसलिए वह भक्तियुक्त हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! तथापि उस भक्तियुक्त का राग दु:खरूप है। समझ में आया? ऋषभदेव की स्तुति चली न भक्ति। भक्ति-भक्ति के काल का वर्णन हो, तब वही आवे या नहीं? इसलिए वह भक्ति का भाव, वह सुखरूप है? उसे हर्षरूप कहलाये। परन्तु वह हर्ष किसका? राग का हर्ष है वह तो। आहाहा! वीतरागबिम्ब प्रभु चैतन्य में राग की झलक, वह तो दूषित है। आहाहा!

जब तक मुनि को वीतरागचारित्र यथाख्यात न आवे अर्थात् न हो, तब तक उसे **अरिहन्त सिद्ध देव में और शिक्षा दीक्षा देनेवाले गुरु में तो भक्तियुक्त होता ही है...** ऐसा रागांश उसे होता है। वह चारित्र नहीं, वह चारित्र में दोष है। आहाहा! देव-गुरु शब्द आये न, भाई! दो व्याख्या की। **इनकी भक्ति विनय सहित होती है... इनकी भक्ति विनय सहित होती है...** देव-गुरु की भक्ति विनयसहित होती है। है विकल्प। **और अन्य संयमी मुनि अपने समान धर्मसहित हैं...** दूसरे जो मुनि हों **अपने समान धर्मसहित हैं, उनमें भी अनुरक्त है,...** उनके प्रति भी उसे प्रेम है। इसलिए कहा न पंचास्तिकाय की १७० गाथा (में)। जब तक नौ पदार्थ का प्रेम वर्तता है, रुचि वर्तती है, आगम की रुचि वर्ते और तीर्थंकर कहते हैं कि मेरे प्रति भी जब तक रुचि वर्तती है, तब उसे मोक्ष दूरतर

है। आहाहा! १७० गाथा। फिर अर्थ में ऐसा किया। पाठ में दूरतर है। टीका में कहते हैं परम्परा से। ऐसा लिखा। दूरतर अर्थात् सीधा मोक्ष नहीं, परन्तु अशुभ टलता है और शुभ टालकर होगा, इसलिए परम्परा कहा गया है। ऐसे टीका ऐसी ली है। दूरतर की व्याख्या ऐसी की है। उसकी एकाध-दो गाथा (श्रीमद् में) पड़ी रही है। पंचास्तिकाय के किये हैं न? अर्थ किये हैं उसमें। अनुवाद में यह दो गाथायें पड़ी रही हैं।

मुमुक्षु : मोक्ष कहीं दूर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर नहीं, ऐसा है। दूर है। नहीं, ऐसा लिखा है। एक गाथा तो पड़ी रही है दूसरी। कठिन काम। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प होता है, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! धर्मी को भी वह बन्ध का कारण है और बन्ध का कारण, वह सुखरूप कैसे होगा? आवे, हो, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

देव और गुरु की **भक्ति विनयसहित होती है और अन्य संयमी मुनि अपने समान धर्मसहित हैं, उनमें भी अनुरक्त है,...** प्रेम होता है। अनुराग—प्रेम है साधर्मी के प्रति। उसे साधर्मी देखकर द्वेष नहीं आता कि यह और बढ़ गया। ओहो! धन्य अवतार! जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किये। ओहो! आगे बढ़कर अल्पकाल में भी केवल (ज्ञान) पा जाये, उसमें क्या? जो तुझे चाहिए है केवल (ज्ञान), वह उसे थोड़े काल में मिले। इसलिए उसके प्रति कहीं द्वेष है उसे? ईर्ष्या आ जाये ईर्ष्या? **वही मुनि ध्यान में प्रीतिवान होता है...** यह क्या कहते हैं? कि अन्तर में दर्शन-ज्ञान निर्मल है, चारित्र भी है, परन्तु अभी चारित्र में दोष का ऐसा राग अंश है। द्वेष पर के प्रति नहीं, राग है। वह अन्तर ध्यान करने के योग्य है। समझ में आया? जिसका निश्चय यथार्थ है और व्यवहार में भी जिस प्रकार के राग का अंश है, वह बराबर वर्तता है, ऐसा कहते हैं। जानता है कि यह है। आहाहा!

और मुनि होकर भी देव-गुरु-साधर्मियों में भक्ति व अनुरागसहित न हो... देखो! मुनि होकर भी सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे साधर्मी—तीन लिये, उनमें जिसे भक्ति और अनुरागसहित न हो। उसे प्रेम नहीं। उसे धर्म के प्रति प्रेम नहीं आत्मा के प्रति (प्रेम नहीं)। आहाहा! **अनुरागसहित न हो उसको ध्यान में रुचिवान नहीं कहते हैं,...** उसे

ध्यान में अन्तर रुचिवाला नहीं कहा जा सकता है। आहाहा! गजब मार्ग, भाई! **क्योंकि ध्यान करनेवाले के, ध्यानवाले से रुचि प्रतीति होती है,...** जिसे अन्तर में ध्यान जमता है समकिती ज्ञानी चारित्रवन्त को, उस ध्यान का जिसे प्रेम है, तो ऐसे ध्यानवाले के प्रति भी उसे प्रेम होता है। आहाहा! समझ में आया? **ध्यान करनेवाले के, ध्यानवाले से रुचि प्रतीति होती है, ध्यानवाले न रुचे, तब ज्ञात होता है कि इसको ध्यान भी नहीं रुचता...** जिसे ध्यानी प्राणी न रुचे, उसे ध्यान भी रुचता नहीं। आहाहा! यह तो शूरवीर के काम हैं, भाई! आहाहा! 'रण चढ़ा रजपूत छिपे नहीं।' इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर में स्वभाव की रुचि, दृष्टि में चढ़ा, उसे ध्यान रुचता है। ऐसे जीवों को देखकर भी उसे प्रेम होता है। उसे ईर्ष्या नहीं होती (कि) लो यह निकल गया आजकल का, हम इतने सब पचास वर्ष से हैं और यह फिर कहे, लो यह करो और यह करो। हमको भी ध्यान होता है। ऐसी ईर्ष्या उसे नहीं होती। सरलता, भाई! मुझे जो करना है, वह तू तुझमें करता है, उसका अनुमोदन देते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे उत्साह होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे उत्साह होता है। ओहो! आहाहा!

ध्यान करनेवाले के... ध्यान का अर्थ ध्रुव का ध्यान। नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ तो उस ओर का झुकाव है, उसे ध्यान कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ध्यान के ही भाग हैं और वह ध्यान ही मोक्ष का कारण है। आहाहा! **ध्यानवाले न रुचे, तब ज्ञात होता है कि इसको ध्यान भी नहीं रुचता है...** अन्तर्मुख जाना उसे रुचता नहीं। अन्तर्मुख जानेवालों का जिसे प्रेम नहीं, उसे अन्तर्मुख जाने की रुचि है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! अब यह गाथा विवादवाली है न?

★ ★ ★

गाथा - ५३

आगे कहते हैं कि जो ध्यान सम्यग्ज्ञानी के होता है, वही तप करके धर्म का क्षय करता है:—

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण॥५३॥

वे कहते हैं रतनजी ऐसा कि कर्म खपाता है न कितने ही काल भी, इसलिए यह समकिती की बात है। ध्यान में नहीं उसकी। रतनचन्दजी। यहाँ तो इन्होंने स्पष्ट अर्थ लिया है स्वयं ने, देखो!

अर्थ :- अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है,... यह तो एक साधारण दृष्टान्त दिया है। **अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में जितने कर्मों का क्षय...** अर्थात् आंशिक कोई निर्जरा, अकाम निर्जरा आदि हो। **उतने कर्मों का ज्ञानी मुनि तीन गुप्ति सहित होकर...** जिसने मन को, वचन को, काया को भिन्न किया है, आत्मा का ध्यान जिसे जमा है, वह ध्यानी मुनि या ध्यानी आत्मा अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर डालता है। ज्ञानी के साथ मिलाते हैं यह। वह क्षय तो करता है न कुछ। अज्ञानी क्षय कहाँ करता है, इसलिए ज्ञानी है। यह तो ऐसा अर्थ किया है इन्होंने स्वयं। टीकाकार ने ऐसा किया है, हों! समझे?

यहाँ तो एक दृष्टान्त साधारण दिया है। लाखों-करोड़ों भवों में भी नाश न कर सके और करोड़ों भव में भी जो नाश करे, वह अन्तर्मुहूर्त में करे, इतना दृष्टान्त लेना है। इससे वह समकिती है और उसके आंशिक भी कर्म क्षय होता है, ऐसा साबित करना है, ऐसा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण १३, गुरुवार, दिनांक २१-०३-१९७४
गाथा - ५३ से ५५, प्रवचन-१३३

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण॥५३॥

अर्थ :- अज्ञानी... आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा जहाँ भान नहीं, ऐसा जीव तीव्र तप—कठोर तप करे। छह-छह महीने के अपवास करे। **तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में...** बहुत भवों। **जितने कर्मों का क्षय करता है,...** अघाति-अशुभ इतना टलता है न? शुभभाव में अज्ञानी को अशुभ कर्म कितना ही अघाति आदि टलता है। पापकर्म। अज्ञान में शुभभाव से ... पापकर्म खपे, टले। **उतने कर्मों का ज्ञानी मुनि...** वह तो साधारण दृष्टान्त दिया है। यह आत्मा के आनन्द और ज्ञानस्वरूप में जिसकी दृष्टि है, ऐसा ज्ञानी मुनि... मुनि की प्रधानता से बात की है। **तीन गुप्ति सहित...** शुभाशुभ विकल्प को भी जिसने छोड़ा है और आत्मा में निर्विकल्प समाधि में आया है। वह **अन्तर्मुहूर्त में ही क्षय कर देता है।** इसका अर्थ ऐसा लगाते हैं कितने ही (कि) अज्ञानी है, वह तो उसे ज्ञान विशेष नहीं। वह अज्ञानी लेना है यहाँ, ऐसा (वे) कहते हैं।

मुमुक्षु : .... मिथ्यादृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि यहाँ नहीं लेना, ऐसा रतनचन्दजी कहते हैं। ऐसास कि इसमें कर्म खिपाता है न थोड़े भी? लोगों को....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अशुभ कर्म अघाति और किंचित् शुभभाव हो तो घाति का रस भी कम पड़े।

मुमुक्षु : अकाम निर्जरा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अपेक्षा से कहा है इतने द्वारा। शुभभाव में, शुद्धता का तो भान नहीं, वह शुभभाव में अघाति कर्म भी किंचित् रस, स्थिति घटे और घाति का कोई

भाव मिथ्यात्वसहित ... परन्तु थोड़ा कुछ रस घटे, परन्तु अभाव नहीं कर सकता। वह यहाँ अज्ञानी लेना है। कहते हैं कि, खपाता है न। उसके साथ यह खपाता है, ऐसा मेल किया है न। इसलिए ज्ञानी है जघन्य ज्ञानी नीची श्रेणीवाला, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। पाठ में है न '**तेण दु अण्णाणी**' वह '**अण्णाणी**' का अर्थ ऐसा करते हैं कि विशेष ज्ञान नहीं, मन्द ज्ञान। दूसरे जगह होता है, इस जगह नहीं। अज्ञानी जीव... दूसरी जगह मन्द ज्ञानी को अज्ञान होता है। बारहवें गुणस्थान में अज्ञान है। बारहवें में अज्ञान कहा है, वह क्या है? ज्ञान का अभाव है। विपरीत ज्ञान अलग और अल्प ज्ञान अलग। इन दोनों में बड़ा अन्तर है। आहाहा!

यहाँ तो मिलान करना है मात्र जहाँ चैतन्यमूर्ति भगवान वस्तु जो है, कर्म और कर्म के भाव रहित की, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई नहीं तो उसकी दृष्टि राग के ऊपर ही पड़ी है और वह राग की क्रिया में मन्द राग भी करे, संथारा दो-दो महीने के करे। संथारा समझ में आता है? अन्तिम मरण (हो)। परन्तु अन्दर वस्तुस्थिति की खबर नहीं, इसलिए उसे कर्म का अंश भी परमार्थ से अभाव नहीं होता, परन्तु ऐसा शुभभाव है, उसे अकाम अशुभ घटता है, इतनी अपेक्षा ली है।

ज्ञानी को... ज्ञानी तो पुण्य और पाप दोनों को खिपावे, ऐसी बात लेनी है। उनको अकेले पाप घटता है, इतनी अपेक्षा लेनी है। आहाहा! उसे मिथ्यात्व है न। और उसे है, जिसे शुभभाव है, मिथ्यात्व का रस मन्द हो। अभव्य को होता है। रस मन्द होता है परन्तु अभाव नहीं होता। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को भी शुभभाव से मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का रस मन्द हो, परन्तु वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! उन कर्मों का... **उतने कर्मों का...** ऐसा शब्द पड़ा है न? '**तं णाणी तिहि गुत्तो**' मुनि तीन गुप्तिसहित, जिसने मन-वचन-काया के विकल्प दूर किये हैं। क्योंकि जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप अबन्धस्वरूप दृष्टि में, ज्ञान में आया है; इसलिए वह अन्दर ध्यान में जाए, तब अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर दे। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती, लो! ८३ लाख पूर्व तक संसार के; छह लाख पूर्व तो चक्रवर्ती पद में रहे। सम्यग्दृष्टि। छह लाख पूर्व। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे ऐसे छह लाख पूर्व तो चक्रवर्ती पद में रहे। उसे जो अल्प कर्म बँधा था,

वह अन्तर्मुहूर्त में ध्यान में सब खिरा दिया। चारित्र का विपर्यय था... ऐसे अन्तर में जहाँ गये... आहाहा! वहाँ इतने काल में चारित्रमोह का बन्धन अन्तर्मुहूर्त में खिर गया। समझ में आया?

चैतन्यवस्तु के स्वभाव के अवलम्बन से जो काम हो, वह शुभराग के अवलम्बन में वह काम नहीं हो सकता। समझ में आया? तथापि यहाँ जरा उपमा में ऐसा (कहा), उसे खिपावे, उससे अन्तर्मुहूर्त में खिरे, इतनी जरा (अपेक्षा ली है)। नहीं तो वास्तव में उसके साथ कुछ मेल है नहीं। परन्तु जरा उसका माहात्म्य बताने के लिये इसका थोड़ा पाप खिरता है। वह अन्तर्मुहूर्त में पुण्य और पाप सबको जलाकर राख कर डालता है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो ज्ञान का सामर्थ्य है... अब पण्डित जयचन्द्रजी स्वयं भावार्थ करते हैं। ज्ञानस्वभाव चैतन्यस्वभाव पुण्य और पाप के राग, विकल्परहित ऐसा जो आत्मा का ज्ञान, आत्मद्रव्य का भान, उसका जो सामर्थ्य है, **वह तीव्र तप का भी सामर्थ्य नहीं है,...** इतना बतलाना है। छह-छह महीने के अपवास करे, शास्त्र स्वाध्याय करे तो भी वह सामर्थ्य, ज्ञान के सामर्थ्य के समक्ष वह सामर्थ्य है नहीं। **क्योंकि ऐसा है कि अज्ञानी अनेक कष्टों को सहकर तीव्र तप को करता हुआ करोड़ों भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है...** करोड़ों-करोड़ों .... टीका में तो बहुत लिया है। बहुत करोड़ और ऐसे और ऐसे आगे बढ़ाते गये। उसमें है। भवभवकम् कोटि भवे, शतकोटि भवे, सहस्र कोटि भवे, लक्ष कोटि भवे, कोटाकोटि भवे—क्रोड़ा क्रोड भव में। यह तो एक... ऐसा कि क्रोड़ क्या अनन्त काल में नहीं खिपाता, इसका यह अर्थ है। अनन्त काल में जो कोई अशुभ कर्म घटे, वह ज्ञानी शुभाशुभ परिणाम को अन्तर्मुहूर्त में खिरा डालता है। बस, सिद्धान्त ऐसा करना है। समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वभाव का सामर्थ्य इतना है कि जहाँ उसकी दृष्टि हुई और पश्चात् वह ध्यान में जाये। उसे ध्यान सच्चा होवे न! उसे अज्ञानी क्रोडा क्रोडी भव में जो अशुभकर्म पाप नहीं खिपाता अथवा शुभभाव से पाप खिपावे, खिपाने का लेना है न? वह इस अन्तर्मुहूर्त में आनन्दस्वरूप में भगवान, जिसे ध्यान में लेकर ध्येय बनाकर, दृष्टि उघड़ी है, इसीलिए तो ध्येय हो गया है। आहाहा! वह अन्तर्मुहूर्त में खिपाता है।

कितने हुए कोटाकोटि भव द्वारा। अनन्त कर्म।

क्योंकि ऐसा है कि अज्ञानी अनेक कष्टों को सहकर तीव्र तप को करता हुआ करोड़ों भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है वह... ऐसा। यह तो अपेक्षा से बात करते हैं। **आत्मभावना सहित...** भगवान आत्मभावना भावता... आता है न? श्रीमद् में आता है। 'आतमभावना भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे।' यह आत्मभावना अर्थात् क्या? आहाहा! जिसे आत्मा दृष्टि में, ज्ञान में ज्ञेयरूप से, श्रद्धारूप से ज्ञानरूप से भासित हुआ है, ऐसा आत्मा, उस आत्मा की भावना करने से अन्तर्मुहूर्त में कर्म खिपाकर केवलज्ञान भी पाता है। समझ में आया? देखो!

आत्मभावना सहित ज्ञानी मुनि उतने कर्मों का अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर देता है, वह ज्ञान का सामर्थ्य है। प्रमाण दिया है, यह तो साधारण है। वह तो पापकर्म खिपावे, यह तो सब खिपावे। दोनों। आहाहा! क्योंकि आत्मद्रव्य में पुण्य और पाप के विकल्प तो है नहीं। ऐसी आत्मदृष्टिवन्त आत्मा की भावना करने से पुण्य और पाप के दोनों भाव को खिपाता है। **वह ज्ञान का सामर्थ्य है।** वह आत्मा के स्वभाव का सामर्थ्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५४

आगे कहते हैं कि जो इष्ट वस्तु के सम्बन्ध से... अब क्या कहते हैं? कि कोई वस्तु ज्ञेय जो पर है, उसमें प्रियकर इष्ट का संयोग होने पर **परद्रव्य में राग-द्वेष करता है...** वह संयोग होने पर सम्बन्ध में इष्ट मानकर राग करे, अनिष्ट मानकर द्वेष करे। **वह उस भाव से अज्ञानी होता है,...** परवस्तु में इष्टता और अनिष्टता, यह मान्यता ही मिथ्यात्व की है। समझ में आया? **ज्ञानी इससे उल्टा है :—**

सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण दु अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीओ॥५४॥

अर्थ :- शुभ योग अर्थात् अपने इष्ट वस्तु के सम्बन्ध से... ऐसा। अनुकूल का

सम्बन्ध ऐसे मिलाप होने पर **परद्रव्य में सुभाव अर्थात् प्रीतिभाव...** सुभाव अर्थात् इसका अर्थ यहाँ प्रीति लेना है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है, मोक्ष का मार्ग है न? परवस्तु का सम्बन्ध होने पर इष्ट-अनिष्ट की कल्पना से जो राग-द्वेष करता है, वह अज्ञानी है। समझ में आया? क्योंकि ज्ञेय परवस्तु है, उसका तो आत्मा ज्ञाता है। उस ज्ञेय में यह इष्ट और अनिष्ट, ऐसे भाग है ही नहीं।

मुमुक्षु : भक्ति का राग है...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भक्ति का राग... यह ख्याल है, मस्तिष्क में बात का ख्याल है। अस्थिरता का राग है। यह इष्ट है, प्रियकर है—ऐसा मानकर उसे राग नहीं है। व्यवहार इष्ट है, ऐसा मानकर... इष्ट देव कहलाता है न? परमार्थ से वह इष्ट नहीं है। ऊपर ५२ (गाथा में) आया था। **'देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु'।** यह धर्मराग है। यह स्पष्टीकरण में आयेगा। चारित्रमोह के उदयवश जिसे धर्मराग आवे सही, परन्तु उसे रोग समान जानता है। और अज्ञानी उसे अनुकूल चीज़ है, इसलिए राग आया है, इसलिए ठीक है—ऐसा मानता है। श्रद्धा में अन्तर है। समझ में आया? पाठ शब्द ऐसा है न?

'सुहजोएण' शुभपदार्थ का मिलान होने पर, मिलना, ऐसे साथ में नजदीक सम्बन्ध होना। उसमें **'सुभावं परदव्वे'** परद्रव्य के प्रति सुभाव अर्थात् प्रीति करता है, वह राग को करता है, वह साधु अज्ञानी है। आहाहा! अन्तर में कौन सा अन्तर कहाँ पड़ता है? पर का संयोग होने पर उसे प्रीति उपजती है कि यह ठीक है। ऐसी प्रीति उपजती है, उस प्रीति को यहाँ राग कहते हैं, उसे अज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तो पंच परमेष्ठी इष्टदेव हैं। परन्तु वह इष्टता चारित्रमोह के मुनिपने का उदय है, उसके कारण लगती है। परन्तु वह इष्ट है, वह द्रव्य ठीक है; इसलिए मुझे राग होता है—ऐसा नहीं है। वह इष्ट द्रव्य है, इसलिए मुझे राग होता है—ऐसा नहीं परन्तु इष्ट के प्रेम में मुझे इष्ट वस्तु सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हैं। उनका उसे प्रेम और विनय का भाव आता है, वह अपनी कमजोरी के कारण (आता है)। उन्हें इष्ट मानकर आता है, ऐसा है नहीं है। भारी अन्तर।

मुमुक्षु : ... इसलिए प्रशस्त राग कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रशस्त है, वह तो माना है कि यह प्रशस्त है। वास्तव में प्रशस्त है नहीं। परपदार्थ प्रशस्त-अप्रशस्त है ही नहीं। परन्तु शुभराग है, इसलिए प्रशस्त कहा जाता है। ऐसा। तथापि वह राग धर्मानुराग है। परन्तु वह पदार्थ को ही इष्ट मानकर, सम्बन्ध होने पर, मिलाप होने पर प्रीति का भाव अन्दर उल्लसित हो तो वह तो परद्रव्य के प्रति के प्रेम से राग हुआ है। वह तो मिथ्यात्वभाव है। बहुत अन्तर है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी बाद में आयेगा। यहाँ तो राग कौन करता है, यह बात है।

शुभयोग अर्थात् इष्ट वस्तुओं का मिलाप। उसकी व्याख्या इतनी की। '**सुहजोएण**' है न? शुभ का योग होना, मिलाप होना। उसमें '**परदव्वे**'। परद्रव्य का मिलाप हुआ है न? उसमें '**सुभावं**' प्रीति '**कुणइ**'। राग से प्रीति करता है कि यह ठीक है, इसलिए मुझे राग आया है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? ... मोक्ष की इच्छा-राग हो, वह परद्रव्य में राग है, वह भी मिथ्यात्व है। मोक्ष का राग करूँ तो मुझे लाभ होगा, यह भी मिथ्यात्वभाव है। बाद की ५५वीं गाथा है। यह तो ५४ चलती है न?

मोक्षप्राभृत है न। यहाँ तो परद्रव्य के लक्ष्य से '**परदव्वादो दुग्गइ**' आया था न अपने? १६वीं गाथा में। '**परदव्वादो दुग्गइ**' जितने परद्रव्य का लक्ष्य हो, वहाँ चैतन्य की अपनी परिणति नहीं होती। दुर्गति है। चैतन्य का विभाव परिणाम दुर्गति है। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ**' १६वीं गाथा में आया था। १३-१४ से शुरु किया है न। पहली गाथा बाकी रह गयी है, भावपाहुड़ की बाकी है। समझ में आया?

'**सुहजोएण**' का अर्थ शुभयोग नहीं। शुभ का मिलाप। इष्ट वस्तु का सम्बन्ध। उसमें '**परदव्वे**' परद्रव्य का मिलाप है न? '**सुभावं**' सुभाव अर्थात् उसे प्रीति होती है। ऐसा जो राग करता है, तो वह '**अण्णाणी**' इसलिए वह अज्ञानी है। आहाहा! **वह प्रगट राग-द्वेष है। इष्ट में राग हुआ, तब अनिष्ट वस्तु में द्वेषभाव होता ही है,...** इष्ट वस्तु के कारण से राग हुआ, अनिष्ट वस्तु के कारण से वहाँ द्वेष हुए बिना रहेगा ही नहीं।

आहाहा! यह तो राग-द्वेष करने का अभिप्राय हुआ। मोक्ष अधिकार है न। परद्रव्य के प्रति झुकाव का राग अस्थिरता का हो तो धर्मानुराग है। उसे इष्ट मानकर यह मुझे बहुत लाभदायक है, ऐसा मानकर हो तो वह अज्ञानभाव है। दो में इतना अन्तर है। समझ में आया? **अनिष्ट वस्तु में द्वेषभाव होता ही है,...**

इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है... इष्टता जानकर राग करे, अनिष्ट मानकर द्वेष करे। इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं है, वह तो ज्ञेय है। आहाहा! **इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है, वह उस कारण से रागी-द्वेषी-अज्ञानी है...** देखो! **इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है, वह उस कारण से...** पर के कारण से मानकर राग-द्वेष करता है, वह तो अज्ञानी है। आहाहा!

और जो इससे विपरीत अर्थात् उल्टा है, परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं करता है... परद्रव्य के प्रति झुकाव का राग-द्वेष अपनी अस्थिरता से होता है, परन्तु वह परद्रव्य के प्रति प्रीति-अप्रीति करके राग-द्वेष नहीं करता, वह ज्ञानी है। आहाहा! क्योंकि आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी ज्ञानी है और परचीज़ अरिहन्त से लेकर दुश्मन सब कहो, वे सब ज्ञेय हैं। ज्ञेय में यह प्रतिकूल और यह अनुकूल, ऐसा उसमें कुछ नहीं है। वह ज्ञान में इष्ट के संयोग के सम्बन्धकाल में इष्ट है, इसलिए मैं प्रीति-राग करता हूँ, '**सुभावं**' शब्द लिया है न? '**सुभावं**' अर्थात् वहाँ राग। ऐसा जब अनुकूल संयोग के मिलाप काल में जब उसके कारण से प्रीति होती है, तब अनिष्ट संयोग में उसके कारण से उसे द्वेष होगा ही। आहाहा! **और जो इससे विपरीत अर्थात् उल्टा है, परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं करता है, वह ज्ञानी है।**

भावार्थ :- ज्ञानी सम्यग्दृष्टि मुनि के परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं है... आहाहा! केवली को देखकर भी ज्ञानी को राग होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। परपदार्थ को देखकर राग होता है, ऐसा नहीं है। परपदार्थ को अनिष्ट देखकर द्वेष होता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग तो देखो! **क्योंकि राग उसको कहते हैं कि जो परद्रव्य को सर्वथा इष्ट मानकर राग करता है...** सर्वथा इष्ट शब्द लिया है। व्यवहार से देव-गुरु इष्ट है, ऐसा जानकर राग होता है, वह अपनी कमजोरी के कारण होता है। वह पदार्थ इष्ट है, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है। वहाँ पंचास्तिकाय में लिया

है, प्रशस्त पदार्थ। इस राग का लक्ष्य वहाँ जाता है न, इसलिए वह प्रशस्त कहलाता है। बाकी तो पदार्थ है, वह है। व्यवहार से कहते हैं। आता है, इसलिए यहाँ शब्द प्रयोग किया है न? **परद्रव्य को सर्वथा इष्ट मानकर राग करता है, वैसे ही अनिष्ट मानकर...** देखा! **इष्ट मानकर...** ऐसा है न? **वैसे ही अनिष्ट मानकर द्वेष करता है...**

परन्तु सम्यग्ज्ञानी परद्रव्य में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना ही नहीं करता है... परवस्तु इष्ट-अनिष्ट है, ऐसी कल्पना ही ज्ञानी को नहीं होती। क्योंकि वह तो परवस्तु सलंग सब ज्ञेय है। सलंग कही है। दुश्मन हो या केवली हो, ज्ञेयरूप से है। एक धारावाही ज्ञेयरूप से है। वह अज्ञानी उसे तोड़ डालता है। इष्ट आवे तो राग, अनिष्ट आवे तो द्वेष, यह खण्ड कर डालता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इष्ट मानकर नहीं, अपने धर्मानुराग के कारण से। धर्म का प्रेम-राग होता है इतना। उसे इष्ट मानकर नहीं। राग को इष्ट मानकर नहीं। सब अटपटा है। देखो न! यहाँ कहेंगे, स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे।

परन्तु सम्यग्ज्ञानी परद्रव्य में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना ही नहीं करता है, तब राग-द्वेष कैसे हो? पर को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष नहीं करता, इसलिए उसे राग-द्वेष कैसे हो, ऐसा कहते हैं। यह इष्ट है, इसलिए मुझे राग होता है, यह अनिष्ट है, (इसलिए द्वेष होता है)—ऐसा है ही नहीं। ऐसी कल्पना ही नहीं। सब वस्तु ज्ञेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त को तो स्वीकारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पूजा का भाव स्वयं को आता है। धर्मानुराग। उसे देखकर नहीं, उससे नहीं। ... है न इसमें? आहाहा!

तब राग-द्वेष कैसे हो? अब आया, देखो! **चारित्र मोह के उदयवश होने से कुछ धर्मराग होता है...** इष्ट-अनिष्ट वस्तु मानकर नहीं, परन्तु अन्दर में जरा चारित्रमोह का उदय है, उदय अर्थात् उसमें प्रगट परिणमता है। **धर्मराग होता है...** धर्म का उस प्रकार का प्रेम होता है। **उसको भी रोग जानता है...** वह (अज्ञानी) इष्ट देखकर राग

करके ठीक मानता है। आहाहा! **धर्मराग होता है...** है या नहीं राग? ज्ञानी को राग है या नहीं? मुनि को भी राग होता है। परन्तु पदार्थ के कारण से नहीं, आत्मा की निर्बलता के कारण से (होता है)। बड़ा अन्तर है। आहा!

मुमुक्षु : शुभराग का लोभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही बात है कि राग है, वह दु:ख है, रोग है। राग है, वह स्वयं आकुलता है, दु:ख है। शान्ति, आनन्दस्वरूप में वह रोग है।

मुमुक्षु : भट्ठी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भट्ठी है, यह कठोर लगा है न। बड़ी खलबलाहट हो गयी। भट्ठी में से अभी बड़ा ... पड़ गया। आहा! कषाय है। कषाय है, वह तो अग्नि है। प्रतिकूलता कोई ऐसी होती है, तब अनुभव में इसे नहीं आता? कि झनझनाहट लगे। अन्दर में... अन्दर में। यहाँ जले, उसका अनुभव होता है। यह तो कषाय आती है तब जले, ऐसा दिखता है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : मन्दराग भी जलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दराग हो तो भी जले। ऐसे अन्दर में विचारा अनुसार न हो तो जले। कषायभाव है। लोग नहीं कहते? मेरा कलेजा जलता है, ऐसा होता है, वैसा होता है। परन्तु यह धीरे से देखे तो खबर पड़े न। समझ में आया? क्या होगा? ऐसा होगा। ऐसा हो वहाँ अन्दर से जले। अग्नि दिखाई दे। वह तो तीव्र अशुभराग के काल की बात की। मन्दराग में अग्नि तो तब दिखाई दे कि जब (स्वरूप की) शान्ति देखे तो।

मुमुक्षु : ... अग्नि न हो तो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग ही अग्नि है। राग दाह दहे सदा, नहीं आया? 'राग आग दहे सदा, तातैं समामृत सेईये'। आहाहा! हो, परन्तु है तो दु:ख।

धर्मी को चारित्रमोह के उदयवश, हों! उदय कराता नहीं है। उदय के आधीन होता है, इसलिए **कुछ धर्मराग होता है, उसको भी रोग जानता है, भला नहीं समझता है...** आहाहा! व्यवहार से करता है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में करता नहीं परन्तु हो

जाता है। ज्ञान की अपेक्षा से परिणमन है, इसलिए कर्ता कहा जाता है। दो धारी तलवार है। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखो तो वह परिणमन का कर्ता ही नहीं है। परन्तु जब पर्याय से देखो तो राग का परिणमन है। इसलिए कर्ता भी वह है। आहाहा! यह बात।

उन लोगों को यह बड़ा विवाद आया है न! दीपचन्दजी सेठिया और उनके सब पक्षकार को। ज्ञानचन्दजी और लालचन्दजी को ... ऐसा कहते हैं। राग को भट्ठी कहते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे ऐसा कि दुःख का वेदन दिखता है, यदि वेदे तो तीव्र कषायवाला है। दुःख का वेदन ज्ञानी बराबर जानता है। क्योंकि उसे आनन्द के वेदन के साथ दुःख का वेदन है। हें! आहाहा! इससे उसे दुःख का वेदन यथार्थरूप से ज्ञात होता है। अज्ञानी को दुःख वेदन में आता है, इसकी उसे खबर नहीं है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा शान्ति-अकषायस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई नहीं, इसलिए शान्ति को अनुभव किये बिना यह अशान्ति है, ऐसी उसके साथ तुलना उसे नहीं होती। आहाहा! भारी मार्ग, भाई! ऐसा है न, क्योंकि कषाय में भट्ठी लगती है तो तीव्र कषायी जीव है, ऐसा कहते हैं। तीव्र कषायवाले को भट्ठी दिखती है। मन्द कषायवाले को नहीं दिखती। अर..र..! ऐसा कहते हैं एकदम...

यहाँ तो कहते हैं, अकषाय आत्मा का भान हुआ, उसे कषाय का वेदन दिखता है, वह आकुलता का भोग करता है। प्रवीणभाई! गजब बात, भाई! आहाहा! कहते हैं कि धर्मानुराग हो, उसे भी रोग जानता है। रोग है, ऐसा वेदता है। आहाहा! धर्मी को... कहा नहीं? तीसरे कलश में? तीसरा कलश। '**कल्माषितायाः**'। मेरे परिणाम में निरन्तर कलुषितता वर्तती है। भाषा तो देखो! कलुषितता। नहीं तो मुनि को तो शुभराग है, उन्हें अशुभराग तो है नहीं।

मुमुक्षु : .... मोह का नाश करनेवाला...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश करनेवाला, यह तो ऐसा ही कहे न। नाश करने के लिये। मिथ्यात्व का मोह नहीं है वहाँ। '**कल्माषितायाः**' मेरे मोह के निमित्त से मुझमें मेरी परिणति में मुझे कलुषितता है। आचार्य छठे गुणस्थान में कहते हैं। लो, कलुषित है,

शुभभाव है। यह शास्त्र रचने का भाव, टीका करने का भाव, वह कलुषित भाव है। और कहते हैं कि यह टीका करते हुए उस कलुषित भाव के काल में मेरी शुद्धि होओ। कलुषित भाव से नहीं। टीका करते हुए, पाठ ऐसा है कि टीका करते हुए मेरी कलुषितता नाश होओ। परन्तु टीका के प्रसंग में मेरा जोर तो अन्दर ज्ञायकभाव पर वर्तता है। इसलिए वहाँ तक अशुद्धता टलकर शुद्धि होओ। आहाहा! शास्त्र के अर्थ भी जैसे हों, वैसे न करे, इसे जँचे नहीं न, इसलिए जहाँ तहाँ रगड़ मारे, देखो! टीका करते हुए शुभभाव है और उससे भी उनकी कलुषितता टलेगी। ऐसा यह कहते हैं। पाठ ऐसा बोले परन्तु उसका अर्थ समझना चाहिए न। उसमें भी ऐसा अर्थ करे, '**तद्गुणलब्धये।**'

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धधये॥

तुम्हारे गुण की प्राप्ति के लिये वन्दन करता हूँ। विकल्प है, वह गुण की प्राप्ति के लिये है। अर्थ तो इसका ऐसा है। आता है न? भाई! आहाहा! अर्थ यह आया है कि देखो! इसमें ऐसा कहा है। उनके पास जो गुण हैं, उनकी प्राप्ति के लिये मैं आपको वन्दन करता हूँ, ऐसा विकल्प करता हूँ। उस विकल्प से मुझे तुम्हारे गुण मिलेंगे। ऐसा अर्थ उस ओर से आया है। बिहार से आया?

मुमुक्षु : उत्तर प्रदेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तर प्रदेश। समाचार-पत्र में आया था। बहुत वर्ष हुए। '**तद्गुणलब्धये**' उनके गुण के लिये आपको वन्दन करता हूँ। पर को वन्दन, वह तो विकल्प है और उनके गुण की प्राप्ति विकल्प से होती है, ऐसा वहाँ तो कहा है। इसका अर्थ कि मेरा लक्ष्य तो मेरे स्वरूप के ऊपर ही है। तुमको वन्दन करता हूँ, उसके विकल्प के काल में भी मेरा आश्रय तो द्रव्य का है। समझ में आया? उसके आश्रय से मुझे गुण की प्राप्ति होओ। ऐसा है। वे कहें, सब अर्थ बदल डाले। परन्तु उसका अर्थ ऐसा है। होवे ऐसा अर्थ है या नहीं? कहीं उल्टा अर्थ करे? राग-विकल्प बन्ध का मार्ग है। आहाहा!

लोहे का दृष्टान्त दिया है न? लोहा जब अग्नि में बहुत तपा हुआ हो, तब तो

ऊपर हांठिकडुं रखे। हांठिकडुं समझे? कठिन कपास का इतना रखे तो जले। और जब अन्दर मन्द अग्नि हो जाए तब वह हांठिकडुं रखो तो नहीं जले। रुई... रुई। रुई का ... लकड़ी नहीं जले, ... नहीं जले ऊपर रखेगो तो। परन्तु रुई का पोल पोला ... ऐसे कषाय की मन्दता की अन्दर अग्नि है। आहाहा! मन्दराग शान्ति को जलाता है। तीव्रराग हो, तब तो बाहर बहुत दिखाई देता है। मन्दराग में शान्ति जलती है। आहाहा!

दान अधिकार में नहीं कहा? दान करनेवाले जीव, अभी पैसा आदि मिले हैं, वह पूर्व में शुभभाव (किया है)। शुभभाव में शान्ति जली थी। खुरचन का दृष्टान्त दिया है न? ... यह खिचड़ी, चावल ऊपर-ऊपर के खा गये हों और अन्दर चिपके हुए होते हैं न? खुरचकर (बाहर निकाले)।... कहते हैं न? अपने (गुजराती में) यहाँ उकडिया कहते हैं। वह जली हुई खुरचन जहाँ डाले, वहाँ कौआ अकेला नहीं खाता, सबको बुलाकर खाता है। इसी प्रकार कहते हैं कि पूर्व के तेरे पुण्य जले थे, शान्ति जली थी और तुझे शुभभाव हुआ था। उस शुभभाव के फल में यह धूल आदि तुझे मिली है। अकेला खायेगा तो कौवे से भी गया-बीता है। राग की मन्दता करना, ऐसा कहते हैं। दान (अधिकार में) रखने का भाव तीव्र है, दान में राग मन्दता में रखने का भाव मन्द है। है तो दाग, पूर्व में दाग जल था। तब शुभभाव (हुआ) उसका यह फल है। रसिकभाई! सच्चा होगा यह? ... यह चारित्रमोह के उदय के वश होकर। चारित्रमोह राग कराता नहीं है। स्वयं आधीन होता है ईश्वरनय है न? इसकी अपनी योग्यता। सैंतालीस नय। ईश्वर नय है। धाय माता के निकट जैसे पराधीन बालक को दूध पिलाते हैं। वैसे आत्मा अपनी योग्यता से पराधीन होता है। आहाहा! पर उसे आधीन करके राग कराता है, ऐसा नहीं है। कितनी स्पष्टता है! यह कहे, कर्म के कारण राग होता है, कर्म के कारण यह होता है अमुक को। परद्रव्य के कारण जीव में विकार होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यदि राग को भला जाने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! राग होता अवश्य है, धर्मराग, शुभराग आसक्ति का (होता अवश्य है), तथापि उसे **भलो नहीं समझता तब अन्य से कैसे राग हो?** धर्मराग को भला न जाने तो दूसरे को प्रीति करके राग हो, ऐसा कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **परद्रव्य से राग-द्वेष करता**

है, वह तो अज्ञानी है,... लो! स्पष्टीकरण देते हैं। परद्रव्य है, इसलिए ठीक करके (मानकर) राग करे, अठीक करके (मानकर) द्वेष करे, वह अज्ञानी है। परद्रव्य में इष्ट–अनिष्टता है कहाँ? समझ में आया? परद्रव्य से। यह मोक्ष अधिकार में ... **परद्रव्य से राग-द्वेष करता है, वह तो अज्ञानी है, ऐसे जानना।**

★ ★ ★

गाथा - ५५

आगे कहते हैं कि जैसे परद्रव्य में रागभाव होता है, वैसे मोक्ष के निमित्त भी राग हो तो वह राग भी आस्रव का कारण है,... आहाहा! **उसे भी ज्ञानी नहीं करता है:—**

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीदु॥५५॥

अर्थ :- ओहोहो! **जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा...** परवस्तु में राग कर्मबन्ध का कारण है। भगवान आत्मा स्वभाव चैतन्य आनन्द का आश्रय करके जो निर्जरा होती है, वह परद्रव्य के आश्रय से बन्ध होता है। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है, उसका अवम्बन लेने से तो शुद्धता प्रगट होती है। परद्रव्य के अवलम्बन का आश्रय करे तो अशुद्धता प्रगट होती है। और वह अशुद्धता प्रगट हो, उसे भली जाने, वह अज्ञान है। समझ में आया?

अर्थ :- जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा, वैसे ही रागभाव यदि मोक्ष के निमित्त भी हो तो आस्रव का ही कारण है,... इच्छा उठे कि मोक्ष हो और यह हो, वह आस्रव का कारण है। गाथा नहीं वह? 'बोहिलाभं। कम्मखहो...' दु:ख का क्षय होओ, कर्म का क्षय होओ, समाधिमरण होओ। बोधि लाभ आता है। वह तो एक भावना है। समझ में आया? परन्तु विकल्प से उसे ऐसा करे कि यह हो तो इससे होता है, इससे होता है। विकल्प से मोक्ष होता है। मोक्ष की तीव्र इच्छा करें तो मोक्ष होता है। वह तो अज्ञान है।

मुमुक्षु : लगन... लगन।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगन किसकी? आत्मा की लगन।

मुमुक्षु : मोक्ष का तीव्र राग होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। मोक्ष तो पर्याय है। पर्याय का राग कैसे? आत्मद्रव्य जो ज्ञायकमूर्ति है, उसकी अन्दर लगन लगनी चाहिए। तब उसे साध्य में मोक्ष है, ऐसा कहने में आवे। ध्येय में द्रव्य है, तब साध्य में मोक्ष है, ऐसा कहने में आवे। साधक-साध्य कहा न? उपाय-उपेय नहीं कहा? उपेय-मोक्ष, वह साध्य है; उपाय, वह कारण है। उसे द्रव्य का ध्येय है। जिसे अकेली पर्याय का ध्येय है, उसे तो द्रव्य की खबर नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! मोक्ष की पर्याय प्रगट करना, वह ध्येय है, साध्य है। परन्तु वह होती कहाँ से है? वह पर्याय मोक्ष के मार्ग की पर्याय से भी वह ध्येय होता नहीं। अन्दर का द्रव्यस्वभाव है, उसका आश्रय लेने से मोक्ष होता है। आहाहा!

राग भाव यदि मोक्ष के भी हो तो आस्रव का ही कारण है... आहाहा! मोक्ष अधिकार—मोक्षपाहुड़ है न। **कर्म का बन्ध ही करता है,...** कर्म का बन्धन करे। मोक्ष का राग / इच्छा करे तो बन्धन होता है। आहाहा! **इस कारण से जो मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर...** पर्याय इष्ट है, प्रिय—इष्ट है। ऐसा तो प्रवचनसार में कहा नहीं? अनिष्ट का नाश किया और इष्ट की प्राप्ति की। इष्ट अर्थात् पूर्ण निर्मल पर्याय की प्राप्ति हुई। अनिष्ट का नाश हुआ। यह तो एक वस्तु का स्वरूप बतलाया। परन्तु उसे ही इष्ट मानकर राग करे कि यह ठीक है, समझ में आया? तो पर्यायबुद्धि हुई। आहाहा! यह तो सब अटपटा मार्ग है। भीखुभाई! वहाँ कहीं था नहीं। आहाहा!

इस कारण से जो मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर वैसे ही रागभाव करता है तो वह जीव मुनि भी अज्ञानी है... देखा! अज्ञानी है, ऐसा कहा। यहाँ तो आत्मा चिदानन्द भगवान, जिसमें सिद्ध की पर्यायें भी अन्दर अनन्त पड़ी हैं। उस द्रव्य को जिसने कब्जे में लिया, उसे मोक्ष हुए बिना रहेगा ही नहीं। मोक्ष की इच्छा नहीं है। उसमें सब आता है, भाई! द्रव्यदृष्टिप्रकाश में। हमारे तो मोक्ष भी करना नहीं और

केवलज्ञान भी चाहिए नहीं। वह तो हो जायेगा। आनन्द चाहिए। द्रव्यदृष्टिप्रकाश। पाटनीजी! देखा है न? उसमें से यह बड़ा विवाद उठा है न! ज्ञानचन्दजी का पत्र था। द्रव्यदृष्टिप्रकाश निश्चयाभास है, ऐसा बाहर प्रसिद्ध करो तो हम आयेंगे। तुम्हारे ज्ञानचन्दजी। मुम्बई में थे न? कलकत्ता? दिल्ली थे, दिल्ली, हों! .... पत्र आया है। निश्चयाभासी सिद्ध करो। अरे! तुझे क्या काम है? सत्य तो डिगता नहीं। वह तो उसे द्रव्य के ध्येय का बहुत जोर है, इसलिए उसमें बाहर आ गया है। उसे कोई उपदेश करना नहीं था, दूसरे को समझाना नहीं था। आ गया है अन्दर से।

मुमुक्षु : शुभाशुभभाव से नुकसान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात है। वह तो ध्रुव को नुकसान नहीं, ऐसा कहते हैं। ध्रुव जो है, वह तो शुभाशुभभाव हो तो भी नुकसान नहीं है और केवलज्ञान हो तो ध्रुव को लाभ नहीं है। वह तो दूसरी बात है। सदृश ध्रुव चिद्घन जो है, वह तो ऐसा का ऐसा है। भले अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़ हो तो उसमें कुछ ध्रुव को नुकसान नहीं और केवलज्ञान हो जायें तो ध्रुव को लाभ हो, ऐसा नहीं है। ध्रुव तो ध्रुव ही है। आहाहा! समझ में आया? लोगों की दृष्टि में अन्तर, उसका अर्थ बदले न। अन्तर पड़ता है। ... द्रव्य के ऊपर के जोर के कारण यह सब आता है। पर्याय ध्यान करे तो करो, यह कौन बोलता है? वह तो पर्याय जानती है। मैं किसका ध्यान करूँ? पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो। परन्तु यह कौन जानता है? पर्याय जानती है या ध्रुव?

मुमुक्षु : ...

पूज्यगुरुदेवश्री : परन्तु वह उसमें आ ही गयी अन्दर। ३२०(गाथा) में आ गया न? जीव बन्ध-मोक्ष करता नहीं। परन्तु यह कौन जानता है? पर्याय। जीव जो है, वह उपजता भी नहीं, व्यय होता नहीं। पर्याय में आता ही नहीं। उस पर्याय को द्रव्य करता नहीं। परन्तु यह कौन जानता है? ज्ञानपर्याय जानती है या द्रव्य जानता है? आहाहा! ३२० में बहुत आ गया। ३२० गाथा, जयसेनाचार्यदेव की (टीका)। अपने वाँचन हो गया है। यह तो भाई मध्यस्थ जीव हो, उसे सत्य समझना हो, उसकी बात है। कोई पक्ष रखकर मेरी बात सिद्ध हो ऐसा, ... वह यह वस्तु नहीं है।

क्योंकि वह आत्मस्वभाव से विपरीत है,... मोक्ष हो, ऐसा राग करे और राग में ठीक माने तो वह तो आत्मस्वभाव से विपरीत मान्यता हुई। आहाहा! ऐसा कि अपने मोक्ष की इच्छा करेंगे तो मोक्ष शीघ्र आयेगा-जल्दी आयेगा, ऐसा नहीं है। इच्छा तो राग है। राग करने से मोक्ष जल्दी आये ? या राग छोड़ने से आये ? **अपने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है।** लो। भगवान आत्मा का स्वभाव, वह राग से रहित है। तो राग करने से आत्मा का स्वभाव प्रगट हो, ऐसा वह स्वरूप नहीं है। आहाहा! इसका भावार्थ कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

फाल्गुन कृष्ण १४, शुक्रवार, दिनांक २२-०३-१९७४
गाथा - ५५ से ५७, प्रवचन-१३४

५५वीं गाथा का भावार्थ। मोक्ष की भी इच्छा करना, वह बन्ध का कारण है, यह बात सिद्ध करनी है। **मोक्ष तो सब कर्मों से रहित अपना ही स्वभाव है...** मोक्ष अर्थात् समस्त कर्म से रहित, यह नास्ति। **अपना ही स्वभाव है। अपने को सब कर्मों से रहित होना है, इसलिए यह भी रागभाव ज्ञानी के नहीं होता है,...** सर्व कर्म से रहित होऊँ, ऐसी इच्छा से कर्म से रहित होगा, ऐसी इच्छा ज्ञानी को होती नहीं। क्या कहा, समझ में आया? मेरा मोक्ष हो। इच्छा करूँ तो मोक्ष होगा, ऐसी इच्छा धर्मी को—ज्ञानी को होती नहीं। **यदि चारित्रमोह का उदयरूप राग हो...** वृत्ति राग उठे। चारित्रमोह की प्रकृति के निमित्त के वश से **उस राग को भी बन्ध का कारण जानकर रोग के समान छोड़ना चाहे तो...** आहाहा! उस राग को रोग समान जानकर, मोक्ष की इच्छा को—राग को भी रोग समान जानकर। आहाहा! **बन्ध का कारण जानकर रोग के समान छोड़ना चाहे तो वह ज्ञानी है ही और इस रागभाव को भला समझकर आप करता है...** मैं मोक्ष की इच्छा करूँ तो उससे मुझे कल्याण होगा। मोक्ष की मेरी इच्छा है न? मेरी इच्छा कहाँ दूसरे की है? ऐसा कहते हैं। ऐसा मानकर राग करता है, वह तो अज्ञानी है। आहाहा! मोक्ष का अधिकार है न! मोक्ष तो आत्मा का निर्मल पूर्ण स्वभाव है। उसमें इच्छा करे तो मिले, ऐसा है? और वह इच्छा करने से मुझे मिलेगा। मोक्ष की इच्छा है न मुझे? वह तो अज्ञानभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह अलग वस्तु है। बन्धनरहित होने की भावना उसे होती ही नहीं, ऐसा। बन्धनरहित होने का उसे पर्याय में (राग) होता ही नहीं, ऐसी बात है। इच्छा हो, इसलिए मोक्ष होता है और उसे इच्छा नहीं, इसलिए मोक्ष नहीं होता—ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो वीतरागी बिम्ब प्रभु चैतन्यस्वभाव वीतरागस्वरूप ही है। उसमें उसकी

पर्याय में पूर्ण वीतरागता प्रगट हो, ऐसी इच्छा से होगी, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी इच्छा भी बन्ध का कारण है। ज्ञानी को इच्छा हो, परन्तु उस इच्छा से मेरा कल्याण होगा और मोक्ष होगा, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! **रागभाव को भला समझकर आप करता है तो अज्ञानी है।** प्रशस्त राग है न, उसमें कहाँ दिक्कत है ? ऐसा। मोक्ष के लिये हम राग करते हैं न! ऐसा जो मानता है, वह राग को अपना करनेयोग्य और उससे मोक्ष होगा, (ऐसा मानता है), वह तो अज्ञानी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं कुछ समझता नहीं तुम्हारी भाषा।

मुमुक्षु : आत्मा मोक्षस्वरूप ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षस्वरूप त्रिकाल है परन्तु पर्याय... मोक्षस्वरूप त्रिकाल है, परन्तु त्रिकाल में एकाग्र हो तब मोक्ष की पर्याय प्रगट हो न ? ... द्रव्य में पड़ी है, उसमें क्या हुआ ? द्रव्य में मोक्ष है, ऐसी प्रतीति हुई, तब वह मोक्ष की पर्याय उसमें से प्रगट होती है। उसमें पड़ी है, उसमें से आती है। आहाहा! मोक्ष कोई इच्छा करने से होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव सब रागादिकों से रहित है... भगवान आत्मा का स्वभाव तो उन शुभरागादि से रहित है। **उसको इसने नहीं जाना,...** उसे यह इच्छा करूँ तो मिलेगा, ऐसा प्राप्त करनेवाले को (लगता है)। मेरा स्वभाव ही रागरहित वीतराग है। मेरा स्वभाव वीतरागस्वरूप है, वह राग से प्राप्त हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! राग का विकल्प, वह तो दुःखरूप है। राग का विकल्प कि मोक्ष करूँ, वह तो दुःखरूप है। दुःख की वृत्ति से सुख की प्राप्ति होगी ? यह तो अन्तर का मार्ग वीतराग का है। रागमात्र दुःखरूप है और आत्मा का स्वभाव सुखरूप है। उस सुखरूप की प्राप्ति करने के लिये दुःखरूप राग की वृत्ति से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है।

इस प्रकार रागभाव को मोक्ष का कारण और अच्छा समझकर करते हैं, उसका निषेध है। राग मोक्ष के लिये करना, वह भी अच्छा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : संसार की इच्छा करने की अपेक्षा तो मोक्ष की इच्छा....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह अच्छी नहीं, अच्छी नहीं। इच्छा स्वयं आकुलता और दु:ख है। 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दु:ख मूल।' इसलिए तो यहाँ यह अधिकार लिया है। इच्छामात्र दु:खरूप है, मोक्ष तो सुखरूप है। उस दु:खरूप की इच्छा से मोक्ष सुख प्राप्त होगा? **इस प्रकार रागभाव को मोक्ष का कारण और अच्छा समझकर करते हैं, उसका निषेध है।**

★ ★ ★

गाथा - ५६

अब **आगे कहते हैं कि जो कर्ममात्र से सिद्धि मानता है, उसने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है, वह अज्ञानी है, जिनमत से प्रतिकूल है :—**

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो॥५६॥

ओहोहो! मतिज्ञान आदि इन्द्रियज्ञान कर्म के क्षयोपशम से होते हैं। क्षयोपशम से, उसका अर्थ? कि वह क्षायिकभाव नहीं, वह स्वभावभाव नहीं। इन्द्रिय के आधीन हुआ वह ज्ञान है। उसे यहाँ कर्म कहते हैं। वह कर्म से उत्पन्न हुई मति, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ :- जिसकी बुद्धि कर्म ही में उत्पन्न होती है, ऐसा पुरुष स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान... केवलज्ञान एक समय में परिपूर्ण... ऐसे इन्द्रियज्ञान से ज्ञान हो, इतना और ऐसा ही मैं हूँ—ऐसा माननेवाला केवलज्ञान स्वभाव को दूषण देता है। कहना है ऐसा कि इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्ड है, उतना ही मैं हूँ, ऐसा माननेवाला अखण्ड केवलज्ञानस्वरूप आत्मा को वह मानता नहीं। समझ में आया? आहाहा! **स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान...** अकेला ज्ञान स्व-भाव, अपना स्वभाव ज्ञान खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से वह स्वभाव नहीं। आहाहा! **इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्डरूप है,...** भावइन्द्रिय तो एक-एक अंश को जाननेवाली खण्ड इन्द्रिय है।

अपने-अपने विषय को जानता है... वह तो खण्डज्ञान है। **जो जीव इतना मात्र**

ही ज्ञान को मानता है,... बस, ऐसा लेना है। भावेन्द्रिय के खण्डज्ञान से जानने में आवे, इतना ही मैं। **अपने-अपने विषय को जानता है, जो जीव इतना मात्र ही ज्ञान को मानता है,...** इतना वह मैं। पूरा सर्वज्ञस्वरूप है, स्वभाव जिसका सर्वज्ञ है और वह सर्वज्ञस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। वह मतिज्ञान का आश्रय लेकर जो केवलज्ञान का निषेध करता है, उसका यहाँ खण्डन है। मोक्ष अधिकार है न! केवलज्ञान अकेला ज्ञानमूर्ति, भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी को न मानकर इन्द्रियज्ञान जितना मैं हूँ, ऐसा माने, वह केवलज्ञान को दूषण देता है और केवलज्ञान अखण्ड को खण्ड-खण्ड मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी बुद्धि कर्म में ही उत्पन्न होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह कर्म अर्थात् कर्म का निमित्त है न उसमें? क्षयोपशमभाव। इन्द्रियज्ञान है न, वह कर्मज्ञान कहलाता है वह। वह स्वभावज्ञान नहीं। पाठ यह है न। '**कम्मजादमइओ**' वह इन्द्रिय के आधार से कर्म के आश्रय से क्षयोपशम हुआ इन्द्रियज्ञान, उसे ही अपना मानता है। उसे पूर्ण ज्ञान सर्वज्ञ है, उसकी खबर नहीं। वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा माननेवाला अज्ञानी है, जिनमत को दूषण करता है। भाषा देखो! '**जिणसासणदुसगो**' जैनशासन अर्थात् केवलज्ञानमय वस्तु, अकेला ज्ञानमय पूर्णानन्द सर्वज्ञस्वभाव को मानना और इसे अनुभव करना, इसका नाम जैनशासन। यह तो इन्द्रियज्ञान से ज्ञान हुआ, उतना ही आत्मा, ऐसा माननेवाला अखण्ड ज्ञान को नहीं मानता, अखण्ड ज्ञान का आश्रय करने से जो जैनशासन खड़ा होता है वीतरागी निर्मल पर्याय, उसे वह खण्ड-खण्ड करके दूषण देता है। दूसरे प्रकार से कहें तो इन्द्रियज्ञान से जो ज्ञान हुआ, उतना ही मैं हूँ—ऐसा माननेवाला अखण्ड ज्ञान का निषेध करता है। समझ में आया? वहाँ मोक्ष की इच्छा का निषेध किया, अब यहाँ खण्ड-खण्ड ज्ञान का निषेध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

(अपने में महादोष उत्पन्न करता है।) यह तो ठीक। **जिनमत को दूषित करता है।** जिनमत अर्थात् वीतरागी पर्याय। अखण्ड केवलज्ञान परमात्मा स्वयं, उसका आश्रय

करने से तो निर्मल अखण्ड शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान पर्याय प्रगट होती है, वह त्रिकाली अखण्ड ज्ञान के आश्रय से होती है। वह अखण्ड ज्ञान नहीं मानता, वह जैनशासन को नहीं मानता। वह जैनशासन को दूषण देता है। आहाहा! इन्द्रियज्ञान से ही मुझे ज्ञान होगा। वह खण्ड-खण्ड इन्द्रियज्ञान, वही आत्मा—ऐसा माननेवाला अखण्ड केवलज्ञान मूर्ति प्रभु को खण्ड-खण्डरूप से स्वीकार करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अखण्ड केवलज्ञानस्वरूप प्रभु का आश्रय करके जिसने अखण्ड के आश्रय—अवलम्बन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति हो, वह अखण्ड के आश्रय से होती है। पाँच इन्द्रिय के खण्ड-खण्ड के आश्रय से नहीं होता। तो उस खण्ड-खण्ड के आश्रय से माननेवाला अखण्ड ज्ञान से ही उत्पन्न होता है, उसे दूषण देता है। समझ में आया? आहाहा!

इन्द्रियज्ञान से ज्ञान (हो) उतना मैं, ऐसा माननेवाला अतीन्द्रिय केवलज्ञानस्वभाव आत्मा और उसके आश्रय से होती अतीन्द्रिय केवल सर्वज्ञस्वभावपर्याय को वह दूषण देता है। आहाहा! इन्द्रियज्ञान के आश्रय से केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। त्रिकाली अखण्ड ज्ञानस्वरूप ध्रुव के आश्रय से केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐसा जो नहीं मानता, वह जैनशासन अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी जो आत्मा, उसका भान होने पर जो पर्याय में वीतरागता आवे, उसे वह नहीं मानता। यह इन्द्रियज्ञान को माननेवाला राग से लाभ होता है और इन्द्रियज्ञान से लाभ होता है, ऐसा माननेवाला है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

(समयसार) ३१ गाथा में आया न यह? '**जो इंदिये जिणित्ता**' यह जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, एक-एक विषय को जाननेवाली और इन्द्रिय के विषय—स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राग-द्वेष, स्त्री, वीतरागवाणी, वीतराग, वह सब इन्द्रिय का विषय है वह तो, इससे इन्द्रिय ही है। उस खण्ड-खण्ड ज्ञान जितना माननेवाला, उस इन्द्रियज्ञान को ही मानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? खण्ड-खण्ड तो वह तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा से क्षयोपशमभाव हुआ है, हुआ है स्वयं से भले, परन्तु उसमें कर्म की अपेक्षा रही है और आत्मस्वभाव ऐसा है कि जिसमें कर्म की अपेक्षा उघाड़ की या उदय की है ही नहीं। आहाहा!

चैतन्यसूर्य ज्ञान का नूर अकेला ज्ञान का प्रकाश अखण्ड अभेद चैतन्य के आश्रय

से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होकर केवलज्ञान होता है। परन्तु इन्द्रियज्ञान के आश्रय से केवल(ज्ञान) होता है अर्थात् इन्द्रियज्ञान को ही वह माननेवाला है। समझ में आया? मोक्ष अधिकार है न! इसलिए मोक्ष की इच्छा से भी मोक्ष नहीं होता, तथा खण्ड-खण्ड ज्ञान से भी मोक्ष नहीं होता, ऐसा। आहाहा! और जो खण्ड-खण्ड ज्ञान से मोक्ष माननेवाले हैं अथवा खण्ड-खण्ड ज्ञान से आत्मा को माननेवाले, वे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा और उसके आश्रय से होती वीतरागी शुद्ध उपयोगदशा को दूषण देते हैं। क्योंकि खण्ड ज्ञान के आश्रय से शुद्ध उपयोग नहीं होता। अखण्ड ज्ञान ध्रुव के आश्रय से शुद्ध उपयोग होता है। मार्ग ऐसा भारी सूक्ष्म! लोगों को अटकता है, कहते हैं। वह विकल्प में अटका, मोक्ष होगा मुझे इच्छा से। यहाँ खण्ड ज्ञान में अटका, ऐसा कहते हैं।

इन्द्रियज्ञान से जो क्षयोपशमभाव है उतना मैं, वह कर्म को ही माननेवाला है। वह कर्मरहित आत्मा का स्वभाव शुद्ध है और शुद्ध होगा, ऐसा वह माननेवाला नहीं। सूक्ष्म बात है। आहाहा! मति-श्रुत अज्ञान है, उसे ही वह माननेवाला है, इतना बस। वह केवलज्ञान अन्दर स्वभाव है और केवलज्ञान प्रगट होगा पर्याय में, उसे मानता नहीं। स्पष्टीकरण करेंगे।

भावार्थ :- मीमांसक मतवाला कर्मवादी है, सर्वज्ञ को नहीं मानता है,... सर्वज्ञस्वभाव जीव का है और सर्वज्ञपना प्रगट हो, वह तो होवे तो प्रगट हो न? यह लोग सर्वज्ञस्वभाव को मानते ही नहीं। **इन्द्रिय ज्ञानमात्र ही ज्ञान को मानता है,...** देखो! इन्द्रिय से जो ज्ञान होता है, इतने ज्ञान को माननेवाले हैं। **केवलज्ञान को नहीं मानता है,...** आहाहा! बड़ा सिद्धान्त। अभी यह बड़ी गड़बड़ उठी है न! केवलज्ञान वर्तमान पर्याय को जाने और उससे सब जाने। बिल्कुल केवलज्ञान की व्याख्या ही ... रतनचन्दजी लिखते हैं न! मुख्त्यार। वर्तमान पर्यायपूर्वक भूत-भविष्य को जाने, वह अखण्ड खण्ड ज्ञान के आश्रय से। वह बात ही झूठी है। आहाहा!

मुमुक्षु : शक्तिरूप मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शक्तिरूप है, ऐसा मानते हैं। यहाँ तो व्यक्तरूप है, ऐसा जाने। तीन काल, तीन लोक की जगत की जड़ और चैतन्य की पर्याय ऐसे प्रगट है। उस समय प्रगट थी, यहाँ प्रगट थी, यहाँ प्रगट होगी, यहाँ प्रगट है, इस प्रकार ऐसा जानते

हैं। शक्ति के आश्रय से त्रिकाल जाने, वह तो अनुमान ज्ञान हो गया, परोक्ष ज्ञान हुआ। आहाहा! वह यहाँ यह कहना चाहते हैं। मीमांसक का अर्थ यह भी (है कि) जो खण्ड-खण्ड ज्ञान को माननेवाला वर्तमान की अवस्था से सबको जाननेवाला, वह भी खण्ड ज्ञान को ही माननेवाला है। आहाहा!

केवलज्ञान को नहीं मानता है, इसका यहाँ निषेध किया है, क्योंकि जिनमत में आत्मा का स्वभाव सबको जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कहा है,... देखो! इसका स्वरूप ही है। ज्ञ—स्वरूप, ज्ञ—स्वभाव। ज्ञ-स्व-भाव। निज का ज्ञ—स्वभाव और वह ज्ञ है, वह परिपूर्ण है। वह परिपूर्ण सर्वज्ञस्वभावी ही आत्मा है। समझ में आया? **केवलज्ञान को नहीं मानता है,...** और इन्द्रियज्ञान के ज्ञान को ही परिपूर्ण मानता है, इसलिए इतना ही मानता है। **इसका यहाँ निषेध किया है,... परन्तु वह कर्म के निमित्त से आच्छादित होकर...** देखा! **इन्द्रियों के द्वारा क्षयोपशम के निमित्त से खण्डरूप हुआ,...** लो! वह क्षयोपशम है, वह तो खण्डरूप ज्ञान है। आहाहा! ४९ (गाथा में) आया है न अव्यक्त में, नहीं? कि क्षयोपशम ज्ञान भी उसका स्वभाव नहीं। निमित्त तो नहीं, राग तो नहीं, परन्तु क्षयोपशम का अंश है, वह भी आत्मस्वभाव नहीं।

मुमुक्षु : ....आत्मस्वभाव नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। क्षयोपशम है। वैसे जितना अंश क्षयोपशम है, इतना स्वभाव है, यह दूसरी बात है। यह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है, मोक्षमार्गप्रकाशक में। वह तो एक बन्ध का कारण नहीं, इतना बतलाने के लिये। परन्तु इतना ही अंश है, वह वस्तु नहीं। आहाहा! क्षयोपशम उसका स्वभाव ही नहीं। उसका स्वभाव तो पारिणामिकभाव त्रिकाल एकरूप है। अकेला ज्ञानदल सहज स्वभाव जिसे कर्म के उदय की अपेक्षा नहीं, जिसे कर्म के अभाव की अपेक्षा नहीं। ऐसी चीज़ सर्वज्ञस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, पूर्णस्वरूप, अखण्डस्वरूप, उसे जो मानते नहीं, वे खण्ड-खण्ड ज्ञान को माननेवाले कर्म से उत्पन्न हुए भाव को मानते हैं। स्वभाव से उत्पन्न हुए स्वभाव को मानते नहीं। बड़ा विवाद है ... रतनचन्दजी ने। एक व्यक्ति ने अच्छा जवाब दिया है। नरेन्द्र ने। नरेन्द्र? उस ओर कोल्हापुर। कोल्हापुर का है कोई पण्डित। अच्छा जवाब दिया है। आहाहा! ऐसे भले जैनरूप से गिने, परन्तु उसे अखण्ड ज्ञान, एक समय का

ज्ञान तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष जाने, ऐसी-ऐसी पर्याय का अंश, पर्याय का समूह, वह सर्वज्ञपद है। समझ में आया?

एक समय की सर्वज्ञपर्याय तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को प्रत्यक्ष, वह पर्याय को जानने पर प्रत्यक्ष ज्ञात हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा जो अखण्ड स्वभाव, उसे न मानकर इन्द्रियज्ञान ... माननेवाले। यह तो विवाद उठे हैं न! वह बेचारा पहले पक्ष में आ गया। बाद में... ....

... भगवान ने देखा तत्प्रमाण हो, तब तो समवाय हो गया। भगवान ने भव्य-अभव्य देखे हैं। भगवान ने भव-अभव नहीं देखे। गये थे तो सहारा कराने को। परन्तु कमजोर हो गया। (संवत्) १९७२ की बात है, ७२। ५८ वर्ष हुए। हमारे गुरु थे, भद्रिक थे, बहुत वैरागी थे। सभा में हजारों लोगों में ऊँची नजर न करे व्याख्यान में। भाई! भगवान ऐसा कहते हैं। वे चले गये। परन्तु तत्त्व की कुछ वस्तु की खबर नहीं। यह प्रश्न उठा ७२ की फाल्गुण शुक्ल १३ होगी लगभग। यह भी १३। और चौदस को वहाँ गये और पूर्णिमा को पाणियार गये थे, तब अपवास किया था। इसलिए उसकी बात है। आहाहा! यह प्रश्न ऐसा उठा था। भगवान ने देखा, (वैसा होगा), वह बहुत बार कहते, भगवान ने देखा वैसा होगा, अपने कुछ पुरुषार्थ नहीं कर सकते।

मुमुक्षु : केवलज्ञान तो नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान नहीं। केवलज्ञान तो माना तब कहलाये कि एक समय की सत्ता जगत में इतनी बड़ी है, ऐसी सत्ता का स्वीकार करे, तब तो उसकी द्रव्य पर दृष्टि जाये, ज्ञान में उसका स्वीकार हो जाये। समझ में आया? ऐसा चलता है। ४४ वर्ष की दीक्षा। हीराजी महाराज तो कैसे! वे कहाँ गये फूलचन्दभाई? यह धीरुभाई और वे सब बहुत जानते हैं। उनके गाँव में हीराजी महाराज बहुत रहते थे। बहुत छाप हीराजी महाराज की। भाई ने नहीं देखे होंगे तुमने। ७१ में, ७१। राजकोट, (संवत्) १९७१। भाई ठाकसीभाई ने प्रार्थना की थी तब।

मुमुक्षु : चातुर्मास में रहने की प्रार्थना की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रार्थना की थी। परन्तु वे स्वयं बेचारे बहुत भले व्यक्ति और

... उन मूलचन्दजी को ... बहुत विवाद हो। फिर वह समझे कि बापू! हम परदेश में... बाहर न कहे। ऐसे बहुत भले व्यक्ति। बहुत भले व्यक्ति। लौकिकरूप से तो उनकी ... देखे थे या नहीं तुमने बाबूभाई? नहीं देखे होंगे। हरिचन्दभाई ने देखे होंगे। इन्होंने तो देखे होंगे। आहाहा! ऐसे पाट पर बैठे हों तो लोग सुनें वहाँ डोल उठें। ऐसा वैराग्य और शान्त... शान्त... परन्तु इस वस्तु की खबर नहीं होती, हों!

यह बात उठी कि भगवान ने देखा तत्प्रमाण (पुरुषार्थ होगा)। कहा, यह वाणी किसके घर की? भगवान ने देखा और भगवान जिसे ज्ञान में बैठे, उसे भव हो सकते ही नहीं। ७२ की बात है। ५८ वर्ष पहले की। तुम्हारे जन्म से पहले। आहाहा! इसलिए हाँ किया रात्रि में। बराबर है यह कानजी कहते हैं वह। इतनी बात हीराजी महाराज ने स्वीकार कर ली। परन्तु दूसरे दिन जहाँ पालियाद गये वहाँ ... कर रहे थे। कपड़े खोजे न शाम-सवेरे? हो गया फिर बोले वे। ऐ... मूलचन्दजी! यह तू कहता है ऐसा हो, तब तो पाँच समवाय सिद्ध हो जायें। जिस काल में होनेवाला हो, वह होता है। ऐसा वह पाँच समवाय माने नहीं वे लोग। भगवान ने भव्य-अभव्य देखे हैं। भव नहीं। ओय ... मारा, कहा। इतने ४४ वर्ष की दीक्षा, हिन्दुस्तान का हीरा कहलाये। 'हीरा अेटला हीर बाकी सुतरना फाळका।' ऐसा कहलाता था, हों! उनकी छाप बहुत थी बहुत, बापू! हीरा तेरा हीर। आहाहा! मर गये तब तो ऐसे लोग रोवे। छाती फाट रोते थे। दस-दस लाख के आसामी, लड़का २० वर्ष का मर जाये, ऐसे रोते। यह कांप में। ७४ की चैत्र कृष्ण अष्टमी। मेरा हीरा जाता है। ऐसा रोवे वह पुकारे, हों! रायचन्द गाँधी जैसे गृहस्थ व्यक्ति। जिन्हें ५०-५० हजार की आमदनी तब, हों! ७४ की बात है। ऐसा गृहस्थ। वस्तु की, परन्तु इस चीज़ की खबर नहीं होती। वह बेचारे ऐसा बोले, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बापू!

भगवान आत्मा, भाई! सर्वज्ञस्वभावी है। वह सर्वज्ञ की पर्याय जिसे है जगत में। आहाहा! फिर दिखा, वह होगा, यह बाद में। परन्तु सर्वज्ञपर्याय जगत में सत्ता है, ऐसी बात जिसे ज्ञान में बैठी, उसके भव भगवान ने देखे नहीं। उसके भव होते नहीं। बड़ी

खलबलाहट हो गयी, बड़ी खलबलाहट। छोड़कर चले गये तब। पाणियाद। (संवत्) १९७२ की बात है। खलबलाहट, खलबलाहट। यह क्या हुआ? मेरी शंका तो करे नहीं लोग। क्योंकि मैं तो बहुत शान्त... हीराजी महाराज की शंका हुई लोगों को। हीराजी महाराज को मूर्ति का कुछ ... लगता है कानजीस्वामी ने। वे मूर्ति नहीं माने न। उन्हें ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुझे ऐसा कहना है कि ऐसी शैली हो गई, स्थूल हो गई। आहाहा! भगवान ने भव्य-अभव्य देखा है। ४४ वर्ष की दीक्षा। १२ वर्ष की उम्र में ली हुई। और 'हीरा जैसा हीर।' परन्तु इस मूल चीज़ की बात ही नहीं थी। ओहोहो! जिसे केवलज्ञान एक समय की महासत्ता का सामर्थ्यवाला, ऐसी जिसे सत्ता का स्वीकार हो... आहाहा! उस समय ऐसा नहीं था कि द्रव्य के ऊपर ढल जाये। भाई! उस समय ऐसा नहीं था। वह तो बाद में। परन्तु उस समय इतना कहा कि जिसे सर्वज्ञपर्याय की सत्ता ज्ञान में बैठे, उसे भव हो नहीं सकते। द्रव्य के ऊपर जोर का कहाँ था वहाँ?

मुमुक्षु : यह तो ११वीं गाथा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ११वीं गाथा। ओहो! वाह! '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' ऐसी दिगम्बर वाणी—सन्तों की वाणी—केवली की वाणी है। आहाहा! सत्यार्थ प्रभु त्रिकाल का जिसने आश्रय लिया, उसे सम्यग्दर्शन होता है। उसे केवलज्ञान आदि सबकी पर्याय की प्रतीति हो जाती है। आहाहा! अभी यह बहुत विवाद किया है। देखो न, इस क्रमबद्ध के लिये भाई ने लिखा है न, कि जब से क्रमबद्ध निकला... तत्त्वज्ञान मीमांसा में। फूलचन्दजी। तब से केवलज्ञानी को नहीं माननेवाले तो ठीक, परन्तु माननेवालों ने भी शंका उठाई है। जैनतत्त्व मीमांसा में है। यह हो तो केवलज्ञान (माने) तो क्रमबद्ध हो जाये। एक समय में सब जाने यह... यह... तब तो फिर सोनगढ़ का क्रमबद्ध निश्चित हो जाये। हाय... हाय...! सोनगढ़ का है या वस्तु का है? फूलचन्दजी ने कहा था, हों! पहले जब गये थे तब। बनारस। झबेरी के यहाँ आहार करने जाते थे। नहीं थी, प्रतिमा नहीं थी झबेरी के यहाँ? कीमती थी। चोरी हो गयी और फिर मिल गयी। यह वहाँ दर्शन (करने) जाते हुए बीच में यह बात हुई। बराबर बात

है। क्रमबद्ध न हो तो जैनशासन ही सिद्ध नहीं होता, सर्वज्ञपना सिद्ध नहीं होता। तो वैशेषिक मत हो जाये, ऐसा बोले थे बीच में। खबर है ? कैलाशचन्दजी थे, फूलचन्दजी थे। आहाहा! २०१३ की बात है। २०१३ का वर्ष। १७ वर्ष हुए। भाई! एक समय में केवलज्ञान द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सब एक समय में जाने। आहाहा! जिसका स्वभाव, वह क्या न जाने ? वह क्यों न जाने ? और पर के अवलम्बन से जाने, ऐसा स्वभाव हो ही नहीं सकता। आहाहा! ऐसा जो केवलज्ञान नहीं मानते, वे इन्द्रियज्ञान को ही माननेवाले कर्म से उत्पन्न हुए ज्ञान को मानते हैं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? देखो!

कर्म के निमित्त से आच्छादित होकर इन्द्रियों के द्वारा क्षयोपशम के निमित्त से खण्डरूप हुआ, खण्ड-खण्ड विषयों को जानता है... आहाहा! **कर्मों का नाश होने पर केवलज्ञान प्रगट होता है, तब आत्मा सर्वज्ञ होता है।**

मुमुक्षु : कर्म का नाश हो तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाषा तो ऐसी ही हो न! व्यवहार से कहा जाता है। भाषा तो ऐसी ही हो न! भावघातिकर्म का नाश हो, तब द्रव्यघातिकर्म का नाश होता है। आया नहीं १६वीं गाथा में ? प्रवचनसार। द्रव्य और भाव घातिकर्म दो प्रकार के हैं। १६वीं गाथा। भावघाति तोड़ डालता है। यह तोड़ता है, यह कहना व्यवहार है। स्वभाव के अन्दर में उग्ररूप से जहाँ स्थिर हुआ, वहाँ भावघातिपने का उदय नहीं रहता, नाश हो जाता है। तो जड़ तो उसके कारण से नाश होता है। उन परमाणु की पर्याय का स्वकाल ही ऐसा था अकर्मरूप परिणमने का, इसलिए (नाश होता है)।

तब आत्मा सर्वज्ञ होता है। इस प्रकार मीमांसक मतवाला नहीं मानता है,... मीमांसक मतवाले (अर्थात्) इन्द्रियज्ञान से माननेवाले, वे भी नहीं मानते इसका अर्थ, लो न! आहाहा! बौद्धमत अर्थात् अकेली पर्याय को माननेवाले। ऐसे इस मात्र वर्तमान को माननेवाले, वे सब बौद्धमति हैं। **जिनमत से प्रतिकूल है... 'जिणसासणदुसगो'** भाषा क्या की है ? कि सर्वज्ञस्वभाव और सर्वज्ञपर्याय प्रगट हो, वह जैनशासन है। उस जैनशासन में यह है, अन्यत्र कहीं है नहीं। आत्मा सर्वज्ञस्वभाव और वह सर्वज्ञस्वभाव

पर्याय में प्रगट हो, यह जैनशासन में ही है। ऐसे आत्मा के स्वरूप की व्याख्या जैन के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर में भी विवाद उठा है न? एक समय में जाने और दूसरे समय में देखे। यह खण्ड-खण्ड हो गया। ऐई! पाठ है। ४५ सूत्र में मूल पाठ में। ... आहाहा! ऐसा है। जिस समय जाने, उस समय देखे नहीं, जिस समय देखे, उस समय जाने नहीं। ऐसा ही उसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। खोटी-खोटी बातें। आहाहा! यह तो वह दिगम्बर सनातन जैनदर्शन इस वस्तु के स्वरूप को सिद्ध करनेवाला है। आहाहा! ऐसी बात कहीं है नहीं। समझ में आया? वस्तु है, ऐसी जाननी तो चाहिए न। किसी के प्रति विरोध नहीं, वैर नहीं, हों! भगवान आत्मा है वह। विरोध दृष्टि हो, वह भी आत्मा है। आत्मा की दृष्टि से साधर्मी है। पर्याय की दृष्टि में अन्तर है, उसे जानना। समझ में आया? आहाहा!

जिनमत से प्रतिकूल है, कर्ममात्र में ही उसकी बुद्धि गत हो रही है,... यह कर्म अर्थात् अल्पज्ञान में ही उसकी सब बुद्धि समाहित हो गयी है। इन्द्रिय से ज्ञान हो, उतना आत्मा। वह **कर्ममात्र में ही उसकी बुद्धि गत हो रही है, ऐसे कोई और भी मानते हैं...** लो! आया। **ऐसे कोई और भी मानते हैं, वह ऐसा ही जानना।** आहाहा! ज्ञान को खण्ड-खण्ड माने, एक समय में जाने और दूसरे समय में देखे, दूसरे समय में देखे, यह खण्ड-खण्ड हो गया। एक ही समय में पूर्ण जाने और देखे, ऐसा उसका स्वभाव है और ऐसी उसकी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! थोड़ा अन्तर लगे, परन्तु बड़ा अन्तर है। सन्मति तर्क में थोड़ी मेहनत की है, इसका बताने के लिये। यह सब अन्तर, सब अन्तर। और एक समय में दो उपयोग नहीं, एक ही उपयोग है। खोटी बातें हैं। आहाहा! सन्मति तर्क का कुछ ठिकाना नहीं होता। आहाहा! यहाँ तो प्रभु सर्वज्ञस्वभावी, वह कर्म की अपेक्षा से क्षयोपशम हो, उतना वह नहीं। समझ में आया? मोक्ष की इच्छा का निषेध किया और यहाँ खण्ड-खण्ड ज्ञान बन्ध का कारण है, उसका निषेध करते हैं। आहाहा!

ऐसे कोई और भी मानते हैं... यह तो मीमांसक की बात की, इस प्रकार कोई जैन सम्प्रदाय या अन्य में माननेवाले हों, सब **ऐसा ही जानना।** आहाहा! पूर्ण स्वरूप से भरपूर भगवान आत्मा ज्ञान के पूर्ण स्वभाव से, उसे निश्चय आत्मा कहते हैं और निश्चय आत्मा वह। अन्तर के आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट (हो), सद्भूत व्यवहारनय से उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भाषा कैसी की है? कि **'सहावणाणस्स खंडदूसयरो'** जो इन्द्रिय के ज्ञान को ही माननेवाला, वह स्वभाव ज्ञान को खण्ड-खण्ड करके मानता है। अखण्ड स्वभाव ज्ञान है, उसे वह नहीं मानता। आहाहा!

यह एक बात। **'जिणसासणदुसगो भणिदो'** भाई! यहाँ कहा। जैनशासन इसका नाम है कि जो वस्तु सर्वज्ञस्वभावी और सर्वज्ञपर्याय प्रगट हो। ऐसी जिसकी श्रद्धा है, ऐसा जिसे ज्ञान है, उसे जैनशासन कहा जाता है। **'पस्सदि जिणसासणं सव्वं'** आया न? १५वीं गाथा (समयसार)। जो कोई **'जो पस्सदि अप्पाणं'** आत्मा को पूर्ण शुद्ध ध्रुव अबद्धस्पृष्ट जानता है, सामान्य जानता है, नियत जानता है। कषायरहित दुःख-सुख की कल्पना (रहित) जानता है, वह **'पस्सदि जिणसासणं।'** वह सामान्य अर्थात् पूर्ण। पूर्ण जानता है, ऐसा जो उपयोग, वह जैनशासन है। समझ में आया? सामान्य जाने कहो, अबद्धस्पृष्ट जाने कहो, वह पूर्ण जाने कहो।

छह बोल आये न अपने? कल नहीं आये? कलशटीका में कलश में। अबद्धस्पृष्ट। अबद्धस्पृष्ट देखे, वह जैनशासन देखे। लो, इसका अर्थ क्या? आहाहा! जिसका स्वभाव ही अबद्धस्पृष्ट है, अर्थात् मुक्तस्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, स्वच्छता आदि ऐसा जिसका स्वभाव है, वह जो देखता है, मानता है, जानता है, ऐसी पर्याय को जैनशासन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो इतना स्पष्ट कर डाला है, स्पष्ट।

★ ★ ★

गाथा - ५७

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान-चारित्र रहित हो और तब समकितरहित हो तथा अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न हो तो इस प्रकार केवल लिंग भेषमात्र से क्या सुख है ? नग्नपना धारण किया, अट्ठाईस मूलगुण भी रहे, परन्तु भाव न हो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का। ऐसा कहते हैं। उससे क्या हुआ ? धूल में भी कुछ किया नहीं। आहाहा! नग्न हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पाँच महाव्रत (पाले), परन्तु भाव जो चैतन्य द्रव्यस्वभाव, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और रमणता नहीं। आहाहा! परिपूर्ण भगवान आत्मा की परिपूर्णता की प्रतीति, ज्ञान और रमणता नहीं (तो) वह सब निरर्थक जानेवाला है। आहाहा!

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं ॥५७॥

अर्थ :- जहाँ ज्ञान तो चारित्ररहित है,... ज्ञानस्वरूप है इतना जाना, परन्तु उसमें रमणता की स्थिरता नहीं। इतनी धारणा का ज्ञान, हों! शास्त्र पठन से ज्ञान हुआ, जानना इतना, क्षयोपशम। परन्तु '**चरित्तहीणं**' उस स्वरूप में रमणता की दृष्टि और ज्ञान तो है नहीं। जो ज्ञान अन्दर में रमणता करे, वह तो है नहीं। शास्त्र का ऐसा परलक्ष्यी ज्ञान किया। आहाहा! सहजानन्द प्रभु को जानने के शास्त्र से ऐसा ज्ञान किया, परन्तु यहाँ ऐसा जाना चाहिए—अन्दर में जाना चाहिए, वह तो किया नहीं। वह ज्ञान '**चरित्तहीणं**' वह ज्ञान क्या ? आहाहा!

तपयुक्त भी है, परन्तु वह दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व से रहित है,... तप अर्थात् साधुपना। मुनिपना लिया, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं। बाह्याचरण करे पाँच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के, नग्नपना के, परन्तु सम्यक् परिपूर्ण प्रभु परमात्मस्वरूप सहजानन्द की मूर्ति भगवान आत्मा को तो दृष्टि में, वेदन में लिया नहीं। आहाहा! तो वह तप भी निरर्थक है। आहाहा! वह मुनिपना भी निरर्थक है। आहाहा! **अन्य भी आवश्यक आदि क्रियायें हैं,...** विकल्प छह आवश्यक आदि है न ? जितनी क्रियायें व्यवहार की कहलाती हैं। चरणानुयोग में से जो वह भाव करता हो **परन्तु उनमें भी शुद्धभाव नहीं है,...** भाव

अर्थात् यह। वह शुभभाव है सब, परन्तु उसमें शुद्धभाव नहीं। आहाहा! आवश्यक आदि जितनी व्यवहार क्रिया चरणानुयोग की है, वह हो शुभभाव की, **परन्तु उनमें भी शुद्धभाव नहीं है,...** पाठ ऐसा है न? '**भावरहियुं**' यह भाव, वह भाव—शुभ तो है, परन्तु वास्तविक भाव तो शुद्ध है। आहाहा! परिपूर्ण परमात्मा स्वयं है—ऐसी ही श्रद्धा, ज्ञान और रमणता चाहिए, ऐसा शुद्धभाव तो नहीं और अकेले शुभभाव की क्रिया में चौबीस घण्टे लवलीन रहता है, वह कोई चीज़ नहीं, वह मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो मोक्ष का अधिकार है न! आवश्यक आदि शुभ की क्रिया लाख करोड़ करता हो। वह नहीं आती? १३ क्रियाएँ आती हैं न नियमसार में, नहीं? तेरह क्रियाएँ सवेरे-शाम। उससे क्या? वह तो शुभ विकल्प है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। आत्मा में नहीं आया। आहाहा! आत्मा की उपस्थिति—हाजिरी नहीं हुई वहाँ। राग की उपस्थिति रही। आहाहा!

उनमें भी शुद्धभाव नहीं है, इस प्रकार लिंग-भेष ग्रहण करने में क्या सुख है? क्या सुख है? ऐसा कहा है। शुद्धभाव बिना सुख नहीं, ज्ञान और अन्तर में स्थिरता बिना सुख नहीं। दूसरी सब क्रियाएँ भाव में शुद्धभाव नहीं तो सुख नहीं, वह दुःख है। भाषा ऐसी है न? '**किं सोक्खं**' वह आवश्यक क्रिया लाख करे शुभभाव की। '**कि सोक्खं**' वहाँ कहाँ सुख था उसमें? आहाहा! अब उसमें श्वेताम्बर के आचार्य दिगम्बर को निह्नव ठहराते हैं। कितना कहा है! अररर! कितनी स्पष्ट बात ऐसी दीपक जैसी है।

भाई! तेरा परमात्मा शुद्ध है, परिपूर्ण है, अखण्ड है, उसका ज्ञान और श्रद्धा हो, वह भाव कहलाता है। वह भाव मेरा आत्मा, उसका भाव आवे तो स्वभाव कहलाये। राग, वह भाव उसका नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह तो दुःख है, ऐसा कहना है। ज्ञान सन्मुख के लक्ष्यवाला अन्दर स्थिर न हो तो दुःख है। साधु की क्रिया करे परन्तु समकित नहीं तो दुःख है। आवश्यक की क्रिया करे परन्तु शुद्धभाव नहीं तो वह दुःख है। आहाहा!

'**लिंगग्गहणेण किं सोक्खं**' यह जो ग्रहण करना चाहिए, उसका सुख तो तुझे है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा को ग्रहण करके प्रतीति करना, उसमें सुख है। उसका ज्ञान करके उसमें स्थिर होना, वह सुख है और आवश्यक आदि क्रिया में भी स्वसन्मुख

ढलकर जितनी शुद्धता प्रगट हुई, वह सुख है। यह (शुभराग) तो सब दुःख है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी दुःख है, आस्रव है। लोगों को कठोर लगे। वे कहे, पंच महाव्रत पालते हैं, हम चारित्र पालते हैं। राग को पालते हैं।

भावार्थ :- कोई मुनि भेषमात्र से तो मुनि हुआ और शास्त्र भी पढ़ता है। देखा! ज्ञान। **उसको कहते हैं कि शास्त्र पढ़कर ज्ञान तो किया, परन्तु निश्चय चारित्र जो शुद्ध आत्मा का अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष नहीं किया,...** अन्दर आत्मा का अनुभव करना, वह निश्चय चारित्र है। वह तो किया नहीं। आहाहा! और व्यवहारक्रिया, उसे व्यवहार चुस्त होता है। **तप का क्लेश बहुत किया,...** अपवास करे, शरीर सूख जाये, खेद... खेद... खेद... **सम्यक्त्व भावना नहीं हुई...** परन्तु सम्यग्दर्शन की भावना, स्वरूप की एकाग्रता तो है नहीं। आहाहा! **और आवश्यक आदि बाह्य क्रिया की, परन्तु भाव शुद्ध नहीं किये...** अन्तर्मुख से जो भाव शुद्ध होना चाहिए, वह तो किया नहीं। बहिर्मुख की क्रियाएँ की, ऐसा कहते हैं। बहिर्मुख की यह सब क्रियाएँ कीं, परन्तु तूने अन्तर्मुख की क्रिया तो की नहीं। आहाहा! **तो ऐसे बाह्य भेषमात्र से तो क्लेश ही हुआ...** लो! वह तो दुःख ही है, कहते हैं। आहाहा!

उसमें आया न, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' वह दुःख था, सब दुःख। पंच महाव्रत के परिणाम दुःख, छह आवश्यक की क्रिया दुःख। आहाहा! भगवान की भक्ति और वन्दन करना, वह दुःख। ऊपर स्तुति चलती थी तो उसमें लोग प्रसन्न हो गये। देखो! भक्ति की महिमा हुई है। परन्तु वह तो व्यवहार की बात आवे, तब उस भक्ति से उसका वर्णन होता है न! परन्तु है भाव वह तो दुःखरूप। क्या कहा यह? ऋषभदेव की भक्ति चलती थी न, आहाहा! ऐसा कि देखो! भक्ति की महिमा हुई या नहीं सोनगढ़ में? आवे... आवे। क्या करे? अरेरे! ... आहाहा!

क्लेश ही हुआ, कुछ शान्तभावरूप सुख तो हुआ नहीं... आहाहा! ज्ञान अन्तर में स्थिर होना चाहिए जो शान्त, वह तो हुआ नहीं। तपस्यायें, मुनिपना किया, परन्तु सम्यग्दर्शन जो अन्तर में एकाग्रता (होनी चाहिए), वह तो आयी नहीं। आवश्यक की

क्रिया सब की, वह दु:खरूप और शान्तभाव तो आया नहीं। आहाहा! **भेष परलोक के सुख में भी कारण नहीं हुआ... कुछ शान्तभावरूप सुख तो हुआ नहीं और यह भेष परलोक के सुख में भी कारण नहीं हुआ; इसलिए समकितपूर्वक भेष धारण करना श्रेष्ठ है।** सम्यग्दर्शनसहित फिर वेश धारण करना व्यवहार, वह बराबर है। सम्यग्दर्शन ही न हो, अनुभव न हो, आत्मा की ऐसी सत्ता, ऐसा महा, उसका जहाँ भास ही न हो ज्ञान में, तो स्थिर कहाँ हो? ऐसी सब क्रियाएँ... वेश धारण करना, वह श्रेष्ठ है, समकितसहित धारण करे, वह श्रेष्ठ है। इसके बिना सब श्रेष्ठ है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक २६-०४-१९७४
गाथा - ५८ से ६२, प्रवचन-१३५

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ ... है। है न, कहते हैं। यही कहा यहाँ।

चेतनास्वरूप नित्य है और यह ज्ञान है, वह प्रधान का धर्म है,... जानने की जो अवस्था हो, वह प्रकृति का स्वभाव है, चैतन्य का नहीं। **इनके मत में पुरुष को उदासीन चेतनास्वरूप माना है...** उदासीन चेतनास्वरूप। परिणमन चेतनास्वरूप, ऐसा नहीं। बात तो सच्ची है। द्रव्य तो अपरिणामी है, परन्तु अपरिणामी को जाननेवाला परिणाम चेतना के—जानने के हैं, वे कहीं जड़ के नहीं। **अतः ज्ञान बिना तो जड़ ही हुआ,...** लो! राग के भाव के साथ चेतना की पर्याय, उसे तो इसने जड़ माना। चेतना तो एकदम वस्तु उदास ध्रुव है, ऐसा मानता है। **ज्ञान बिना चेतन कैसे?** जानपने की पर्याय बिना चेतन कैसे? ऐसा कहना है। ५८ गाथा। अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़ ५८ गाथा।

मूल तो चैतन्य ध्रुव और उसका परिणमन जो अवस्था का होना, उसे वह प्रकृति का धर्म मानता है, आत्मा का नहीं। वह पर्याय है, वह प्रकृति का कार्य है, आत्मा का नहीं। बदले वह क्या? ऐसा कहे। ध्रुव बदले? इसलिए ध्रुव है, वह उदासीन है। बदले वह जड़ है। इस जगत के अभिप्राय अनेक हैं, भाई! तत्त्व की खबर नहीं होती और भटकता है ऐसा का ऐसा चौरासी के अवतार में।

ज्ञान बिना चेतन कैसे? यह परिणमन ज्ञान बिना चेतन द्रव्य कैसे? परिणमन बिना का ज्ञान होता नहीं। ज्ञानस्वरूप त्रिकाल चैतन्यस्वरूप है, उसका परिणमना, वह उसकी पर्याय है। पर्याय बिना का ज्ञान ध्रुव कैसे? ऐसा कहते हैं। **ज्ञान को प्रधान का धर्म माना है...** यह जानने की दशा को प्रकृति का स्वभाव मानते हैं। **और प्रधान को जड़ माना है...** प्रकृति को तो उसने जड़ माना है। **तब अचेतन में चेतना मानी...** उस अचेतन में उसने जीव माना। **तब अज्ञानी हुआ।** तब वह अज्ञानी रहा। सांख्य की बात है, परन्तु

उसके जैसा अभिप्राय जिसका (हो वे सब आ गये)। जैन के वाडा में उसे वह खबर नहीं कि यह परिणमना, वह क्या? और ऐसा कहे। बदलना पर्याय कैसी? वह मानता था न, पण्डित आया था। उभय शास्त्री। पर्याय क्या? कहे। लो! यह बड़ा पण्डित। उभय शास्त्री। आया नहीं अभी? अष्टमी को उद्घाटन किया तब आया था। महाराष्ट्र का। पर्याय क्या? कहो, अब जैन के पण्डित! पर्याय एक अवस्था है अन्दर। दशा पलटती है, परन्तु पलटती है, वह ज्ञान की दशा है। पलटना, वह जड़ की दशा है (-ऐसा नहीं)। राग है, वह भी अचेतन है। परन्तु उसे जानने की पर्याय है, वह तो ज्ञान की है। उसे जड़ मानना और उसमें आत्मा को मानना, वह तो अचेतन में चेतन माना।

नैयायिक, वैशेषिक मतवाले गुण-गुणी में सर्वथा भेद मानते हैं,... गुणी आत्मा और उसका गुण, वे भिन्न—सर्वथा भिन्न हैं। **तब उन्होंने चेतना गुण को जीव से भिन्न माना...** चेतना गुण से उसका जो जानना, वह भिन्न माना। जीव से वह भिन्न है, ऐसा माना। **तो अचेतन ही रहा।** जाननेवाली पर्याय नहीं रही, इसलिए अचेतन रहा वह तो। यह तो मोक्षमार्ग है न, मोक्षपाहुड़ अर्थात्। उसे मोक्ष होता नहीं, इसलिए चार गति में भटकता है, ऐसा कहना है। **तब उन्होंने चेतना गुण को जीव से भिन्न माना, तब जीव तो अचेतन रहा। इस प्रकार अचेतन में चेतनापना माना।** वह अचेतन प्रकृति का धर्म, उसमें चेतना मानी, ऐसा।

भूतवादी चार्वाक भूत पृथ्वी आदिक से चेतना की उत्पत्ति मानता है,... लो! यह सब पृथ्वी आदि इकट्ठे हों और चेतना उत्पन्न हो। पंच महाभूत में से। इकट्ठे हो न। मदिरा इकट्ठी हो... मद खड़ा होता है न, मदिरा में? उसी प्रकार यह सब इकट्ठे होते हैं उसमें चेतन खड़ा होता है। ऐसा अज्ञानी मानता है। चैतन्य वस्तु है अनादि-अनन्त, अपनी सत्ता—अस्तित्व, जानपने के स्वभाववाला, वह चैतन्य अनादि-अनन्त है। उसकी उसे मान्यता नहीं। **इत्यादि अन्य भी कई मानते हैं...** लो! इत्यादि अन्य भी बहुत प्रकार होते हैं। **वे सब अज्ञानी हैं,...** जाननेवाली पर्याय और ज्ञात हो, ऐसी त्रिकाली वस्तु दोनों को चेतन न माने और पर्याय को अचेतन माने (तो) जड़ है। **इसलिए चेतन में ही चेतन माने वह ज्ञानी है,...** चेतन ध्रुवस्वरूप की ज्ञान की पर्यायसहित उसे माने, वह तो धर्मी जीव है। उसे राग से भिन्न करके, दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प से भिन्न करके,

ज्ञान की पर्याय से त्रिकाल को जाने, वह धर्मी है। आहाहा! लो! **इसलिए चेतन में ही चेतन माने, वह ज्ञानी है, यह जिनमत है।**

★ ★ ★

गाथा - ५९

आगे कहते हैं कि तपरहित ज्ञान और ज्ञानरहित तप ये दोनों अकार्य हैं, दोनों के संयुक्त होने पर ही निर्वाण है:—

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥५९॥

अर्थ :- जो ज्ञान तपरहित है... चारित्र स्वरूप की रमणता बिना का जो ज्ञान है। **और जो तप है, वह भी ज्ञानरहित है...** तप करता है परन्तु उसमें सम्यग्ज्ञान, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका भान नहीं। **तो दोनों ही अकार्य हैं...** इकट्ठा लेना है न? ज्ञान और ज्ञान की रमणता, वह तप, ऐसा। ज्ञान आत्मा और उसकी रमणता, वह तप। अकेला ज्ञान माने और रमणता न माने, रमणता अकेली माने और ज्ञान न माने, वह सब अकार्यकारी है। **इसलिए ज्ञान तप संयुक्त होने पर ही...** सम्यग्ज्ञान—आत्मा का ज्ञान, चेतन का भान, उस तपसहित स्वरूप की स्थिरतासहित हो, तब तो **निर्वाण को प्राप्त करता है।** तो वह मोक्ष प्राप्त करे। उसे संसार का भटकना रहता नहीं।

भावार्थ :- अन्यमती सांख्यादिक ज्ञानचर्या तो बहुत करते हैं... ज्ञानचर्या। **और कहते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति है,...** बस, यह जानना, उससे मुक्ति। **और तप नहीं करते हैं,...** स्वरूप में रमणता की क्रिया को नहीं मानते। **विषय-कषायों को प्रधान का धर्म मानकर...** लो ठीक! विषय-कषाय, वह प्रकृति का कार्य है, धर्म है। **स्वच्छन्द प्रवर्तते हैं। कई ज्ञान को निष्फल मानकर उसको यथार्थ जानते नहीं हैं...** ज्ञान है, वह जानना, वह क्या अब? कुछ तपस्या करो, क्रिया करो तो कल्याण होगा, ऐसा अज्ञानी मानता है। **ज्ञान को निष्फल मानकर उसको यथार्थ जानते नहीं हैं...** जाननस्वभाव प्रज्ञाब्रह्म भगवान का तो उसे ज्ञान नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड से धर्म मानता है।

और तप क्लेशादिक से ही सिद्धि मानकर... तप करे, अपवास करे, दया, दान, व्रत, भक्ति, वह तो सब शुभभाव है। उससे स्वच्छन्द होकर उसे धर्म माने। आहाहा! **क्लेशादिक से ही सिद्धि मानकर...** देखो, भाषा! यह राग की मन्दता दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, वह सब भाव मन्द राग है और क्लेश है। आहाहा! वह तो दुःख है, वृत्ति का उत्थान है, विकार है। उससे धर्म मानते हैं, वे मूढ़ हैं। **क्लेशादिक से ही सिद्धि मानकर...** क्लेश, कष्ट दो, शरीर को कष्ट दो, आत्मा को कष्ट दो तो धर्म होगा, ऐसा मानकर क्लेश, कायक्लेश करे, उसे सिद्धि नहीं होती। **उसके करने में तत्पर रहते हैं।** यह क्रियाकाण्ड करने में तत्पर। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो शुभभाव है, क्लेश है, राग है। आहाहा!

आचार्य कहते हैं कि ये दोनों ही अज्ञानी हैं... आत्मा के ज्ञान बिना क्रिया और आत्मा के ज्ञान में रमणता न हो तो दोनों अज्ञानी हैं। भले सम्यग्दर्शन में स्थिरता पूर्ण न हो, परन्तु स्वरूप में स्थिरता का अंश तो उसे होता है। वे **दोनों ही अज्ञानी हैं। जो ज्ञानसहित तप करते हैं, वे ज्ञानी हैं...** आत्मा के भानसहित आनन्द की लीनता करते हैं, वे ज्ञानी हैं। लो! आहाहा! **वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह अनेकान्तस्वरूप जिनमत का उपदेश है।** ज्ञान ज्ञानरूप से जाने आत्मा को और उसमें स्थित हो, स्थिर अन्दर, आनन्द के स्वरूप में अन्दर स्थिर हो तो उससे उसे मोक्ष होता है।

★ ★ ★

गाथा - ६०

दृष्टान्त देते हैं। उदाहरण।

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि॥६०॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि देखो,... जिसको नियम से मोक्ष होना है... तीर्थंकर जन्म ले, उन्हें तो उस भव में मोक्ष ही निश्चित होनेवाला है। वे तीन ज्ञान लेकर माता के गर्भ में आवे। तीर्थंकर हैं, सर्वज्ञ उस भव में होनेवाले ही हैं। इन्द्र भी उनके

महोत्सव में आये हुए होते हैं। उन्हें खबर है और इन्द्रों को भी खबर है कि इस भव में इनकी मुक्ति है। वे जीव भी, ऐसा। **और जो चार ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इनसे युक्त है...** चार ज्ञान हैं। एक केवलज्ञान नहीं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय। **तप करना योग्य है।** लो! वे भी तप तो करते हैं। आहाहा! **मनःपर्यय से युक्त है, ऐसा तीर्थंकर भी तपश्चरण करता है,...** तपश्चरण का अर्थ स्वरूप में रमणता, आनन्द। वह तपस्या अर्थात् यहाँ मुनिपना, चारित्र, स्वरूप में रमणता। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का भान, अनुभव करके और फिर स्थिरता अन्दर रमणता करना, तब उनकी मुक्ति होती है। अकेले ज्ञानमात्र से मुक्ति नहीं होती। आहाहा! प्रशस्त राग, प्रशस्त राग। लोगों को बहुत गले पड़ा है।

निश्चय से जानकर ज्ञानयुक्त होने पर भी तप करना योग्य है। तप का अर्थ मूल साधुपना चारित्र है, मुनिपना। **(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता को तप कहा है)।** चारित्र में भी उग्रता पुरुषार्थ की उग्रता, रमणता, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को तप कहते हैं। चारित्र में स्वरूप की रमणता, उसमें भी उग्र पुरुषार्थ, उसे यहाँ तप कहते हैं। वह तीर्थंकर को निश्चित है, जन्मे तब से। दीक्षित हुए। तो भी वह दीक्षा ली, ऐसा कहते हैं। सम्यग्ज्ञानसहित है, क्षायिक समकितसहित हैं, ऐसे भगवान तीर्थंकर जन्मे, उन्हें भी दीक्षा लिये बिना, चारित्र हुए बिना मुक्ति नहीं। वह भी चारित्र अंगीकार करते हैं। ओहोहो! स्वरूप की रमणता, आनन्द का खजाना खोलकर अन्दर में रमते हैं... आहाहा! तब मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं।

जन्म लेते हैं... तीर्थंकर मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञानसहित तो जन्म लेते हैं। स्वर्ग में से या नरक में से आते हैं तीन ज्ञानसहित माता के गर्भ में। आत्मा का भान तो पूर्व भव में किया था, उस सहित आये। वे जीव भी **दीक्षा लेते ही हैं,...** यह दीक्षा लोग कहते हैं, वह दीक्षा यह नहीं। ओहोहो! अभी तो झुण्ड के झुण्ड दीक्षा के महिलाओं के। बालब्रह्मचारी महिलायें दीक्षा लें। वह दीक्षा नहीं। यह तो आत्मा के आनन्द में उग्रता का पुरुषार्थ, उसका नाम दीक्षा है। परन्तु जिसने आत्मा क्या है, ऐसा देखा नहीं, उसमें रमणता आवे कहाँ से उसे? आहाहा! **मोक्ष उनको नियम से होना है...** भगवान तीन ज्ञान तो लेकर आते हैं, दीक्षा लें, तब चार ज्ञान होते हैं, **मोक्ष उनको नियम से होना है**

तो भी तप करते हैं,... वे स्वरूप की लीनता का पुरुषार्थ करते हैं। आहाहा! परसन्मुख से हटकर अन्तर में आनन्द में तृप्त-तृप्त रहते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसमें रमना, इसका नाम चारित्र है। चारित्र (अर्थात्) कहीं वस्त्र बदले, नग्न हो, साधु हुए बाहर के, वह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा!

तो भी तप करते हैं, इसलिए ऐसा जानकर ज्ञान होते हुए भी... सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वरूप का भान होने पर भी **तप करने में तत्पर होना,...** स्वरूप में रमणता करने में तत्पर रहना। **ज्ञानमात्र ही से मुक्ति नहीं मानना।** अकेला ज्ञान है, उससे मुक्ति नहीं मानना। ज्ञानस्वरूप चैतन्य का भान करके उसमें स्थिर होना, उसमें रमणता, आत्मा के आनन्द में रमणता, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा का ज्ञान और दर्शन हुआ, इससे उसकी मुक्ति हो जाये, ऐसा नहीं। उसे चारित्र आता ही है। चारित्र बिना मुक्ति नहीं हो सकती। चारित्र अर्थात् स्वरूप की रमणता। बाहर से यह दीक्षा ले, वह तो सब मिथ्यादृष्टि। अभी उसे सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, उसे दीक्षा कैसी? गृहीत मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन काम! जगत को धर्म समझना भारी सूक्ष्म। **ज्ञानमात्र ही से मुक्ति नहीं मानना।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ६१

आगे जो बाह्यलिंग सहित है... वेश धारण किया नग्नपना, **अभ्यन्तरलिंग रहित है...** अभ्यन्तर आत्मा के आनन्द का भान नहीं। अभ्यन्तर लिंग। चैतन्य सहजात्मस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे ज्ञान, दर्शन और रमणता नहीं, वह अभ्यन्तरलिंग रहित है। बाह्य वेश है नग्नपने का। आहाहा! **अभ्यन्तरलिंग रहित है, वह स्वरूपाचरणचारित्र से भ्रष्ट हुआ...** देखा! राग की क्रिया नहीं, परन्तु स्वरूप आचरण। स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञान, ऐसा जो अन्तर में भान, उसमें स्वरूप के आचरणरूप चारित्र। वह स्वरूप है, उसमें आचरण करना, स्थिर होना, इसका नाम चारित्र। **स्वरूपाचरणचारित्र से भ्रष्ट हुआ मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है,...** बाह्यलिंगसहित और अभ्यन्तरलिंगरहित **स्वरूपाचरणचारित्र से भ्रष्ट...** बाह्य से वेश रहा ऐसा का ऐसा। **मोक्षमार्ग का विनाश**

करनेवाला है, इस प्रकार सामान्यरूप से कहते हैं :—

बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू॥६१॥

अर्थ :- जो जीव बाह्य लिंग-भेष सहित है... बाह्य वेश नग्नपना धारण किया। **और अभ्यन्तर लिंग जो परद्रव्यों से सर्व रागादिक ममत्वभावरहित...** लो! परपदार्थ के प्रति सर्व प्रकार के रागरहित ऐसी स्वरूप की स्थिरता **सर्व रागादिक ममत्वभावरहित...** सर्व राग आदि, पर की ममता रहित, **ऐसे आत्मानुभव से रहित है...** वह आत्मा आनन्दस्वरूप, उससे जो रहित है, जिसे आत्मज्ञान नहीं, ऐसे जीव **स्व-चारित्र अर्थात् अपने आत्मस्वरूप के आचरण से भ्रष्ट है,...** लो! इसमें आया स्वरूपाचरण। यह विशेष लिया स्वरूप। सम्यक्‌चारित्र—अपने आनन्दस्वरूप के भानसहित स्वरूप में आचरण, शुद्ध चैतन्य वस्तु में उसका आचरण, वीतरागी पर्याय, उसका नाम चारित्र है।

यह स्वरूप **आत्मस्वरूप के आचरण...** अर्थात् कि चारित्र **से भ्रष्ट है,...** ऐसा। **परिकर्म अर्थात् बाह्य में नग्नता,...** देखा! बाह्य में नग्नता। परिकर्म लिया है न? **ब्रह्मचर्यादि शरीरसंस्कार से परिवर्तनवान द्रव्यलिंगी होने पर भी...** ब्रह्मचर्य पालन करे शरीर से, शरीर के संस्कार से रहित, ऐसा परिवर्तनरूप द्रव्यलिंग हो। स्नान नहीं, शरीर को नहलावे नहीं, धुलावे नहीं, ऐसा बाह्यलिंग। **वह स्व-चारित्र से भ्रष्ट...** परन्तु आत्मा के आनन्दस्वरूप में स्व-चारित्र—स्वरूप में रमना, वह स्वचारित्र। राग की क्रिया, वह तो सब परचारित्र है। **बाह्य में नग्नपना, ब्रह्मचर्य आदि...** बाह्य झूठ न बोले, चोरी न करे, वस्त्र न रखे, **शरीरसंस्कार से परिवर्तनवान... संस्कार से परिवर्तनवान द्रव्यलिंगी होने पर भी...** बराबर नग्न मुनि दिगम्बर। **वह स्वचारित्र से भ्रष्ट होने से मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है।** आहाहा! लो! नग्नपना धारण करे, पंच महाव्रत के विकल्प का क्लेश करे, परन्तु स्वस्वरूप का चारित्र नहीं, उससे भ्रष्ट है। पंच महाव्रत के परिणाम (हैं, परन्तु) स्वचारित्र से भ्रष्ट है। आहाहा!

स्वचारित्र से भ्रष्ट होने से मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है। (अतः मुनि-साधु को शुद्धभाव को जानकर निज शुद्ध बुद्ध एकस्वभावी आत्मतत्त्व में नित्य

भावना... निजस्वरूप जो शुद्ध चैतन्य, बुद्ध—ज्ञानस्वरूप, उसका एकरूप स्वभाव त्रिकाल आत्मतत्त्व नित्य भावना। ऐसा चिदानन्दस्वभाव, ध्रुवस्वभाव की नित्य भावना करना। उसके समीप की रमणता करना, वह भावना।

मुमुक्षु : समीपता शब्द बहुत आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समीप है। यह समीप हुआ न, वह दूर है। राग है, वह दूर है और यह समीपता है। चौदहवीं गाथा में आता है न! चौदह। पाँच बोल आते हैं (समयसार की) चौदहवीं गाथा में। समीप-समीप। समीप का अर्थ स्वसन्मुख। यह तो भाषा बदली। परसन्मुख है, उससे स्वसन्मुख होना, वह समीप। शास्त्रभाषा तो ऐसी है। आत्मा आनन्द का धाम है चैतन्य स्वयं ज्योति सुखधाम। उसके सन्मुख होना, इसका नाम उसकी ओर ढलना कहो या समीपता कहो। राग की क्रिया की समीपता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और उससे रहित चैतन्यस्वरूप में जो सावधान है, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! भारी कठिन मार्ग।

शुद्ध बुद्ध एकस्वभावी आत्मतत्त्व में... नित्य त्रिकाल आनन्दस्वरूप में नित्य भावना—अन्तर्मुख की एकाग्रता, स्वरूप-आचरण की दशा प्रगट करना, उसका नाम चारित्र है। लो!

भावार्थ :- यह संक्षेप से कहा जानो कि जो बाह्यलिंग संयुक्त है और अभ्यन्तर अर्थात् भावलिंग रहित है,... नग्नपना धारण करे, हजारों स्त्रियों को छोड़े, दुकान छोड़े, धन्धा छोड़े, परन्तु अन्दर में राग से रहित आत्मा की दशा को प्रगट नहीं किया, वे सब बाह्यलिंगी स्वरूप से भ्रष्ट हैं। आहाहा! **बाह्यलिंग संयुक्त...** है। नग्नपना धारण (करे)। वह नग्नपना बाह्य का, हों! वस्त्रपना, वह तो बाह्यलिंग भी नहीं। आहाहा! **बाह्यलिंग संयुक्त...** एकदम नग्नपना अंगीकार किया। **और अभ्यन्तर अर्थात् भावलिंग रहित है,...** अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि और स्वरूप स्थिरता से रहित है।

वह स्वरूपाचरणचारित्र से भ्रष्ट... स्वरूप का आचरण, उससे भ्रष्ट। राग का आचरण भले करे। महाव्रत के परिणाम, समिति, गुप्ति का आचरण करे, परन्तु स्वरूप-आचरण से वह भ्रष्ट है। आहाहा! स्वरूप जो आनन्द और ज्ञानस्वरूप अपना, अनादि-

अनन्त आत्मा का स्वरूप शुद्ध, उसके स्वरूप का आचरण, उसमें रमना, वह तो है नहीं। बाह्य क्रियाकाण्ड में लवलीन है। आहाहा! **मोक्षमार्ग का नाश करनेवाला है।** आहाहा! यह पंच महाव्रत के परिणाम, पाँच समिति, (तीन) गुप्ति सब हो, परन्तु स्वरूप का आचरण नहीं, वह मोक्षमार्ग का घातक है, बन्धमार्ग का साधक है। आहाहा! लोगों को बाहर लगे। पाँच-पाँच हजार की आमदनी हो दुकान की, दस-दस हजार की आमदनी हो, स्त्रियाँ हों सैंकड़ों। दुकान छोड़कर, घर छोड़कर साधु हो, परन्तु वह कहीं साधु नहीं।

मुमुक्षु : लोगों को तो उसकी महिमा आवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ... दुनिया को तो यह ख्याल में आवे। परन्तु स्वरूप-आचरण शुद्ध चैतन्य के अस्तित्व के भानसहित, उसमें स्थिर होना, उस चारित्र से तो भ्रष्ट है। आहाहा! भले बाह्य से बालब्रह्मचारी हो, स्त्री का संग न हो, पैसा छोड़ दिया हो, दुकान छोड़ दी हो, परन्तु अन्दर में स्वरूप-आचरण। ऐसी भाषा प्रयोग की है न! स्वरूप-आचरण। ज्ञान और आनन्द जिसका—भगवान आत्मा का स्वरूप, उसका आचरण, उससे भ्रष्ट है, पंच महाव्रत पालन करे तो (भी) स्वरूपाचरण से भ्रष्ट। वह कहे, पंच महाव्रत ले, उसे चारित्र होता है। ऐसा कहते हैं, लो!

स्वरूप-आचरण। वह स्वरूप-आचरण नहीं था। पंच महाव्रत की क्रिया, नग्नपना, वह स्वरूप-आचरण नहीं था, वह तो पर आचरण है। आहाहा! स्वरूप-आचरण चारित्र से... स्वरूप-आचरण चारित्र, ऐसा। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का अन्दर आचरण करना। उससे राग के आचरण करनेवाले भ्रष्ट हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, पाँच समिति, गुप्ति इत्यादि (पालन करे परन्तु) उस स्वरूप-आचरण से तो भ्रष्ट है। आहाहा! यह करते-करते होगा न? स्वरूप-आचरण एकदम होगा? और ऐसा कहते हैं कितने ही। राग करते-करते स्वरूप-आचरण होगा? या राग को छोड़ते स्वरूप-आचरण होगा? आहाहा!

अभ्यन्तर भावलिंगरहित है, वह स्वरूपाचरण। भाषा कैसी प्रयोग की है! स्वरूप-आचरण। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका

आचरण। उस स्वरूप से आचरण करनेवाला। उससे भ्रष्ट और अकेली क्रिया पंच महाव्रतादि में रहा, वह स्वरूपाचरणचारित्र से भ्रष्ट है। भ्रष्ट है, इसका अर्थ? स्वरूप चारित्र है नहीं। हुआ था और भ्रष्ट है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह मोक्षपाहुड़ है न! इसलिए आत्मा शुद्ध चैतन्य बुद्ध घन, उसके—स्व के आचरण से ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र होता है और उसके स्व के आचरण से ही मुक्ति होती है। आहाहा!

मोक्षमार्ग का नाश करनेवाला है। आहाहा! कहते हैं कि जो पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन करे, वह स्वरूप के आचरणरहित-चारित्र से वह भ्रष्ट है। ऐसा पालन करने पर भी चारित्र से भ्रष्ट है। आहाहा! **मोक्षमार्ग का नाश करनेवाला है।** आहाहा! साधु के अट्ठाईस मूलगुण व्यवहार, उसे पालन करे, परन्तु स्वरूप की आचरण दृष्टि नहीं और स्वरूप-आचरण नहीं तो वह मोक्षमार्ग का घात करनेवाला है। परन्तु ऐसे पाँच महाव्रत पाले, पाँच समिति, गुप्ति ऐसा आचरण करे, निर्दोष आहार ले, उसके लिए बनाया हुआ न ले तो उसके अन्दर... कहते हैं कि वह तो सब बाह्य क्रिया है। उसमें स्वरूप चैतन्यमूर्ति स्वरूप में आचरण वह नहीं आया, वह तो सब बाह्य आचरण है। आहाहा! राग की क्रिया हो शुभ की। प्रशस्त शुभराग, वह भी स्वरूप-चारित्र से भ्रष्ट है। लो! वे कहे, प्रशस्त राग से लाभ होता है। प्रशस्त है न राग? परन्तु प्रशस्त राग, वह तो अप्रशस्त की अपेक्षा से प्रशस्त कहा। भगवान आत्मा की स्वरूप की अपेक्षा से तो सभी अप्रशस्त ही है। शुभ हो या अशुभ (हो)।

'सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू' उसे मोक्षमार्ग प्रगट नहीं हुआ। वह राग की क्रिया को ही धर्म मानकर करता है तो मोक्षमार्ग प्रगटा ही नहीं। प्रगटा नहीं, उसे घात किया—ऐसा कहा जाता है। प्रगटा नहीं, उसने मोक्षमार्ग का घात किया। आहाहा! पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, उस भाव में लवलीन रहे, परन्तु उससे रहित शुद्धस्वरूप द्रव्यस्वभाव का आचरण नहीं, वे सब स्वरूप से भ्रष्ट हैं। आहाहा! **मोक्षमार्ग का नाश करनेवाला है।** मार्ग था? इसका अर्थ यह कि चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति प्रगट हो, वह दूसरे में होती नहीं। वह राग की क्रिया, महाव्रत की क्रिया से आत्मा का स्वरूप नहीं सधता, ऐसा कहते हैं। स्वरूप का साधन तो अन्तर से भिन्न है। भाई! इतना तो करने दो इसे।

साधा ऊँचा... क्या कहते हैं? दिया इतना पुण्य, नहाये उतना पुण्य। ऐसा कहते हैं न? आहाहा! नहाया ही नहीं। वह लेप किया है। आहाहा! पंच महाव्रत के भाव, वह तो राग है। राग से लिप्त है। नहाया तो पुण्य कहाँ से आया वहाँ? आहाहा! पूरा आत्मा चिदानन्द को दृष्टि में ले तो उतनी उसे पवित्रता प्रगट हो। यह नहाया उतना पुण्य कहा जाता है। उतनी पवित्रता प्रगट हुई अन्दर में। मोक्षपाहुड़ है। जिससे मोक्ष हो, उसकी बात यहाँ मुख्य है। जिससे मोक्ष न हो, उस बात को बन्ध में डाल दिया है। यहाँ तो अधिकार यह है न!

★ ★ ★

गाथा - ६२

आगे कहते हैं कि जो सुख से भावित ज्ञान है, वह दुःख आने पर नष्ट होता है, इसलिए तपश्चरणसहित ज्ञान को भाना :- आहाहा!

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए॥६२॥

साता हो अनुकूल और उसमें ज्ञान की उसने भावना की हो, वह प्रतिकूलता जहाँ आयेगी, वहाँ वह ज्ञानभावना भ्रष्ट हो जायेगी। साता का उदय हो, बाहर के साधन सब हों और ज्ञान की भावना, ज्ञान की भावना किया करता हो। जब दुःख आवे, उस समय वह भ्रष्ट हो जायेगा, सहन नहीं कर सकेगा। जिसे एक बार छोड़ना कठिन पड़े दिन में, उसे पूरे चौबीस घण्टे पानी और आहार न मिले, ऐसी शैली हो जाये। कहो, उस समय जो बातें करता हो, वह ज्ञान नहीं रहे। भाषा प्रयोग की है।

अर्थ :- सुख से भाया हुआ ज्ञान... अर्थात् अनुकूल, खाना, पीना, मौजमस्ती में ज्ञान की भावना की हो, परन्तु जब प्रतिकूलता आयेगी तो सहन नहीं कर सकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात है। यहाँ तो अकेला जानपना साधारण बात

धारी है, उसे प्रतिकूलता के सहन का भाव नहीं होगा तो भ्रष्ट हो जायेगा। प्रतिकूलता के प्रसंग में स्वरूप से भ्रष्ट हो जायेगा। सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, उसे प्रतिकूलता आवे तो वह तो रमणता में रहेगा। परन्तु यहाँ सम्यग्ज्ञान ही जहाँ नहीं, ऐसे प्रसंग में दुःख (भोगेगा)। वर्तमान में अनुकूल दिखाई दे, वहाँ तक धर्म करते हैं, धर्मध्यान करते हैं, ऐसा उसे ज्ञात होता है। प्रतिकूलता आवे तो... छह महीने, बारह महीने तक आहार न रहा, उस समय उसे क्या होगा? सहन तो है नहीं। जंगल में डाल दिया किसी ने, लो! टाईम टू टाईम चाहिए हो उसे। आहार के समय गर्म रोटी, सवेरे चाय, शाम खिचड़ी, कढ़ी। खिचड़ी-कढ़ी न हो तो भुजिया, ऐसा लो। भुजिया बनाये, पुडला बनाये शाम को। ऐसा सब चला है अभी। फरसाण। वह तो खिचड़ी और कढ़ी थी दो, शाम को। बहुत तो दही और खिचड़ी अन्त में खाये। दही थोड़ा ऐसा था। सादा भोजन। अभी तो सब भोजन भी भ्रष्ट हो गया। वस्त्र सादा, बोली सादी, भोजन सादा। यह तो ओहोहो! यहाँ पट्टा डालना, यहाँ ... यहाँ किया था, प्लेन में वे थे क्या? कंघा। वहाँ पहले उतरना हो तब कंघा निकालकर बाल-बाल व्यवस्थित करते थे। यह वह कितनी उपाधि! यह वहाँ देखा था प्लेन में। ... कंघा साथ में रखते लगते हैं। ऐसे बाहर में रुके हुए उसे आत्मा....!

कहते हैं, **सुख से भाया हुआ ज्ञान है...** अर्थात् कि सुख से अनुकूलता में जिस ज्ञान की भावना की हो, **वह उपसर्ग-परीषहादि के द्वारा...** कठोर उपसर्ग और परीषह पड़ने पर **द्वारा दुःख उत्पन्न होते ही...** वह दुःख सहन नहीं होगा। आहाहा! **नष्ट हो जाता है,...** कहते हैं कि जब तक साता का उदय अनुकूलता हो, शरीर में ठीक, खाने-पीने के सब साधन ठीक, रहने के, सोने के, बैठने के, तब यह भावना करे, परन्तु जब प्रतिकूलता देखे, तब यह भावना भ्रष्ट हो जायेगी, टिक नहीं सकेगा। आहाहा! इसलिए इसे आत्मा में रमणता करने की भावना प्रगट करना (चाहिए)। दुःख के प्रसंग में भी चलित न हो, ऐसा इसे करना (चाहिए)। आहाहा!

कठोर रोग आवे। ऐसे रोग कि ऐसे दर्द चढ़ता हो, सिर घूमता हो, उस समय साता की अनुकूलता में जो ज्ञान **'मैं आत्मा ज्ञान हूँ, ज्ञान हूँ, देह से भिन्न हूँ'**—ऐसी जो भावना रखी थी, ऐसे काल में देह में कुछ होने पर... हाय... हाय... मुझसे सहन नहीं

होता। आहाहा! चिल्लाहट मचाता है न। मुझसे सहन नहीं होता। ऐसी पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... पूरे शरीर में दाह उठे। पैर में ऐसी तीव्र ज्वर ऐसी हो कि पैर में चिंगारी उठे, ऐसी अग्नि जैसी, चिंगारी उठे अन्दर से। आहाहा! वह ऐसी प्रतिकूलता के काल में, अनुकूलता में जो ज्ञान की भावना की है, वह प्रतिकूलता में तुझे दुःख होगा। उसमें से तेरा लक्ष्य छूट जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती तो बहुत अनुकूलता में रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भान है अन्दर। उस भान के अन्दर बहुत दृढ़ता है। यहाँ तो साधारण प्राणी के लिये बात करनी है। श्रेणिक राजा देह छूटते हुए सिर पछाड़ा। उन्हें ज्ञान और समकित को दिक्कत नहीं। यहाँ तो साधारण व्यक्ति साताशिलिया के समय सुविधा में ज्ञान की बातें करे, वह असुविधा के समय उसे कठोर दुःख होगा।

मुमुक्षु : पुण्य का उदय हो, तब क्या हो? सुविधा ही हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुविधा हो परन्तु उसमें यदि अन्दर से भिन्न भासित नहीं हुआ हो, भावना नहीं की हो तो वह जब दुःख आयेगा, तब हो गया। दब जायेगा उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : किसी को पूरी जिन्दगी (अनुकूलता रहे)।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे तो क्या हुआ उसमें? अन्त में मरते समय तो यह खिंचेगा यह। अंतड़ियाँ खिंचेंगी, ऐसा होगा, ऐसा होगा। डॉक्टर कहे, अब दवा काम नहीं करेगी। ईशारा देकर दूसरे को कह दे। दवा काम नहीं करेगी। अभी एक-दो केस वहाँ देखे थे। वहाँ एक बार गये थे, नहीं? कल सवेरे नहीं? परसों। वह बहुत (वृद्ध) व्यक्ति नहीं था? वृद्ध था। जरा-सा बेचारा ऐसा... आहाहा! यह गोंण्डलवालों का। जीतुभाई नहीं? जीतुभाई का साला था। उसका पुत्र आया था। पुत्र था वह कहे, मेरे मामा को वह हुआ है। बेचारे को कुछ नहीं, बस। जरा-सा खड़े हों तो आहाहा! .... वस्त्र अच्छे पहने थे। महाराज आनेवाले हैं, नीचे उतारे थे। ऐसा अन्दर से हो, शूल चढ़े। खाने-पीने की लहर की हो और जहाँ शूल चढ़े तो चिल्लाहट मचा जायेगा।

मुमुक्षु : पीने-पीने की .... न हो तो खाना-पीना छोड़ दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ देने की नहीं, परन्तु उसकी तीव्रता-आसक्ति न हो न उसकी। हो, होता है, परन्तु यह तो खाने, पीने की लहर उठे। मौसम्बी का पानी दोपहर में, सवेरे दूध, दोपहर में रोटी, पूरणपोळी, शाम को भजिया। उस समय प्रतिकूल आवे तो पानी नहीं लिया जाये। वह हुआ था न, क्या कहलाता है? रोग नहीं होता? केंसर नहीं। केंसर तो है परन्तु वह रुधिर पानी जैसा हो जाये। पाण्डुरोग। पाण्डुरोग।

मुमुक्षु : उसमें तो पानी पीने की मनाही।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनकार करे। मैंने देखा था ध्रांगध्रा में। गोपाणी के दामाद थे। हरगोविन्द गोपाणी के बहनोई। (संवत्) १९७६ की बात है। २४ और ३० = ५४ वर्ष पहले। जवान अवस्था। डॉक्टर कहे, इसके पास पानी ले जाना नहीं। यह दस्त को बैठे तो पानी देना नहीं। पानी पी जायेगा। पानी पियेगा, वैसे ही तुरन्त मर जायेगा। आहाहा! ऐसा रोग। यह पाण्डुरोग कहते हैं न! खून सफेद हो जाये। इसे कुछ देना नहीं। वह बहाना करे कि दस्त जाना है, दस्त जाना है। परन्तु पानी नहीं। खड़े रहना, पानी पकड़कर रखना तुम पानी। पीयेगा तो तुरन्त मर जायेगा। आहाहा! शरीर की ऐसी दशा के समय धर्म का भान नहीं किया हो, अन्दर में रमणता का भान नहीं किया तो ऐसे अवसर में दब जायेगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं। यह तो मोक्ष का मार्ग है न। ... बात करनी है न। आहाहा!

सुख से भाया हुआ ज्ञान है, वह उपसर्ग... सिंह, बाघ आये, सर्प आया कठोर, बिच्छू ने काट खाया। आहाहा! बिच्छू का डंक। ठाकरियो बिच्छू होता है न! एक बार यहाँ देखा था बाहर जंगल जाते हुए। इतना बड़ा काला बिच्छू था। ठाकरियो बिच्छू। काला ऐसा मानो डिब्बा हो और बड़ा ऐसा चलता था। डसे तो मर जाये। वह पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... मूर्च्छा आ जाये उसे। कहते हैं कि जिसने सुख की साताशिलीया की अनुकूलता में ज्ञान की भावना की हो, वह ऐसे अवसर में दब जायेगा। इसलिए पहले से रागरहित होकर स्थिरता करने का प्रयास करना, प्रयत्न करना, प्रयास करना। आहाहा! ऐसा कहते हैं। सन्निपात हो जायेगा। लो! आहाहा!

उपसर्ग-परीषहादि... परीषह कर्म के उदय से और उपसर्ग बाहर का संयोग।

द्वारा दु:ख उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है,... अकेली वेदना... वेदना... वेदना... वेदना... **इसलिए यह उपदेश है कि जो योगी ध्यानी मुनि है...** आत्मा के आनन्दस्वरूप में अन्दर में जिसका जुड़ान है, वह योगी। राग में जुड़ान है, उतना वह अयोगी-अज्ञानी। आहाहा! **योगी ध्यानी मुनि है, वह तपश्चरणादि के कष्ट (दु:ख) सहित आत्मा को भावे।** अर्थात् प्रकूिलता के प्रसंग में भी आत्मा को रागरहित भावना करे, वरना आड़ा-टेढ़ा हो जायेगा, दर्द आयेगा और (दु:ख) होगा। आहाहा! १०८ डिग्री धूप—ताव। सिर फट जाये अन्दर। ऐसा बुखार... ऐसा बुखार... धाणी फूटे ऐसा। लोग नहीं कहते? धाणी फूटे ऐसा बुखार। उस समय पहले आत्मा की भावना (भाना)। अनुकूलता के प्रसंग में स्वभाव-सन्मुख का साधन नहीं किया हो, स्थिरता का अभ्यास, अन्तर में रमणता का अभ्यास, अन्तर में रहने का निवास करने का अभ्यास नहीं किया हो, वह दु:ख से भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा! मोक्षमार्ग है न, मोक्षप्राभृत है न! **(अर्थात् बाह्य में जरा भी अनुकूल-प्रतिकूल न मानकर निज आत्मा में ही एकाग्रतारूपी भावना करे, जिसमें आत्मशक्ति और आत्मिक आनन्द का प्रचुर संवेदन बढ़ता ही है)**। कोष्ठक में डाला है।

भावार्थ :- तपश्चरण का कष्ट अंगीकार करके... देखो! प्रतिकूलता का संयोग प्रगट करके, ऐसा कहते हैं। **ज्ञान को भावे तो परीषह आने पर ज्ञानभावना से चिगे नहीं,...** एक बार भी छोड़ा न जाये। आहाहा! सवेरे दूध चाहिए, दोपहर में रोटी, दो बजे मूँगफली, शाम को और .... एक टाईम भी छोड़े तो इसे कठिन पड़े, उसे जब आहार छोड़ देने का (प्रसंग आवे)... डॉक्टर कहे कि आहार लेना नहीं, वरना मर जाओगे। आहाहा! पहले से आत्मा की ओर की उग्र भावना नहीं की होगी तो दु:ख के समय वह भावना नष्ट हो जायेगी। आहाहा! **ज्ञान को भावे तो परीषह आने पर भी ज्ञानभावना से चिगे नहीं,...** ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा स्वयं उसमें जिसकी लीनता (हुई होगी), वह प्रतिकूलता के प्रसंग में भ्रष्ट नहीं होगा। दूसरे तो छिंद जायेंगे, दब जायेंगे अन्दर। आहाहा!

चिगे नहीं, इसलिए शक्ति के अनुसार... शक्ति के अनुसार दु:खसहित ज्ञान को भाना,... दु:ख अर्थात् कष्ट के प्रसंग करके अन्दर शान्ति रखना। **जिससे आत्मशक्ति और आत्मिक आनन्द का प्रचुर संवेदन बढ़ता ही है।** लो! **शक्ति के अनुसार दु:ख**

सहित ज्ञान को भाना, सुख ही में भावे तो दुःख आने पर व्याकुल हो जावे... आहाहा! वे कहते थे न तब। आत्मा देह से भिन्न है। सुई मारो चुभाओ। सुई चुभाओ, वह तो जड़ को है, सुन न! आहाहा! यह अलग। आहाहा! यह तो ऐसा कहे आत्मा भिन्न... वह रामविजय कहते थे तब (संवत्) २००६ वर्ष में। पालीताणा। देह से आत्मा भिन्न है... देह से आत्मा भिन्न है... परन्तु सुई चुभावे तब भिन्न कहाँ है? अरे! तीनों काल भिन्न ही है। न माने तो भी भिन्न है और माने तो भी भिन्न है। आहाहा!

दुःख आने पर व्याकुल हो जावे तो तब ज्ञानभावना न रहे, इसलिए यह उपदेश है। अन्तर में आत्मा का भान करके आत्मा की रमणता का अभ्यास करना। शान्ति जैसे रहे, वैसे अभ्यास करना। वरना प्रतिकूलता के समय शान्ति का नाश हो जायेगा। इसलिए अनुकूलता के समय भाया हुआ ज्ञान प्रतिकूलता के समय भी अन्दर में भाना। ऐसा लेना।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १३, रविवार, दिनांक १३-०९-१९७०
गाथा - ६३ से ६५, प्रवचन-८७

दसलक्षणी पर्व का नौवाँ दिन है। मूल में यह चारित्र की आराधना का दिन है। सम्यग्दर्शनसहित तो है, ऐसा गिनने में आया है। उसकी आराधना की यहाँ बात है न। समझ में आया? सम्यग्दर्शन न हो तो उसको क्या करना? वह तो अपने अष्टपाहुड़ में आता है। यहाँ तो पहले आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है, ऐसा अन्तर में अनुभव करके प्रतीति करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। क्या करना पूछते हैं। वही बात तो यहाँ चलती है। समझ में आया? सबेरे प्रश्न उठा था, क्या करना? यहाँ तो सुबह, दोपहर, रात्रि को वही चलता है। आत्मा... आगे आयेगा। देखो! अष्टपाहुड़ में। यहाँ अपने अकिंचन चलता है न?

तिविहेण जो विवज्जदि, चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो, णिग्गथत्तं हवे तस्स॥४०२॥

यहाँ मुख्य मुनिपने की व्याख्या है न।

अन्वयार्थ :- जो मुनि लोक व्यवहार से विरक्त होकर... लोक व्यवहार का अर्थ दुनिया से तो विरक्त है ही। स्त्री-पुत्र से तो विरक्त है ही। परन्तु अन्दर में देव-गुरु-शास्त्र के विनय में रहना, ऐसा व्यवहार जो है, वह लोक व्यवहार है। उससे भी विरक्त होकर। समझ में आया? **'चेयणमियरं च सव्वहा संगं' चेतन अचेतन परिग्रह को सर्वथा मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से छोड़ता है...** मुनि है। स्त्री, कुटुम्ब तो है नहीं, त्यागी है। अन्दर में संघ में रहने से पारस्परिक व्यवहार विनय करना पड़ता है, वह भी विकल्प व्यवहार है। समझ में आया? उसे भी छोड़कर अपना चैतन्य और अचेतन अपने से भिन्न सर्व से भिन्न होकर अपने आत्मा का ध्यान करना। निर्ग्रन्थ, अकिंचन—मेरा कोई है नहीं। मेरा है नहीं और मेरा है, वह मेरे से दूर है नहीं। मैं तो

ज्ञान और आनन्द, शान्तस्वरूप हूँ। वह मेरे से दूर है नहीं। और रागादि दूर है, वह मेरी चीज़ नहीं।

भावार्थ :- मुनि अन्य परिग्रह तो छोड़ता ही है... उसके तो वस्त्र-पात्र भी नहीं। नग्न मुनि दिगम्बर है। **परन्तु मुनित्व के योग्य ऐसे चेतन तो शिष्य संघ...** चैतन्य तो जैसा शिष्य और संघ। **अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमण्डलु धर्मोपकरण और आहार, वसतिका देह ये अचेतन इनसे भी सर्वथा ममत्व छोड़े...** आत्मा अकिंचन-बिल्कुल परपदार्थ के साथ सम्बन्ध है ही नहीं। अकेला अखण्डानन्द भगवान असंग चेतन राग और मन का भी जिसको संग नहीं, ऐसे असंग चैतन्य का (बाह्य) संग छोड़कर अन्तर में ध्यान करना। उसका नाम अकिंचन धर्म कहने में आता है। समझ में आया?

और सर्वथा ममत्व छोड़े, ऐसा विचारे कि मैं तो आत्मा ही हूँ... मैं तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा स्वभाववाला मैं आत्मा हूँ। **अन्य मेरा कुछ भी नहीं है...** विकल्प भी नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प भी मेरी चीज़ नहीं।

मुमुक्षु : कहाँ खड़े रहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कहते हैं न, आत्मा में खड़े रहना। इसलिए तो बात चलती है। राग में खड़ा है, वह तो दोष है। आहा! सूक्ष्म बात है, भाई! तत्त्व की प्राप्ति और तत्त्व में लीनता अपूर्व पुरुषार्थ है। वह कोई साधारण पुरुषार्थ से मिलता नहीं।

वस्तु भगवान आत्मा पर से बिल्कुल भिन्न है। **ऐसा निर्ममत्व हो, उसके अकिंचन धर्म होता है।** अरे! मेरी चीज़ तो आनन्द और ज्ञान है। उससे तो मैं भरपूर भरा हूँ। और विकल्पमात्र से दूसरी चीज़ है, संग में आनेवाली चीज़ से तो रहित हूँ। असंग आत्मा हूँ। ...भाई! ऐसी बहुत कठिन बात है। चारित्र की आराधना की बात है। सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित, चारित्रसहित संग छोड़कर ध्यान करना, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! समझ में आया? उसको यहाँ शास्त्र में निर्ग्रन्थ कहा न? **'णिग्गथत्तं हवे तस्स'।** उसको निर्ग्रन्थपना अन्तर में स्वभाव की श्रेणी में चढ़ने से विभाव से ग्रन्थ-विभावग्रन्थ—राग से भिन्न होकर निर्ग्रन्थ श्रेणी में वह जाते हैं। समझ में भी नहीं, ख्याल में नहीं, क्या करना उसकी खबर नहीं तो करे क्या वह? वह कहते हैं?

मुमुक्षु : आप बताइये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? अकिंचन धर्म की बात हुई।

★ ★ ★

गाथा - ६३

अपने यहाँ ६३ गाथा चलती है। ६३ है? उसमें भी वह आया, देखो!

आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण।
झायव्वो णिय अप्पा णाऊणं गुरुपसाएण॥६३॥

अर्थ :- आहार, आसन, निद्रा, इनको जीतकर और जिनवर के मत में... सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, उन्होंने जो आत्मा कहा, ऐसा **गुरु के प्रसाद से...** अर्थात् निर्ग्रन्थ सन्त गुरु के पास से आत्मा क्या है, उसको जानना चाहिए। समझ में आया? अज्ञानी से वह आत्मा जानने में आता नहीं, ऐसास कहते हैं। समझ में आया? 'बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात, सेवे सद्गुरु के चरण सो पावे साक्षात्'। आता है या नहीं? उसमें है। है या नहीं उसमें? गुरु प्रसाद आया, उसमें है।

बिना नयन पावै नहीं, बिना नयन की बात,
सेवे सद्गुरु के चरण सो पावे साक्षात्॥

यह गुजराती तो समझ में आता है या नहीं? 'बिना नयन पावे नहीं' सम्यक् नेत्र बिना अपने आत्मा की प्राप्ति होती नहीं। 'बिना नयन की बात' इस आँख के बिना की बात है। 'सेवे सद्गुरु के चरण सो पावे साक्षात्।' धर्मात्मा जैन परमेश्वर का भान हुआ ऐसा आत्मा, ऐसे आत्मज्ञानी गुरु से साक्षात् आत्मा कैसा है, वह मिल सकता है। वह प्राप्त करे तो।

जप तप और व्रतादि सब तहाँ लगी भ्रमरूप,
जप तप और व्रतादि सब तहाँ लगी भ्रमरूप
जहाँ लगी नहीं सन्त की पाई कृपा अनूप।

कृपा का अर्थ उसकी योग्यता है तो कृपा है, ऐसा कहते हैं। कृपा का अर्थ वह

है। भगवान की 'करुणा हम पावत है तुमकी, वह बात रही सुगुरुगम की।' परमात्मा को कहते हैं, हे नाथ! आपकी करुणा। तो भगवान को करुणा होती है? भगवान तो वीतराग है। परन्तु वीतराग के ज्ञान में अपना स्वरूप क्या है, ऐसा आया और भान हुआ तो भगवान की करुणा हुई, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। समझ में आया? 'पाया की यह बात है निज छन्दन को छोड़।' लो। हिन्दी है, श्रीमद् का है, ये तो हिन्दी है। हिन्दी में नहीं समझते?

पाया की यह बात है निज छन्दन को छोड़
पीछे लाग सत्पुरुष के तो सब बन्धन तोड़।

ज्ञानी पुरुष का आशय क्या है, वह समझना अलौकिक बात है। साधारण अपने स्वच्छन्द से शास्त्र पढ़े और मिले, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया? इतने शब्द हैं। बाकी तो लम्बा है। **गुरु के प्रसाद से जानकर...** दो क्यों लिया? आयेगा, देखो!

भावार्थ :- आहार, आसन, निद्रा इनको जीतकर आत्मा का ध्यान करना... भगवान आत्मा... यहाँ पहले नास्ति से बात की। आहार, आसन लगाना और निद्राजय करना। बाद में अन्दर आत्मा का ध्यान करना। **अन्यमतवाले भी कहते हैं परन्तु उनके यथार्थ विधान नहीं है,...** आत्मा की बात तो अन्यमति भी बहुत करते हैं। परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवर वीतरागदेव के अभिप्राय से जो आत्मा है, ऐसे पहले जानना चाहिए। समझ में आया? वह भी... क्या कहते हैं?

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जैसे जिनमत में कहा है... सर्वज्ञ परमेश्वर ने बिल्कुल विकल्परहित अनन्त... अनन्त... अनन्त... संख्या से गुण का पिण्ड (देखा है)। समझ में आया? अनन्त-अनन्त संख्या से गुण का पिण्ड है, और उसकी अनन्त पर्याय होती है। आहाहा! समझ में आया? कहा था न?

एक आत्मा में कितने गुण हैं? समझ में आया? ६०८ (जीव) छह महीने और आठ समय में मुक्ति में जाते हैं। ६०८ (जीव) छह महीने और आइ समय में मुक्ति जाते हैं। इतने-इतने अभी तक सिद्ध हुए, उससे निगोद के एक शरीर में अनन्तगुने जीव हैं। निगोद समझे? आलू, काई, आलू का राई जितनी टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो औदारिक

शरीर है और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए-६०८... ६०८... ६०८ छह महीने और आठ समय, अनन्त... अनन्त... अनन्त पुद्गल परावर्तन चले गये। वह सिद्ध की जो संख्या है, उससे भी एक शरीर में अनन्तगुनी संख्या है।

मुमुक्षु : जमीकन्द में आलू इत्यादि सब आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आता है। काई होती है न पानी में? काई... काई। उसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्तगुना जीव। सिद्ध से अनन्तगुने जीव। और उसकी संख्या से परमाणु की संख्या अनन्तगुनी। परमाणु की संख्या। संसारीजीव की संख्या एक शरीर में अनन्तगुने, ऐसे-ऐसे असंख्य चौबीसी के समय जितने निगोद के शरीर हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर निकलते ही कहाँ निगोद के जीव। पूरे तो निकलते नहीं। अनन्तवें भाग में बाहर आये हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहना है कि सिद्ध की संख्या से निगोद की संख्या अनन्तगुनी एक शरीर की, ऐसे-ऐसे असंख्यगुने शरीर। उतनी आत्मा की संख्या। उससे परमाणु की संख्या अनन्तगुनी। जितनी जीव की संख्या है, उससे तीन काल के समय अनन्तगुने। तीन काल के समय परमाणु की संख्या से अनन्तगुने। और उससे आकाश के प्रदेश अनन्तगुने। आकाश है न? आकाश। आकाश कहाँ नहीं होगा? सुना है? खाली आकाश है न? पीछे क्या होगा? पीछे-पीछे है... है... है... आकाश चले ही जाता है। खाली। इसका जो अंश है आकाश का प्रदेश, उसकी संख्या तो तीन काल के समय से अनन्तगुनी है और उससे एक आत्मा में अनन्तगुने गुण हैं। जैनमत में ऐसा है, दूसरे में ऐसा होता नहीं। समझ में आया? आकाश के प्रदेश अनन्तगुने, तीन काल के समय से अनन्तगुने। और तीन काल के समय परमाणु से अनन्तगुने और परमाणु संसारीजीव की संख्या से अनन्तगुने और जीव की संख्या सिद्ध से अनन्तगुनी। इनते आकाश के प्रदेश हैं, उससे भी अनन्तगुना एक जीव में अनन्त गुण हैं। ऐसा आत्मा जिनवर वीतराग परमात्मा ने फरमाया है। दूसरी (जगह) ऐसी चीज़ होती नहीं। जैन सम्प्रदाय में अभी खबर नहीं

है कि कितना आत्मा अन्दर क्या चीज़ है। समझ में आया? पोपटभाई! सम्प्रदाय में था कब? दिगम्बर में है, फिर भी उसे कहाँ खबर है कि क्या आत्मा है और कैसा आत्मा है। ये करो, वह करो। कर्ताबुद्धि मरणबुद्धि है।

मुमुक्षु : भावमरण हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावमरण है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त गुण फरमाया...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान गुण। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द गुण है न। ऐसी संख्या अनन्तगुनी है। इतना भी सुना नहीं। कितने वर्ष वहाँ रहे मुम्बई? यह बात कहीं नहीं है। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : आपके प्रवचन में अभी बात आयी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था।

मुमुक्षु : सर्वार्थसिद्धि के जीव निरन्तर आत्मा के गुण का परिणमन करे तो भी पार नहीं पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानन्त है न। केवली नहीं कर सके। क्योंकि केवली का भी देशे उणी करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक-एक गुण एक-एक समय में कहे तो संख्यात कह सके, अनन्त तो कह सके नहीं। केवली एक साथ कहे कि अनन्तानन्त इतने हैं, बस इतना। परन्तु एक-एक गुण कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, आनन्द है, कर्ता, कर्म ऐसा कहने को अनन्त काल चाहिए। समझ में आया?

ऐसा एक-एक आत्मा, ऐसे अनन्तगुने आत्मा जिसमें अनन्त-अनन्त गुण एक-एक आत्मा में है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, स्वच्छत्व, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान। सैंतालीस शक्ति तो अपने आयी है। सैंतालीस शक्ति है न? शक्ति कहो या गुण कहो। ऐसे-ऐसे अनन्तानन्त गुण। भान बिना करो व्रत और करो उपवास। मर गया कर-करके। राग है तो अज्ञान है। और मानता है कि हमारे धर्म होगा। अनन्तानन्त गुण आत्मा।

गुरु के प्रसाद से जानकर... देखो! धर्मात्मा सन्त ज्ञानी जैन परमेश्वर के अभिप्रायपूर्वक जिसका भान हुआ है, ऐसे गुरु के प्रसाद से। प्रसाद कहने में क्या आया? कि उसकी पात्रता ऐसी है कि गुरु ने किया। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे तो या उसके बिना? दस दिन में क्या धर्म हो गया? धर्म तो दस दिन के बाद भी होगा। होली के दिन धर्म होता है। धर्म कहाँ बाहर से होता है? सेठ! होली कहते हैं न? होली। हुतासनी। अनन्त मुक्ति में गये। उसमें क्या है? अनन्त समकित पाये। हुतासनी में भी... हुतासनी कहते हैं न? भैया! अनन्त मोक्ष गये, अनन्त समकित पाये, अनन्त साधुपद पाये। उसमें क्या है? क्या दिन अवरोध करता है? दीवाली के दिन अनन्त नरक में गये, सातवीं नरक में गये, निगोद में गये। उसमें क्या है? दस पर्व के दिन में भी असंख्य जीव नरक में जाते हैं। समझ में आया? और निगोद के जीव भी एक समय में अनन्त-अनन्त उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। इस दसलक्षणी पर्व में। वह तो व्यवहार से बात गिनने में आयी कि ऐसी चीज़ है। उसको तुम निवृत्ति से समझो और ध्यान करो।

गुरु के प्रसाद से जानकर ध्यान करना सफल है। देखो! उसका ध्यान करे तो सफल हो। गुरु के प्रसाद से सुना परन्तु ध्यान न करे और एकाग्र न हो तो सफल होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उनके चरण में रहे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : चरण में रहे क्या, उसका स्वभाव समझना, वह चरण में रहना है। बाहर के चरण... पुरुषार्थ उसे करना चाहिए।

जैसे जैन सिद्धान्त में आत्मा का स्वरूप... जैसे वीतराग परमेश्वर, वह भी ये शास्त्र सिद्धान्त दिगम्बर मुनियों ने जो कहा, वह जैन सिद्धान्त। समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, अमृतचन्द्राचार्य धर्म के स्तम्भ! केवलज्ञानी का रहस्य खोल दिया है। समझ में आया? ऐसे **जैन सिद्धान्त में आत्मा का स्वरूप तथा ध्यान का स्वरूप...** देखो! आत्मा का

ध्यान (अर्थात्) उस ओर झुकाव होना। राग और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर ऐसा आत्मा पहले जानकर उस ओर झुकाव होना। **और आहार, आसन, निद्रा इनके जीतने का विधान कहा है...** भगवान ने जैसा कहा है, ऐसा जीतने का विधान कहा है, **वैसे जानकर इनमें प्रवर्तना।** लो, यह बात। पहले तो भगवान ने आत्मा जैसा कहा, ऐसे गुरुगम से पहले जानना। अपनी कल्पना से सिद्धान्त से भी जानने में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपनी कल्पना से पढ़े। ऐसा है, वैसा है। हो कुछ और अर्थ करे दूसरा। समझ में आया? मार्ग तो दुष्कर है, भाई! वह आयेगा, ६५ में कहेंगे। महा दुष्कर पुरुषार्थ से सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है। दुःख का अर्थ यह है। दुःख अर्थात् कष्ट से नहीं। अभी ६५ गाथा में आयेगा। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ६४

आगे आत्मा का ध्यान करना, वह आत्मा कैसा है, वह कहते हैं :- देखो! अब (कहते हैं) आत्मा कैसा है?

अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण ॥६४॥

अर्थ :- आत्मा चारित्रवन्त है... यहाँ तो आत्मा चारित्रवन्त ही है, ऐसा कहते हैं। जो चारित्र प्रगट करना है तो चारित्रवन्त ही आत्मा है। आहाहा! ... भगवान आत्मा, उसमें चारित्र का गुण अर्थात् वीतरागपना अथवा शान्तरसपना त्रिकाल पड़ा है। समझ में आया? जो चारित्र प्रगट करना है, जो सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, सम्यग्ज्ञान वह गुण तो अनादि से पड़ा ही है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु में श्रद्धा नाम का गुण त्रिकाल पड़ा है। उसमें शान्ति, वीतरागता चारित्रगुण त्रिकाल पड़ा है और सम्यग्ज्ञान की मूर्ति अनन्त केवलज्ञान का पिण्ड ज्ञान त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति! क्या कहते हैं? देखो!

भगवान **चारित्रवान है...** भाई! तेरा आत्मा तो चारित्रवान त्रिकाल है। तेरे में

चारित्रगुण तो त्रिकाल पड़ा है। देवीलालजी! बाहर से लाना नहीं। बाहर नजर करने से चारित्र नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। तेरे में है ही। समझ में आया? तेरा स्वभाव ही वीतरागभाव से भरा पड़ा है न, प्रभु! आहाहा! क्या कहे?**'जिणवरमएण''गुरुपसाएण'।** दो लिया है। जिनवर के अभिप्राय से और गुरु की प्रसादी से। भगवान आत्मा... भगवान ने और गुरु ने क्या कहा? भगवान! तेरा आत्मा तो चारित्रगुण से त्रिकाल भरा पड़ा है न। समझ में आया? आहाहा! नजर डालने से अन्दर चारित्रगुण है, उसमें एकाग्र होने से चारित्र प्रगट होता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प से आता है या निमित्त से आता है, बाह्य गुण की पर्याय, (ऐसा नहीं है)। सेठी! क्या कहा, देखो! आहाहा! ऐ... सेठ! ... कहो, समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान! तुम श्रेष्ठ आत्मा हो। वही सेठ है। चारित्र से श्रेष्ठ है। प्रगटपना बाद में। चारित्रगुण से श्रेष्ठ तो त्रिकाल पड़ा है। ऐ... पोपटभाई! आहाहा! भगवान! तेरी महिमा तो देख! सुन तो सही, पहले समझ तो सही कि क्या है। ओहोहो!

दर्शन-ज्ञानसहित है... वह तो दर्शन-सम्यग्दर्शन गुण तो त्रिकाल पड़ा ही है। ऐसा सम्यग्दर्शन गुणसहित आत्मा है। विकल्प से संग से रहित है। परन्तु चारित्रगुण और सम्यग्दर्शन से सहित है। पर्याय की बात नहीं है, यहाँ गुण से सहित है, यह बताना है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय की बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा उसमें है, ऐसे ध्यान करने से पर्याय प्रगट होती है। जिसमें है उसमें प्राप्त की प्राप्ति है न? नहीं है तो उसमें से आता है? पुण्य-पाप का विकल्प क्रियाकाण्ड ऐसा-ऐसा उसमें से कोई चारित्र आता है? उसमें से सम्यग्दर्शन आता है? आहाहा! समझ में आया? जहाँ पड़ा है, वहाँ ध्यान करने से प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। देखो! मोक्षपाहुड़ है न! आहाहा!

दर्शन-ज्ञानसहित है, ऐसा आत्मा... ऐसा तीन गुण मुख्य लिये। यहाँ मोक्ष का अधिकार है न? तो मोक्ष का कारण कौन? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर्याय कारण है। पर्याय कारण है। तो पर्याय का कारण कौन? अन्दर गुण (है वह)। समझ में आया?

वह पर्याय प्रगट होने का कारण कोई विकल्प और व्यवहार नहीं है, ऐसा बताना है। आहाहा! समझ में आया? पहले आत्मा की बात ही वर्तमान में गुम हो गयी है। ऐसा व्रत और ऐसा नियम और तप... दस दिन तप करेंगे। फिर ये सेठ जैसे उसे कुछ देंगे। वह प्रसन्न हो जाए और यह जाने कि अपने को धर्म का कुछ लाभ मिला। ऐ... सेठ! आहाहा!

भगवान! कहाँ जाना है तुझे? जहाँ जाना है, वहाँ माल क्या है? माल क्या है अन्दर? आहाहा! जिसमें तुझे ध्यान लगाना है और ध्येय बनाना है, उस ध्येय में क्या चीज़ है? अकेला वीतरागरस चारित्रभाव से भरा है। आत्मा तो गुणी है। गुण क्या? मोक्ष का मार्ग लेना है न? मोक्षप्राभृत है न। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो पर्याय की बात है। परन्तु वह पर्याय कहाँ से आयेगी? अन्दर में पड़ा है। सम्यग्दर्शन गुण-श्रद्धा गुण त्रिकाल पड़ा है। ज्ञानगुण त्रिकाल पड़ा है और चारित्रगुण त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! ऐसा आत्मा। समझ में आया? तीन गुण की व्याख्या मुख्यरूप से की। क्योंकि तीन प्रधान गुण मोक्ष का कारण है। आहाहा!

ऐसा आत्मा... आत्मा आत्मा तो है, परन्तु सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा। अन्यमति, परमात्मा के अतिरिक्त कल्पना से कहते हैं, उन्हें सच्चे आत्मा की खबर है नहीं। समझ में आया? कबीर में आतमा की बहुत बात आती है, परन्तु सब कल्पित। ऐई! अब तो पक्के हो गये न। आत्मा, एक आत्मा, हों! एक। जिसमें वीतरागता अर्थात् चारित्रस्वभाव त्रिकाल पड़ा है। गुणी वस्तु, गुण यह, उसका ध्यान करने से पर्याय प्रगट होती है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों लिये। समझ में आया? ऐसी है बात? द्रव्य, गुण और पर्याय।

किसी का ऐसा कहना है कि हमें धर्म करना है। लो! धर्म करना है तो नयी पर्याय हुई और पुरानी पर्याय का नाश होता है। नयी पर्याय उत्पन्न हुई कहाँ से? ऊपर-ऊपर से उत्पन्न होती है? पूर्व की पर्याय से नयी पर्याय उत्पन्न होती है? राग से कोई धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है? धर्म की पर्याय धर्म जो त्रिकाल पड़ा है, उसमें से उत्पन्न होती है। आहाहा! '**वत्थु सहावो धम्मो**' भगवान आत्मा का स्वभाव चारित्रस्वभाव बिल्कुल अकषायस्वभाव वीतरागस्वभाव, दर्शनस्वभाव, ज्ञानस्वभाव ऐसा आत्मा। लो,

यहाँ तो तीन गुण से (कहा) । तीन पर्याय प्रगट करनी है न। आहाहा! दुनिया दुनिया की जाने, तेरा तू काम कर। ऐसी बात है यहाँ। जिसमें से धर्मपर्याय प्रगट करनी है, वह पर्याय कहाँ से आयेगी ?

कहते हैं, भैया! तेरा गुणी आत्मा, उसमें जो पर्याय प्रगट करनी है, ऐसा गुण तो तेरे में भरा पड़ा है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड गुण है। चारित्र प्रगट होता है, वह तो पर्याय है। समय-समय में चारित्र की पर्याय बदलती है। परन्तु ऐसी अनन्त-अनन्त चारित्र की सादि-अनन्त पर्याय का पिण्ड जो चारित्रगुण है, वही तेरा स्वभाव है। उसमें ध्यान करने से उसका ध्येय करने से, वहाँ त्राटक लगाने से, वहाँ पर्याय को गुण में एकाकार करने से धर्म की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आता है या नहीं ? आहाहा! समझ में आया ?

कुन्दकुन्दाचार्य की अष्टपाहुड़ की शैली अलौकिक शैली! केवली का पेट खोलकर (बात करते हैं) । भगवान! तू तेरे में जो दर्शन, ज्ञान, चारित्रपर्याय प्रगट करना चाहता है, तुझे धर्म करना है न ? धर्म का अर्थ पर्याय। धर्म का अर्थ पर्याय है। मोक्षमार्ग पर्याय है, मोक्ष भी पर्याय है। तो वह पर्याय कहाँ से आयेगी ? आहाहा! अन्दर में अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय (प्रगट होगी), वह सब पर्याय का पिण्ड जो ज्ञानगुण पड़ा है। समकित-क्षायिक समकित की पर्याय प्रगट हुई, वह उत्पाद-व्ययवाली है। नयी उत्पन्न होती है, पुरानी जाती है, ऐसी क्षायिक पर्याय सादि-अनन्त तेरे श्रद्धागुण में पड़ी है। और चारित्र एक समय की निर्मल अवस्था, चारित्र अरागी दशा तो पर्याय है। पर्याय तो एक समय रहती है, दूसरे समय दूसरी रहती है। ऐसी सादि-अनन्त अरागी चारित्र की पर्याय चारित्रगुण में है। आहाहा! देखो!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है न। मोक्षमार्ग पर्याय है। सिद्ध पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है, संसार पर्याय है। संसार विकारी पर्याय है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष संसार पर्याय है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय है-अवस्था है। वह

अवस्था किससे आयेगी ? कहाँ से आयेगी ? किस प्रकार से आयेगी ? अन्दर आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र भरा पड़ा है, वहाँ ध्यान लगा दे। आहाहा! लो, यह करना। ऐ... सेठ! यह करने का है।

जिनवर परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी ने कहा हुआ, गुरु ने जाना और गुरु से समझना। क्योंकि वर्तमान में केवली है नहीं। तो '**गुरुपसाएण**' ऐसा कहने में आया। नहीं तो सीधा केवली के पास सुने, भगवान हो वहाँ। जिनवर ने कहा हुआ, गुरु प्रसाद से और तेरी पात्रता से। ऐसा। समझ में आया ?

मुमुक्षु : हमारी...

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्रता उसकी होनी चाहिए न। कोई दे देता है ? कोई समझा सकता है ? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन—ज्ञान पाने की योग्यता, पुरुषार्थ की उग्रता। वह अब आयेगा, ६५ में आयेगा। महापुरुषार्थ। स्वभाव ऐसा है, ऐसी प्रतीति में महापुरुषार्थ है। समझ में आया ? महा दुष्कर। '**दुक्खेण**' अर्थात् दुष्प्राप्य। महापुरुषार्थ से प्राप्त होता है। ऐसे कोई साधारण (प्रयत्न से) प्राप्त होता है, ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया ? भक्ति, पूजा, यात्रा शुभभाव होता है। दया, दान भाव (होता है), परन्तु वह चीज़ मुक्ति का कारण नहीं। धर्म का कारण नहीं, उससे धर्म होता नहीं। धर्म तो, गुण भरा है—ऐसे आत्मा में एकाग्र होने से धर्म होता है। स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म, वह यहाँ सिद्ध किया, देखो! '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ होइ।**' इसका स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया ? ऐ... अमूलखचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु के प्रसाद से...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसकी योग्यता है तो ऐसा निमित्त मिलता है, ऐसा नहीं कहकर यहाँ प्रसाद से कहने में आया। आहाहा! ऐसा आत्मा। देखो! है न पाठ ? '**अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा। सो झायव्वो णिच्चं**' '**णिच्चं**' है, देखो! '**णिच्चं**' शब्द अर्थ में नहीं आया है। **आत्मा चारित्रवान है और दर्शन-ज्ञानसहित है, ऐसा आत्मा**

गुरु के प्रसाद से जानकर नित्य ध्यान करना। ऐसे लेना। '**णिच्चं**' शब्द पड़ा है न पाठ में? कोई शब्द रह गया हो। वहाँ जोर लगाना। ज्ञान की पर्याय का वहाँ जोर लगाना। आहाहा! समझ में आया? करना यह है, करना यह है, उसमें सफलता है।

भावार्थ :- आत्मा का रूप दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी है,... देखो! भावार्थ है न? आत्मा का स्वरूप ही दर्शन, ज्ञान, चारित्रमयी है ही। उसमें से प्राप्त की प्राप्ति होती है। कुएँ में न हो और अवेडा में आवे... अवेडा समझते हैं? अवेड़ा क्या कहते हैं पानी का कुंडा होज बाहर होता है न? होज। क्या कहते हैं? पानी भरा रहता है। कुएँ में से निकालते हैं न? ... तालाब नहीं। कुएँ में से पानी निकालकर ऐसे बाहर पानी भरते हैं, वह पशु पीते हैं। कुएँ में हो वह आता है? कुएँ में भरा हो पानी और यहाँ होज आता है? ऐसा आता है? ऐसे आत्मा में भरा है दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो उसमें से पर्याय आती है।

हमारे एक थे न? जेठालाल... राजकोट। 'पियावा कांठे पंथ बनयो छे साचो...' वह उसको बहुत प्रिय था। पीयावा किया है। पानी निकाले न? मेरा कण्ठ ठीक नहीं था। (संवत्) १९७७ के वर्ष। कण्ठ ठीक नहीं था तो मुझे कहा, महाराज! हमारे वहाँ घीवाली सब्जी होती है। आत्मा के लिये बिल्कुल दोष नहीं है। आपका कण्ठ ठीक नहीं है तो मेरे घर पधारना। ऐसा कहे। क्या कहते हैं? भाजी इत्यादि सब घी में बनाये। कण्ठ बहुत मीठा था। १९७७ की बात है। ४९ वर्ष हुए। भीमजी मोरारजी थे न? भीमजी मोरारजी के छोटे भाई जेठालाल। ये बहुत बोलते थे। 'पियावा कांठे पंथ बन्यो छे साचो...' पियावु अर्थात् पानी पीने के स्थान में हे मनुष्य! यहाँ किनारे आईये, पीने की चीज़ यहाँ है। समझ में आया? बहुत गाते थे। समझ में आया? वह गाते थे, इतना पद याद रह गया। १९७७ की बात है, १९७७। उन दिनों में गले में ठीक नहीं था। नरसिंहभाई वहाँ थे। मेरे यहाँ घी में सब्जी होती है। क्योंकि हमारे लिये बने और हमें मालूम पड़े तो हम तो प्राण जाये तो भी लेते नहीं। हमारे लिये सब्जी बनी हो, पानी का एक बिन्दु बना हो तो हम नहीं लेते थे। पानी का एक बिन्दु खबर पड़े कि हमारे लिये बना है, बिल्कुल नहीं। सख्त क्रिया थी हमारी, बहुत सख्त क्रिया। अभी तो देखने में यही क्रिया... परन्तु वह सब कायक्लेश था। बहुत सख्त। २४-२४ घण्टे, ४८-४८ घण्टे

पानी का बिन्दु नहीं। जब तक बारिश का एक बिन्दु ऊपर से आवे, मत्सर जैसा दिखे, भिक्षा नहीं जाते थे, दो-दो दिन, तीन-तीन दिन। ... ये तो हमारी बात है। १५-१५ वर्ष ऐसा किया था। बारिश का एक बिन्दु... जैसा दिखे भिक्षा के लिये नहीं जाते थे। ... सचेत है। एक बिन्दु में असंख्य जीव है। अभी तो पोलंपोला (चलता है)। हमारी क्रिया तो बहुत कड़क थी। जवान अवस्था थी और हमारे गुरु ने ऐसा कहा कि यह मार्ग है। चलो भैया! आहा! समझ में आया?

यह तो अन्तर में ज्ञानानन्दस्वभाव पड़ा है, उसमें ध्येय दृष्टि दो। ध्यान की स्थिति बताते हैं। क्या करना? करना पहले यह कि ऐसा आत्मा है, उसमें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र भरा है, उसमें ध्यान लगाना वह तेरा कर्तव्य है करना। श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र सब प्रगट होता है। आहा! समझ में आया?

जैन गुरुओं के प्रसाद से जाना जाता है। देखो! है? जैनगुरु के। अन्य गुरु नहीं। जैन गुरु सम्प्रदाय का नहीं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में आया ऐसा जिसको समझ में-ज्ञान में आया है। प्रकाशदासजी! आहाहा! **जैन गुरुओं के प्रसाद से जाना जाता है।** अज्ञानी ध्यान कराये कि ऐसा करो, वैसा करो। ॐ करो, यह करो, जप करो। उसमें कुछ है नहीं। समझ में आया?

अन्यमतवाले अपना बुद्धिकल्पित जैसा-तैसा मानकर ध्यान करते हैं... समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! **उनके यथार्थ सिद्धि नहीं है,...** उसको यथार्थ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती नहीं। आहाहा! **इसलिए जैनमत के अनुसार ध्यान करना, ऐसा उपदेश है।** भगवान ने कहा ऐसा अन्तर में चारित्रगुण, दर्शनगुण, ज्ञानगुण से भरा है—ऐसा अनन्त गुण, परन्तु ये तीन प्रगट करने हैं तो उस अपेक्षा से तीन गुणवाला कहने में आया। नाभि में कस्तूरी, मृग बाहर ढूँढ़ता है। बाहर ढूँढने जाता है। ऐसा करो। परन्तु तेरी चीज़ में पड़ा है, भगवान! अन्दर नाभि में-तेरे गुण में सर्व पड़ा है। ओहो! **जैनमत के अनुसार ध्यान करना, ऐसा उपदेश है।**

★ ★ ★

गाथा - ६५

आगे कहते हैं कि आत्मा का जानना, भाना और विषयों से विरक्त होना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ होने से दुःख से... अर्थात् दुर्लभ है। दुःख नहीं है, हों! दुःख तो भाषा है। दुःख हो तो आर्तध्यान है। **दुःख से (दृढ़तर पुरुषार्थ से) प्राप्त होता है।** दुःप्राप्य है न उसमें? अर्थ है। महापुरुषार्थ, महापुरुषार्थ। वहाँ कायर का काम नहीं है। आहाहा! समझ में आया? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर का कलेजा कम्पायमान हो। समझ में आया?

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरच्चए दुक्खं॥६५॥

उसमें अर्थ किया है। आत्मा का ज्ञान होना अत्यन्त दुष्कर है। दुःख का अर्थ दुष्कर।

मुमुक्षु : भावार्थ में लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भावार्थ में लिखा है। भावना में लिखा है। देखो! उत्तरोत्तर योग मिलना बहुत दुर्लभ है। दुःख का अर्थ दुःख नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख से अर्थात् महापुरुषार्थ से, महापुरुषार्थ। दुःख का अर्थ महापुरुषार्थ।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दुःख मालूम पड़े तो अज्ञान है। नहीं... नहीं... नहीं... सम्यग्दर्शन की ही बात है। दुःख मालूम पड़े वह तो कष्ट है, आर्तध्यान है। वह तो आर्तध्यान है, उसमें पाप बँधता है। वह तो कल कहा था। नीचे है, देखो! नीचे भावार्थ में है। **योग मिलना बहुत दुर्लभ है,...** ऐसा पाठ है। दुःख का अर्थ कष्ट (नहीं)। **यह उपदेश है कि ऐसा योग मिलने पर प्रमादी न होना।** यह बात है। दुःख का अर्थ महापुरुषार्थ, महापुरुषार्थ। स्वभाव सन्मुख। दुष्कर। उसमें दुष्कर लिखा है। इसमें उसने दुष्प्राप्य लिखा है। दुष्प्राप्य का अर्थ आनन्द का पुरुषार्थ अनन्त होता है तो प्राप्त होता है।

साधारण पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन, ज्ञान मिलता नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सामायिक करके मर जाये कृश होकर। मिथ्यात्व का पाप बाँधता है। यदि कोई दु:ख लगे तो वह तो आर्तध्यान है। उससे मेरा लाभ होगा, तो मिथ्यात्व का लाभ है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! वीतराग ने कहा तत्त्व समझना। लोगों को अज्ञानी अपनी कल्पना से अर्थ करते हैं। समझ में आया?

दुष्कर। है न नीचे? देखो! **योग मिलना बहुत दुर्लभ है।** अपने आत्मा का ज्ञान पाना महादुर्लभ है। दु:ख का अर्थ दुर्लभ है। नीचे भावार्थ में अर्थ किया है। उत्तरोत्तर दुर्लभ है। पहले तो आत्मज्ञान पाना ही महादुर्लभ है। समझ में आया? आहाहा! **फिर आत्मा को जानकर भी भावना करना, फिर-फिर इसी का अनुभव करना...** आनन्द का अनुभव करना **दु:ख से (-उग्र पुरुषार्थ से) होता है,...** जानने के बाद भी अनुभव करना, वह तो अनन्त-अनन्त दुष्कर प्रयत्न है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गोपनीय विषय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : गोपनीय ये तो अन्तर में पुरुषार्थ की उग्रता, उसका नाम दु:ख शब्द लिया है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अस्ति की बात है। यहाँ तो महापुरुषार्थ लिखा है न? नीचे लिखा है, देखो! **उत्तरोत्तर यह योग मिलना बहुत दुर्लभ है...** पहले तो ज्ञान पाना महादुर्लभ है। दु:ख का अर्थ महादुर्लभ है। अभी तो सच्चा ज्ञान पाना महादुर्लभ है। समझ में आया? आहाहा! कल तो कहा था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पाना है, ऐसा अज्ञानी करते हैं। वह मिथ्यात्व की पुष्टि करता है और मानता है कि मैं शास्त्र का अर्थ करता हूँ। बहुत कष्ट सहन करना, तो उससे धर्म होता है। मूढ़ है। धर्म की व्याख्या ही समझते नहीं। वह आता है, छहढाला

में आता है। वैराग्य, ज्ञान को कष्ट माने। नहीं? निर्जरा की भूल। 'कष्टदान्' अपने को कष्ट माने, वह तो अज्ञान है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा माने तो मूढ़ है, कहते हैं। कष्ट नहीं है। सहजानन्द स्वरूप सहज पुरुषार्थ से ज्ञान, दर्शन प्राप्त होता है, आनन्द से प्राप्त होता है। कष्ट माने तो तत्त्व की भूल है, मिथ्यात्व है। निर्जरा होती है, ऐसा मानते हैं; इसलिए तो छहढाला में स्पष्टीकरण किया है। माने कष्टदान। बहुत कठिन। वह तो अज्ञान है, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। ऐई!

महापुरुषार्थ से आत्मा को जानकर भावना करना। भावना अर्थात् अनुभव करना। अन्तर में जानकर भी स्थिरता, अनुभव करना महापुरुषार्थ, अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ, स्वाभाविक अनन्त पुरुषार्थ है। पर से हटकर स्वभाव में आना महापुरुषार्थ—दुष्कर पुरुषार्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या पुरुषार्थ? स्वभाव सन्मुख होने में पुरुषार्थ कितना है! लगाओ तो सही। तो खबर पड़े कि कितना है। बाहर से बात करे ऐसा काम आवे? अन्तर द्रव्य-गुण में लगाना... यहाँ गुण कहा न? ६४ (गाथा में) गुण कहा। अब गुण में पर्याय प्रगट करनी है तो यहाँ पर्याय की बात करते हैं। महापुरुषार्थ से पर्याय प्रगट होती है, ऐसा कहा। पहले ६३ गाथा में आत्मा कहा। **'झायव्वो णियप्पा णाऊणं'।** परन्तु आत्मा कैसा? दर्शन, ज्ञान, चारित्र भरा है ऐसा। अब भरा है, उसमें से पर्याय कैसे प्रगट होती है? वह बात यहाँ ६५ में चली है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भावार्थ में आता है, उत्तरोत्तर योग मिलना दुर्लभ है। दु:ख का अर्थ दुर्लभ किया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, ना, वह नहीं। स्थिरता नहीं हो, आत्मज्ञान का अर्थ। ज्ञान तो वर्तता है। ९६ हजार स्त्री में वर्तते हैं और सम्यग्ज्ञान है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु न हुआ विषय में प्रवर्तता है फिर भी समकित दर्शन हो सकता है। सम्यग्दर्शन न हो? तो पीछे राग तो राग से सम्यग्दर्शन न हो? राग तो सदा रहता है। स्वामी नहीं है उसका। बहुत कठिन बात है। अभी तो समझने में अर्थ उल्टा करते हैं। थोड़ा कष्ट करते हैं न? तो (मानते हैं कि) कष्ट में कुछ लाभ है। विषय विरक्त का अर्थ अभी आयेगा। यहाँ तो उत्तरोत्तर दुर्लभ है, इतना कहना है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन पाया, सम्यग्ज्ञान पाया फिर भी विषय से विरक्त होकर स्वरूप में स्थिरता करना महादुर्लभ है। वह बात है।

मुमुक्षु : सम्यग्ज्ञान का मतलब यहाँ चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र। यहाँ तीन की बात है न।

मुमुक्षु : ... आत्मज्ञानी है ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मज्ञानी है, वह तो चौथे गुणस्थान में है। वह चौथे गुणस्थान में है। यहाँ कहा वह छठवें की बात है, मुनि की अपेक्षा से बात है। यहाँ तो ध्यान की बात है। तीन गुण की बात है न। (विपरीतता का) लकड़ा घुस गया है। मिथ्या शल्य। विषय से छूटे तो (कुछ लाभ हो)। विषय से अनन्त बार छूटा। आत्मा को ध्येय बनाये बिना विषय से अनन्त बार छूटा। ब्रह्मचर्य नौ-नौ कोटि से अनन्त बार पाला। स्वस्त्री से नौ-नौ कोटि से ब्रह्मचर्य पाला। उसमें हुआ क्या? मिथ्यात्वभाव है।

यहाँ तो स्वरूप की अनुभव दृष्टि हुई और स्वरूप का ज्ञान हुआ, बाद में स्वरूप में रमणता करना पर का लक्ष्य छोड़कर, महापुरुषार्थ है। ऐसी बात है। यह बात है। ये चारित्र है। समझ में आया? आहाहा! कल तो बहुत बात कही थी। श्रेणिक राजा, भरत चक्रवर्ती सब क्षायिक समकिती ज्ञानी थे। और विषय तो बहुत था। कितना विषय? अभी तो है भी नहीं। वह तो चारित्रदोष है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह चारित्रदोष टालकर स्वरूप में रहना, वह महापुरुषार्थ है। ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं? चारित्रदोष टालकर स्वरूप में रमना महापुरुषार्थ है। चारित्रदोष टालकर। आहाहा!

यहाँ तो तीन बोल लिये न? चारित्र, दर्शन और ज्ञान। वह तो त्रिकाल गुण है। अब गुण में से पर्याय कैसे निकालनी? यह कहते हैं। गुण में से पर्याय कैसे निकालनी? अनन्त पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ है न, अन्तर्मुहूर्त में नहीं है? अन्तर्मुहूर्त में अन्दर ध्यान में अनन्त पुरुषार्थ लगाते हैं। केवलज्ञान हो जाता है। अन्दर में लगाता है या बाहर में?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात कहते हैं। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेते हैं। उसमें क्या है? भरत चक्रवर्ती ने अन्तर्मुहूर्त में लिया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है, ऐसा ही है न। यहाँ देखो आयेगा।

यहाँ तो ज्ञायक का अनुभव करना दुःख से-महापुरुषार्थ से है। है न नीचे? दुर्लभ है। और उससे **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे...** समझ में आया? **जिनभावना जिसने जैसा पुरुष विषय विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (-अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।** सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित राग से छूटकर स्वरूप में रहना महापुरुषार्थ है। वह बात है। सम्यग्दर्शनसहित है, सम्यग्ज्ञानसहित है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में आनन्द का अनुभव है। परन्तु राग से हटकर स्वरूप में स्थिर होना महापुरुषार्थ है। समझ में आया? यह विषय। बाहर का विषय कहाँ अन्दर घुस गया है? वह तो लक्ष्य बदलता है, इतनी बात है। ... अभी तो शास्त्र के अर्थ समझने में अन्तर। उसे समझ में कब आये और श्रद्धा कब करे? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, देखो! **भायी है जिनभवना जिसने...** देखो! **ऐसा पुरुष विषयों**

से विरक्त बड़े दुःख से होता है। पर का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना बड़ा पुरुषार्थ, अनन्त पुरुषार्थ है। सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित की बात है, हाँ! अकेले ज्ञान की बात नहीं है। उसको विषय छूटा ही नहीं। दृष्टि मिथ्यात्व है न। मैं विषय छोड़ूँ, मैं ऐसा छोड़ूँ, वह मिथ्यात्वभाव है। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं और माना कि मैंने छोड़ा, तो मिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं। वह भाव है इसमें। उसमें वह भाव है।

मुमुक्षु : आगे कहते हैं कि जब तक विषयों से यह मनुष्य प्रवर्तता है, तब तक आत्मज्ञान नहीं होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु विषय का अर्थ क्या? आत्मज्ञान नहीं हो तो सम्यग्दृष्टि है नहीं और विषय में प्रवर्तते हैं। राग की एकताबुद्धि जिसमें है, उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता। यह कहना है। एकताबुद्धि है। विषय तो भोग है सब है। आत्मज्ञान हो और विषय में प्रवर्तता है। परन्तु विषय में रुचिपूर्वक प्रवर्तता है तो सम्यग्ज्ञान नहीं होता। बात ऐसी है। बहुत अन्तर, पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। ९६ हजार स्त्री के भोग में प्रवर्तता है और समकित एवं क्षायिक समकित है। कल तो बहुत कहा था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि को त्याग है ही नहीं। उसको त्याग होता ही नहीं। (मिथ्यादृष्टि को विषय में) एकता है ही। एकताबुद्धि तो है ही। भिन्नता कहाँ से हो? ये तो भिन्नता के बाद की बात है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने के बाद सम्यग्ज्ञान हुआ, बाद में विषय की वृत्ति छूटकर स्वरूप में स्थिर होना महादुर्लभ है, ऐसा कहना है। छठवें गुणस्थान में आता है। यह कहते हैं। देखो न। ऐसा अर्थ है। **विषयों से विरक्त बड़े दुःख से होता है।** लो, समय हो गया। कल विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक १४-०९-१९७०
गाथा - ६५ से ६९, प्रवचन-८८

आज दसलक्षणी पर्व का दसवाँ दिन है। ब्रह्मचर्य धर्म। मूल तो चारित्र की आराधना सम्यग्दर्शनसहित की बात है। यहाँ तो अकेला चारित्र होता है, वह सम्यग्दर्शन बिना नहीं होता। पंच महाव्रत क्रियाकाण्ड है न? वह कोई चारित्र नहीं है। चारित्र तो सम्यग्दर्शनपूर्वक अन्तर स्वरूप में लीनता, आनन्द की उग्रता आना, उसका नाम चारित्र की आराधना कहने में आता है। सूक्ष्म बात है। ब्रह्मचर्य में वह लेते हैं, देखो! ब्रह्मचर्य धर्म।

जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।
कामकहादिणिरीहो, णव विह बंभं हवे तस्स॥४०३॥

अन्वयार्थ : जो मुनि स्त्रियों की संगति नहीं करता है,... सम्यग्दर्शनसहित चारित्रवन्त है न? उसको स्त्री का संग नहीं होता। नौ वाड़ से ब्रह्मचर्य होता है। और **उनके रूप को नहीं देखता है...** अपना रूप देखते न, उसे पर का रूप क्या देखना? आहा! समझ में आया? अपनी अनुभूति आनन्द की परिणति के साथ संग करते हैं, उसे महिला के संग की क्या जरूरत है? ऐसा कहते हैं '**कामकहादिणिरीहो**' काम की कथा नहीं करते। भगवान आत्मा के गुण की कथा करे कि काम की कथा करे? **काम की कथा आदि शब्द से, स्मरणादिक से रहित हो...** आदि शब्द पड़ा है। स्त्री आदि का स्मरण नहीं। किसका स्मरण? प्रभु आत्मा का स्मरण करे, आनन्दस्वरूप प्रभु, उसका जो मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा से अनुभव में लिया है, उसको धारणा में से आत्मा का स्मरण करते हैं। समझ में आया? स्मरणादिक से रहित। स्मरण, प्रशंसा से रहित। **ऐसा नवधा कहिये मन-वचन-काय कृत-कारित-अनुमोदना...** से करता है। नौ-नौ कोटि प्रकार से ब्रह्मचर्य पालते हैं, ऐसा कहते हैं। **उस मुनि के ब्रह्मचर्य होता है।**

भावार्थ :- ब्रह्म आत्मा है... देखो! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को ब्रह्म कहते हैं और उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। आहा! समझ में आया? काया द्वारा ब्रह्मचर्य हो, वह तो शुभविकल्प है। यह तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय सुधारस का भरा हुआ भण्डार, उसको पीना-आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। **ब्रह्म आत्मा है, उसमें लीन होना, सो ब्रह्मचर्य है।** समझ में आया? काया से या बाहर से ब्रह्मचर्य पाले, वह तो विकल्प है, वह तो अनन्त बार पाला है। नौवें ग्रैवेयक गया तो ऐसी मन-वचन-काया से बाहर की क्रिया तो अनन्त बार की। यहाँ तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। समझ में आया?

परद्रव्यों में आत्मा लीन हो, उनमें स्त्री में लीन होना प्रधान है... क्या कहते हैं? अपने द्रव्य में आनन्द में लीन न हो और परद्रव्य में लीन हो, उसमें स्त्री की लीनता मुख्य है। **क्योंकि काम मन में उत्पन्न होता है...** मन में वृत्ति उत्पन्न होती है। **इसलिए वह अन्य कषायों से भी प्रधान है...** दूसरे कषाय से भी कामवासना को मुख्य गिनने में आया है। वैसे कहा है नोकषाय। हें! परन्तु उस पर बहुत जोर है। विषय की वासना... वास्तव में तो राग का भोगना, वही विषय की वासना का भोगना है। भोग निमित्त... बन्ध अधिकार में आता है न? भोग निमित्त। राग का अनुभव वही, पुण्य का अनुभव वही भोग के लिये अनुभव है, आत्मा के लिये नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

इसलिए वह अन्य कषायों से भी प्रधान है और इस काम का आलम्बन स्त्री है... निमित्त। **इसका संसर्ग छोड़ने पर अपने स्वरूप में लीन होता है।** वह तो बाहर से छोड़ने का नास्ति से कथन है। वास्तव में तो स्वरूप ब्रह्म भगवान आत्मा के आनन्द में लीन (होकर) अतीन्द्रिय अमृत का पीना (ब्रह्मचर्य है)। समझ में आया? वह आलम्बन छोड़कर **संसर्ग छोड़ने पर अपने स्वरूप में लीन होता है। इसलिए स्त्री की संगति करना, रूप निरखना, कथा करना, स्मरण करना जो छोड़ता है, उसके ब्रह्मचर्य होता है।** समझ में आया? **यहाँ टीका में शील के अठारह हजार भेद ऐसे लिखे हैं।** वह तो जानने के लिये है। मूल चीज़ यह है।

भगवान आत्मा ब्रह्मानन्द प्रभु अमृतसागर है। समझ में आया? उस अमृतसागर में दृष्टि लगाकर-ध्येय लगाकर आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम दस धर्म में

अन्तिम का ब्रह्मचर्य धर्म कहने में आया है। और वह ब्रह्मचर्य धर्म आराधे, उसको भवभ्रमण रहे नहीं। भवभ्रमण रहे ही नहीं। लो, वह आया। अब अपने ६५ गाथा। आज दस (लक्षणी) पर्व पूरा हुआ। ६५ गाथा चलती है, देखो!

अर्थ :- प्रथम तो आत्मा को जानते हैं, वह दुःख से... अर्थात् महापुरुषार्थ, महा कठोर दुष्कर भाव, उससे आत्मा को जानने में आता है। उसमें लिखा है। मोक्षपाहुड़ में इसमें है। आत्मा का ज्ञान होना और अनुभव होना, वह अत्यन्त दुष्कर है। दुःख से का अर्थ दुष्कर है। आत्मा का ज्ञान, अनुभव होना अत्यन्त दुष्कर। दुःख से का अर्थ महापुरुषार्थ है। ज्ञान आत्मानुभव होने के बाद आत्मा का चिन्तवन, उसकी भावना रहा करनी महा दुष्कर है। और आत्मा की भावना करनेवाले पुरुष के लिये, सम्यग्दृष्टि जीव के लिये भी विषयों से विरक्त होना, उदासीन होना अत्यन्त दुष्कर है। ठीक अर्थ किया है। इसमें भी वही अर्थ है, देखो!

फिर आत्मा को जानकर भी भावना करना,... भावना अर्थात् अन्तर में एकाग्र होकर अनुभव करना महा दुष्कर, महादुःखप्राप्य, महापुरुषार्थ है। उत्तरोत्तर, हों! और **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार से हो जावे तो भायी है जिनभावना जिसने...** जिसने जिनभावना अर्थात् सम्यक् भावना, जिनभावना का अर्थ सम्यग्दर्शन भावना। जिसमें सम्यग्दर्शन प्रगट है, ऐसी जिनभावना जिसने भायी है, **ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (-अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।** समझ में आया? भावना का अर्थ पहले बहुत लिया है। जिनभावना शब्द है न? भावपाहुड़ में बहुत लिया है। भावपाहुड़ है न? भावपाहुड़ की ८वीं गाथा है, देखो! भावपाहुड़ है न? भाव। ८वीं गाथा है।

हे जीव! तूने भीषण का (भयंकर) नरकगति तथा तिर्यंचगति में और कुदेव, कुमनुष्यगति में तीव्र दुःख पाये हैं, अतः अब तू जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना भा... है? ८वीं गाथा। भावना है न? यह भाव अधिकार है न। **जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना भा, इससे तेरे संसार का भ्रमण मिटेगा।** जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। शुद्ध भगवान वीतराग की भावना, वह सम्यग्दर्शन की भावना। उससे तेरे संसार भ्रमण का (नाश होगा)। वहाँ बहुत बात है। ८वीं गाथा में है, ६८ में है। पहले बहुत मिलान किया था। ६८... ६८। ६८ है न? देखो! भावपाहुड़ की ६८।

गाथा - ६८

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ॥६८॥

जिनभावना बहुत भाते हैं। भाई! श्रीमद् ने ऐसा कहा है। अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने जिनभावना हमने, तुमने कभी भायी नहीं। देवाधिदेव ने भी पहले भायी नहीं थी। श्रीमद् के पुस्तक में है। कुन्दकुन्दाचार्य का अष्टपाहुड़ का (आधार) लिखा है।

अर्थ :- **नग्न सदा दुःख पाता है, नग्न सदा संसार-समुद्र में भ्रमण करता है और नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वानुभव को नहीं पाता है, कैसा है वह नग्न-जो जिनभावना से रहित है।** है?

भावार्थ :- जिनभावना, सो सम्यग्दर्शन-भावना... भावार्थ में। जिनभावना-सम्यग्दर्शन भावना को जिनभावना कहते हैं। पूर्णानन्द वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा, अनुभव सम्यग्दर्शन का नाम जिनभावना कहने में आती है। इस जिनभावना के बिना नग्नपना भी अनन्त बार लिया। पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण आदि पाले। उसमें तो बहुत कड़क भाषा है। **संसार में ही दुःख को पाता है तथा वर्तमान में भी जो पुरुष नग्न होता है, वह दुःख ही को पाता है। सुख तो भावमुनि नग्न हों, वे ही पाते हैं।** अन्दर आनन्दमय दशा प्रगट हुई हो और बाद में नग्न दशा हो तो उसको अन्तर में आनन्द आता है। बहुत शब्द है। ६८ है न? फिर ७२। ७२-७२, पहले पढ़ा था न।

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसाणे विमले ॥७२॥

अर्थ :- जो मुनि राग अर्थात् अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति,... राग में जिसको प्रीति है, **वही हुआ संग अर्थात् परिग्रह, उससे युक्त है और जिनभावना अर्थात् शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं...** उसमें आया। देखो! जिनभावना... जिनभावना। बहुत जगह लिया है। आहा! विकल्प / राग की भावना नहीं। शुद्ध वीतरागमूर्ति आत्मा की भावना अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित स्थिरता करना। देखो! **शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं, वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तो भी निर्मल जिनशासन में जो समाधि अर्थात् धर्म-**

शुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाते हैं। समझ में आया? कौन सी है? ८८। गाथा ८८। उसमें है।

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं॥८८॥

अर्थ :- हे भव्यजीव! सालिसित्थ मच्छ होता है न छोटा? सातवीं नरक में जाता है, इतना छोटा। ... सालिसित्थ यहाँ कहा है। पाठ में सालिसित्थ। ८८ गाथा है न? सालिसित्थ। **शालिसिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य) वह भी अशुद्धभावस्वरूप होता हुआ महानरक (सातवें नरक) में गया, इसलिए तुझे उपदेश देते हैं कि अपनी आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** वीतरागभाव की भावना भा। राग और विकल्प की छोड़ दे। ऐसा कहते हैं। देखो! यह भावपाहुड़ है। भावपाहुड़ में ऐसा बहुत लिया है। १३०। गाथा-१३०, हों! अपने तो मोक्षपाहुड़ चलता है। भावपाहुड़ की १३० गाथा।

जेइड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरंकिपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो॥१३०॥

अर्थ :- जिनभावना (सम्यक्त्व भावना)... देखो न, आचार्य जिनभावना... जिनभावना (कहते हैं)। है? १३०, भावपाहुड़।

मुमुक्षु : उनको राग को कहना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। सम्यग्दर्शन अन्तर एकाग्रता, वह भावना। तकरार करते हैं, इसलिए तो यह निकाला है। सम्यक्भावना। क्या कहते हैं? **जिनभावना (सम्यक्त्व भावना)...** समकित की भावना, उसका नाम ही जिनभावना है।

मुमुक्षु : रागरूप भावना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग हो? विकल्प हो? उसको तो रतनचन्दजी चिन्तवना कहते हैं न। भावना का अर्थ विकल्प करना। अरे! श्रावक का अधिकार शास्त्र में आता है न? कि श्रावक समकिती है, पंचम गुणस्थानवर्ती, सामायिक में पड़ा हो तो उसे शुद्ध

उपयोग आ जाता है। शुद्ध उपयोग की भावना शब्द वहाँ पड़ा है। प्रवचनसार की टीका में। समकिती श्रावक सामायिक में बैठा हो, कोई बार उसको आत्मध्यान में शुद्धउपयोग आ जाता है। उसको कहते हैं कि शुद्धउपयोग नहीं, वह तो शुद्धउपयोग की भावना है। परन्तु भावना का अर्थ एकाग्रता है। भावना है, वह शुद्धउपयोग की एकाग्रता है। यहाँ जिनभावना क्या कहा? सम्यक्त्व भावना। जिन अर्थात् वीतरागस्वरूप आत्मा, उसमें भावना अर्थात् एकाग्रता। सम्यग्दर्शन की भावना है। पोपटभाई! शब्दार्थ में बहुत तकरार (करते हैं)। अभी तो शास्त्र के अर्थ करने में तकरार, समझना तो बाद में रहा। आहा! देखो! कौन सी आयी? १३०। मोक्षपाहुड़ की ६५ गाथा है न? १३० के बाद भावपाहुड़ की १४९ गाथा। सब जगह जिनभावना जिनभावना है। १४९ है। १४९ कहते हैं? एक चार नौ। देखो!

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो॥१४९॥

अर्थ :- सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है, वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय इन चार घातियाकर्मों का निष्ठापन करता है अर्थात् सम्पूर्ण अभाव करता है। जिनभावना। वीतरागस्वरूप आत्मा में एकाग्रता जिनभावना है। समझ में आया? १६२ अन्तिम की। उसमें गाथा बहुत है न। १६२ है। भावपाहुड़ देखो!

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा॥१६२॥

अर्थ :- जो जिनभावना से भावित जीव है, वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं। लो। बस, इतना अर्थ लो। जिनभावना का अर्थ भावपाहुड़ में बहुत आता है। दर्शनपाहुड़ में...

यहाँ कहते हैं, **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे तो भायी है जिनभावना...** वीतरागी भाव सम्यग्दर्शन **ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (- अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।** चारित्र। आहाहा! महापुरुषार्थ। समकित के बाद भी चारित्र का महापुरुषार्थ है।

भावार्थ :- आत्मा का जानना, भाना,... भावना, **विषयों से विरक्त होना उत्तरोत्तर... ** एक के बाद एक **योग मिलना बहुत दुर्लभ है,...** समझ में आया? पहले तो सम्यग्ज्ञान होना कि यह आत्मा ऐसा है, बुद्धि में आना और फिर सम्यग्दर्शन की एकाग्रता होना और बाद में चारित्र की प्राप्ति उत्तरोत्तर एक के बाद महादुर्लभ है, महापुरुषार्थ है। समझ में आया? **इसलिए यह उपदेश है कि ऐसा सुयोग मिलने पर...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान की प्राप्ति हो तो **प्रमादी न होना।** स्वरूप में स्थिरता करके चारित्र प्राप्त करना, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ६६

आगे कहते हैं कि जब तक विषयों में यह मनुष्य प्रवर्तता है... यहाँ वजन है। **'विसएसु पवट्टए'।** एकता की बात है वहाँ। विषय अर्थात् पाँच इन्द्रिय के परपदार्थ नहीं; राग भाग है, वही विषय है। राग में प्रवर्तते हैं। प्रवर्तते हैं। ज्ञानी राग में नहीं प्रवर्तते; ज्ञानी राग से रहित आत्मा में प्रवर्तते हैं। समझ में आया? मूल तो योगी-मुनि की बात है।

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्ठए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं॥६६॥

अर्थ :- जब तक यह मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में प्रवर्तता है... देखो! राग में प्रवर्तता है। अभिलाष। विकल्प जो है, (उसमें) पंचेनिद्रय विषय में अभिलाष मुख्य है। उस विकल्प में प्रवर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि है। परविषय में राग में प्रवर्ते तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **तब तक आत्मा को नहीं जानता है,...** जब तक राग में एकता, विषय की अभिलाषा का अर्थ राग... राग। भोग निमित्तं कहा न? बन्ध (अधिकार) में। भोग अर्थात् राग। राग के अनुभव में पड़ा है। बन्ध अधिकार में, भोग निमित्तं। भोग के कारण पुण्य करता है। उसका अर्थ उसको राग का अनुभव है। उसको आत्मा का अनुभव नहीं है।

कहते हैं **विषयों में प्रवर्तता है...** ऐसी भाषा है। राग में प्रवर्तते हैं, विकल्प में

प्रवर्तते हैं, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के विषय में प्रवर्तते हैं और सम्यग्दर्शन नहीं हो तो चक्रवर्ती पाँच इन्द्रिय के विषय में बाह्य में जुड़ता है। वह नहीं। अन्तर में तो वह प्रवर्तता ही नहीं।

मुमुक्षु : बाहर की प्रवृत्ति दिखती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की प्रवृत्ति ज्ञाता के ज्ञेय में जाती है। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्दर में प्रवर्तता है, राग में प्रवर्तता है एकाकार होकर, वह विषय से विरक्त नहीं है। कल आया था न? कल बताया था न? शीलपाहुड़ की ३२वीं गाथा। समकिती विषय से विरक्त है। नरक में भी। वहाँ क्या विषय है? स्त्री, कुटुम्ब तो है नहीं कोई। समझ में आया? विषय से विरक्त का अर्थ निर्विषय ऐसा भगवान आत्मा, उसको छोड़कर विषय जो राग है, उसमें एकाकार है, वह विषय से अविरक्त है। समझ में आया? और विषय से विरक्त है, वह राग की एकता से छूट गया, वह विषय से विरक्त है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! कल बताया था। ३२वीं (गाथा)।

प्रवर्तता है... शब्द पड़ा है न? ऐसे तो नियमसार में लिया है। आहा! नियमसार में ऐसा लिया है कि जो कोई अज्ञानी विकल्प में प्रवर्तते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा लिया है। समझ में आया? सूक्ष्म है। विकल्प अर्थात् शुभराग में भी प्रवर्तते हैं तो मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ प्रवर्तता है? अपने ज्ञान में प्रवर्तता है या राग में प्रवर्ते? सम्यग्दृष्टि तो राग से मुक्त है। राग से मुक्त है। आहाहा! पण्डितजी! ९६ हजार स्त्री का राग आता है तो भी कहते हैं कि राग से मुक्त है! क्योंकि उसमें एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता तो ज्ञान, आनन्द में है। आहा! कठिन काम, भाई! जगत को दृष्टि का विषय और दृष्टि उल्टी है, उसका विषय क्या है, यह समझना महाकठिन है। आया न? महा दुर्लभ है। सम्यग्ज्ञान पाना, वह महादुर्लभ है। अनुभव करना महादुर्लभ है। फिर चारित्र विषय से विरक्त होकर स्थिरता करना, वहाँ स्थिरता की बात है, महादुर्लभ... महादुर्लभ। अहो! धन्य अवतार! जिसका अन्तर सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप की स्थिरता में पुरुषार्थ

जमा है, जन्म सफल हुआ! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, विषय की रुचि में प्रवर्तता है। ऐसा पाठ है न? **तब तक आत्मा को नहीं जानता है।** राग की रुचि में प्रवर्तता है, तब तक आत्मा को कैसे जाने? पुण्य की रुचिवाला जड़रुचि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! समझ में आया? **तब तक आत्मा को नहीं जानता है,...**

इसलिए योगी... मुख्य तो मुनि की बात है न। **ध्यानी...** मूल पाठ में तो योगी शब्द है। योगी। उसका अर्थ किया है। **मुनि है वह विषयों से विरक्त चित्त होता हुआ...** देखो! विषय में विरक्त है चित्त जिसका। चित्त में राग की एकता छूट गयी है। वह विषय से विरक्त है। समझ में आया? अर्थ बहुत अच्छा किया है। विरक्त है चित्त अन्दर। ऐसा **होता हुआ आत्मा को जानता है।** राग की एकता छोड़कर स्वभाव को जाने। आहाहा! बहुत दुर्लभ। मूल चीज़ सम्यक् पाना और सम्यक् है, वही मूल चीज़ है। समझ में आया? आत्मा परमानन्द शुद्ध चैतन्यदल पड़ा है, उसका अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। बाकी इसके अतिरिक्त सब निरर्थक है।

भावार्थ :- जीव के स्वभाव के उपयोग की ऐसी स्वच्छता है... देखो! न्याय देते हैं। विषय में प्रवर्तता है, ऐसा कहा न? उसका न्याय देते हैं। **जीव के स्वभाव के उपयोग की ऐसी स्वच्छता है कि जो जिस ज्ञेय पदार्थ से उपयुक्त होता है, वैसा ही हो जाता है,...** राग में एकाकार हो जाए तो उपयोग ऐसा हो जाता है। समझ में आया? नहीं समझे? अच्छा! राग को ज्ञेय बनाकर एकाकार हुआ तो उपयोग रागमय हो गया।

मुमुक्षु : एकाकार हुआ का मतलब क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में एकाकार हुआ-एकत्वबुद्धि। राग की एकत्वबुद्धि। उपयोग वहाँ एकत्व में लग गया न। एक ज्ञेय में एकाकार होने से दूसरे ज्ञेय में लक्ष्य नहीं जाता है तो एकाकार हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? सेठ स्पष्ट करते हैं। अधिक स्पष्ट होता है न। देखो!

विषयों में प्रवर्तता है... यहाँ कहा न? **उपयोग की ऐसी स्वच्छता है कि जिस ज्ञेय पदार्थ से उपयुक्त होता है, वैसा ही हो जाता है...** उसका अर्थ जैसे ... के निमित्त

में स्फटिक लाल या काला हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा राग के रंग में उपयोग लग गया तो रागरूप पर्याय हुई। समझ में आया? राग चाहे तो शुभ-अशुभ हो, परन्तु उसमें एकता हो गयी तो उपयोग राग में रंग गया। उपयोग में राग का रंग चढ़ गया। समझ में आया?

क्षत्रिय था। एक साधु था, साधु। (संवत्) १९८३ की बात है। दामनगर था। साधु था। उसको कोई स्त्री के साथ संग रहता होगा। वह सब पैसा स्त्री खा गयी। फिर स्त्री ने छोड़ दिया। हम दामनगर में थे। बाजार में ही उपाश्रय है। हम बैठे थे और वह निकला। काला कोट था। काले कोट पर नाम लिखा, लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी। स्त्री का नाम लक्ष्मी था। पहले उसके साथ विषय लेता होगा। पैसे दिये होंगे। फिर पैसे समाप्त हो गये तो स्त्री ने छोड़ दिया। छोड़ दिया तो उसको द्वेष हुआ। क्षत्रिय था, हों! परन्तु साधु हो गया था। समझ में आया? लक्ष्मी... लक्ष्मी। तो क्या कहे? कोई लड़के को देखे तो कहे, बोलो दस बार लक्ष्मी-लक्ष्मी। तो एक पैसा दे। लक्ष्मी का अपमान कराने को। स्त्री का फिर मुझे ख्याल आया कि अरे! ये क्या करता है? मैं उपाश्रय में बैठा था। संवत् १९८३। कितने वर्ष हुए? ४३—चार और तीन। हम उपाश्रय में पाट पर बैठे थे। वह निकला। फिर कहलवाया, अरे! बाबाजी! ये शोभता नहीं। इस वेश में यह क्या करते हो? स्त्री का नाम कोट पर लिखा है। लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी। अपमान करवाना है? क्या है? तो उसको जवाब दिया, मुझे नहीं, मैंने किसी को कहा था। क्षत्रिय का रंग चढ़ा है, उतरता नहीं। ऐसा बोला। हम क्षत्रिय हैं और साधु हुए हैं। हमारा रंग चढ़ा है, स्त्री के द्वेष पर, वह उतरता नहीं। ऐ... प्रकाशदासजी! भाव समझे या नहीं? मैं क्षत्रिय हूँ तो मेरा रंग स्त्री के राग में चढ़ गया है। वह उतरता नहीं।

इसी प्रकार राग में उपयोग एकाकार रंग हो गया तो उतरता नहीं, आत्मा में जाता नहीं। समझ में आया? अपने यहाँ कहते हैं न? योगीहठ, क्षत्रियहठ कहते हैं न? राजहठ, योगीहठ, बालहठ, स्त्रीहठ,... चार कहते हैं न? एक तो क्षत्रिय था और साधु हो गया। दो हठ मेरे पास हैं। ऐसा कहता था। हमारी हठ छूटती नहीं। महाराज पूछते हैं कि यह क्या करते हो? हमारा रंग चढ़ गया है, वह अभी उतरता नहीं। अनादि का उपयोग में राग का रंग चढ़ गया है। समझ में आया? उपयोग तो अपना स्वच्छ शुद्ध

चैतन्य है, परन्तु राग का रंग चढ़ने से उसमें एकत्वबुद्धि हो गयी। समझ में आया? उसका नाम विषय से अविरक्त है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब तक विषयों में चित्त रहता है,... राग... राग। राग में चित्त रहता है, **तब तक उनरूप रहता है,...** देखो! तब तक उनरूप रहता है- रागरूप रहता है। राग बिना की मेरी चीज़ क्या है, उस ओर उसकी दृष्टि जाती नहीं। **आत्मा का अनुभव नहीं होता है,...** कहाँ से हो? राग का उपयोग में रंग लग गया हो तो आत्मा का ध्यान और अनुभव कहाँ से हो? **इसलिए योगी मुनि इस प्रकार विचारकर विषयों से विरक्त हो...** राग का उपयोग छूट जाए। समझ में आया? आहाहा! भगवान तो ऐसा भी कहते हैं कि जैसा स्त्री आदि विषय है, वह अशुभभाव का विषय है। परन्तु परद्रव्य जो वीतराग की वाणी आदि है, वह भी विषय है। वह शुभभाव का विषय है। परद्रव्य विषय है, उसमें जब तक लक्ष्य जाता है, चाहे तो भगवान हो या चाहे तो स्त्री हो, राग ही उत्पन्न होगा। परद्रव्य के लक्ष्य से राग ही उत्पन्न होगा। वह पहले आ गया है। समझ में आया? कठिन काम है।

३१वीं गाथा में वह कहा न? समयसार ३१वीं गाथा में कहा है, इन्द्रिय का जो विषय है, वही इन्द्रिय है। भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है तो वह भी इन्द्रिय है, ऐसा कहा है। भगवान ऐसा कहते हैं कि ये पाँच इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, भावेन्द्रिय भी इन्द्रिय है, खण्ड-खण्ड अंश खण्ड-खण्ड इन्द्रिय है, परन्तु भगवान की वाणी भी इन्द्रिय है। क्योंकि उसका विषय इन्द्रिय है, विषय उसका है, इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! अमरचन्दभाई! कायर का तो कलेजा काँप उठे ऐसा है। ऐ... सेठ! वीतराग की वाणी और वीतराग कहते हैं कि हमारा विषय, तुम्हारा हमारे पर लक्ष्य जाएगा तो तुझे राग होगा। हम राग का विषय हैं, तेरे अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय हम नहीं। आहाहा! परद्रव्य... यहाँ लिखा है न? देखो!

आत्मा को जाने, अनुभव करे, इसलिए विषयों से विरक्त होना यह उपदेश है। विषय में जब तक चित्त रहे, तब तक राग में लीन होता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! ऐ... देवीलालजी! क्या आया? बहुत कठिन काम है। अपना स्वविषय सम्यग्दर्शन का

छोड़कर जितना पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, वह सब विषय है। चाहे तो शुभभाव हो या चाहे अशुभ हो। ऐई! पण्डितजी! समयसार ३१वीं गाथा में आता है। तीनों को हम तो इन्द्रिय कहते हैं। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और शब्द आदि भगवान की वाणी आदि भी इन्द्रिय है, वह अतीन्द्रिय नहीं। आहाहा! तीनों को इन्द्रिय कहा। उन इन्द्रियों को जीते उसने सब जीता। उसका अर्थ कि जो शब्द आदि है, उसका लक्ष्य छोड़कर, द्रव्यइन्द्रिय का छोड़कर, भावइन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर अतीन्द्रिय आत्मा के सन्मुख करे तो उसको सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दर्शन की गाथा है। बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! उसका मार्ग अन्दर से प्राप्त करने की रीति ही कोई अलग है। समझ में आया? ऐ... सेठ! लड्डू खाना ऐसे नहीं मिल जाता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भाव आया। आये बिना रहेगा नहीं। जब तक वीतराग नहीं हो, तब तक शुभराग आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। दुनिया कहे, दुनिया के घर रही। सत्य यह है। सत्य कोई गुप्त रखने में आता है? सत्य तो ऐसा है। ३१ गाथा में स्पष्ट कर दिया है। '**जो इंदिये जिणित्ता**' अमृतचन्द्राचार्य ने इन्द्रिय की व्याख्या की। इन्द्रिय के तीन प्रकार। इन्द्रिय की व्याख्या। खण्ड इन्द्रिय, जड़ इनिद्रय और सामने विषय। विषय अर्थात् चाहे तो स्त्री का हो या चाहे तो भगवान की वाणी का हो। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय अर्थात् सामने लक्ष्य है। विषय के भोग की बात नहीं है। उससे जब तक एकताबुद्धि है तो विषय से विरक्त नहीं, वह इन्द्रिय का जीतना नहीं। भाई! ३१ में आता है न? वह इन्द्रिय का जीतनेवाला नहीं। जिसका लक्ष्य पर के ऊपर जाता है, वीतराग तीन लोक के नाथ... ऐसा कहा न? '**परदव्वादो दुग्गइ**' पहले आ गया है। परद्रव्य पर लक्ष्य जाता है, इतनी आत्मा की गति से भ्रष्ट होता है। ऐ... वजुभाई! क्या है यह?

मुमुक्षु : यहाँ से कोई ना नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आप सब ना कहनेवाले हाँ कहते हो। यहाँ का कहाँ है? मार्ग

ऐसा है, भगवान! ये तो पहले से चला आया है, १६वीं गाथा से। नहीं? **'परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ'** जितना स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर परद्रव्य का आश्रय करेगा इतनी आत्मा की गति स्व की नहीं होगी, परगति होगी। चार गति दुर्गति है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **आत्मा का अनुभव नहीं होता है,...** जब तक राग की एकता पड़ी है, वह परविषय में एकता है। विषय अर्थात् पर ध्येय। राग ध्येय पर है, उसमें एकता है, तब तक आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं होगा। **विषयों से विरक्त होकर आत्मा में उपयोग लगावे...** देखो! राग में जो उपयोग लगा था, उसे छोड़कर आत्मा में लगावे, **तब आत्मा को जाने,...** तब आत्मा ज्ञानानन्द है, उसका ज्ञान होता है। तब अनुभव है। वेदन करे। **इसलिए विषयों से विरक्त होना, यह उपदेश है।** इसलिए इस कारण से विषय की एकताबुद्धि छोड़ना, विरक्त होने का उपदेश भगवान का है। आहाहा! विशेष जोर देते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ६७

(गाथा) ६७। **आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं...** देखो! उस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं। **आत्मा को जानकर भी भावना बिना संसार में ही रमता है :-** अकेला जानपना हो और अनुभव, समयग्दर्शन न हो तो भी चार गति में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा।
हिडंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा॥६७॥

यहाँ तो स्वविषय में झुकने के लिए परविषय को छोड़ने का उपदेश है। समझ में आया? देखो न, नरक में भी विषय से विरक्त है। ३२ में आया है। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होगा। क्योंकि राग की एकताबुद्धि छूटकर स्वरूप का आचरण वहाँ भी है। स्वरूप का आचरण नरक में भी है, सो शील है। उसको शीलपाहुड़ में शील कहा है। समझ में आया? एकदेश शील। आहाहा!

अर्थ :- कई मनुष्य आत्मा को जानकर भी अपने स्वभाव की भावना से अत्यन्त भ्रष्ट हुए... अन्तर में सम्यग्दर्शन की भावना करते नहीं और अनुभव करते नहीं। कहो, समझ में आया? **विषयों में मोहित होकर...** देखो! पर में-राग में एकता हो जाती है। स्वभाव की भावना नहीं करके राग में एकत्व होता है। **अज्ञानी मूर्ख...** देखो! अज्ञानी। आहाहा! राग में एकता है, वह अज्ञानी है। मूर्ख है। पाठ में है न? '**विमोहिया मूढा**' दो शब्द है।

मुमुक्षु : 'आत्मानं ज्ञात्वा' में क्या कहना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का जानपना-क्षयोपशमभाव। जाना इतना, बुद्धि में आया इतना। परन्तु अनुभव दृष्टि-सम्यग्दृष्टि नहीं की। समझ में आया? अपने स्वभाव-सन्मुख की एकता होनी चाहिए, वह करते नहीं। ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़े। उसमें आता है न? आत्मा कैसा है पढ़ा था, उसे ख्याल तो आया था। हों! जानना उस प्रकार का ज्ञान, हाँ! सम्यग्ज्ञान नहीं।

अज्ञानी मूर्ख चार गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं। चार गति अर्थात् संसार में। देखो! यहाँ तो नरक में जाते हैं, कहते हैं। अपना विषय सम्यग्दर्शन बनाया नहीं और राग का विषय बनाकर एकत्व रहता है, वह चार गति में नरकादि में, पशु में, निगोद में भी जायेगा। लो। चार गति ली है न। तो मिथ्यादृष्टि निगोद में जाते हैं, समकिती जाते नहीं। समकिती को तो गति एक वैमानिक गति है। मनुष्य और तिर्यंच हो तो। नारकी और देव हो तो मनुष्य गति है। दूसरी गति होती ही नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो राग में एकत्व लीन है। मोक्षपाहुड़ है न? तो परद्रव्य का आश्रय करके राग में लीन (रहता है), वह बन्ध का कारण है। और राग से रहित अपना स्व का आश्रय है, वह मुक्ति का कारण है, यह सिद्ध करना है। यह बात वीतराग मार्ग के अतिरिक्त कहीं सुनने मिलती नहीं। ऐ... प्रकाशदासजी! यह पंच महाव्रत को पर का विषय बनाया। राग है न, राग। उसका अनुभव है, सो भोग का अनुभव है, ऐसा कहते हैं। अपने अनुभव की खबर नहीं। बन्ध अधिकार में लिया।

भावार्थ :- पहिले कहा था कि आत्मा को जानना, भाना, विषयों से विरक्त

होना, ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाये जाते हैं,... देखो! उत्तरोत्तर दुर्लभ है। समझना दुर्लभ है, फिर अनुभव दुर्लभ है और फिर स्थिरता अन्दर में दुर्लभ है। एक के बाद एक दुर्लभ है। उत्तरोत्तर है न? **विषयों में लगा हुआ प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है ऐसे कहा,...** जो विषय में-राग में लीन हो गया, विकल्प में लीन है, वह विषय है, वह आत्मा को जानता नहीं। समझ में आया? आहाहा! परविषय को विषय करता है। **आत्मा को जानता नहीं है ऐसे कहा, अब यहाँ इस प्रकार कहा कि आत्मा को जानकर भी विषयों के वशीभूत हुआ भावना नहीं करे...** अनुभव सम्यग्दर्शनसहित की वीतराग भावना में लीन, ऐसा न करे **तो संसार ही में भ्रमण करता है, इसलिए आत्मा को जानकर विषयों से विरक्त होना, यह उपदेश है।** परविषय से छूटकर अपना ज्ञान जानकर, अपने को विषय बनाकर अपने में स्थिर रहना, होना, वह मोक्ष का मार्ग है। स्वद्रव्य के आश्रय से रहना, वह मोक्ष का मार्ग है। परद्रव्य के आश्रय से राग होता है, वह बन्ध का मार्ग है। मूल तो वह कहना है। अब उससे सुलटा (कहते हैं)।

★ ★ ★

गाथा - ६८

आगे कहते हैं कि जो विषयों से विरक्त होकर आत्मा को जानकर भाते हैं, वे संसार को छोड़ते हैं :- पहले चार गति में भटकता है, ऐसा कहा था। अब यहाँ चार गति को छोड़ता (है, ऐसा कहा कहते हैं)।

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो॥६८॥

'**जे पुण विसयविरत्ता**' विषय से विरक्त, राग की एकताबुद्धि से छूट गया है। '**अप्पा णाऊण**' आत्मा का ज्ञान करके '**भावणासहिया**' अनुभव विशेष करके। '**छंडंति चाउरंग**' देखो! चार गति छोड़ देता है। '**तवगुणजुत्ता ण संदेहा**' उसके साथ चारित्र हो तो चार गति होती नहीं। '**ण संदेहा**' सन्देह नहीं करना।

अर्थ :- फिर जो पुरुष मुनि विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भाते हैं,...

पर का लक्ष्य छोड़कर अपना ज्ञान करके आत्मा की भावना करते हैं **बारम्बार भावना द्वारा अनुभव करते हैं...** आत्मा का आनन्द का शुद्धउपयोग बारम्बार करे। ऐसा कहते हैं। **वे तप अर्थात् बारह प्रकार तप और मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर...** उसको बाहर में बारह प्रकार का तप निमित्तरूप से होता है। बारह प्रकार का कहा न? उसमें सज्झाय, ध्यान आ गया। विनय, वैयावृत्य बाहर में निमित्त है। **मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर संसार को छोड़ते हैं,...** उसका संसार-उदयभाव छूट जाता है और आत्मा की परम पवित्र दशा प्राप्त होती है। लो, वह बाद में आयेगा।

भावार्थ :- विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भावना करना, इससे संसार से छूटकर मोक्ष प्राप्त करो, यह उपदेश है। लो। अब कहेंगे, सब स्पष्टीकरण बहुत आयेगा।

★ ★ ★

गाथा - ६९

आगे कहते हैं कि यदि परद्रव्य में लेशमात्र भी राग हो तो वह पुरुष अज्ञानी है,... यहाँ स्पष्टीकरण किया। राग का राग है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। लेशमात्र राग का अंश है, उसकी भी रुचि है। रुचि है, उसकी बात है न? राग हो, दूसरी बात है, उसकी रुचि। ये गाथा अपने आती है, भाई! पंचास्तिकाय, समयसार और प्रवचनसार तीनों में इस गाथा का सार है। पंचास्तिकाय १६७, समयसार २०१, प्रवचनसार में ३९। ऐसा यहाँ लिखा है। यह गाथा तीन में आती है।....

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का राग। यहाँ राग वह लेना है। समयसार में लिया है। राग का राग।

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ॥६९॥

ये सबका सार लिया।

अर्थ :- जिस पुरुष के परद्रव्य में परमाणु प्रमाण भी लेशमात्र मोह से रति अर्थात् राग-प्रीति हो... राग का राग-प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि है। बहुत कठिन काम।

मुमुक्षु : परमाणु माने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु अर्थात् थोड़ा। अल्प में अल्प राग, शुभराग। दया का, दान का बड़ा अच्छा। शरीर का ब्रह्मचर्य। उस राग का भी राग है मोहादि... देखो! '**परदव्वे रदि हवेदि मोहादो**' रति। रति का अर्थ प्रेम किया।

जिस आत्मा को। पुरुष अर्थात् आत्मा, हाँ! **परद्रव्य में... 'परदव्वे रदि हवेदि'** राग -विकल्प भी परद्रव्य है। उसमें भी रुचि-प्रीति है, '**मोहादो**' मोह से रति अर्थात् राग-प्रीति हो **तो वह पुरुष मूढ है,...** यहाँ तो परद्रव्य का विषय का राग है, उसमें प्रीति है, वह मिथ्यात्व है—यह बात सिद्ध करनी है। आहाहा! कठिन काम, भाई! राग हो, दूसरी बात है और राग की प्रीति, रति कहते हैं न ? राग की रति करना, प्रीति करना, राग ठीक है, मुझे ठीक है। मिथ्यात्वभाव से ऐसी प्रीति करते हैं, वह मूढ़ हैं। कहो, स्त्री, पुत्र राग तो बहुत दूर रह गया। राग का राग करते हैं। समयसार २०१ में वह लिया न ? भाई! समयसार २०१ में वह लिया। पण्डित जयचन्द्र ने स्पष्टीकरण किया कि यह राग तो अज्ञानी का राग। राग में राग है, वह राग। ऐसे राग तो ज्ञानी को दसवें गुणस्थान तक है। वह राग परद्रव्य है, ज्ञेय है, अपने स्वरूप नहीं है। राग का अंश भी है, वह प्रीति करके करता है, वह अपने स्वभाव की दृष्टि का वमन करते हैं। भाई!

बड़ा दिन है, बड़ी बात आ गयी। सेठ! आहाहा! अनन्त चतुर्दशी का बड़ा दिन है। महापर्व है बड़ा। अन्तिम है न। ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् अपने आनन्दस्वरूप में रुचि करना, वह ब्रह्मचर्य है। परद्रव्य में राग है, राग में प्रीति करना वह मैथुन-अब्रह्म है। दया के, दान के शुभभाव में प्रीति / रुचि करना वही मैथुन और अब्रह्म है। एक स्वभाव को दूसरे के साथ जुड़ान करके रहना, वह मैथुन विषय है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जगह ही नहीं रही निकलने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगह रही निकलने की, रागरहित आत्मा है या नहीं ? राग में रहकर कुछ हो, धूल भी नहीं होता। पुण्य-पाप अधिकार में वह आया था। उसमें क्या है ?

'परमाणुपमाणं' उसका अर्थ क्या ? परमाणु प्रमाण भी राग में रति, वह मिथ्यादृष्टि है, उसका अर्थ क्या ? राग तो छठे गुणस्थान में होता है, राग तो दसवें गुणस्थान तक होता है। वह दूसरी बात है। राग की रुचि और प्रीति है। भले थोड़ा राग और थोड़ी प्रीति (हो)। मोक्षपाहुड़ में बात वह यहाँ सिद्ध करनी है। समझ में आया ? बाहर की चीज़ तो दूर पड़ी रही।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी का राग ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानुबन्धी का राग। हाँ। शुभराग है, उसकी प्रीति है, रुचि है, उससे मेरा भला होगा, वह अनन्तानुबन्धी का राग है। समझ में आया ? क्या करना ? ये सब झटककर निकाल दिया। वीतराग मार्ग है, उसमें राग की रुचि तो वीतराग मार्ग कहाँ से आया ? जिनवाणी वीतरागभाव की पोषक है, जिनवाणी राग की पोषक नहीं है। राग की पोषक हो वह जिनवाणी नहीं। समझ में आया ? जिनवाणी किसको कहते हैं वीतराग ? राग की रुचि तो राग का पोषक भाव हुआ।

जिस पुरुष के परद्रव्य में परमाणु प्रमाण... इतना छोटे से छोटा राग। **लेशमात्र मोह से रहित अर्थात् राग-प्रीति हो तो वह पुरुष मूढ़ है, अज्ञानी है,...** पाठ में आया **आत्मस्वभाव से विपरीत है।** आत्मा के स्वभाव से विपरीत है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना माना है न, रति की है न। यहाँ तो छोटा। परमाणु अर्थात् थोड़ा राग। राग में रति है, प्रेम है कि यह लाभदायक है, मेरा है, वह अनन्तानुबन्धी का राग है। मोह से मिथ्यात्व से मिथ्यादृष्टि है। आत्मस्वभाव से विपरीत है। ऐसी बात है, भाई! राग हो वह दूसरी बात है और राग की रुचि में लाभ मानना, राग से लाभ होगा, मेरे शुभराग से लाभ होगा, मुझे सम्यग्दर्शन होगा, शुभराग से मुझे चारित्र होगा— ऐसी दृष्टि मूढ़ अज्ञानी प्राणी की है, ऐसा कहते हैं। प्रकाशदासजी! वहाँ कभी सुना नहीं होगा। स्थूल बातें सुनकर प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। जाओ, हो जाओ साधु। मुंडाओ, बाद में वही चलता है, अनादि से चलता है। वह कोई नया है ? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, स्वद्रव्य... राग परद्रव्य है। अपना

द्रव्य भी नहीं, अपना गुण भी नहीं, अपनी पर्याय भी नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तो आस्रवतत्त्व है, राग तो आस्रवतत्त्व है और आत्मा तो ज्ञायकतत्त्व है। ज्ञायकतत्त्व आस्रवतत्त्व की प्रीति करता है तो मिथ्यात्व है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व की प्रीति करे तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! क्या कहा इसमें? **'परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो'**। मिथ्यात्व है न, मिथ्यात्व। सार करके यहाँ लाये। विषय से विरक्ति आदि जो सब कहा था न? राग में रस है, वह विषय से अविरक्त है। एकाकार उसमें पड़ा है। आत्मा का उपयोग बिल्कुल अस्वस्थ हो गया। आहाहा! आगे कहेंगे, देखो!

भावार्थ :- भेदविज्ञान होने के बाद जीव-अजीव को भिन्न जाने, तब परद्रव्य को अपना न जाने... देखो! अज्ञानी अपना जानते हैं तो मिथ्यात्व है। **तब उससे (कर्तव्यबुद्धि-स्वामित्व की भावना से) राग भी नहीं होता है,...** देखो! **भेदविज्ञान होने के बाद जीव-अजीव को भिन्न जाने, तब परद्रव्य को अपना न जाने, तब उससे (कर्तव्यबुद्धि-स्वामित्व की भावना से) राग भी नहीं होता है, यदि (ऐसा) हो तो जानो कि इसने स्व-पर का भेद नहीं जाना है,...** आहाहा! आपा-पर का। आपा कहते हैं न काठी को? **स्व-पर का भेद नहीं जाना है,...** भगवान आत्मा रागरहित और राग विकारसहित, दो का भेदज्ञान यदि हुआ और फिर प्रेम करे तो भेदज्ञान है ही नहीं। उसने स्व-पर का भेद जाना नहीं, **अज्ञानी है,...** आहाहा! **आत्मस्वभाव से प्रतिकूल है,...** पाठ में है न? अब स्पष्टीकरण करते हैं, देखो!

ज्ञानी होने के बाद चारित्रमोह का उदय रहता है, तब तक कुछ राग रहता है उसको कर्मजन्य अपराध मानता है,... गुनाह माने, दोष माने। **उस राग से राग नहीं है,...** देखो! ज्ञानी को राग से राग नहीं है, अज्ञानी को राग पर प्रीति रुचि है। बस, इतना कहना है। समयसार में २०१ में वही अर्थ किया है। राग का राग। **'सव्वागमधरो वि'**। वहाँ ऐसा कहा। **'सव्वागमधरो वि'** राग प्रीतिमात्र करे तो वह मिथ्यादृष्टि है। समस्त आगम का जाननेवाला हो, परन्तु राग की रुचि करे तो मिथ्यादृष्टि है। **उस राग से राग नहीं है, इसलिए विरक्त ही है...** देखो! विरक्त लिखा। राग का राग नहीं है; इसलिए विरक्त है। अज्ञानी को राग का राग है, इसलिए अविरक्त है, विरक्त नहीं। आहाहा! कठिन अर्थ। **अतः ज्ञानी परद्रव्य में रागी नहीं कहलाता है, इस प्रकार जानना।** ज्ञानी परद्रव्य का प्रेमी कहने में आता नहीं। विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ७, रविवार, दिनांक २८-०४-१९७४
गाथा - ६७ से ६९, प्रवचन-१३७

यह अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ चलता है। ६७वीं गाथा है।

★ ★ ★

गाथा - ६७

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं कि आत्मा को जानकर भी भावना बिना संसार में ही रहता है :—

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा।
हिंडंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा॥६७॥

अर्थ :- कई मनुष्य आत्मा को जानकर भी... पहले तो यह बात की कि आत्मा का ज्ञान ही करता नहीं। जिसे आत्मज्ञान नहीं, वे सब चार गति में भटकनेवाले हैं। यह आत्मज्ञान अपूर्व दृष्टि अन्दर हुई हो, वह आत्मज्ञान होने पर भी भावना अब न करे बारम्बार उसमें, तो वह भी भ्रष्ट होकर... चातुरंग कहा है न? चार अंग उसके। इसलिए उसमें से गति निकाली। चार गति में भटके। आहाहा! पहला तो सम्यग्दर्शन ही दुर्लभ है। उस सम्यग्दर्शन रहित के जितने आचरण, तप, व्रत, सब चार गति में भटकने के लिये है। सम्यग्दर्शन, वह अनन्त काल में नहीं प्रगट हुई दशा है। वह करोड़ों में किसी जीव को प्राप्त हो, ऐसी दुर्लभ चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुगम तो, प्रगट करे तो सुगम है। अनादि से नहीं करता तो महादुर्गम है। एक तो वाड़ा में से निकलना कठिन पड़े। कठिन बात है। यह तो दिगम्बर धर्म है, वह सनातन जैनधर्म है। इसके अतिरिक्त सब वाड़ा बाँधे हुए जैनधर्म नहीं, जैनधर्म नहीं। यहाँ तो यह स्पष्ट बात है। ऐई! यह १४वीं गाथा में आ गया। दिगम्बर

धर्म, वह सनातन जैनधर्म है। उसमें से भ्रष्ट होकर यह सब श्वेताम्बर और स्थानकवासी निकले हैं, वे जैन नहीं, वह जैनधर्म ही नहीं।

मुमुक्षु : वे कहते हैं कि दिगम्बर हमारे में से निकले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहे न। अज्ञानी न कहे तो किसे कहे? यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य भगवन्त के उत्तराधिकारी, वे स्वयं पुकार कर रहे हैं। ऐसी सूक्ष्म बात, बापू!

श्वेताम्बर... यह तो उसमें आता है न? उसमें आया है। ७९ में है। ७९ गाथा है न उसमें? इसमें ही ७९ गाथा है।

पंचसेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रय ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७९॥

७९ में है। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे सीमन्धर भगवान के पास। वहाँ से आकर फिर यह शास्त्र बनाये हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! वाडावालों को कठिन पड़े ऐसा है।

अर्थ :- पंच आदि प्रकार के चेल अर्थात् वस्त्रों में आसक्त हैं,... जो वस्त्र रखते हैं और मानते हैं कि हम साधु हैं। तो उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि निगोदगामी कहा है। है अन्दर? **अण्डज, कपासज, वल्कल, चर्मज और रोमच इस प्रकार वस्त्रों में किसी एक वस्त्र को ग्रहण करते हैं, ग्रन्थग्राही अर्थात् परिग्रह के ग्रहण करनेवाले हैं, याचनाशील अर्थात् मागने का ही जिनका स्वभाव है और अध:कर्म अर्थात् पापकर्म में रत है, सदोष आहार करते हैं, वे मोक्षमार्ग से च्युत (भ्रष्ट) हैं।**

भावार्थ में है, देखो! **पहिले तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये थे,...** जैनधर्म सनातन वीतराग केवली ने कहा हुआ, उस मार्ग में पहले मुनि तो हुए थे। **पीछे कालदोष...** कठोर बारह (वर्ष के) दुष्काल पड़े। उसमें **चारित्र पालने में असमर्थ हो निग्रन्थ लिंग से भ्रष्ट होकर...** दिगम्बर लिंग जो नग्न मुनि, उससे वे भ्रष्ट हो गये। **वस्त्रादिक अंगीकार कर लिये,...** वस्त्र आदि रखने लगे। **परिग्रह रखने लगे, याचना करने लगे, अध:कर्म उद्देशिक आहार करने लगे, उनका निषेध है, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं।** आहाहा! भारी कठिन, भाई! आहाहा! यह जगत को गले उतरना (कठिन है)।

पहले तो भद्रबाहुस्वामी तक निर्ग्रन्थ थे। निर्ग्रन्थ मुनि नग्नदशा और अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव, ऐसी दशा पहले से अनादि से चली आती थी। **पीछे दुर्भिक्षकाल में भ्रष्ट होकर जो अर्धफालक कहलाने लगे...** लो! थोड़ा टुकड़ा रखा आधा। **उनमें से श्वेताम्बर हुए...** उसमें से यह श्वेताम्बर पंथ निकला, उसमें से स्थानकवासी तो अभी निकला उनमें से। भ्रष्ट में से भ्रष्ट। ऐसी बात है, बापू! कठोर बात है। जगत को सहन करना। धर्म की खबर ही नहीं, कहते हैं। **इन्होंने इस भेष को पुष्ट करने के लिये जो सूत्र बनाये,...** यह सब ३२ और ४५ और ८४, वे अज्ञानी ने बनाये हुए हैं, वे भगवान के शास्त्र नहीं। वे समकिती के बनाये हुए नहीं। ऐई! नगीनभाई! है इसमें? कठोर बातें, बापू! इतनी खबर नहीं कि यह ४० वर्ष से परिवर्तन किया है तो कुछ कारण होगा। समझ में आया? देखा! है?

भेष को पुष्ट करने के लिये जो सूत्र बनाये,... यह वस्त्र, पात्र चले साधु को। ऐसे मिथ्यादृष्टि साधु ने सब शास्त्र बनाये हैं। ३२ और यह ४५ और... **कल्पित आचरण तथा इसकी साधक कथायें लिखीं। इनके सिवाय अन्य भी कई भेष बदले, इस प्रकार कालदोष से भ्रष्ट लोगों का सम्प्रदाय चल रहा है, यह मोक्षमार्ग नहीं है,...** ऐ... पण्डितजी!

मुमुक्षु : .... हाँ ही करे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हाँ ही करे न! दिगम्बर है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! दुनिया ठगाई जाती है बेचारी। मर गये ठगाकर। आहाहा! **भ्रष्ट लोगों को देखकर ऐसा भी मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना।** ऐसे भ्रष्ट को देखकर, यह भी एक मार्ग है—ऐसा नहीं मानना। आहाहा! कठिन बातें, बापू! जैनधर्म अन्तर आत्मा के स्वभाव का भान होकर वीतरागता प्रगटे, वह जैनधर्म है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं है नहीं।

यह कहाँ यहाँ (६७ गाथा में)। **आत्मा को जानकर भी अपने स्वभाव की भावना से अत्यन्त भ्रष्ट हुए,...** कितने ही दिगम्बर मुनि हुए और आत्मज्ञान भी पहले हो, परन्तु फिर **विषयों से मोहित होकर...** परपदार्थ में मोहित होकर स्वरूप की भावना न करके भ्रष्ट हो गये। आहाहा! **अज्ञानी मूर्ख चार गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं।** वे

अज्ञानी चार गति चौरासी (लाख योनि) यह नरक और निगोद में भटकेंगे, ऐसा कहते हैं, भाई! यह कुन्दकुन्दाचार्य के—भगवान के पास गये हुए के वचन हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- पहले कहा था कि आत्मा को जानना,... पहली गाथा में कहा। आत्मा का ज्ञान पहले करना, बाकी बाद में दूसरी बात। यह आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, पूर्ण आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, उसके स्वभाव में परिपूर्णता पड़ी है, उसका निमित्तों से लक्ष्य छोड़कर और राग की मन्दता कोई दया, दान के परिणाम हों, उनसे भी लक्ष्य छोड़कर, एक समय की अवस्था है, उसका भी लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! पूर्ण नित्य ध्रुवस्वरूप, आनन्दस्वरूप, सामान्यस्वरूप एकरूप की दृष्टि करने से पहला निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हो, उसके साथ आत्मा का ज्ञान होता है। भारी कठिन बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ज्ञान। यहाँ तो अभी दर्शन की प्रधानता से वर्णन है। ज्ञान हुए बिना प्रतीति किसकी करे? वह तो दूसरी बात है। १७-१८ (गाथा समयसार) वहाँ वाँचन हुआ न। आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, पूर्ण आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का वर्तमान ज्ञान की दशा में उसे ज्ञेय-ध्येय बनाकर जो ज्ञान उस वस्तु का हो, उसमें प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन ऐसा कहलाता है। उस सम्यग्दर्शन की खबर नहीं होती और हो गये व्रत और चारित्र और तप। रण में शोर मचाने जैसी सब बातें हैं। आहाहा! ऐसा का ऐसा अनादि से संसार में—चौरासी के अवतार में भटक रहा है।

पहले आत्मा को जानना,... पहले में पहला कर्तव्य भगवान ने कहा हो तो, वह आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प राग है, उससे भिन्न चैतन्यतत्त्व है। ३८वीं गाथा में वहाँ आया था मुम्बई (में), बहुत सूक्ष्म! संवर, निर्जरा, मोक्ष और आस्रव—दया, दान के विकल्प ऐसे जो नौ तत्त्व पर्याय के, उनसे आत्मा अत्यन्त भिन्न है। यह और क्या ऐसा? संवर, निर्जरा और मोक्ष जो दशा आत्मा की, उनसे भी आत्मा अत्यन्त भिन्न है। अब यह क्या? कहो। क्योंकि वे सब पर्यायें हैं, अवस्थायें हैं। दया, दान, व्रत के

विकल्प, वह आस्रवतत्त्व है, उसमें अटकना, वह बन्धतत्त्व है, स्वभाव चैतन्य के आनन्द के आश्रय से जो संवर—शुद्धि प्रगट हो, वह संवरदशा है; अन्तर के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि हो, आनन्द की वृद्धि हो, वह निर्जरातत्त्व है और पूर्णानन्द की प्राप्ति हो, वह मोक्षतत्त्व है। आहाहा! इन नौ तत्त्वों से द्रव्य भिन्न है। आहाहा! क्योंकि नौ हैं, वह पर्याय है और द्रव्य है, वह पर्याय से भिन्न है। आहाहा! अभी शरीर से भिन्न मानना कठिन पड़े, उसे कर्म से भिन्न मानना कठिन पड़े और यह व्रत और तप और विकल्प जो राग हो, वह बन्ध का कारण राग जहर है, उससे भिन्न मानना और उसकी संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय से उसे भिन्न मानना। आहाहा! शर्तें बहुत परन्तु भाई! **आत्मा को जानकर...** पहले तो उसका ज्ञान करना है। जिसे धर्म करना हो तो।

मुमुक्षु : पूरी दुनिया को करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया को कहाँ भान कब है तो करे? राग को करे, पुण्य को करे और धर्म को माने। ऐसा मनाते हैं, पूरे सम्प्रदाय में मनाते हैं न। यह करो, व्रत करो, यह अपवास करो, तप करो, वह तुम्हारे धर्म। वह तो मिथ्यादृष्टि है। जैनदर्शन का वेरी है। ऐसा स्वरूप है, बापू! वस्तुस्वरूप अन्दर। आहाहा! प्रथम में प्रथम आत्मा को जानना, ऐसा पहले आ गया है ६६ में। आत्मा को जानना अर्थात्? शास्त्र से जानना, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : गुरु प्रसाद से जानना, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुरु प्रसाद से जानना, ऐसा भी नहीं।

मुमुक्षु : उसमें आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया वह गुरु ने ऐसा कहा था, ऐसा कहते हैं। जैन के गुरु उन्हें कहते हैं कि जो राग से भिन्न पड़कर उसे आत्मा का आनन्द बतावे कि देख, तेरे राग के विकल्प से भिन्न पड़कर जो आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि कर। ऐसा जैन गुरुओं का उपदेश होता है और जो कोई ऐसा उपदेश दे कि यह व्रत, तप और यह करो, वह धर्म है, वह मिथ्यादृष्टि है, जैनदर्शन नहीं। वह जैनदर्शन को माननेवाला नहीं। आहाहा! कठिन बातें, बापू!

मुमुक्षु : सीधी और सरल बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधी परन्तु कठोर पड़े यह। कितने वर्ष व्यतीत किये हों। आहाहा!

पहले कहा था कि आत्मा को जानना,... आहाहा! जब तक आत्मज्ञान न हो, तब तक उसका सब व्यर्थ है, चार गति में भटकने के लिये है। उसके व्रत और तप और जप, वे सब चार गति में भटकने के लिये हैं। आहाहा! अब लोग कुछ सुनते हैं, हों! अब ऐसा नहीं। मुम्बई में १०-१० हजार लोग अन्तिम दिनों में। परन्तु यह बात सूक्ष्म थी। बापू! मार्ग यह है। वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा ने तो जीव की पर्याय आस्रव— दया, दान के विकल्प, व्रत का, तप का विकल्प, वह तो राग है। तप था कब? और संवर, निर्जरा की दशा जो आत्मा के आश्रय से होती है, उस दशा से भी ध्रुव है, वह भिन्न है। आहाहा! ऐसे ध्रुव को अवलम्बकर जो सम्यग्दर्शन हो, उसे आत्मज्ञान और दर्शन कहते हैं। कहो, प्रवीणभाई!

फिर आत्मा को जानकर **भाना,...** धर्मी जीव को पहले आत्मा को जानना। धर्म करनेवाले को धर्म करनेवाली चीज़ क्या है, (उसे जानना)। ऐसा भगवान सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप अन्दर है, उसे पहले जानना, पहिचानना, मानना; पश्चात् उसकी भावना करना। अर्थात्? बारम्बार अनुभव करना। आहाहा! वह आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसका धर्मी को बारम्बार अनुभव करना, उसे भाना। निमित्त को, राग को और पर्याय को नहीं भाना, ऐसा कहा। आहाहा! ऐसा मार्ग कठोर मुश्किल पड़े। बेचारे दूसरे रास्ते चढ़ गये और चढ़ाये दोनों व्यक्तियों ने। सब निगोद के रास्ते हैं। एक शरीर में अनन्त पड़ेंगे, जायेंगे। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का तो यह कथन है। उसके बहाने नये शास्त्र बनाये, उनमें सब कल्पित बातें बना दी है।

भाना,... आत्मा के आनन्दस्वरूप को पहिचानकर धर्मी जीव को बारम्बार उसके आनन्द का अनुभव करना, ऐसा कहते हैं। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। आहाहा! उसे बारम्बार भाना। पश्चात् **विषयों से विरक्त होना...** चारित्र है। वह तो चौथे गुणस्थान में भी हो सकता है और अब तो विषयों अर्थात् परसन्मुख की वृत्तियाँ

छोड़कर, परसन्मुख के झुकाव के भाव को छोड़कर **विषयों से विरक्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ पाये जाते हैं...** एक के बाद एक बात दुर्लभ है। आहाहा! प्रथम सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान ही अपूर्व बात है। उसके बाद अनुभव करना, वह महादुर्लभ है। बारम्बार उसमें आत्मा का स्पर्श करना और फिर आसक्ति जो थी विषयों की, विषयों में सुखबुद्धि तो टल गयी थी, सम्यग्दर्शन होने पर, आत्मज्ञान होने पर विषय में सुख है, यह बुद्धि तो टल गयी थी। सुख विषय की वासना में नहीं, संयोग में नहीं, सुख लक्ष्मी में नहीं, सुख बाहर की इज्जत-कीर्ति में नहीं, यह बुद्धि तो आत्मज्ञान होने पर सम्यग्दृष्टि को पर में से सुखबुद्धि तो उड़ गयी होती है। आहाहा! ऐसी बातें कान में पड़ने पर... परन्तु आसक्ति का भाव रह गया होता है, सम्यग्दृष्टि को अनुभव होने पर भी। इन्द्रिय के विषयों का, सुखबुद्धि का भाव गया हो, परन्तु आसक्ति का भाव रहा हो, उसे छोड़ना, ऐसा कहा है। आहाहा!

विषयों से विरक्त होना... आसक्ति का चारित्रदोष है। विषय में सुख है, यह मिथ्यात्व दोष है। आहाहा! शरीर में, कीर्ति में, पैसे में, मकान में सुख है, यह तो मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व का दोष है, उल्टी श्रद्धा का दोष है। आहाहा! परन्तु वह सुखबुद्धि टलने पर भी उसमें आसक्ति जो रह गयी है, उसे टालकर आत्मानुभव करना। अर्थात् मुनिपने की बात करते हैं मूल तो, भाई! विषयों से विरक्त मुनि सच्चे सन्त, समकिती ज्ञानी जो जंगल में बसते हों मुनि तो। मुनि जैन वीतराग के मुनि उन्हें कहते हैं कि जो नग्न हो, तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हो और जंगल में हों तथा आहार लेते हों, वह खड़े-खड़े हाथ में ले, उन्हें जैनमुनि, वीतरागमुनि, जैन के साधु उन्हें कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह विषय से विरक्त हो गये।

विषयों में लगा हुआ प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है... इसलिए कहते हैं कि जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों में रुचि और रस है, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहाहा! क्योंकि आत्मा अणीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। अणीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। इन्द्रिय के विषय में जिसकी रुचि है, प्रेम है, उसे आत्मज्ञान नहीं होता। आहाहा! उसे समकित नहीं होता, ऐसा कहते हैं। **प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है ऐसा कहा,...** कहा न? **विषयों में लगा हुआ प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है...** जिसका झुकाव ही

परसन्मुख है, पश्चात् भगवान की वाणी हो या साक्षात् त्रिलोकनाथ हो, उनके ओर की झुकाव के राग में जिसे प्रेम है, उसे आत्मज्ञान नहीं होता। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आत्मा का विषय जो ध्रुव ध्येय, उसे छोड़कर जिसे बाह्य के पाँच विषयों में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में जिसका चित्त लगा है, चित्त वहाँ चिपटा है उसका, उसे—ऐसे राग के रसिक जीव को चैतन्य भगवान आत्मा का ज्ञान उसे नहीं होता। आहाहा! **ऐसे कहा,...** है अन्दर?

विषयों में लगा हुआ प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है, ऐसे कहा,... विषय छोड़ देना, ऐसा नहीं। छोड़ा तो अनन्त बार बाहर से क्रियाएँ छोड़ी, परन्तु उस परसन्मुख के झुकाव के राग में प्रेम है, आहाहा! उसे छोड़ना, वह विषय को छोड़ा, ऐसा कहा जाता है। वैसे तो अनन्त बार बालब्रह्मचारी हुआ। उसमें क्या धूल हुई? एक शुभभाव हो, पर के झुकाववाला भाव, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! दिगम्बर मुनि हुआ मिथ्यादृष्टि, महाव्रत पालन किये, पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह) पालन किये तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि उस राग में जिसे रस है। विषय में ही रस है उसे पर में, ऐसा कहते हैं। मनसुखभाई! आहाहा! चैतन्य आनन्द का नाथ भगवान, उसके प्रति का रस सन्मुख होने का उसे नहीं। ऐसे रस है। उस पर में जिसका रस है, उसे आत्मा का जानना नहीं होता। आहाहा!

अब यहाँ इस प्रकार कहा कि आत्मा को जानकर भी विषयों के वशीभूत हुआ भावना नहीं करे... और जाना आत्मा को, परन्तु उसमें बारम्बार अनुभव नहीं करे और आसक्ति में रुकेगा, वह भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा! देखो! यह भगवान की वाणी। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है। **तो संसार में भ्रमण करता है,...** आत्मा का ज्ञान होने पर भी उसका अनुभव बारम्बार न करे, अन्तर आनन्द का अनुभव (न करे), वह भी भ्रष्ट होगा। आहाहा! लोगों को प्रिय लगेगा बाह्य त्याग हो इसलिए। परन्तु वह तो चार गति में परिभ्रमण करेगा।

इसलिए आत्मा को जानकर विषयों से विरक्त होना... आत्मा का भान अनुभव करके और फिर आसक्ति का त्याग करके स्थिरता करना, ऐसा कहते हैं। शैली ही अलग प्रकार की है। वीतरागी शैली है। यह तो वीतरागमार्ग है। जिसे इन्द्र और गणधर

सुनते हैं, वह बात कैसी होगी ? इन्द्र जो एकावतारी है। सौधर्म देवलोक के देव। उनकी पत्नी भी समकिती और एकावतारी है। दोनों पति-पत्नी एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। सौधर्म देवलोक है न ? बत्तीस लाख विमान है। उनका देव इन्द्र और पत्नी दोनों एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। तीन ज्ञान तो है, समकित है। वे भगवान के पास सुनने आते हैं। वे कैसा सुनते होंगे ? दया पालो, व्रत करो, उपवास करो। अब यह तो कुम्हार भी कहता है। यह वाणी भगवान की कैसी होगी ? आहाहा! वह ऐसे एकावतारी जीव सुनने आवें लोक के स्वामी और सम्यग्दृष्टि और जिन्हें एक भव करके मोक्ष जाना है। उनकी यह वाणी वीतराग की ऐसी वे सुनते हैं। ओहो! तीन लोक का नाथ आनन्दस्वरूप प्रभु तू है। आहाहा! उसकी दृष्टि उपरान्त अब आसक्ति का त्याग करके स्वरूप में— आनन्द में स्थिर हो। जो सम्यग्दर्शन में आनन्दस्वरूप आत्मा आया था, जाना था, अब उसमें स्थिर हो। आहाहा! केवली वीतराग की वाणी परमेश्वर जिनवरदेव (ने) समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा उपदेश दिया।

★ ★ ★

गाथा - ६८

आगे कहते हैं कि जो विषयों से विरक्त होकर आत्मा को जानकर भाते हैं, वे संसार को छोड़ते हैं :—

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो॥६८॥

अर्थ :- फिर जो पुरुष मुनि... 'अप्पा' लिया है न ? मुनि दिगम्बर सन्त। जो जंगल में बसते हैं। आहाहा! माता से जन्मा ऐसा उनका रूप हो। जन्मे प्रमाण रूप भासित आता है न। केवलज्ञानी ... मुनि... आहाहा! ...भाई! ऐसा सुनना कठिन पड़े। ... आहाहा! ... **मुनि विषयों से विरक्त हो...** जिसे आत्मज्ञान हुआ है, वे मुनि दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह तो राग है। उस राग को भी जिसने छोड़ा है, ऐसा कहते हैं। वे **मुनि विषयों से विरक्त...** परसन्मुख के विषय के ध्येय से छूटे हैं और अपना ध्येय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें जो लीन है। आहाहा! वे **आत्मा को जानकर भाते हैं,...** वह

आत्मा का ज्ञान करके फिर उसकी भावना बारम्बार अनुभव, बारम्बार अनुभव। आहाहा! बारम्बार उपयोग—शुद्ध उपयोग हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

आत्मा को जानकर भाते हैं,... आत्मा वस्तु जो शुद्ध आनन्द और पूर्ण ज्ञान से भरपूर छलाछल, आनन्द और शान्ति से भरपूर पदार्थ समुद्र है, यह आत्मा। आहाहा! उसका आत्मज्ञान करके और उसकी भावना बारम्बार करना। आहाहा! **बारम्बार भावना द्वारा अनुभव करते हैं...** आत्मा के आनन्द का अनुभव बारम्बार करे। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि।' यह आनन्द का स्वरूप का अनुभव, वह रत्न चिन्तामणि धर्म है। आहाहा! 'अनुभव रत्न चिन्तामणि अनुभव है रसकूप।' उस आनन्द के रस का वह... क्या कहलाता है वह? कूप। नाम भूल गये... वह क्या कहलाता है? कूप-कूप। कूप कहते हैं न? यह कैरोसीन का भरते हैं या नहीं? शीशा-शीशा। शीशा। शीशा होता है न वह शीशा? बड़ा शीशा। उसी प्रकार आत्मा आनन्द रस का बड़ा शीशा है, ऐसा कहते हैं। उसका अनुभव वह आनन्द का रस है। सम्यग्दृष्टि को—धर्मी जीव को उस आनन्द के रस का अनुभव और आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! उसे धर्म और उसे धर्मी कहा जाता है। वह अनुभवरस। 'अनुभव मार्ग मोक्ष का।' उस आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का भान करके, परन्तु बारम्बार आनन्द का अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसे धर्मात्मा को पंच महाव्रत के विकल्प बीच में आवे नग्न मुनिदशावन्त को भी, ऐसे आनन्दवाले को भी, उसे वह रागरूप से, हेयरूप से जाने। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो महाव्रत अर्थात् धर्म माने। वहाँ कहाँ उसे भान है। महाव्रत अर्थात् वह तो आस्रव भाव है। विकार भाव है। ऐसे करूँ पर की दया पालूँ, पर को दुःख न दूँ, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करूँ, वह सब राग है, वह तो विकल्प है। वीतरागमार्ग बहुत कठोर, भाई! वीतराग के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र है नहीं, होती नहीं।

यह तो कहा था न। सम्प्रदाय में कहा था। कहा नहीं था एक बार? (संवत्) १९८५ के वर्ष पौष महीना। बोटाद में बड़ी सभा। वहाँ तो ३०० घर तब थे। अब तो बढ़

गये हैं। १५००-१५०० लोगों की सभा। उपाश्रय खचाखच भर जाये और पीछे गली भरे, इतने लोग। दो बातें की थीं थोड़ी जरा। भड़क जाये ऐसी। ८५ की बात है। ४५ वर्ष हुए। कहा, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। जिस भाव से बन्ध हो, वह भाव धर्म नहीं। बन्ध हो तीर्थंकर प्रकृति, वह भाव धर्म कहाँ से होगा? आहाहा! वह तो अपराध है। शुभोपयोग का अपराध है। आहाहा! और पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं, कहा। यह दो बातें ४५ वर्ष पहले सभा में सम्प्रदाय में की थी। वीतराग का मार्ग यह है, बापू! वे लोग तो सुनते थे बेचारे। रायचन्द गाँधी, शिवलाल गोपाणी। उन्हें कुछ (नहीं)। महाराज कहते हैं। शिवलाल गोपाणी थे, रायचन्द गाँधी, वीरचन्द, नारण सेठ कैसे वे? नारणभाई नहीं? नारण भूदर। वे सेठ थे न? सब के पास... जगजीवनजी बैठे थे साथ में। उन्हें नहीं रुचा। वे कहे वोसरे... वोसरे... उठ गये। किसी ने उन्हें सुना नहीं, समझे नहीं। फिर कहा, भाई! तुमको न रुचे तो बैठे-बैठे वहाँ बैठे रहना था न! तुमने क्या कहा, मुझे खबर पड़ी। लोग तुमको जानते हैं कोई कहीं? तुमने कहा यह तुमने वोसरे... वोसरे अर्थात् यह श्रद्धा हमें नही चाहिए, ऐसा। थी कब वहाँ तुझे? पूरी सभा तो कुछ समझी भी नहीं, तुमने क्या कहा उसे। बैठे रहे होते तो क्या दिक्कत थी? जगजीवनजी थे मूलचन्दजी से छोटे। मूलचन्दजी बड़े। मूल सम्प्रदाय में बात ही नहीं। पूरा जैन सम्प्रदाय कहलाये वीतराग, इसके अतिरिक्त यह दूसरे सम्प्रदायों में यह बात ही नहीं। उसके गुरु, कुगुरु प्ररूपणा ऐसी करते हैं कि यह व्रत पालना, वह धर्म है; अपवास करना, वह निर्जरा है। सब तत्त्व की दृष्टि से विरुद्ध प्ररूपणा है। शान्तिभाई!

यहाँ कहते हैं, **आत्मा को जानकर भाते हैं,...** मुनियों। उसे मुनि कहते हैं। आहाहा! मुनिपना तो जगत ने सुना नहीं अभी। किसे मुनि कहना? जिसे आत्मज्ञान सम्यक् अनुभव हो, तदुपरान्त जिसे वस्त्र-पात्र छूटकर नग्नदशा हो गयी हो, वन में बसते हों, एकबार आहार लेने जंगल में से आते हों, खड़े-खड़े हाथ में आहार लेते हों, अन्दर में वीतरागदशा तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव की प्रगट हुई हो, उसे वीतरागमार्ग में मुनि कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? देव में अन्तर, गुरु में अन्तर, शास्त्र में अन्तर, बहुत अन्तर। कहो, नगीनभाई! सब अन्तर है ऐसा। आहाहा! भाग्यशाली

प्रिय जीव हो, उसे यह बात बैठे, ऐसी है। जन्म-मरण का अन्त लाना हो, चौरासी के अवतार (मिटाना हो).... आहाहा!

आत्मा को जानकर भाते हैं,... वह सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा का ज्ञान करके फिर बारम्बार अनुभव करता है। ऐसा नहीं कहा कि पंच महाव्रत पालता है। आहाहा! उसे बीच में विकल्प आवे सही, ऐसे अनुभवी जीव को भी, परन्तु वह पालता है, ऐसा नहीं। उसे छोड़कर अनुभव करता है। आहाहा! चरणानुयोग में व्यवहारनय का कथन हो, वहाँ निश्चय-व्यवहार को ऐसा हो, ऐसा बताते हैं। आहाहा! वीतराग परमेश्वर का अनादि सनातन केवली का मार्ग तो यह है।

बारम्बार भावना द्वारा अनुभव करते हैं, वे तप अर्थात् बारह प्रकार तप और मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर... इच्छा निरोधरूपी तपस्या जिन्हें होती है। आत्मा के आनन्द की लहर में आने पर जिसे इच्छा उत्पन्न नहीं होती, ऐसी इच्छानिरोध का जिन्हें तप होता है। बारह प्रकार के तप निमित्त से कथन किया है। **और मूलगुण उत्तरगुणों...** साधु के मूलगुण अट्ठाईस होते हैं। पंच महाव्रत विकल्प है, अचेलपना, खड़े-खड़े आहार, अदन्तधोवन, नग्नपना इत्यादि अट्ठाईस मूलगुण हैं, वे जिन्हें व्यवहार से होते हैं। उत्तरगुण तो अन्तर विशेष निर्मलता। ऐसे **युक्त होकर संसार को छोड़ते हैं,...** यह पाँचवें काल के साधु की बात चलती है। वे कहे कि चौथे काल के। सेठ बहुत कहते हैं न बारम्बार? भगवानदास। यह तो पंचम काल के सन्त, पंचम काल के सन्त की कैसी स्थिति (होती है) उसका वर्णन करते हैं। आहाहा! **संसार को छोड़ते हैं, मोक्ष पाते हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- विषयों से विरक्त हो, आत्मा को जानकर भावना करना, इससे संसार से छूटकर मोक्ष प्राप्त करो, यह उपदेश है।

★ ★ ★

गाथा - ६९

आगे कहते हैं कि यदि परद्रव्य में लेशमात्र भी राग हो तो वह पुरुष अज्ञानी है, अपना स्वरूप उसने नहीं जाना :— आहाहा!

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ॥६९॥

जो कोई आत्मा को **परद्रव्य में...** अर्थात् कि राग में, परवस्तु में जरा भी **परमाणु प्रमाण भी लेशमात्र मोह से रति...** है। उसकी रुचि है। छोटे में छोटे राग की भी जिसे रुचि है, उसकी प्रीति और राग है, **वह पुरुष मूढ़ है,...** आहाहा! उसे यहाँ परमात्मा मिथ्यादृष्टि (कहते हैं)। राग का एक कण सूक्ष्म पंच महाव्रत का या देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का या व्यवहार समिति-गुप्ति का राग, वह राग है सब विकल्प, उसकी जिसे रुचि है। **मोह से रति...** ऐसा कहा न? मिथ्यात्वभाव से जिसे प्रेम है। आहाहा! श्रीमद् ने कहा न, दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता को लेकर रस ठण्डा होता गया। विपरीत होकर, शिथिलता क्या, विपरीत। यह शब्द है।

जिस पुरुष के परद्रव्य... स्वद्रव्य चैतन्य भगवान का प्रेम और दृष्टि छोड़कर राग के छोटे में छोटा (अंश) दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग, उस राग में जिसे मोह से प्रेम है, मिथ्यात्व का प्रेम है उसे। आहाहा! **वह पुरुष मूढ़ है।** वह अज्ञानी है। आहाहा! **आत्मस्वभाव से विपरीत है।** आत्मा का स्वभाव अपना प्रभु का तो ज्ञान, आनन्द आदि उसका स्वभाव है। उसका जिसे प्रेम नहीं और राग का जिसे प्रेम है, मोह है, उसमें सावधान है—ऐसा कहना है। आहाहा! तो वह पुरुष आत्मा के स्वभाव में मूढ़ है और आत्मा के स्वभाव से विपरीत है। ऐसा सुनने को कम मिले और सुने तब झट बैठे नहीं, ऐसी यह बातें! नये लोगों को इसका बारम्बार अभ्यास चाहिए। उसे अन्दर समझ सके, ऐसी योग्यता से अभ्यास चाहिए। यह तो अनन्त संसार का अन्त लाने की बातें हैं, परिभ्रमण मिटाने की बात है। मोक्षपाहुड़ है न! मोक्षप्राभृत, मोक्षसार। पूर्णानन्द की प्राप्ति आत्मा की, वह मोक्ष। उसके सार के साक्षात्कार की यह बात है। आहाहा!

भावार्थ :- भेदविज्ञान होने के बाद जीव-अजीव को भिन्न जाने,... सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् जीव-अजीव को भिन्न जाने। **तब परद्रव्य को अपना न जाने...** वह राग और पुण्य का दया, दान, व्रत, तप का भाव, वह विकल्प है, राग है। उसे **अपना न जाने...** उसे अपना स्वरूप न माने। आहाहा! क्या कहा? **भेदविज्ञान होने के बाद जीव-अजीव को भिन्न जाने, तब परद्रव्य को अपना न जाने, तब उससे राग भी नहीं होता है...** जो पर से भिन्न आत्मा को जाना और आत्मा से भिन्न रागादि को जाना, उसे राग में प्रेम नहीं होता। आहाहा!

यदि हो तो जानो कि इसने स्व-पर का भेद नहीं जाना है,... जिसे उस शुभराग, शुभ क्रियाकाण्ड का प्रेम है, ऐसा है, उसे जीव और अजीव का भेदज्ञान नहीं। आहाहा! **अज्ञानी है,...** लो! जिसे आनन्दस्वरूप भगवान राग और अजीव से, अजीव अर्थात् कर्म और शरीर, राग अर्थात् आस्रव विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप का विकल्प, उससे जिसने भेद किया है आत्मा को, उसे उस राग के प्रति रुचि नहीं होती और हो तो जानो कि उसे दोनों का भेदज्ञान नहीं है। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप और राग का विकल्प आकुलतास्वरूप। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प आवें सही मुनि, आत्मध्यानी को; परन्तु वह आकुलता है—ऐसा जाने। उसे उस आकुलता का प्रेम नहीं होता। आहाहा! भारी कसौटी, भाई!

आत्मस्वभाव से प्रतिकूल है और ज्ञानी होने के बाद... भेदज्ञान अर्थात् ज्ञानी होने के बाद—राग का विकल्प और निर्विकल्प भगवान आत्मा, दोनों की भिन्नता को जाना है, पश्चात् **चारित्रमोह का उदय रहता है...** उसे थोड़ा राग होता है। जब तक वीतराग न हो, तब भेदज्ञानी को भी राग तो होता है। **जबतक कुछ राग रहता है, उसको धर्मजन्य अपराध मानता है...** आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसे अपराध माने, ऐसा कहते हैं। आत्मभान है, महाव्रत के परिणाम, वह राग है। भेदज्ञान हुआ है तो राग से भिन्न आत्मा को जाना है। उसे राग में प्रेम नहीं, उसे अपराध मानता है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम को समकिती अपराध मानता है। गजब बातें ऐसी! वे तो कहे, पंच महाव्रत... अपने शास्त्र में पंच महाव्रत को संवर कहा है। और ऐसा कहते हैं अभी। आहाहा! दिगम्बर शास्त्र में भले ऐसा कहा हो, ऐसा कहते हैं। तेरे शास्त्र खोटे

हैं। मिथ्यादृष्टि ने बनाये हुए हैं। आहाहा! आत्मा का भान—भेदज्ञान-अजीव, शरीर, कर्म और आस्रव राग और आत्मा ज्ञायक—ऐसे दोनों से भिन्न पड़ा हुआ भान हुआ, उसे अभी राग कर्म के निमित्त के संग से थोड़ा राग होता है, वीतराग न हो तब तक, परन्तु उसे वह अपराध मानता है, गुनाह मानता है। आहाहा!

उस राग से राग नहीं है,... राग का प्रेम नहीं, राग का जाननेवाला रहता है। आहाहा! **इसलिए विरक्त ही है,...** इस कारण से राग की रुचि और प्रेम नहीं, इसलिए राग से वह विरक्त है। **अतः ज्ञानी परद्रव्य में रागी नहीं कहलाता है,...** धर्मी परद्रव्य के प्रेमी नहीं कहलाते। आहाहा! धर्मी को परद्रव्य के प्रति प्रेम नहीं, परद्रव्य ज्ञेय है। स्वद्रव्य ज्ञेय और उपादेय है। परद्रव्य ज्ञेय और हेय है। आहाहा! भगवान भी परज्ञेय हैं, वे भी समकिती को तो हेय हैं निश्चय से। आवे सही शुभराग, परन्तु वह भी हेय है। आहाहा! गजब ऐसा! यह ६९ में कहा, लो! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ८, सोमवार, दिनांक २९-०४-१९७४
गाथा - ७० से ७३, प्रवचन-१३८

उसे चारित्र कहते हैं। **उनको निश्चय से निर्वाण होता है।** उसे निश्चय से... साधक है न। मुक्तिदशा किसे होती है? जिसे आत्मा शुद्ध अखण्ड अभेद ... जिसे वीतराग ... पश्चात् स्वरूप में चारित्र, उस अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी लीनता हो। आहाहा! उसे चारित्र कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन और अन्दर रमणतारूप चारित्र आनन्द की, बाह्य दशा उसकी नग्न होती है। उसमें तो दर्शन की बाह्य-अभ्यन्तर शुद्धता कही है। उसमें वह आ जाती है। जिसकी दशा, मुनि जिसे कहते हैं भगवान के शास्त्र में, उसकी तो नग्नदशा हो गयी होती है। आहाहा!

श्रीमद् में ऐसा नहीं आता? शरीरमात्र जिसे, मात्र देह वह संयम हेतु होय। देह के अतिरिक्त मुनि को दूसरा नहीं होता। ऐसा डाला है, अपूर्व अवसर में। अन्तर के आनन्द की दशा का भान है और आनन्द में रमणता बहुत है। उसका नाम चारित्र कहते हैं। आहाहा! और देहमात्र जिसे परिग्रह रहा है। निमित्त बाहर। उसे वस्त्र का धागा नहीं होता, पात्र नहीं होता, उसे यहाँ जैनदर्शन में वीतराग शास्त्र में उसे मुनि कहा जाता है। उस मुनि को **निश्चय से निर्वाण होता है।** उसे वास्तव में मुक्ति होती है। उसका मोक्ष होता है।

भावार्थ :- पहिले कहा था कि जो विषयों से विरक्त हो, आत्मा का स्वरूप जानकर आत्मा की भावना करते हैं, वे संसार से छूटते हैं। पहले आया था। परन्तु ऐसे तो स्त्री का विषय छोड़े, वह कहीं उसे छोड़ा नहीं कहलाता। अन्तर में सम्यग्दर्शन के भावसहित में वस्तु की ओर के झुकाव की आसक्ति छोड़कर स्वरूप में रमणता करे, उसे विषय छोड़ा कहा जाता है। गजब बातें, भाई!

मुमुक्षु : आत्मा को विषय बनाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसने आत्मा को विषय बनाया है। आत्मा को विषय बनाया, वह क्या?

जिसने आत्मा ध्येय बनाया, ध्रुव अखण्ड आनन्द का नाथ पूर्ण आनन्दस्वरूप, ऐसा जिसने ध्येय बनाकर ध्यान किया है। आहाहा! उसे अन्दर में स्वरूप की रमणता की जमावट जमती है, अन्दर अनाकुल आनन्द की लहर आती है। जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आवे, वैसे मुनि को अन्तर के आनन्द की पर्याय में-अवस्था में ज्वार आता है। यह क्या होगा ऐसा? यह तो वह बाहर की दया और वस्त्र छोड़ना। यह उन श्वेताम्बर को वस्त्र बदलना इतना। वह तो जैनदर्शन ही नहीं, उसे जानो, ऐसा कहते हैं। यह तो वस्त्र छोड़कर नग्न हो, उसे भी यदि इस आत्मा का सम्यग्दर्शन और भान नहीं है, उसे चारित्र नहीं है और मुक्ति नहीं है। समझ में आया? बहुत कठिन बातें। लालचन्दभाई! विस्तार करते हुए अन्तिम आने पर जरा कठिन पड़ता है कितनों को। मार्ग तो यह है, बापू! मिठास से कहे, शान्ति से कहे, धीरे से कहे या मोटी आवाज से कहे। मार्ग तो यह है। प्रवचनसार में अन्त में आता है। मोटी आवाज से कहे। पाठ आता है, हों! या धीमे से। परन्तु मार्ग तो यह है, बापू! तू भूला है, तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **आत्मा का स्वरूप जानकर आत्मा की भावना करते हैं...** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्यबिम्ब, उसके स्वरूप को स्वसन्मुख होकर जानकर पश्चात् भावना करता है अर्थात् अनुभव करता है। बारम्बार आनन्द का अनुभव करता है। आहाहा! उसका नाम चारित्र है। व्याख्या बहुत कठिन सूक्ष्म है। गणधर चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करे, ऐसे गणधर का जिसे नमस्कार पहुँचे, वह मुनिपना कैसा होगा! आहाहा! यह तो चल निकले बाहर से। मिथ्यादृष्टिसहित बाहर के क्रियाकाण्ड में जुड़ गये, वह तो मिथ्यात्व अज्ञान कुलिंगी है। यह तो जिसे गणधर णमो लोए सव्वसाहुणं—पंच नमस्कार में णमो लोए सव्वसाहुणं। चार ज्ञान और चौदहपूर्व की रचना करने में जिन्हें अन्तर्मुहूर्त लगे, ऐसे सन्त-गणधर, सन्तों के नायक, वे भी जिन्हें नमस्कार करते हैं, वह साधु है न, भाई! अलौकिक बातें हैं। समझ में आया? वह साधुपने की स्थिति सुनना भी कठिन है। आहाहा! कहते हैं, वह भावना आत्मा का ध्यान करके एकाग्र होता है। **वे संसार से छूटते हैं।** उसकी विधि यह है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विधि। लावे, यह तुम्हारा याद आया। विधि-अविधि आवे न तुम्हारे? श्वेताम्बर में बहुत आती है। विधि से यह करना। परन्तु वह विधि ही नहीं है। क्या विधि करे? आहाहा! बहुत मार्ग प्रभु का, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने मार्ग कहा है। बापू! इसे सुनने को मिलता नहीं, वह कब माने और कब विचार करे? आहाहा!

कहते हैं कि **इस ही अर्थ को संक्षेप से कहा है कि जो इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर बाह्य-अभ्यन्तर दर्शन की शुद्धता से दृढ़ चारित्र पालते हैं...** आहाहा! जिसे सच्चे अरिहन्त सर्वज्ञदेव की पहिचान होती है। बाह्य समकित में, व्यवहार में। सच्चे सन्त-गुरु-मुनि कैसे होते हैं? दिगम्बर नग्न मुनिदशा वनवासी हो, उसे यहाँ मुनि माने। उसकी तो व्यवहारश्रद्धा ऐसी होती है। आहाहा! और जिसे भगवान के कहे हुए शास्त्र, उसे वह शास्त्र माने। अज्ञानी के कल्पित शास्त्रों को वह शास्त्र नहीं माने। आहाहा! ऐसी तो बाह्य जिसकी दर्शन की शुद्धता हो। और अभ्यन्तर शुद्धता आत्मा के आनन्द की, अनुभवदशा की जिसे प्रतीति हो। आहाहा! भाषा अलग प्रकार की, भाव अलग प्रकार के। वह **दृढ़ चारित्र पालते हैं...** लो!

उनको नियम से निर्वाण की प्राप्ति होती है,... उनको पूर्ण निर्वाण की प्राप्ति होती है। पूर्ण शुद्ध अर्थात् पूर्ण आनन्द। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का लाभ, उसे मुक्ति कहते हैं। आहाहा! मोक्ष। श्रीमद् में तो ऐसा आया है 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ; समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' वीतराग भगवन ने निर्ग्रन्थ मुनियों ने यह मार्ग अनादि का कहा है। मोक्ष कहा निज शुद्धता। अर्थात् कि आत्मा की पूर्ण आनन्द की प्राप्ति, वह निज शुद्धता। अतीन्द्रिय पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष। और उसका उपाय यह। स्वरूप आनन्द का नाथ भगवान अतीन्द्रिय विराजता है। उसका भान-ज्ञान करके प्रतीति करना और पश्चात् दृढ़ चारित्र पालन करे। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् चारित्र पालन करे, उसकी बात है। जिसे अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, उसे व्रत और चारित्र अज्ञानी के हैं। आहाहा!

इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति सब अनर्थों का मूल है,... अतीन्द्रिय आत्मा स्वयं

भगवान है, उस अतीन्द्रिय की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वह मोक्ष का कारण। और ऐसे पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर का झुकाव, वह अनर्थ का कारण है, ऐसा कहते हैं। विषय शब्द से? यहाँ तो भगवान की वाणी और भगवान स्वयं भी इन्द्रिय है। इन्द्रिय का विषय है। उसकी ओर के झुकाव का भाव राग है, वह अनर्थ का मूल है। आहाहा! वहाँ हमेशा सुनने जाते हो या किसी दिन? किसी दिन। ठीक। रास्ते में साथ में थे तब। लालभाई के साथ चर्चा करते थे न। ... इकट्ठे। उस दिन की पहिचान है। लालचन्दभाई की। लालचन्दभाई बहुत अच्छा वाँचन करते हैं वहाँ। व्याख्यान में हजारों युवक आते थे। व्याख्यान में हजारों युवक, हों!

मुमुक्षु : जवान भी बहुत अधिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : जवान बहुत। वृद्ध अब तो सब थक गये। और हजारों स्थानकवासी व्याख्यान में आते थे। हजारों। क्या कहते हैं परन्तु यह? ४०-४० वर्ष से यह चलता है। और लोग बढ़ते जाते हैं। क्या है वह यह मार्ग? सुने तो सही, भगवान! बापू! तेरे मार्ग की पद्धति यह है। आहाहा! भाई! तेरे विचार का मार्ग यह है। दुनिया से दूसरे प्रकार से मानकर कल्पित किया है, उस रास्ते से लाभ नहीं होगा। आहाहा! परन्तु इसकी दरकार भी कौन करे? एक व्यक्ति तो उन्हें पूछता था कि यह हम संसार का काम भी करें और मोक्ष का कारण करते हैं, ऐसा कोई उपाय? एक म्यान में दो तलवार रहे, ऐसा कुछ है? पण्डितजी! संसार के काम कर सकता हूँ, यह जब तक मान्यता है, तब तक मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अरे! राग, दया, दान और भक्ति का राग, वह सब राग है। उसे भी करनेयोग्य है और करता हूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म की खबर नहीं है। आहाहा! यह भी काम करते हैं और यह भी काम होता है, ऐसा दो है? मैंने कहा, दो नहीं, यहाँ तो एक है। आहाहा! भगवान परमात्मा केवलज्ञानी अरिहन्त के श्रीमुख से निकली हुई यह बात है।

इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति सब अनर्थों का मूल है,... परसन्मुख के विषय में प्रेम है, वह सब अनर्थ का मूल है। **इसलिए इनसे विरक्त होने पर,...** परसन्मुख के, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री-कुटुम्ब हो, वे सब परद्रव्य हैं। उनके प्रति का उपयोग छोड़कर **आत्मा में लगे, तब कार्यसिद्धि होती है।** आहाहा! यहाँ तो चारित्रसहित

की व्याख्या है न। ऐसे पाँच इन्द्रिय के विषय (छोड़कर) ब्रह्मचर्य पालन करे। वह नहीं। वह तो सब विषय है। काया से ब्रह्मचर्य पालन करे, वह भी एक शुभराग की क्रिया है, यदि शुभराग करता हो तो। दुनिया में दिखाने के लिये करता हो तो अकेला पाप है। आहाहा!

आत्मा में लगे... जिसने आत्मा के आनन्द के स्वरूप को जिसने देखा, जाना और आस्वाद लिया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव ने परद्रव्य की ओर के झुकाव के भाव को छोड़कर आत्मा में अन्दर जो स्थिरता में लगे हैं, उन्हें मुक्ति है। आहाहा! **तब कार्यसिद्धि होती है।** यह ७० गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ७१

आगे कहते हैं कि जो परद्रव्य में राग है, वह संसार का कारण है,... आहाहा! वह तो साधारण में उतारते हैं। यह अर्थकार है न? स्त्री का राग, वह है न। आचार्य तो परद्रव्य का राग कहना है पूरा। यह है न? स्त्री के प्रति राग और... यहाँ तो परद्रव्य चाहे तो देव हो, गुरु हो, सच्चे शास्त्र, हों! मिथ्या की तो बात भी नहीं करना। आहाहा! **जो परद्रव्य में राग है, वह संसार का कारण है,...** आहाहा! केवली परमात्मा ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति भी तुझे प्रेम है, वह राग है, वह संसार का कारण है। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं, हों! तेरा नाथ अन्दर वीतरागमूर्ति आनन्दनाथ विराजता है। उस स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर, परद्रव्य के लक्ष्य में जाता है, वह राग संसार का कारण है। आहाहा! वह शुभराग धर्मी को भी भाव होता है सही, परन्तु है वह राग संसार का कारण। भाव आवे सही। अशुभ से बचने के लिये समकिती को भी देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम भक्ति (होती है) परन्तु है वह राग बन्ध का कारण। आहाहा!

इसलिए योगीश्वर आत्मा में भावना करते हैं :-

जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणं॥७१॥

अर्थ :- जिस कारण से परद्रव्य में राग है... मोक्ष अधिकार (पाहुड़) है न? १६वीं गाथा में आ गया। वहाँ मुम्बई में भी कहा था। '**परदव्वादो दुग्गइ**' १६वीं गाथा। इसमें, हों! '**परदव्वादो दुग्गइ**' १६-१६। पृष्ठ २४१। आहाहा! है? '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' यह सिद्धान्त वीतराग का। आहाहा! वहाँ कहा था, हों! मुम्बई। सब सुनते थे। सुने। आत्मद्रव्य जो आनन्द का नाथ प्रभु स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप, उसके आश्रय से सुगति होती है। और उस स्वद्रव्य को छोड़कर जितना परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है, आश्रय करता है, उतना राग होता है और राग, वह आत्मा की गति नहीं, वह आत्मा का वर्तन नहीं, वह तो दुर्गति है। अर...र..! आहाहा! सच्चे देव और अरिहन्त गुरु...

आत्मा ही में भावना करते हैं। आहाहा! आत्मा, परमेश्वर सर्वज्ञ वीतराग अरिहन्त ने कहा हुआ ऐसा आत्मा; अज्ञानी ने किसी ने देखा नहीं और ऐसा कहा नहीं। वह सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीर्थंकरदेव ने जो यह अन्तर आत्मा असंख्य प्रदेशी और अनन्त पवित्र गुण का धाम, स्वयं ज्योति सुखधाम, ऐसा आनन्द का नाथ भगवान आत्मा... आहाहा! उसे जिसने सम्यग्दर्शन और ज्ञान से जिसने जाना है, तदुपरान्त जिसने परद्रव्य के प्रति के राग को छोड़ा है। आहाहा! है न! परद्रव्य का राग संसार का कारण है। आहाहा! इस कारण से धर्मात्मा **नित्य आत्मा ही में भावना करते हैं।** आत्मा अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्परहित चीज़, उसे आत्मा कहते हैं। अन्य तो सब राग है। आहाहा! ऐसे आत्मा का जिसने प्रथम अनुभव-सम्यग्दर्शन किया हो और वह उसमें परद्रव्य के प्रति की झुकाव की वृत्ति छोड़कर अन्दर में वह भावना करे, उसे मुक्ति होती है। लो! आहाहा!

भावार्थ :- कोई ऐसी आशंका करते हैं कि परद्रव्य में राग करने से क्या होता है? परद्रव्य है वह पर ही है, अपने राग जिस काल हुआ उस काल है, पीछे मिट जाता है,... आहाहा! **उसको उपदेश दिया है कि परद्रव्य से राग करने पर परद्रव्य अपने साथ लगता है,...** पर के प्रति का प्रेम है तो पर का संयोग तुझे रहा करेगा। आहाहा! समझ में आया? वस्तु ऐसी है। बहुत बारीक-सूक्ष्म और अपूर्व (वस्तु) है। यहाँ कहते हैं कि चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र पर है और स्त्री-कुटुम्ब भी पर है, परन्तु पर के प्रति का

झुकाव-राग रहेगा, तब तक संयोग रहा ही करेंगे। संयोग रहे, उसमें आत्मा को क्या लाभ ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

परद्रव्य से राग करने पर परद्रव्य अपने साथ लगता है,... अर्थात् कि राग पर सम्बन्धी का है, उसका फल संयोग रहेगा। आहाहा! **यह प्रसिद्ध है और अपने राग का संस्कार दृढ़ होता है...** और राग होता है, वह भले शुभ हो। जिसे प्रशस्तराग कहते हैं, पुण्य राग। परन्तु वह राग के संस्कार अन्दर दृढ़ रहते हैं। आहाहा! **तब परलोक तक भी चला जाता है...** वह परभव में जाये तो राग के संस्कार वहाँ रहा करते हैं। आहाहा!

यह तो युक्ति सिद्ध है और जिनागम में राग से कर्म का बन्ध कहा है,... वीतराग परमेश्वर के मार्ग में राग से कर्मबन्धन कहा। चाहे तो परमेश्वर के प्रति राग हो, चाहे तो पंच महाव्रत का राग हो, वह महाव्रत स्वयं राग है। आहाहा! वे कहते हैं कि पाँच महाव्रत धर्म है और संवर है। सब उल्टा। दृष्टि विपरीत, श्रद्धा विपरीत, ज्ञान विपरीत, आचरण विपरीत। खबर नहीं होती। जिनागम में वीतराग परमेश्वर के शासन में तो चाहे व्रत का राग हो, भगवान के प्रति राग हो, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की प्रीति का राग हो, **कर्म का बन्ध कहा है,...** राग तो बन्ध का कारण कहा है।

इसका उदय अन्य जन्म का कारण है,... वह राग तो भव का कारण है। आहाहा! **इस प्रकार परद्रव्य में राग से संसार होता है,...** चैतन्य भगवान आत्मा पूर्ण पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसके आश्रय बिना जो कुछ परद्रव्य का आश्रय करे, वहाँ तो उसे राग ही होता है और वह राग भटकने का, संसार का ही कारण है। पहले सम्यक् श्रद्धा तो करे। समझण में तो बात ले कि मार्ग ऐसा है। उल्टे मार्ग में श्रद्धा करे तो भटक मरेगा। नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! परन्तु कहाँ ऐसी पड़ी है किसी को अन्दर ?

इसलिए योगीश्वर मुनि परद्रव्य से राग छोड़कर... चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में अभी राग होता है। देव-गुरु-शास्त्र का राग आदि बन्ध का कारण होता है, वहाँ वह। वह बन्ध का कारण है, ऐसा जानता है। जितनी आत्मा के आश्रय से निर्मल अरागी-वीतरागी दशा प्रगट हो, उतना मोक्ष का कारण। तब मुनि को तो कहते हैं कि

तुझे राग ही नहीं हो सकता। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत आत्मा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के पर्वत में स्थिर हो और परसन्मुख के राग को छोड़। यह **आत्मा में निरन्तर भावना रखते हैं।** आहाहा! दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

सम्यग्दर्शन, वह अपूर्व चीज़, जिसने अनन्त काल में सेकेण्ड भी प्रगट नहीं की। मुनिपना अनन्त बार पालन किया। मुनिपना अर्थात् नग्न दिगम्बर की क्रिया, हों! वह मुनिपना। उसके अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत अनन्त बार, अनन्त अनन्त बार (पालन किये) परन्तु अन्दर आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसे स्पर्श नहीं किया। आहाहा! इसलिए कहते हैं, ऐसे आत्मज्ञानसहित समभाव जो प्रगट होता है अन्दर वीतरागता (प्रगट होती है) उसे चारित्र होता है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७२

(गाथा) ७२।

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो॥७२॥

आत्मज्ञानी, धर्मात्मा की मुनिपने की दशा में उसे समामृत, वीतरागरूपी अमृत का उन्हें स्वाद आया है। आहाहा! ऐसे समभाव में निन्दा-प्रशंसा में जिसे समभाव है। दुनिया निन्दा करे, प्रशंसा करे, उसके प्रति धर्मी को तो समभाव है। अन्तर का समभाव, हों! बाहर का समभाव करे, वह समभाव नहीं है। आहाहा!

अर्थ :- निन्दा-प्रशंसा में,... धर्मी जीव को अन्तर समभाव प्रगट हुआ है। 'राग दाह दहे सदा तातैं समामृत सेईये।' छहढाला में है न? उसमें आता है। 'राग दाह दहे...' चाहे तो शुभराग हो या अशुभ हो। आहाहा! वह 'राग दाह दहे सदा' आत्मा की शान्ति को जलाता है। आहाहा! 'तातैं समामृत सेईये।' इसलिए सम्यग्दर्शन की भूमिका में स्थिर होकर समामृत-वीतरागरूपी अमृत का सेवन करो। आहाहा! यह राग के पेय-वेदन जहर का वेदन है, अंगारे का वेदन है, कहते हैं। आहाहा!

दुःख-सुख में... समभाव से। प्रतिकूल संयोग दुश्मन आदि आये हों या अनुकूल संयोग सज्जन आदि हों, उसमें सुख-दुःख की कल्पना जिसने छोड़ दी है। आहाहा! उसका नाम समता अमृत का सागर आत्मा है। आहाहा! **शत्रु-बन्धु-मित्र में समभाव...** सज्जन हो या शत्रु हो। दोनों परद्रव्य ज्ञेयरूप से ज्ञान करनेयोग्य है। आहाहा! अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित आत्मा के अनुभव के भानसहित धर्मात्मा को शत्रु-मित्र के प्रति समभाव (रखनेयोग्य है)। किसी के प्रति विरोध नहीं। आहाहा! अज्ञानी की दृष्टि विपरीत हो या श्रद्धा विपरीत हो, ऐसा जाने परन्तु वैर-विरोध नहीं। आहाहा! किसी आत्मा के प्रति विरोध नहीं है। वह शत्रु और मित्र के प्रति (समभाव रखता है)। बन्धु कहा है न? बन्धु का अर्थ मित्र। समभाव-समभाव। वह समभाव वीतरागीरूपी अमृत का स्वभाव, उसे यहाँ समभाव कहा है। ऐसे तो यह सब गाँधी की लाईन में देश के लिये लकड़ी की मार सहन करे, वह समभाव नहीं। वह तो जहर है। जहाँ अभी सम्यग्दर्शन ही नहीं। क्या कहलाता है तुम्हारे? शहीद-शहीद होते हैं न? शहीद। वे सब तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी, उन्हें कहाँ समभाव था? ऐसी भारी सूक्ष्म बातें।

यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा मन और राग के सम्बन्धरहित आत्मा अन्दर (देखा), उसका जिसे अन्तर भान हुआ है, उसका जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, उस स्वाद की उग्रता में आनन्द के स्वाद में स्थित हो, उसे समता का-अमृत का स्वाद आता है। उसे समताभाव कहते हैं। जगत से व्याख्या भी अलग है। भगवान वीतराग का मार्ग, बापू! जगत से अलग है। अरे! इसे एक सेकेण्ड भी इसने सुना नहीं। सुनना उसे कहते हैं कि इसे रुचना चाहिए। आहाहा!

समभाव जो समता परिणाम,... ऐसे तो समता-बमता सब बहुत कहते हैं, वह समता अज्ञानी की बात करते हैं। यहाँ तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा आनन्द है, ऐसी चैतन्यज्योति का जिसे अनुभव हुआ है। उस अनुभव में जिसे प्रतीति—सम्यक्त्व की दशा हुई है, उसे उस अनुभव में आनन्द में विशेष वीतरागी अमृत को पीता होता है, उसे यहाँ समता और समभाव कहा जाता है। शर्तें बहुत बड़ी। **राग-द्वेष से रहितपना, ऐसे भाव से चारित्र होता है।** आहाहा! बाह्य में जिसे नग्नदशा हो,

अभ्यन्तर में जिसे आनन्द की लहर अन्दर उठती है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला जिसे पर्याय में—दशा में आता है, उसे समामृत, वीतरागचारित्र और उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा! अभी तो वह क्या है, इसकी खबर नहीं होती। प्रगटे तो कहाँ से? हें!

भावार्थ :- चारित्र का स्वरूप यह कहा है कि जो आत्मा का स्वभाव है, वह कर्म के निमित्त से ज्ञान में परद्रव्य से इष्ट-अनिष्टबुद्धि होती है,... भगवान आत्मा तो ज्ञान -स्वरूपी प्रज्ञाब्रह्म, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा। उसे जो कर्म के निमित्त से... निमित्त से, हों! होता है तो स्वयं से। **ज्ञान में परद्रव्य से इष्ट-अनिष्टबुद्धि...** आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ें चाहे तो भगवान हो या देव हो या गुरु हो। आहाहा! **परद्रव्य से इष्ट -अनिष्टबुद्धि...** देव-गुरु-शास्त्र में इष्टबुद्धि, शत्रु के प्रति अनिष्टबुद्धि। आहाहा!

इस इष्ट-अनिष्टबुद्धि के अभाव से... ऐसी इष्ट-अनिष्टबुद्धि का अभाव होकर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में **ज्ञान ही में उपयोग लगा रहे...** आहाहा! अन्तर ज्ञानस्वभाव में शुद्ध उपयोग। पुण्य और पाप का उपयोग, वह तो अशुद्ध उपयोग है। जिसके ज्ञान में अर्थात् स्वभाव में **ज्ञान ही में उपयोग लगा रहे उसको शुद्धोपयोग कहते हैं,...** आहाहा! यह कहेंगे ७३ में कि अभी ऐसा ध्यान नहीं होता। ऐसा माननेवाले अज्ञानी मूढ़ जीव हैं, ऐसा कहेंगे। यहाँ शुद्धोपयोग की व्याख्या ली है न? **'ण हु कालो झाणजोयस्स'** यह क्या होगा? ऐसा वह अभी ध्यान होगा? अरे! अभी आनन्दस्वरूप का ध्यान न हो तो धर्म ही नहीं है। आहाहा! आर्त और रौद्रध्यान है या नहीं? वह पर में एकाग्रता है। यह स्वआनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें एकाग्रता के आनन्द के स्वाद में पड़ा हो, उसे ध्यान कहते हैं। आहाहा! वह ध्यान चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। समकित होने पर उस ध्यान की दशा (प्रगट होती है)। आहाहा!

वहाँ निन्दा-प्रशंसा, दुःख-सुख, शत्रु-मित्र में समानबुद्धि होती है, निन्दा-प्रशंसा का द्विधाभाव मोहकर्म का उदयजन्य है,... आहाहा! **इसका अभाव ही शुद्धोपयोगरूप चारित्र है।** यह व्रत के विकल्प हैं, वह अशुद्ध उपयोग है। आहाहा! उसमें से हटकर चैतन्य भगवान आत्मा में अन्दर शुद्धोपयोग, पवित्रता का परिणाम जिसे

प्रगट हो, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहते हैं और वह शुद्धोपयोग, वह चारित्र है। व्याख्या कैसी यह ? वह कहे, पंच महाव्रत पालना, दया पालना, सत्य बोलना, वह चारित्र है। बहुत अन्तर है। श्रद्धा में, दृष्टि में, मान्यता में, भगवान के मार्ग से बहुत उल्टा। समझ में आया ?

आचार्य वापस यह सिद्ध करके कहते हैं कि आत्मा में पहला सम्यग्दर्शन हो, वह शुद्धोपयोग में होता है। अन्तर स्वरूप में लीनता, ध्यान, ध्येय, ध्याता को भूलकर,... आहाहा! ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान तीन में भेद छोड़कर, अकेले आत्मा में जहाँ रमणता शुद्ध उपयोग की, पुण्य-पाप के भावरहित (होती है), ऐसे शुद्धोपयोग को यहाँ भगवान ने चारित्र कहा है।

★ ★ ★

गाथा - ७३

आगे कहते हैं कि कई मूर्ख ऐसे कहते हैं जो अभी पंचम काल है... ऐसे पंचम काल में तुम ऐसी बातें करो, वह अभी नहीं होती। ऐसा मूर्ख अज्ञानी, मूढ़ जीव ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न ? **अभी पंचम काल है, सो आत्मध्यान का काल नहीं है,...** अभी तो यह व्रत करें, अपवास करें, ऐसा करें बस। अब यह अन्दर में ध्यान करना और ऐसी बड़ी बातें तुम (करो)। **उसका निषेध करते हैं :-** आचार्य। मूर्ख! तेरी बात झूठी है। आहाहा! आत्मा की ओर का ध्यान न हो तो उसे धर्म ही नहीं है। पंचम काल है, तो क्या? आत्मा का सम्यग्दर्शन अन्तर के ध्यान में से प्रगट होता है। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा'** (द्रव्यसंग्रह, गाथा ४७) आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह अन्तर आत्मा के ध्यान में प्राप्त होता है। वह कहीं बाह्य प्रवृत्ति में से प्राप्त नहीं होता।

●●●

वैशाख शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक ०१-०५-१९७४
गाथा - ७३ से ७६, प्रवचन-१३९

गाथा - ७३

अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ चलता है। ७३ गाथा है। **आगे कहते हैं कि कई मूर्ख कहते हैं जो अभी पंचम काल है, सो आत्मध्यान का काल नहीं है,...** यहाँ से शुरुआत यह है।

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्टा।
केई जंपंति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स॥७३॥

अर्थ :- कई मनुष्य ऐसे हैं, जिनके चर्या अर्थात् आचारक्रिया आवृत्त है, चारित्रमोह का उदय प्रबल है,... अर्थात् चारित्र का आचरण व्यवहार का भी जिसका ... है। **इससे चर्या प्रकट नहीं होती है...** अर्थात् व्रत और तप का विकल्प शुभभाव है न, ऐसा उसे व्यवस्थित नहीं होता। क्योंकि वह ध्यान तो मानता नहीं। यह शुभयोगवाले कहते हैं न कि अभी शुद्ध उपयोग नहीं होता। उसकी यह व्याख्या है। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका ध्यान अर्थात् शुद्ध उपयोग और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह ध्यान है। ओहोहो! वे ऐसा कहते हैं न कि अभी तो चारित्र का भी ठिकाना नहीं हमारे, ऐसा। चर्या। चर्या प्रगट नहीं, ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं। उसके चारित्र के व्रत व्यवहार के, मुनि के योग्य जो चाहिए, उसका भी ठिकाना नहीं।

इसी से व्रतसमिति से रहित हैं... एक बात। **और मिथ्या अभिप्राय के कारण...** अब दूसरा अभिप्राय झूठा है। **शुद्धभाव से अत्यन्त भ्रष्ट हैं,...** यहाँ शुद्ध आया पहला। लोग कहते हैं न कि अभी शुभ उपयोग ही होता है। धर्मध्यान, शुभ उपयोग, वही धर्मध्यान है, ऐसा कहते हैं। यह खोटी बात है। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप का ध्यान, वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' आया था न? ४७ (गाथा, द्रव्यसंग्रह)। अन्तर आत्मा के आनन्दस्वरूप का ध्यान, उसका ज्ञान, उसमें

रमणता, वह शुद्ध उपयोग है। यह इस अज्ञानी को खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। इससे मिथ्या अभिप्रायसहित है और मिथ्या चारित्र में सच्चा व्यवहारचारित्र भी उसे नहीं होता।

अभी पंचम काल है, यह काल प्रकट ध्यान-योग का नहीं है। लो, यह सिद्ध करना है। व्यवहार विकल्प रागरहित आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका ध्येय करके ध्यान हो, ऐसा अभी नहीं, ऐसा कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय है, वह स्वरूप के ध्यानस्वरूप है वह तो। पण्डितजी! यह बड़ी गड़बड़ डालते हैं चार-पाँच गाथा में। इस पंचम काल के इस समय में, हों, अभी तो। दो हजार वर्ष पहले। आहाहा! ऐसा कि अभी यह आत्मा का ध्यान अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ध्यान अभी हो सकता ही नहीं। वह हो सकता नहीं तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही नहीं। इसका अर्थ यह (हुआ)। शान्तिभाई! मुद्दे की बात की है। दिगम्बर में भी गड़बड़ उठी है न? वे लोग ऐसा कहे कि अभी यह आत्मा आनन्द शुद्ध चैतन्य का ध्यान, स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता, वह अभी है नहीं। अभी तो यह बाह्य व्रत पालना, भक्ति, पूजा करना, वह शुभभाव, वह धर्मध्यान है। ऐसा कहनेवाले तत्त्व को समझे नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस गाथायें रखी हैं ७३ से।

अभी पंचम काल है, यह काल प्रकट ध्यान-योग का नहीं है। ऐसा कहते हैं। यह आत्मा शुद्ध चैतन्य सन्मुख की योग्यता अभी है ही नहीं। तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि स्वरूप-सन्मुख का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं। चेतनजी! ऐसा कहते हैं। कहने का आशय यह है। ऐसा कि यह तो शुभभाव है, यह क्रिया करें, भगवान की भक्ति करें, यह व्रत आदि पालें अकेले। वह तो इसके व्रत का भी ठिकाना नहीं। क्योंकि निश्चय दृष्टि ध्यान की नहीं, इसलिए उसके व्रत का भी ठिकाना नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! दो हजार वर्ष पहले भी यह गड़बड़ उठी थी। **यह काल प्रकट ध्यान-योग का नहीं है।** समझ में आया? जयन्तीभाई! यह कहते हैं न, भाई! अपने तो ऐसे व्रत पालें, भक्ति करें, पूजा करें, दया, दान करें, यह धर्मध्यान। यह धर्म नहीं, यह धर्मध्यान नहीं। यह तो उपचार व्यवहार धर्मध्यान कहलाता है। आहाहा!

आत्मा अन्तर सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द का नाथ कन्द है, उसकी ओर की सन्मुखता का जो ध्यान, वह वस्तु है। उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, उसे सम्यग्ज्ञान कहते

हैं, उसे स्वसन्मुख की स्थिरता को सम्यक्चारित्र कहते हैं। उसका यह निषेध करते हैं। आहाहा! विमलचन्दजी! इस काल में ऐसा हो पंचम काल में? लो! इस काल में नहीं होता तो धर्मध्यान अर्थात् समकित भी नहीं, ज्ञान भी नहीं, इसका अर्थ ऐसा (हुआ)। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७४

वे प्राणी कैसे हैं, वह आगे कहते हैं :- देखो! यहाँ से शुरु किया है इस बात को।

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स॥७४॥

देखो, वस्तु यह है।

आहाहा! जिसे अन्दर पुण्य-पाप के भाव में सुखबुद्धि पड़ी है, जिसमें सुख लगता है, इसलिए उसे आत्मा में सुख का ध्यान नहीं, ऐसा यह कहते हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। अभव्य जीव है तो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? ... यह कहते हैं। वे कहते हैं दूसरे। कहते थे। यह न्याय से है।

जिसे '**सम्मत्तणाणरहिओ**' देखो! भाषा। आत्मा के शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान जो स्वसन्मुख का ध्यान, वह इनकार करते हैं कि यह है ही नहीं अभी। तो इसका अर्थ हुआ कि वह तो सम्यक्त्व और ज्ञान से रहित है। समझ में आया? मुद्दे की रकम की बात है इसमें जरा, हों! लो!

अर्थ :- पूर्वोक्त ध्यान का अभाव कहनेवाला जीव सम्यक्त्व और ज्ञान से रहित है,... यह बात सिद्ध करनी है। ऐसे आत्मा शुद्ध चैतन्य है, आनन्द और पवित्र धाम प्रभु है आत्मा। उसके ध्यान का तो निषेध करते हैं। आहाहा! उसकी ओर की सन्मुखता हो

सकती ही नहीं अभी। ऐसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन से रहित हैं वे। आहाहा! **अभव्य है,...** आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्ण आनन्द का नाथ भगवान स्वयं है, उसकी सन्मुखता की एकाग्रता का तो निषेध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसकी सन्मुखता का निषेध करता है, तो वह तो विमुखता में पड़ा है। मिथ्यादृष्टि अभव्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा पूर्ण आनन्द और शुद्धस्वरूप है, उसके सन्मुख अभी नहीं हुआ जा सकता, ऐसा कहता है। आहाहा! तो कहते हैं कि अभव्य है। आहाहा! संसार के आर्तध्यान और रौद्रध्यान में सुखबुद्धि में पड़ा है तू। ऐसा कहा न? उस पुण्य-पाप के भाव में उसमें तेरी सुखबुद्धि रुकी हुई है, इसलिए इस ओर आत्मा में आनन्द है, उसकी सन्मुखता के ध्यान की तो तू ना करता है। आहाहा!

और संसार के इन्द्रिय सुखों को भले जानकर... देखो! क्या कहते हैं? परसन्मुख के झुकाववाले सुखबुद्धि राग में वह पड़ा है। परसन्मुख के झुकाववाला जो राग, उसमें सुखबुद्धि से पड़ा है, इसलिए उसे आत्मा में सुख है, ऐसी सुखबुद्धि का निषेध करता है। अर्थात् अन्तर का ध्यान है नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? वाह! कैसी शैली रखी है न! '**सम्मत्तणाणरहिओ**' क्योंकि '**ण हु कालो भणइ झाणस्स**' अन्तर आनन्दस्वरूप के सन्मुख झुकाव की ध्यानदशा अभी नहीं हो सकती, ऐसा कहनेवाले '**सम्मत्तणाण**' रहित है, अभव्य है। मोक्ष के मार्ग से परिमुक्त—छूटे-छूटे हैं, बन्धभाव में आ गये हैं। आहाहा! '**संसारसुहे सुरदो**' इस ओर स्वभाव में सुख है, (उसकी) सन्मुखता और उसका ध्यान तो निषेध करते हैं। आहाहा! इससे संसारसुख में '**सुरदो**' है वह। '**ण हु कालो भणइ झाणस्स**' अभी आत्मा के आनन्द सन्मुख हुआ जाये, ऐसा ध्यान अभी हो नहीं सकता, ऐसा अभव्य जीव कहते हैं, ऐसे। आहाहा!

शुद्ध ध्यान आनन्द का, उसका तो वे निषेध करते हैं। क्योंकि उसके सन्मुख हुए नहीं और राग की एकता में पड़ा है सुखबुद्धि से। आहाहा! इससे वह अभव्य जीव जैसे हैं। उसे तो अभव्य जीव कहा सीधे। जैसे होंगे? अररर! नालायक। आत्मा के आनन्दस्वरूप की सन्मुखता ध्यान का तो तू निषेध करता है। उससे विमुख के ध्यान की हाँ करता है। अभव्य है। आहाहा! **इसलिए कहते हैं कि अभी ध्यान का काल नहीं है।** शुद्ध उपयोग

हो सके और स्वभावसन्मुख हो सके, ऐसा काल अभी नहीं, ऐसा अज्ञानी कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : इन्द्रियसुख का काल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियसुख का काल है। अणीन्द्रिय सुख की ओर झुकाव करना अभी नहीं हो सके। आहाहा! मूल तो पुण्य में रुचिवाला पड़ा है। इस ओर स्वभावसन्मुख हुआ जा सकता है, ऐसा है नहीं अभी। अभव्य है, कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- जिसको इन्द्रियों के सुख ही प्रिय लगते हैं... इसका अर्थ यह है कि परसन्मुख के झुकाववाला भाव उसे प्रिय लगता है, ऐसा। समझ में आया? परसन्मुख के झुकाववाला शुभ-अशुभ दोनों भाव उसे प्रिय लगते हैं। इसलिए उसे अन्तर्मुख होना, ऐसा जो ध्यान, उसका निषेध करता है। आहाहा! बहुत मीठी बात की है। मुद्दे की रकम की बात की है। यह सभी हैं न श्वेताम्बर आदि, सभी यही मानते हैं। यह व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार। यह तो दिगम्बर में भी ऐसे माननेवाले थे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान पूर्ण शान्त आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा है ध्रुव नित्य, उसकी सन्मुखता का ध्यान अभी हो नहीं सकता। आहाहा! क्या हो तब अब? उससे विमुखता का ध्यान हो, वह तो तू अभव्य जीव है। यह तो अनादि का है। आहाहा!

जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है... देखो! उसे जीव का ज्ञान शुद्ध चैतन्य है, उसका ज्ञान नहीं। यह अशुद्धता का भान है उसे, वह अशुद्धता में रहा है। दूसरी गाथा में आता है न? अशुद्ध को जानता... नहीं, दूसरी गाथा? स्वसमय-परसमय परिणम रहा है। जानता कहा है हों, इसमें। शुभभाव, वह अशुद्ध है। उसे जानता हुआ वह परिणम रहा है। आहाहा! ऐसा कहा है। स्वसमय... कहने का आशय यहाँ यह है कि स्वसमय ऐसा भगवान आत्मा, उसकी रुचि में सन्मुखता में उसे अच्छा लगता नहीं। आहाहा! उसे तो परसन्मुखता की बातें मीठी लगती हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी शैली! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। अन्तर में विवेक की बातें हैं। आहाहा!

ज्ञान से रहित है... जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है... क्यों? कि जो राग में ही प्रीतिवाला है और आत्मा के सन्मुख की रुचि अभी हो सकती नहीं, ऐसा

कहनेवाले, ऐसा माननेवाले वे जीवाजीव की श्रद्धारहित हैं। क्योंकि जीव जो रागरहित है, उसकी उसे श्रद्धा और ज्ञान नहीं। वह तो इनकार करते हैं। जीव की ओर जाया नहीं जा सकता उस ओर। आहाहा! यह भगवान का केवलज्ञान का दिन है आज। लो, और यह याद आया। वैशाख शुक्ल दशमी। आज केवलज्ञान का दिवस है। आज गये थे न, पूजा करने गये थे न! इस त्रयोदशी को दो महीने होंगे। वहाँ भक्ति होगी। केवलज्ञान, वह आत्मा के उग्र ध्यान से होता है। सम्यग्दर्शन, वह आत्मा के ध्यान से होता है। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** (वृहद्द्रव्य संग्रह, गाथा ४७) यह तो ध्यान का तो निषेध करते हैं। आहाहा! लो, चेतनजी! मर्म की बात की है। अन्तर में सन्मुख होकर एकाग्र होना, यह हो सकता ही नहीं अभी। अर्थात् सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो सकते ही नहीं अभी, ऐसा। आहाहा! उसे तो सुखबुद्धि इन्द्रिय के विषय में पड़ी है। आहाहा! चाहे तो भगवान की भक्ति का राग हो, पंच महाव्रत का राग हो, उसमें उसका प्रेम है। इन्द्रियसुख में उसकी बुद्धि पड़ी है। आहाहा!

अभी ध्यान का काल नहीं है। आहाहा! **इससे ज्ञाता होता है कि इस प्रकार कहनेवाला अभव्य है, इसको मोक्ष नहीं होता।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७५

जो ऐसा मानता है—कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं तो उसने पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच गुप्ति का स्वरूप भी नहीं जाना— क्योंकि ध्यान नहीं तो महाव्रत स्वरूपध्यानी को ही होते हैं। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को ऐसे होते हैं। उसे इसने जाना नहीं। पाँच महाव्रत पालता हो बाह्य में शुभभाव में—ऐसा कहते हैं। परन्तु उसके स्वरूप को इसने जाना नहीं। आहाहा! ७५ (गाथा)।

पंचम महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ झाणस्स॥७५॥

यहाँ सिद्ध यह करना है। नीचे अर्थ किया है, वह सब बिना मेल का है। नीचे

अर्थ किया है न? ज्ञानी को। उसे उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। कल्पना का अर्थ है यह सब। ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसे लोगों के हाथ में पुस्तक नहीं देना चाहिए। घर की कल्पना डाले। एकदम विपरीत है यह। चलते अधिकार के साथ विरुद्ध है। यहाँ तो अन्तर का ध्यान नहीं, ऐसा निषेध करनेवाले कों राग का ध्यान है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? यह उनका—पण्डित जयचन्द्रजी का नहीं। घर का डाला है। ऐसे बहुत घर के डाले हैं अन्दर। पूरी पुस्तक बिगाड़ी है। यहाँ तो यह आशय कहना है कि **जो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इनमें मूढ़ है,...** अर्थात् कि यह पंच महाव्रत के परिणाम किसे होते हैं? कहाँ होते हैं? उसकी इसे खबर नहीं।

मुमुक्षु : ध्यानी को होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यानी को होते हैं। अन्दर आत्मा का सन्मुख ध्यान हो, जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ हो, उसे ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। यह तो भान नहीं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान के स्वरूप का कुछ भान नहीं, ध्यान का तो निषेध करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इनमें मूढ़ है, अज्ञानी है,... क्योंकि स्वरूप का ध्यान तो निषेध करते हैं और ध्यानी को ऐसे पंच महाव्रत आदि के विकल्प हों, उसकी तो इसे खबर भी नहीं और पाँच महाव्रत के व्यवहार व्रत लेकर पालकर बैठा और माने कि हमको धर्मध्यान है, हमारे धर्मध्यान है। ऐसा कहते हैं यहाँ। गजब बातें, भाई! **अज्ञानी है अर्थात् इनका स्वरूप नहीं जानता है...** अर्थात् कि जो आत्मा के सन्मुख के ध्यान का ही नकार करता है, उसे पंच महाव्रत के परिणाम की जाति कैसी होती है समकिती को, इसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया? उसे पाँच समिति के भाव कैसे होते हैं, इसकी उसे खबर नहीं।

इनका स्वरूप नहीं जानता है और चारित्रमोह के तीव्र उदय से इनको पाल नहीं सकता है... अज्ञानी है, ध्यान का निषेध करता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ का इनकार करता है और उसमें लीन है। तो उसे तो चारित्रमोह के कारण तीव्रता अन्दर पड़ी है। यहाँ इनकार करता है, इसलिए चारित्रमोह की तीव्रता अन्दर है। आहाहा! स्वरूप के ध्यान

का निषेध करता है तो मिथ्यात्व का उदय है और स्वरूप के ध्यान का निषेध करता है, वह चारित्रमोह का भी तीव्र उदय है वहाँ। ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्यात्वसहित है न! ध्यान का तो निषेध करता है। आहाहा!

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, उसमें मूढ़ है। क्योंकि सम्यक्त्व-सन्मुख तो है नहीं। आत्मसन्मुख है नहीं और अकेले पंच महाव्रत इसे कहना, इसे कहना, उसमें मूढ़ में है। उसे भान कहाँ है? आहाहा! यह अभी वह सब व्यवहार... व्यवहार करके बैठे हैं और ध्यान नहीं, उसका यह वर्णन है। आहाहा! व्रत पालो, अपवास करो, यह करो, आत्मसन्मुख का अभी काल नहीं। आहाहा! मूढ़ है, कहते हैं। तेरे व्रत की तुझे मूढ़ता है। व्रत कैसे हों, उसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... पंचाध्यायी के दूसरे भाग में ऐसा ही लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो यह सब बात है। यह है न! खबर है। इस काल में भगवान की भक्ति यह आदि सब होता है। आहाहा! अरे! भगवान!

यहाँ तो आचार्य को जो कोई द्रव्यलिंगी पड़े थे या यह श्वेताम्बर पंथ निकला, वे सब ऐसा कहे, अभी आत्मा के सन्मुख नहीं हुआ जा सकता। आहाहा! आत्मा का ध्यान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं हो सकता, ऐसा इसका अर्थ है। अपने यह जो व्रत, भक्ति और तप करते हैं, उसमें से धीरे-धीरे होगा। आहाहा! अभी कहा था न वहाँ शान्तिभाई के मकान में। एक पालनपुर का बड़ा झबेरी है। ८८ वर्ष की उम्र है। ... बड़ा पैसेवाला ... दो बार आये थे दर्शन को। फिर यह भाई का आग्रह बहुत शान्तिभाई का कि महाराज का सुनने आओ, महाराज का सुनने आओ। फिर मेरा नाम देकर कहे। महाराज कहते हैं कि महाराज का सुनने आओ। मैंने कहा, मैं कहता ही नहीं। शान्तिभाई को... उनका हेतु दूसरा होगा (कि) आवे। महाराज ऐसा कहते हैं कि तुम इसकी अपेक्षा सुनने आओ, ऐसा कहते हैं। मैंने कहा, भाई! मैंने ऐसा कहा नहीं। आहाहा! तब उसने कहा, मुझे तो सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रौषध, यह तो मुझे क्रिया में सारा समय जाता है। मुझे समय मिलता नहीं। व्यक्ति पैसेवाला है बड़ा धनाढ्य। ऐई! चिमनभाई! क्या चिमनभाई सुनते हैं? कौन है वह सब तुम्हारा नाम? तुम्हारे सोलहवें मंजिल में

पालनपुरवाले झबेरी नहीं कोई? शान्तिभाई के सोलहवीं मंजिल में। वह वृद्धि निवृत्त है। धन्धा करता नहीं। सामायिक, प्रौषध और सब किया करे। ८८ वर्ष की उम्र है। तुम्हारे पालनपुर के ही हैं। नाम भूल गये। कालीदासभाई। कालीदास। ८८ वर्ष की उम्र है। शरीर इन पण्डितजी जैसा है छोटा पतला थोड़ा। काला शरीर। परन्तु पूरे दिन और बड़ा गृहस्थ पैसेवाला है। बस यह सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण। परन्तु कहा सम्यग्दर्शन.. ? कि सम्यग्दर्शन कठिन बात है, परन्तु यही करना, इसमें से सब प्राप्त होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चुस्त है बहुत पक्का दिखता है न! व्याख्यान में आ सकता नहीं। शान्तिभाई का आग्रह बहुत। सब बातें हैं।

यहाँ तो कहते हैं, यहाँ क्या कहने का आशय है, यह सिद्ध करना है। जो कोई भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्य, उसकी सन्मुखता के ध्यान का जो निषेध करता है। बस, यह बात यहाँ सिद्ध करनी है। बस। यह उसके पंच महाव्रत, समिति में मूढ़ है। आहाहा! अज्ञानी है। इसलिए परसन्मुख के झुकाव में ही उसकी रुचि का प्रेम जमा है, बस। यह व्यवहाररत्नत्रय कि जो बाहर की क्रिया रागादि हो, वहाँ वह जमा है। आहाहा!

और चारित्रमोह के तीव्र उदय से इनको पाल नहीं सकता है... अर्थात् उसे उस जाति के सच्चे व्रत हो सकते ही नहीं, ऐसा। क्योंकि ध्यान का निषेध करता है, स्वसन्मुख का अभिप्राय नहीं, परसन्मुख का अभिप्राय है और स्वसन्मुख की स्थिरता नहीं; इसलिए परसन्मुख में उसकी उग्रता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! यह शून्य रखकर नीचे किया है, वह शून्य रखनेयोग्य है। विरुद्ध है एकदम। उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। उन लोगों को कुछ ऐसों को हाथ देना ही नहीं चाहिए वास्तव में यह पुस्तक ऐसी। एक भी अक्षर... अभी तो सुनने के योग्य है या नहीं, यह अभी समझने जैसा है। यह बात बहुत बार चली है। उसके बदले ऐसे अर्थ अन्दर शास्त्र में भरे। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली में... मान के लिए, अकेले मान के लिए होकर। भाई!

यहाँ यह नहीं चलता। कौन जाने कौन ऐसे सब डालते हैं इसमें। यहाँ तो आशय दूसरा कहना है और वहाँ डालकर स्वयं वह धारण की होती है न दूसरी, उसे अन्दर घुसा डाले। आहाहा!

यहाँ तो कहना है कि '**मूढो अण्णाणी**' '**समिदीसु तीसु गुत्तीसु**' '**मूढो**' है, ऐसा कहा है न? उसकी व्याख्या की है। क्योंकि उसे चारित्रमोह का तीव्र उदय (वर्तता है)। मिथ्यात्व का उदय है कि जिससे ध्यान का निषेध करता है और चारित्र (मोह का) तीव्र उदय अनन्तानुबन्धी का है, उसमें वह पड़ा है। ऐसा यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! स्वसन्मुख के ध्यान का ही निषेध करता है तो स्वसन्मुख का सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए मिथ्यात्व ही है परसन्मुख। स्वसन्मुख की स्थिरता में जो अनन्तानुबन्धी का अभाव चाहिए, वह नहीं, बस। आहाहा! आचार्य की शैली गजब शैली है। जगत को व्यवहार के प्रेमवालों को, आत्मा का ध्यान नहीं, ऐसा कहनेवाले को चाबुक मारा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **वह इस प्रकार कहता है...** अर्थात् कि जो परसन्मुख में पड़े हैं, परसन्मुख में राग की तीव्रता में पड़े हैं और स्वसन्मुख के ध्यान का यह निषेध करनेवाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरा श्वेताम्बर पंथ उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध कर डाला। बस, बात यह है। वस्तु ऐसी कहनी है, परन्तु अब आशय—उनका हृदय क्या है, (यह समझना चाहिए)। आहाहा! उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय निकल गया था न? सौ वर्ष पहले निकल गया था। बाहर की ही बातें करे यह। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, उससे यह करो, व्रत पालो, अपवास करो, यह करो। आहाहा! भारी कठिन काम, भाई! दुनिया से पृथक् पड़ना!

पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु। जो मूढो' बस इतना। क्योंकि स्वसन्मुख के ध्यान का तो निषेध करता है। अब उसे पंच महाव्रत आदि विकल्प जो कहते हैं, वह तो मूढ़ है, उसका तो भान भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जिसे ज्ञान प्रगट हुआ, उसे ऐसे पंच महाव्रत आदि सब होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे होते हैं। परन्तु वे किस प्रकार के होते हैं? जिसे स्वसन्मुख

का ध्यान हो, उसे किस प्रकार के होते हैं, ऐसा उसे भान नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए यह तो ऐसा कहना चाहते हैं कि सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं। इसलिए वह व्रतादि के परिणाम, वह पाल सकता ही नहीं परमार्थ से। उसका व्यवहार भी सच्चा नहीं। ऐसा कहते हैं मूल तो। आहाहा!

इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है। क्योंकि राग की तीव्रता में पड़े हैं और परसन्मुख में पड़े हैं। परसन्मुख। स्वसन्मुख की तो खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात, भाई! ... था न तब निकले सौ वर्ष हो गये थे न। साधु हो न उन लोगों के। ऐसे हम पालन करते हैं, ऐसा पालन करते हैं, ऐसा पालते हैं। ध्यान-ब्यान आत्मा का ध्यान-ब्यान अभी होता नहीं। आहाहा! आत्मा का ध्यान सम्यग्दर्शन तो उसे होता है कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र जाने हों, माने हों, वह स्वसन्मुख हो तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्यान में ही सम्यग्दर्शन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में ही होता है। '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' कहा न पहले। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' तो उस ध्यान का तो निषेध करते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! यह तुम्हारे सम्प्रदाय में आ जाता है सब, हों! यह तो जानने के लिये। ... आत्मा है। आहाहा! अरेरे!

भगवान परमात्मस्वरूपी प्रभु आत्मा विराजता है। उसकी सन्मुखता के ध्यान का तो निषेध करता है। आहाहा! अब तुझे क्या करना है उसे? गिरधरभाई! कर्तव्य हो, तब तो यह है। '**णियमेण य जं कज्जं**' (नियमसार, गाथा ३) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह स्वस्वरूप का ध्यान। आहाहा! अब उसका तो वह निषेध करते हैं कि भाई! ऐसा नहीं हो सकता। हम यह करते हैं। और यहाँ तक कहते हैं न वे लोग तो। पंचमहाव्रत आदि शुभभाव, वह क्षयोपशमभाव है। क्षयोपशमभाव में से क्षायिक होगा, ऐसा कहते हैं। अपने आता है न? क्षयोपशमभाव... नियमसार में आता है। दो जगह। पंचास्तिकाय में। खबर है न! ... आहाहा!

यह चर्चा तो हमारे बहुत चली थी वहाँ (संवत्) १९७९ में। ८०-८०। तुम आये

थे। ७९ में लींबड़ी चातुर्मास था। हमारा चातुर्मास बोटाद। दोनों इकट्ठे हुए राणपुर। राणपुर में बड़ी चर्चा चली। जेचन्दभाई और मूलचन्दजी बातें करते थे कि यह नौवें ग्रैवेयक में गया, वह क्षयोपशमभाव से गया है। ऐसी चर्चा चलती थी, लो! ७९ की बात है। वे नीचे बहुत बातें करते थे। उसमें मैं ऊपर से उतरा। यह कैसे है? कहा, बिल्कुल झूठी बात है। ऐसा कि इतना भी थोड़ा क्षयोपशमभाव है न? क्या किया? धूल की, कहा। उदयभाव है। नौवें ग्रैवेयक में गया तो किसके कारण से गया? उदयभाव के कारण से गया। उसे सच्चा क्षयोपशम कैसा? आहाहा! बड़ी चर्चा चली थी। रामजीभाई के ससुर थे न, कैसे? जेचन्दभाई! वे सब स्थूल बुद्धिवाले और बातें करते थे दोनों व्यक्ति।

मुमुक्षु : तुम्हारे मित्र थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : थे। बात सच्ची है। बात सच्ची है। इकट्ठे रहे हुए हैं। इकट्ठे रहे हुए हैं। पाळियाद। ७५। ७५ नहीं, ६९। ६८-६८। ६८ में इकट्ठे रहे हुए। पाळियाद (में) ६८ इकट्ठे रहे हुए गृहस्थ और ६९ दामनगर। दीक्षा लेने से पहले इकट्ठे थे। यह सब बाहर की बातें। अन्तर में कुछ नहीं। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य महाराज का हृदय, जिसे आत्मा स्वरूप चिदानन्द मूर्ति प्रभु है, उसकी सन्मुखता के ध्यान का ही वे निषेध करते हैं। वह सब प्रकार से परसन्मुख में पड़ा है। आहाहा! **अभी ध्यान का काल नहीं है।** ऐसा वे लोग कहते हैं। आहाहा! यह खास अभी सम्प्रदाय को सबको लागू पड़ता है। निश्चय... निश्चय... निश्चय... क्या करते हो आत्मा की बातें अभी? परन्तु यह निश्चय, वही वस्तु है सुन न! आहाहा! द्रव्य का आश्रय लेना, वही पहली चीज़ है। वही ध्यान है। आहाहा! प्रथम में प्रथम कर्तव्य तो यह है। तो उसका तो निषेध करते हैं। रहे थोथे बाहर के महाव्रत को पाले। वह भी मूढ़ है, कहते हैं उसमें तुझे। क्योंकि वस्तु की तो खबर नहीं। स्वसन्मुखता के भान बिना पंच महाव्रत के अभिमुख के परिणाम कैसे होते हैं, किसे होते हैं, उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७६

आगे कहते हैं कि अभी पंचम काल में धर्मध्यान होता है, यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है: — देखो! आहाहा! तब वह कहता है, धर्मध्यान होता है, परन्तु शुभभाव, वह धर्मध्यान। रतनचन्दजी (ऐसा कहते हैं)। यह तो यहाँ स्पष्टीकरण करेंगे। धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है। स्पष्टीकरण करेंगे। है न उसमें। पाठ है न, देखो! वह धर्मध्यान, शुभभाव को धर्मध्यान कहते हैं तो उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६॥

अब धर्मध्यान की व्याख्या। देखो! धर्मध्यान तो इसे कहते हैं कि आत्मस्वभाव में स्थित अन्दर। राग में स्थित, वह धर्मध्यान कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? जिसे अभी खबर नहीं, पहिचान भी नहीं। आहाहा!

अर्थ :- इस भरतक्षेत्र में दुःषमकाल-पंचमकाल में साधु मुनि के धर्मध्यान होता है... देखा! इस काल में भरतक्षेत्र में भी साधु-मुनि को धर्मध्यान होता है। अब वह धर्मध्यान अर्थात् क्या? **यह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है, उस मुनि के होता है,...** पाँच महाव्रत को पालता है, पाँच समिति, गुप्ति पालता है, इसलिए वहाँ धर्मध्यान है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई अलौकिक! इस भरतक्षेत्र में दुषमकाल—पंचम काल में—ऐसा दग्धकाल है, उसमें भी **साधु मुनि के धर्मध्यान होता है...** आहाहा! वे कहे कि दग्धकाल है, उसमें आत्मध्यान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **यह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है,...** ऐसा तो स्पष्टीकरण किया है। वह धर्मध्यान शुभभाव कहते हैं न? शुभभाव, वह धर्मध्यान, शुभभाव में समकित और सब उसमें होता है। यहाँ तो व्याख्या यह है। यह तो व्यवहार धर्मध्यान कहा। चिन्ता का, नहीं? विकल्प का। सर्वविशुद्ध में मोक्ष अधिकार में। दो गाथायें। आहाहा!

यह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है,... आहाहा! भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्यधाम, उसमें जो स्थित है, उसे धर्मध्यान कहा जाता है। बाहर की भक्ति और पूजा, दान, व्रत और तप के विकल्प में पड़े हैं, उन्हें धर्मध्यान है, ऐसा यहाँ निषेध किया है।

आहाहा! आहाहा! समझ में आया? यह धर्मध्यान, आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य आनन्द और ज्ञान, उसमें जो स्थित है, ऐसे मुनि को धर्मध्यान होता है। आहाहा! इसका अर्थ किया कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मस्वभाव में स्थित हैं, उसे होते हैं। आहाहा! व्यवहार के व्रत और नियम और यह और वह करे, उसमें माने कि इसमें हमारे धर्मध्यान, ऐसा नहीं, ऐसा है। आहाहा!

जो यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है... आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव चैतन्य आनन्द का जिसका—आत्मा का स्वभाव है, उसमें स्थित नहीं मानता, उसमें स्थित हो, उसे धर्मध्यान होता है, ऐसा जो नहीं मानता और जो राग की—महाव्रत और पाँच समिति की क्रिया, वह हमारा धर्मध्यान है, (ऐसा मानता है वह) अज्ञानी है। **वह अज्ञानी है।** आहाहा! समझ में आया? जिसने स्वसन्मुखता का ही निषेध किया।

मुमुक्षु : ऐसा वहाँ मुम्बई में नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं चलता, नहीं चलता। यहाँ तो सब ठण्डे काल का है न अब अभी। लोग अभी कम हैं। सब बाहर चले गये हैं न। धीरे-धीरे आयेंगे गढडा (विहार) के बाद। मूल तो गढडा का है न अब तो। आहाहा!

मुमुक्षु : आप यहाँ से बाहर पधारे तो सब चले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहता हूँ न। परन्तु आये तो अभी हम गढडा जानेवाले हैं। फिर निश्चिन्तता से आयेंगे सब। देखो न, सुजानमलजी नहीं मिलते, त्रंबकभाई नहीं मिलते, कोई हुँकार करनेवाले नहीं मिलते। माणेकचन्दभाई बैठते परन्तु वे चले गये। वे कहीं हुँकार नहीं देते थे। उन्हें गढडा जाना हो न। उन्हें गढडा जाना हो न। इसलिए गये हैं। सभी गढडा आनेवाले हैं। आहाहा!

'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो' भूतार्थ भगवान त्रिकाल आनन्दस्वरूप का आश्रय ले, उसे धर्मध्यान हो और उसे समकित हो। आहाहा! उसका तो निषेध किया। मूल का तो निषेध किया। आहाहा! यह स्थानकवासी में भी यही सब है न! मन्दिरमार्गी...

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में हो तो फिर स्थानकवासी में हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें से निकले हुए हैं। यह पालन करो और यह पालन करो और यह पालन करो। बस।

उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है। देखा! **वह अज्ञानी है, उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।** सम्यग्दर्शन बिना के पाँच महाव्रत के, पाँच समिति, गुप्ति के भाव में रहे, वह हमारा धर्मध्यान है और उसमें से हमको क्षायिकभाव प्रगट होगा। उसे यह वस्तु के स्वरूप का भान ही नहीं, कहते हैं। **धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं।** आहाहा! बहुत सरस है। अकेले शुभ की क्रिया में माननेवाले अन्तर के ध्यान का निषेध किये बिना रहते ही नहीं, ऐसा कहना है। जिसे इन्द्रिय विषय अर्थात्? फिर कहीं इन्द्रिय अर्थात् भोग, ऐसा कुछ नहीं। भगवान देव-गुरु-शास्त्र है, उनके सामने देखना, वह भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! और उसके भाव में सुखपना मानना कि यह भी एक साधन है, वह सुखबुद्धि माननेवाले स्वसन्मुख के ध्यान का निषेध करते हैं। आहाहा! मार्ग कठिन! आहाहा! चौरासी के अवतार ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कुछ समझ में आता नहीं अपने को।

मुमुक्षु : फूलचन्दजी ऐसा कहते थे कि ... सुनना, इसकी अपेक्षा देव-गुरु-शास्त्र का सुनना अच्छा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता था? वह अलग बात है। देव-गुरु का सुनना, वह भी है तो राग। परन्तु उसमें माने कि यह ही है और सन्मुखता नहीं, वह तो मूढ़ है। यह सुना ही नहीं। और यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र को सुने परन्तु इन्द्रिय का विषय है, ले! ऐसी बात है। और उसमें ही मान बैठे हैं कि इसमें से होगा, उसे स्वसन्मुखता के ध्यान का निषेध है। तीन काल में देव-गुरु-शास्त्र की सन्मुखता के भाव से स्वसन्मुख नहीं हुआ जाता। कहा न वहाँ भगवान ने १७० गाथा में। तीर्थंकर कहते हैं, मेरी रुचि रहेगी, नौ पदार्थ की रुचि रहेगी, आगम की श्रद्धा रहेगी, तब तक तुझे मोक्ष दूर है। १७० (गाथा पंचास्तिकाय)। आहाहा! यह तो अजब-गजब की बातें हैं, भाई! आहाहा! बहुत अच्छी बात है। यह तो धर्म के नाम से पूरे शुभभाव को खतौनी कर डाला है। पर

में—राग में स्थित, उसे धर्मध्यान खतौनी कर डाला है। आहाहा! यहाँ आत्मस्वभाव में स्थिति। अपना भगवान शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा है, उसमें स्थित हो, वह धर्मध्यान है। ऐसा तो सब सुना भी न हो। ऐ... मगनभाई! सब सुना भी न हो ऐसा। कहाँ था वहाँ? वाड़ा में ७० वर्ष निकाले। यह तो सबके लिये ऐसा है न! आहाहा!

बहुत ही सरस बात। भगवान का केवलज्ञान का दिन है आज। आहाहा! वाणी निकली नहीं, केवलज्ञान हुआ परन्तु वाणी नहीं निकली। ६६ दिन में वाणी निकली। आहाहा! श्वेताम्बर कहे कि वाणी तो निकली परन्तु धर्म प्राप्त करनेवाले, चारित्र प्राप्त करनेवाले नहीं थे। सब अन्तर, बात बात में अन्तर। वाणी निकले और धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, (ऐसा) कभी तीन काल में नहीं होता। पूर्व में विकल्प हुआ था कि धर्म प्राप्त कराऊँ, ऐसे भाव में जो बँधा हुआ कर्म, उसके उदय के समय धर्म प्राप्त करनेवाले होते ही हैं। नहीं उसे उदय की खबर, नहीं... ऐसी बात है परन्तु अब भाई! यह तो वाडा के सामने... वाणी ही नहीं थी। यह सिद्धान्त है। केवलज्ञान हुआ, आहाहा! परन्तु वाणी का योग नहीं था। वे पात्र जीव नहीं थे, इसलिए योग नहीं था, यह तो व्यवहार के कथन हैं। वाणी की योग्यता ही नहीं थी। आहाहा! केवलज्ञान हुआ। एक समय में पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई। वाणी नहीं होती। वाणी कहीं करने से होती है? उसके काल में वाणी का योग होता है, वह भाषा में स्व-पर कहने की शक्ति होती है, वह भाषा परिणमती हो, वह तो उसके काल में, उस काल में उसका स्वकाल होता है। भाषा का स्वकाल हो। केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए, इसलिए वह वाणी ऐसी हो, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! गजब बात है! स्व-परप्रकाशक ज्ञान पूर्ण हो गया, परन्तु स्व-पर का कथन करने की भाषा की योग्यता उस काल में नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- जिनसूत्र में इस भरतक्षेत्र में पंचम काल में आत्मभावना में स्थित मुनि के धर्मध्यान कहा है,... देखा! ऐसे मुनि अकेले नहीं जो यह पंच महाव्रत को पाले, ऐसा कहते हैं। अन्दर में आत्मा में स्थित, ऐसा धर्मध्यान पंचम काल में मुनि को कहा है।

मुमुक्षु : वे तो मुनि हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि हैं, इसलिए तब मुनि हो न। वरना मुनि किसके हों? आहाहा!

जिनसूत्र में इस भरतक्षेत्र में पंचम काल में आत्मभावना में स्थित मुनि के... आत्मा की भावना अर्थात् आत्मा आनन्द (स्वरूप है), ऐसा ध्येय होकर जिसकी एकाग्रता है उसमें। आहाहा! ऐसे मुनि को धर्मध्यान होता है। भगवान ने कहा है, कहते हैं। तब वे कहें, यह शुभभाव, वह धर्मध्यान, लो। सातवें गुणस्थान में फिर शुद्धता प्रगटे। ऐसा वे कहते हैं। अरेरे! आहाहा! कल जवाब अच्छा दिया था भाई ने, नरेन्द्र ने, नहीं? विशुद्धि का कल आया था। विशुद्धि, मन्द कषाय और तीव्र कषाय। मन्द कषाय और विशुद्धि अलग जाति है। ऐसा भाई ने लिखा है। कान्तिलाल ने। उसका जवाब फिर नरेन्द्र कोल्हापुरवाला। लोगों को अपनी कल्पना से करके बाहर प्रसिद्ध होना है और हम कुछ जाननेवाले हैं। धूल भी नहीं जाननेवाले। किसे कहना जानना? आहाहा! कठिन बातें, बापू! अन्तर के रास्ते जाने में विघ्न बहुत, विघ्न बहुत।

पंचम काल में आत्मभावना में स्थित मुनि के धर्मध्यान कहा है, जो यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है,... ऐसा। अन्तर सन्मुख में आत्मस्थिरता हो, ऐसा पंचम काल के मुनि ने कहा है। **जो यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है, उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।** लो! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक ०२-०५-१९७४
गाथा - ७७ से ८०, प्रवचन-१४०

७७ गाथा। ७६ हो गयी न? भावार्थ हो गया है।

★ ★ ★

गाथा - ७७

आगे कहते हैं कि जो इस काल में भी रत्नत्रय का धारक मुनि होता है, वह स्वर्ग लोक में लोकान्तिक पद, इन्द्रपद प्राप्त करके यहाँ से चयकर मोक्ष जाता है, इस प्रकार जिनसूत्र में कहा है :—उस धर्मध्यान का निषेध करते हैं न? अभी धर्मध्यान नहीं होता। धर्मध्यान का अर्थ स्व का आश्रय करके जो एकाग्रता (होती है), वह अभी नहीं होती, ऐसा (वे) कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें होता है। कषाय का अभाव। वह सब कहाँ ठिकाने बिना का सब। यह नहीं यहाँ रतनचन्दजी ऐसा नहीं मानते कि शुभयोग ही सातवें गुणस्थान तक होता है? छठवें तक होता है, दोनों बातें डाली हैं। शुद्ध उपयोग आठवें से होता है और एक जगह फिर शुद्ध उपयोग सातवें से होता है। वहाँ तक उसे शुभ ही होता है। क्या करें? मान्यता है न सम्प्रदाय की।

मुमुक्षु : शुभ में ही शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ में से शुद्ध होता है। क्षयोपशमभाव है, यह कहे न श्वेताम्बर। क्षयोपशमभाव है वह। शुभभाव में से क्षायिकभाव होगा, ऐसा कहते हैं। क्या हो? वस्तु पूरी बदल डाली लोगों ने।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति॥७७॥

अर्थ :- अभी इस पंचम काल में... इस समय भी, कहते हैं, शास्त्र बनाया तब। **पंचम काल में भी...** क्योंकि उस समय श्वेताम्बर निकल गये हैं न? इसलिए वे मानते हैं कि हम भाई! यह व्रत और नियम और तप है, उनसे हमको धर्मध्यान है, उनसे लाभ होगा, ऐसा। आत्मा का आश्रय करना और आत्मा आनन्दस्वरूप के समीप में जाने से धर्मध्यान होता है, यह बात उन लोगों को मान्य रही नहीं। सम्प्रदाय से पृथक् पड़े। **इस पंचम काल में भी जो मुनि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं...** तब और दूसरे ऐसा लगाते हैं अभी, देखो! शास्त्र में कहा है तो (उस प्रमाण) हम हैं। ऐसा कहते हैं। जीव स्वतन्त्र है। ओहोहो!

मुमुक्षु : उसमें नाम लिखा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम भले न लिखा हो, परन्तु ऐसा वे कहते हैं, कहा है न? '**तिरयणसुद्धा**' तब किसे खोजोगे अभी उसे? हमारे मूलचन्दजी बातें करते थे। वीरचन्दभाई और वे दोनों एकान्त में बातें करे। परन्तु अभी यदि साधु नहीं हो तो फिर हम साधु हैं। देखो न, ऐसे कौन हैं दूसरे? बाहर की ऐसी क्रिया। निर्दोष आहार-पानी। हीराजी महाराज का तो... बाहर का आचरण... इसलिए ऐसा कि अपने ऐसे हैं। जगत में वस्तु है या नहीं? भगवान ने कहा है और हम साधु हैं, ऐसा माने। यह बात हमारे हो गयी थी चर्चा में। ८० वर्ष पहले। अपने नहीं हों तो दूसरे कौन साधु हैं या नहीं? अन्यत्र कहीं दिखते तो नहीं, ऐसी शैलीवाले, (इसलिए) हम हैं। आहाहा!

जिसे अभी सम्यग्दर्शन क्या है, (उसकी खबर नहीं)। आत्मा के अवलम्बन से शुद्ध चैतन्यघन भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, अभेद त्रिकाल आनन्दस्वरूप के आश्रय से। कोई दूसरी बात है नहीं। उसकी खबर नहीं। यहाँ तो कहते हैं पंचम काल में होता है कोई। नहीं, ऐसा नहीं। यह तो उस समय की बात है न? दो हजार वर्ष पहले की। **मुनि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धतायुक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर...** देखो यह। क्योंकि वहाँ कहा था न ७६ में? '**तं अप्पसहावठिदे**' ७६ में। इस ओर ७६ गाथा में तीसरा पद। '**अप्पसहावठिदे**' यह वस्तु यह स्थिति है। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का जो उसका स्वभाव शुद्ध और पवित्र है, उसमें स्थिति। वह '**ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी**' यह न माने, वह अज्ञानी है। आत्मा के स्वभाव में अन्तर

आनन्दस्वरूप में स्थित होता है और उसे आनन्द आवे, उसे साधु और मुनि कहते हैं, उसे धर्मध्यान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा न माने, वह तो अज्ञानी है। आहाहा! भगवान का विरह पड़ा, ज्ञान घट गया। बड़ी संख्या विरोध में रह गयी।

कहते हैं, **आत्मा का ध्यान कर...** वजन यहाँ है। **'अप्पा झाएवि'** है न शब्द? **'तिरयणसुद्धा'** की बाद में यह व्याख्या की। सम्यक् शुद्ध कब? कि आत्मा का ध्यान हो तब। उसे आत्मा का ध्यान होता है। आहाहा! चैतन्य शुद्ध आनन्द पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा जो आत्मा निश्चय आत्मा, उसका ध्यान होता है। उसमें एकाग्रता, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। व्यवहार के व्रतादि, तपादि, वह तो राग है।

मुमुक्षु : आप इनकार करते हो, वे व्रत करने से रुक गये, यहाँ कोई व्रत लेता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु थे कब व्रत वस्तु बिना? दृष्टि का अनुभव नहीं, जिसे अभी आत्मा (का अनुभव नहीं) उसे व्रत कैसे? यह तो लिखा है न कान्तिभाई ने। लिखा-पढ़ा न? नहीं पढ़ा? ठीक। पढ़कर उसमें अभिप्राय दिया है। ऐसा कि यह सब व्रत को हेय... हेय करते हो तो व्रतधारी लोग अव्रत में चले जायेंगे। और अव्रती को अकेले तुम व्रत हेय-हेय करोगे तो कोई व्रत लेगा नहीं, पुरुषार्थ करेगा ही नहीं। विषय-कषाय में ही रहेगा। कहो, इसका क्या करना? आहाहा! व्रत का विकल्प किसे आता है? जिसे आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभव है, उसे तदुपरान्त आगे शान्ति बढ़ी हो, उसे ऐसे व्रत के विकल्प होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्रत के विकल्प हैं, इसलिए उसे ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। ऐसा हो, उसे ऐसा होता है। व्रत के विकल्प तो अभव्य को हैं ऐसे। उससे क्या हुआ? कहा है न उसमें भाई! समाधिशतक में कि अव्रत से तो नरक में जायेगा। समाधिशतक। इसलिए व्रत ले, वह स्वर्ग में जाये। परन्तु वह कौन व्रत ले? व्रत किसे होते हैं? यह पहली बात। जिसे अन्तर सम्यक् आत्मा ज्ञाता-दृष्टा ऐसा भान हुआ है, तदुपरान्त जिसे शान्ति अन्तर की दूसरी कषाय (चौकड़ी) के अभाव की हुई है, उसे व्रत के विकल्प होते हैं। अकेले व्रत के विकल्प वहाँ कहे हैं?

चौथे गुणस्थान में फिर व्रत का विकल्प हो, वह स्वर्ग में जाये और अव्रतवाला उसमें जाये। वाद-विवाद से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। वस्तुस्थिति ही यह है। मूल का ही जहाँ पूरा विवाद।

आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद अथवा लोकान्तिकदेवपद को प्राप्त करते हैं... लो! आत्मा का ध्यान अर्थात् कि विकल्प नहीं, शुद्ध ध्यान। आत्मा में अन्तर एकाग्रता, निर्विकल्प एकाग्रता को यहाँ धर्मध्यान कहा है। आहाहा! ऐसा **ध्यान कर इन्द्रपद अथवा लोकान्तिकदेवपद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।** वहाँ से निकलकर एकावतारी होते हैं।

भावार्थ :- कोई कहते हैं कि अभी पंचम काल में जिनसूत्र में मोक्ष होना कहा नहीं, इसलिए ध्यान करना तो निष्फल खेद है,... मोक्ष तो होगा नहीं। तब ध्यान किसका करना? ऐसा। **उसको कहते हैं कि हे भाई! मोक्ष जाने का निषेध किया है और शुक्लध्यान का निषेध किया है, परन्तु धर्मध्यान का निषेध तो किया नहीं। अभी भी जो मुनि रत्नत्रय से शुद्ध होकर...** देखा! अभी भी मुनि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध **होकर धर्मध्यान में लीन होते हुए...** देखा! वे दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय हैं। **शुद्ध होकर...** ऐसा। **मुनि रत्नत्रय से शुद्ध होकर...** आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी के अर्थ बहुत गम्भीर और उनकी शैली बहुत मार्मिक!

आत्मा का ध्यान करते हैं, वह मुनि स्वर्ग में इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं... लो! धर्मध्यान में लीन। परन्तु वजन यहाँ है। **अभी जो मुनि रत्नत्रय से शुद्ध होकर...** अन्तर स्वरूप के सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से शुद्ध होकर **धर्मध्यान में लीन होते हुए...** यह अन्तर ध्यान में लीन होते हुए **आत्मा का ध्यान करते हैं।** आहाहा! क्योंकि पाठ ऐसा है न? **'अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि'** ऐसा शब्द है न? इसलिए ऐसा अर्थ लिया है। भगवान आत्मा का शुद्ध सम्यक् निश्चय स्व के आश्रय से हुई सम्यग्दर्शन दशा, स्व का हुआ ज्ञान और स्व में हुई रमणता। ऐसी **'तिरयणसुद्धा'** ऐसे तीन रत्न से शुद्ध होकर। ऐसा। भाषा देखो न! पाठ ही है न यह। **'अप्पा झाएवि'** पश्चात् जो आत्मा का ध्यान करे, वही आत्मा का ध्यान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुनि रत्नत्रय से शुद्ध होकर धर्मध्यान में लीन होते हुए आत्मा का ध्यान करते हैं,... इस प्रकार आत्मा का ध्यान करते हैं। **वे मुनि स्वर्ग में इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं अथवा लौकान्तिकदेव एक भवावतारी हैं,...** लो! आहाहा! **उनमें जाकर उत्पन्न होते हैं। वहाँ से चयकर मनुष्य हो मोक्षपद को प्राप्त करते हैं।** लौकान्तिक में या इन्द्रपद में जाये, वहाँ से बस मनुष्य होकर मोक्ष जाये। भले मोक्ष अभी नहीं परन्तु इस प्रकार से मोक्ष है न, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा जो स्वरूप का ध्यान, ऐसा जो आत्मा का ध्यान, वह तो है या नहीं अभी? ऐसा कहते हैं। उसमें से अपूर्ण रहता है, इसलिए स्वर्ग में जाएगा, ऐसा कहते हैं। परन्तु ध्यान का ही तू निषेध कर दे कि अभी धर्मध्यान नहीं। मोक्ष नहीं, इसलिए धर्मध्यान नहीं। तो आत्मा के समीप में जाना, यह बात तो रही नहीं। आत्मा से दूर रह-रहकर सभी बातें, व्रत और नियम और क्रिया, वह कहाँ वस्तु थी? आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग!

इस प्रकार धर्मध्यान से... देखो! वह कहे मोक्ष नहीं, परन्तु इस प्रकार से धर्मध्यान से, ऐसा। **परम्परा मोक्ष होता है...** सीधे भले वर्तमान मोक्ष नहीं, परन्तु इस प्रकार से (मोक्ष होता है)। मूल तो यह इसमें से निकले न सब जब, (तब) उन्हें सम्यग्दर्शन तो नहीं था, स्व का आश्रय तो नहीं था श्वेताम्बर पंथ निकला इसलिए। और व्यवहार की ही बातें सब बाहर की। सम्यग्दर्शन हो, तब तो बाहर पृथक् पड़ सके नहीं। वस्त्र रखकर मुनिपना माना, मनाया। **इस प्रकार धर्मध्यान से...** इस प्रकार आत्मा के स्वभाव की समीपता का ध्यान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा ध्यान करके... यह आत्मध्यान। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही आत्मध्यान हैं। आहाहा! उसमें पूर्णता नहीं, इसलिए स्वर्ग में जायेगा, ऐसा कहा। है न? **आत्मा का ध्यान करते हैं, वे मुनि स्वर्ग में इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं...** इसका अर्थ कि ऐसा ध्यान करते हैं, उन्हें अभी राग बाकी है, पूर्ण ध्यान नहीं। पश्चात् वहाँ जायेगा।

वहाँ से चयकर मनुष्य हो मोक्षपद को प्राप्त करते हैं। आहाहा! **जो निषेध करते हैं, वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं,...** आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप का समीपता के ध्यान का ही निषेध करते हैं। आहाहा! वे तो अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि हैं। **उनको विषय-कषायों में स्वच्छन्द रहना है...** अर्थात्? कि आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, ध्रुवस्वरूप के

समीप में एकाग्रता करना, उसे तो वह मानता नहीं, ऐसा। इसलिए बाहर के विषय-कषाय में वह सब राग भले मन्द हो। आहाहा! ... यहाँ तो पहली यह बात है कि जहाँ आत्मा में का ध्यान, धर्मध्यान (का) ही निषेध किया, वहाँ क्या रहे उसे? आहाहा! शुरुआत तो जो द्रव्य का आश्रय करे, आनन्द का वेदन हो स्वरूप का, पूर्ण स्वरूप है, ऐसा ज्ञान में ज्ञात होकर वेदन में आनन्द आवे, उसमें जो प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। अब यह तो इनकार करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह माने। धर्मध्यान है ऐसा तो आता है अन्दर। चौथे से धर्मध्यान है। धर्मध्यान का अर्थ यह फिर बाहर की बातें करते हैं। वह आत्मा का ध्यान और धर्मध्यान, यह बात नहीं। ऐसा तो है सब पाठ भंगभेद में। चौथे से सातवें तक धर्मध्यान, आठवें से शुक्लध्यान। पढ़े तो हो न शब्द तो। आहाहा! क्या हो? भगवान का विरह पड़ा, केवलज्ञान रहा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कायोत्सर्ग करना। यह कायोत्सर्ग करना, यह अपवास करना, उसमें अपने एकाग्र होना। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... यह मूर्ति... यह क्या हुआ? यह तो बाहर की बात है। आहाहा! धर्मध्यान का अर्थ कि स्वभाव का ध्यान। आहाहा! विभाव की क्रिया सब व्रतादि की वह क्या? वह तो राग और विकल्प है। आहाहा! और वह भी समाधितन्त्र में कहा है कि अव्रत में रहेगा तो ऐसा कि इस प्रमाण नरक में जायेगा और व्रत में... परन्तु वह व्रत अर्थात् क्या? आहाहा! वहाँ अकेले व्रत के विकल्प की बात नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वहाँ वे व्रत के विकल्प नहीं। व्रत अर्थात् वहाँ स्वरूप की दृष्टि के अनुभवसहित शान्ति बढ़ी है, उसे जो विकल्प है, ऐसी उसकी बात है वहाँ। अकेले विकल्प व्रत अर्थात्, उसकी बात तो कहाँ है? समाधिशतक। क्या हो परन्तु अब? इस बात को अपनी कल्पना से सब मानना, वस्तु रह गयी एक ओर।

आहाहा! ऐसा कि वहाँ कहाँ है न समाधिशतक में। छाया में बैठा हुआ मनुष्य स्वयं को जो मनुष्य आता हो, उसकी राह देखने बैठे।

मुमुक्षु : यह तो इस मोक्षपाहुड़ में भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षपाहुड़ में भी है। है न यह सब एक ही है। धूप में बैठा हुआ मनुष्य दु:खी है और छाया में बैठा हुआ शुद्ध उपयोग की राह देखता है, ऐसा। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि सम्यग्दर्शन है और फिर व्रत के विकल्प करना, वह छाया में बैठा है और अव्रत के हैं, वह धूप में, ऐसा वहाँ अर्थ नहीं है। आहाहा! उसे तो जरा सी शान्ति बढ़ी है अन्दर में। चौथे गुणस्थानवाले सर्वार्थसिद्धि के देव को जो शान्ति है, उससे भी अन्दर में शान्ति—वीतरागता बढ़ गयी है। उसे जो व्रत के विकल्प हैं, वह अब शुद्ध उपयोग की राह देखता है, ऐसा। आहाहा! बहुत अन्तर, बहुत अन्तर। ऐसी बात और कहाँ अब उसकी चर्चा (करना)।

इस प्रकार धर्मध्यान से परम्परा मोक्ष होता है, तब सर्वथा निषेध क्यों करते हो? आत्मा के आनन्द का ध्यान ही नहीं और आत्मा के अवलम्बन से जो ध्यान होता है, वह ध्यान ही नहीं, ऐसा कैसे इनकार करते हो? आहाहा! अब तो यह शास्त्र बाहर प्रकाशित हुए, इसलिए बहुत बातें करनेवाले निकले हैं। बाहर प्रसिद्ध हुए इतने सब। अब तो जवान भी पढ़ते हैं और बातें करते हैं। परन्तु बात यह है कि अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द की प्राप्ति का ध्यान, उस ध्यान से परम्परा मोक्ष है। **तब सर्वथा निषेध क्यों करते हो? जो निषेध करते हैं, वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं,...** आहाहा! **उनको विषय-कषायों में स्वच्छन्द रहना है, इसलिए इस प्रकार कहते हैं।** अर्थात्? कि अन्तर आनन्द के स्वरूप के समीप में जा सकता नहीं, इसलिए अभी धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहकर उसे राग में रहना है। आहाहा! राग शुभभाव हो, वह सब राग परविषय है। आहाहा! वह तो इन्द्रिय का विषय है। इसलिए **इस प्रकार कहते हैं।** लो!

★ ★ ★

गाथा - ७८

आगे कहते हैं कि जो इस काल में ध्यान का अभाव मानते हैं और मुनिलिंग पहले ग्रहण कर लिया... मुनिलिंग ग्रहण किया नग्नपना आदि। मुनिलिंग उसे कहते हैं, हों! नग्नपना वह। वस्त्रवाला, वह मुनिपने का लिंग भी नहीं। आहाहा! **मुनिलिंग पहले ग्रहण कर लिया, अब उसको गौण करके पाप में प्रवृत्ति करते हैं, वे मोक्षमार्ग से च्युत है :—**

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७८॥

अर्थ :- जिनकी बुद्धि पापकर्म से मोहित है... आहाहा! **वे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर का लिंग ग्रहण करके भी...** मुनि का लिंग नग्न दिगम्बर। आहाहा! **लिंग ग्रहण करके भी पाप करते हैं...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पाप ही है। वह पुण्यभाव करे और उसे धर्म माने, वह पाप ही है। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' पाप है न वह, आत्मा की शान्ति को लूटनेवाला है। आहाहा! **जिनवरेन्द्र तीर्थंकर का लिंग ग्रहण करके भी... लिंग ग्रहण करके भी पाप करते हैं, वे पापी मोक्षमार्ग से च्युत हैं।**

भावार्थ :- जिन्होंने पहले निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर लिया... देखो! बात तो यह है। **पीछे ऐसी पापबुद्धि उत्पन्न हो गई कि अभी ध्यान का काल तो है नहीं,...** यह पाप बुद्धि। अन्तर्मुख होने का अभी काल ही नहीं। आहाहा! निर्ग्रन्थ लिंग धारण किया। **तो अभी ध्यान का काल तो है नहीं,...** आहाहा! उसे यहाँ पापमति कहा है, भाई! आहाहा! आत्मा के समीप जाया जा सकता नहीं। दूर-दूर की बातें सब करो। वह पापमति है। आहाहा! क्या हो?

इसलिए क्यों प्रयास करें?... अभी ध्यान का काल तो है नहीं, इसलिए क्यों प्रयास करें? ऐसा विचारकर पाप में प्रवृत्ति करने लग जाते हैं... अर्थात् आत्मा के समीप में न जाकर, अन्तर स्वरूप का ध्यान न करके बाहर में प्रवृत्ति में (रहता है)।

वह सब पाप ही है। **वे पापी हैं, उनको मोक्षमार्ग नहीं है।** इसके बीच का सब निकाल डालना है। घर का डाला है। इसमें नहीं डालना चाहिए। ऐसे शास्त्र में घर के कोई शब्द नहीं डालना चाहिए। रामजीभाई तो कहे, यहाँ भगवान का दरबार है। सब जाये आये। आहाहा! यह फिर लोग शंका करे इसमें कि यह तो तुम्हारे घर का डाला। तुम्हारा अर्थ कहाँ है यह? पण्डित जयचन्द्रजी का अर्थ कहाँ है? ऐसा कहे। किसी ने पूछा नहीं होगा कि भाई! यह घर के अर्थ डालकर सोनगढ़ के नाम से छपाना? रामजीभाई को खबर नहीं? लो! रामजीभाई को खबर नहीं। ऐसे छपावे कौन? कितनी जगह घर का डाला है! लोगों को दूसरों को शंका पड़े कि यह तो अपने घर का डालते हैं।

मुमुक्षु : भाषा परिवर्तन करनेवाले पण्डित महेन्द्रकुमारजी जैन।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया? परन्तु किसने किया है? ... उन्होंने कहाँ लिखा है यह? उन्होंने लिखा है इस भाषा का? यह तो भाषा परिवर्तन। यह तो अन्दर लेख है, वह उनका नहीं। महेन्द्र का नहीं। अब से ऐसा रिवाज यहाँ करना... समझ में आया? कि गुलाबचन्द को कोई भी पुस्तक में उसमें उसे देना नहीं। क्योंकि उसकी योग्यता दूसरे प्रकार की है। और ऐसा करने से वह बहुत नुकसान होगा। वास्तव में तो आत्मधर्म है, वह ले लेना चाहिए उसके पास से। हिन्दी है वह। उसे सबमें से निकाल देना। यहाँ रोटियाँ खाये और पड़ा रहे, बस इतना। मैं तो बहुत वर्ष से कहता हूँ। क्योंकि उसकी योग्यता मैंने बहुत वर्षों से देखी है। बहुत जाँची, बहुत जाँची। यहाँ डालकर अशुद्धि डालकर ऐसा करना। यहाँ का माने तो लोग ऐसा हो, मध्यस्थ हो और जो कुछ अन्दर है, तत्प्रमाण लिखा गया हो। अपनी चतुराई डालकर बतलाना है कि हमको आता है यह। वह सब बातें अब क्या हो? देखो न, कल यह लिखा नीचे। अधिकार कुछ चलता है और लेखन कुछ किया है। वहाँ तो अभी धर्मध्यान नहीं, ऐसा माननेवाले की बात है वहाँ। उसके बदले अर्थ में कुछ का कुछ भरा है नीचे। क्या हो परन्तु अब? कोई पूछनेवाला नहीं होता यहाँ। यह ७८ गाथा हुई। भूल लगती है अन्दर। ७२ लिखा। ७२ है? भूल हुई लगती है। यह भूल हुई है। ७८। यह छपने में भूल हुई है।

★ ★ ★

गाथा - ७९

आगे कहते हैं कि जो मोक्षमार्ग से च्युत हैं, वे कैसे हैं:—देखो! आया अब यह।

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७९॥

कठोर लगे परन्तु क्या हो? श्वेताम्बर की बात है इसमें।

अर्थ :- पंच आदि प्रकार के चेल अर्थात् वस्त्रों में आसक्त हैं,... लो! वस्त्र रखते, रखने लगे थे अर्धफालक। **अण्डज, कपासज, वल्कल, चर्मज और रोमच, इस प्रकार वस्त्रों में से किसी एक वस्त्र को ग्रहण करते हैं, ग्रन्थग्राही अर्थात् परिग्रह के ग्रहण करनेवाले हैं,...** लो! उस समय में यह पंथ निकला हुआ, उसकी बात है। उन्होंने धर्मध्यान को उड़ाया। उसे धर्मध्यान निश्चय होता ही नहीं। जिसने वस्त्रसहित मुनिपना माना, मनाया, उसे तो सम्यग्दर्शन होता नहीं और आत्म-आश्रय होता नहीं। आहाहा! यह पाँच प्रकार के **वस्त्रों में किसी एक वस्त्र को ग्रहण करते हैं, ग्रन्थग्राही अर्थात् परिग्रह के ग्रहण करनेवाले हैं, याचनाशील अर्थात् माँगने का ही जिनका स्वभाव...** 'धर्मलाभ' ऐसा कहते हैं न। **याचनाशील अर्थात् माँगने का ही जिनका स्वभाव है...**

मुमुक्षु : शुद्ध है, फलाना है या नहीं, ऐसा पूछते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पूछते हैं। यह स्थानकवासी बहुत पूछते हैं। हमने सब किया हुआ है। आहार लेने जायें, तब गाँव में बनिया न हो और हो किसान, भावसार। बहिन! ... है? ... दबकर बलजोरी से बेचारे को देना पड़े ... आहाहा!

एक तो वस्त्र रखते हैं। एक बात। **याचनाशील अर्थात् माँगने का ही जिनका स्वभाव है...** दो बात। **अध:कर्म अर्थात् पापकर्म में रत हैं,...** तीसरी बात। उसके लिये किया हुआ हो, वह आहार लेते हैं।

मुमुक्षु : .... होवे उसे चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह लिखा है। द्रव्यानुयोग का ज्ञान हो उसे... द्रव्यानुयोग के ज्ञान बिना का समकिती होगा? आहाहा! बहुत फेरफार कर डाला। लिखा है न!

द्रव्यानुयोग में है न। द्रव्यानुयोग तर्कणा में है। पढ़ा है न सब। द्रव्यानुयोग तर्कणा में है। उसमें है। यशोविजय में। क्या कहलाता है वह ? ढाल... ढाल। द्रव्य का ... उसमें है, है न, खबर है। मार्ग, बापू! ऐसा नहीं, भाई! किसी के प्रति विरोध नहीं, वैर नहीं, किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। वह आत्मा है। परन्तु मार्ग ऐसा है, उसमें तो दूसरा क्या हो ? आहाहा! ओहोहो! **अधःकर्म अर्थात् पापकर्म में रत हैं, सदोष आहार करते हैं, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- यहाँ आशय ऐसा है कि पहिले तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये थे,... आहाहा! **पीछे कालदोष का विचारकर चारित्र पालने में असमर्थ हो...** कालदोष का विचार करके। कालदोष का विचार करके कि ऐसे काल में अब दिगम्बरपना नहीं पलता। आहाहा! **चारित्र पालने में असमर्थ हो निर्ग्रन्थ लिंग से भ्रष्ट होकर...** दिगम्बर लिंग से भ्रष्ट हुए। **वस्त्रादिक अंगीकार कर लिये,...** वस्त्र आदि अर्थात् वस्त्र, पात्र, लकड़ी। लकड़ी।

मुमुक्षु : निर्ग्रन्थलिंग कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निर्ग्रन्थलिंग से भ्रष्ट (अर्थात्) इस दिगम्बर लिंग (से भ्रष्ट)। पहले दिगम्बर (लिंग) धारण किया था। बड़ा दुष्काल पड़ा, निभ सके नहीं। अर्धफालक आयेगा। तीन जगह है इसमें। यहाँ है और दूसरी दो जगह है। यहाँ तो है ही। उसमें पुराने में लिखा है। पुराने में लिखा है। यहाँ तो पहले वाँचन होता है न यह तो। पुराने में लिखा। ७९ नहीं ? पृष्ठ ४६, पृष्ठ ७६ उसमें तीन जगह है। पृष्ठ ४६ में है, पृष्ठ ३७६ में है। उसमें। पृष्ठ ४६ में है, लो। उसमें यह है, देखो! **पहले तो भद्रबाहुस्वामी तक निर्ग्रन्थ थे। पीछे दुर्भिक्षकाल में भ्रष्ट होकर जो अर्द्धफालक कहलाने लगे, उनमें से श्वेताम्बर हुए, उनमें देवगणि साधु उनके संघ में हुआ, इन्होंने इस भेष को पुष्ट करने के लिये सूत्र बनाये,...** सूत्र रचे। **इनमें की कल्पित आचरण तथा इसकी साधक कथायें लिखीं। वह प्रमाणभूत नहीं।** उसमें होगा।

दूसरा ३७६ है उसमें। ३७६ में है। **इस काल में जिनलिंग भ्रष्ट होकर पहले अर्द्धफालक हुए...** १३वीं गाथा है लिंगपाहुड़ की। **पीछे उनमें श्वेताम्बरादिक संघ हुए,**

उन्होंने शिथिलाचार पुष्ट कर लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी... और अभी यहाँ। तीन जगह है। भारी कठोर लगे।

मुमुक्षु : लिंगपाहुड़ में है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिंगपाहुड़ १३वीं (गाथा)।

भावार्थ :- **यहाँ आशय ऐसा है कि पहले तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये थे,... निर्ग्रन्थ लिंग से भ्रष्ट होकर वस्त्रादिक अंगीकार कर लिये...** बस, वस्त्र अंगीकार किया तो मुनिपने की श्रद्धा रही नहीं। श्रद्धा से भी भ्रष्ट हो गया। **याचना करने लगे, अध:कर्म उद्देशिक आहार करने लगे...** उसके लिये बनाया हो, वह भी लेने लगे। **उनका निषेध है, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं।** आहाहा! **पहले तो भद्रबाहुस्वामी तक निर्ग्रन्थ थे। पीछे दुर्भिक्षकाल में भ्रष्ट होकर जो अर्धफालक कहलाने लगे उनमें से श्वेताम्बर हुए,...** लो! आहाहा! **उनमें से श्वेताम्बर हुए, इन्होंने इस भेष को पुष्ट करने के लिये सूत्र बनाये,...** आहाहा! यहाँ तो एक वस्त्र का धागा रखे और मुनिपना माने (तो) नव तत्त्व में भूल है। इसलिए '**निगोदं गच्छई।**' ऐसा कहा। अब ऐसा कठिन काम, भाई! नौ तत्त्व की भूल हुई वहाँ। जीव का उग्र आश्रय लेता हो, वहाँ राग की मन्दता बहुत होती है। उसके बदले मुनि को वस्त्र लेने का भाव, वह तो जीव का आश्रय लेने की खबर नहीं। आहाहा! उस भूमिका में राग की मन्दता हो, उसके बदले तीव्रता मानी वस्त्र लेने की, तो उसकी आस्रव की भूल। संवर हो, वहाँ ऐसी ही राग की मन्दता का भाव, उसे संवर की भूल, निर्जरा की भूल, बन्ध की भूल और मोक्ष की (भूल)—सब भूल है। आहाहा! कहो, यह श्वेताम्बर की बात चलती है यह। उसमें से स्थानकवासी निकले, वे फिर अधिक भ्रष्ट होकर निकले। आहाहा! अरेरे! उसमें फिर यह तेरापंथी तुलसी निकले। अधिक भ्रष्ट होकर निकले। अब उसका क्या करना?

मुमुक्षु : अणुव्रत संघ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अणुव्रत संघ। अणुव्रत कहाँ से लाये? मिथ्यादृष्टि को व्रत कैसे? आहाहा! अभी तो आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मा-अनुभव बिना सम्यग्दर्शन नहीं, उसके बिना फिर व्रत और अणुव्रत कहाँ से आये? आहाहा! क्या हो? मान के

पोषण में जाये, फिर लोगों का ठिकाना नहीं रहता, फिर मर्यादा नहीं रहती। आहाहा!

इन्होंने इस भेष को पुष्ट करने के लिये जो सूत्र बनाये, इनमें कई कल्पित आचरण... ऐसे देना और ऐसे लेना, ऐसे पात्र धोना और ऐसे वस्त्र धोना। बहुत आता है उसमें। आहाहा! ... सूत्र पूरा मुखाग्र-कण्ठस्थ है। पूरा निषेध व्यवहार सब कण्ठस्थ था। गप्प-गप्प लगायी। आहाहा! उसे ऐसे धोना, उसे तीन ... रंग लगाना, फलाना, ढींकणा सब ... अरे! क्या हो?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे? हाँ, मनसुखभाई। हाँ, हाँ, वह तो ठीक। अब यहाँ आता है। अभी इस बार वहाँ आते थे, घर ले गये। कुछ न कुछ अन्दर... छोड़ा जा सकता है, ऐसा नहीं। वाड़ा—सम्प्रदाय छोड़ना भारी कठिन, परन्तु उसे अन्तर पड़ा। मार्ग तो जब तब लेना यह पड़ेगा। ऐसे वहाँ तक आये थे। प्रमुख है मनसुखभाई ध्रांगध्रा के। जमीन के कुछ थे। भाई पूनमचन्द करते हैं न, ऐसा करते हैं। भाई! मार्ग तो यह है, बापू! मिठास से कहे, धीरे से कहे, शान्ति से कहे। किसी व्यक्ति के प्रति वैर-विरोध से नहीं, बापू! क्या हो? आहाहा!

इसकी साधक कथायें लिखी। आहाहा! भगवान को वस्त्र दिया न। भगवान ने—तीर्थंकर ने दीक्षा ली, उन्हें इन्द्र ने एक वस्त्र दिया। बारह महीने कन्धे पर रहा। अब कन्धे पर रहा, उसका क्या अर्थ? सम्यग्दृष्टि एकावतारी। शकेन्द्र एकावतारी है न? उसने भगवान को वस्त्र दिया। दीक्षा ली तो बारह महीने रहा। यह सब कल्पित बातें हैं।

मुमुक्षु : भरत को भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : भरत को केवलज्ञान होने के पश्चात् देव ने ओघा मुँहपत्ती दी। यह मेरी दीक्षा में लोगों ने गाया था। ओघा और मुँहपत्ती दिये... क्या कुछ भाषा आती है? जिनशासन के रागी। अरे! भगवान! सत्य को स्थापित करने में विकल्प तो होता है न, कहते हैं और असत्य को उत्थापने में भी उतना अंश होता है जरा। आहाहा! इतना राग-द्वेष का अंश है। आहाहा! कहते हैं न। सत्य ऐसा है, ऐसा जो विकल्प उठता है न, उतना राग आता है और वह राग झूठा है, वह खोटा है, छद्मस्थ को कहना है न? तो

वहाँ उतना अंश जरा द्वेष का अंश है, भाई! आहाहा! भले परन्तु है अंश न? प्रयोजन की बात नहीं। आहाहा! बात तो बापू ऐसी है। क्योंकि छद्मस्थ है और वह सत्य को ऐसा होता है, (ऐसे स्थापना का) उतना एक विकल्प है, भाई!

मुमुक्षु : सत्य की प्रसिद्धि होओ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी वह विकल्प है न, बापू! आहाहा! वीतराग को नहीं होता वह। आहाहा! ऊपर लिखा न? यह अपने १४२वीं गाथा है। (समयसार) कर्ता-कर्म (अधिकार) में पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। एक नय के पक्ष से बात करे, मूल रखकर। तो वह बराबर है। है राग परन्तु बात बराबर है।

मुमुक्षु : श्रद्धा बराबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा बराबर, ऐसा। है न, भावार्थ में है न। है न यह तो बात, बापू! आहाहा!

इनके सिवाय अन्य भी कई भेष बदले,... आहाहा! **इस प्रकार कालदोष से भ्रष्ट लोगों का सम्प्रदाय चल रहा है, यह मोक्षमार्ग नहीं है,...** आहाहा! **इस प्रकार बताया है।** कहा न '**ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि**' पाठ है न ७९। ऐसा बताया है, ऐसा कहते हैं। **इसलिए भ्रष्ट लोगों को देखकर ऐसा भी मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना।** आहाहा! वीतरागमार्ग है, बापू! राग आवे, परन्तु वह दोष है। आहाहा! व्रत का विकल्प भी आवे पाँचवें-छठवें में, परन्तु है वह दोष। आहाहा! इस प्रकार से भगवान ने वह **भ्रष्ट लोगों को देखकर ऐसा भी मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना,** ऐसा कहा है। श्रीमद में भी है न दिक्कत। उनके अनुयायी दोनों को समान मानते हैं। दोनों हैं। दोनों मार्ग हैं। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य तो इनकार करते हैं। और कुन्दकुन्दाचार्य तो श्रीमद् के गुरु थे। नहीं? पंचास्तिकाय। सद्गुरुवे नमः, पंचास्तिकाय के अर्थ किये न गुजराती? तो सद्गुरुदेवाय नमः यह उन्होंने किया है। कुन्दकुन्दाचार्य का वर्णन है। पंचास्तिकाय के अर्थ किये हैं।

★ ★ ★

गाथा - ८०

आगे कहते हैं कि मोक्षमार्गी तो ऐसा मुनि है :— आहाहा!

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि॥८०॥

अर्थ :- जो मुनि निर्ग्रन्थ हैं, परिग्रह रहित हैं,... श्रीमद् ने भी अपूर्व अवसर में तो यह डाला है। 'देहमात्र' संयम हेतु होय। एक ही देह। वहाँ तो ऐसा ही डाला है। अब फिर दो कहाँ से इकट्ठे होंगे? यह सूत्र बनाये। सत्शास्त्र कहे, वे सब दिगम्बर के कहे। एक योगदृष्टि समुच्चय (लिखा है) ग्रन्थ है वह तो। कहीं उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग के नाम नहीं लिखे।

मुमुक्षु : वह तो कहने की आवश्यकता ही नहीं। वे तो होवे ही शास्त्र। यह तो ग्रन्थों में से क्या ... ऐसा बताना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहे, ऐसा कहे, बात सच्ची है। अरे प्रभु! उन्होंने पीछे से स्पष्ट कर डाला है।

यहाँ तो **मुनि निर्ग्रन्थ हैं,...** ओहोहो! बाह्य-अभ्यन्तर दोनों प्रकार से। वस्त्र का धागा न हो उसे, पात्र न हो उसे, लकड़ी-दण्ड न हो उसे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसके लिये रखते हैं। दुष्काल बहुत था न...

मोहरहित हैं... आहाहा! अकेले परिग्रहरहित नहीं, परन्तु वापस मोहरहित हैं अन्दर। जिन्हें आनन्द की लहर उठी है, प्रचुर स्वसंवेदन जिन्हें। आहाहा! **जिनके किसी भी परद्रव्य से ममत्वभाव नहीं है,...** किसी परद्रव्य में ममत्व नहीं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के प्रति भी मुनि को 'यह मेरे' ऐसा नहीं होता। आहाहा! वीतरागी मुनिपना किसे कहे? **जो बाईस परीषहों को सहते हैं,...** परन्तु इस प्रकार से। निर्ग्रन्थपना है बाह्य-अभ्यन्तर, बाह्य परिग्रह का त्याग है और किसी प्रकार के परद्रव्य की ममता नहीं। ऐसे बाईस परीषह के जीतनेवाले। आहाहा!

जिन्होंने क्रोधादि कषायों को जीत लिया है... आहाहा! जिन्होंने क्रोध, मान, माया और लोभ (को) स्वरूप की स्थिरता द्वारा जीत लिये हैं। आहाहा! **पापारम्भ से रहित हैं। गृहस्थ के करनेयोग्य आरम्भादिक पापों में नहीं प्रवर्तते हैं,...** आहाहा! पैसा इकट्ठा करना, या उगाहना, चन्दा करना, पाठशालायें बनाना, मन्दिर बनाना—ऐसे भाव में मुनि नहीं पड़ते। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के समय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल के लिये मार्ग है यह तो। मुनि का काम है यह? पैसा इसमें दो। अभी देखो न, चलता है न यह २५०० वर्ष में। २५०० वर्ष के लिये यह उगाही करते हैं। है आर्य मुनि कोई। वे बहुत पैसो उगाहते हैं तीर्थरक्षा के लिये।

कहते हैं कि, वे **गृहस्थ के करनेयोग्य आरम्भादिक पापों में नहीं प्रवर्तते हैं, ऐसे मुनियों को मोक्षमार्ग में ग्रहण किया है...** लो! ऐसे मुनियों को मोक्षमार्ग में मान्य रखा है। आहाहा! **रत्नकरण्डश्रावकाचार (गाथा-१०) में समन्तभद्राचार्य ने भी कहा है कि —**

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्ते॥

आहाहा! मुनि कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या विशेष करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक ०३-०५-१९७४
गाथा - ८१ से ८३, प्रवचन-१४१

... योगी अर्थात् अपना आनन्दस्वरूप, उसमें जिसका जुड़ान है। सूक्ष्म बातें, बापू! लोगों ने बाहर से माना है और यह तो अन्तर की वस्तु है। योगी अर्थात् आत्मा के आनन्द का ध्यान करनेवाले, ऐसे योगी। आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञान का पुंज प्रभु, उसमें जिसने अपनी परिणति को—अवस्था को जोड़ दिया है। आहाहा! राग और विकार से जिसने अपनी दशा को हटाया है। ऐसा **मुनि प्रकटरूप से शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।** लो! सुख तो आत्मा में है, परन्तु ऐसे मुनि प्रगट शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं, ऐसा कहा है। क्या कहा? भगवान आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति ही है। सच्चिदानन्दस्वरूप ही है उसका। सत्, शाश्वत् ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है, परन्तु प्रगट मोक्ष में उसका आनन्द प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। स्वभाव तो है। आहाहा! ऐसे पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप में जिसकी परिणति अर्थात् अवस्था जोड़ी है, जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ऐसी पर्याय को प्रगट किया है, वह **मुनि प्रगटरूप से...** प्रगट हुई दशा में **शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।** आहाहा! ... क्योंकि वह तो पुण्य छूट जाता है। वह कहीं मुझे और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! ऐसी अन्तर में भावना करनेवाला, **वही मोक्षमार्गी है।** आहाहा! वह अनन्त आनन्द को प्राप्त करने के मार्ग में है। मार्ग भाई, बहुत सूक्ष्म बात।

जो भेष लेकर भी लौकिकजनों से लाल-पाल रखता है,... साधु नाम धरावे, साधु का वेश धारण करे और लौकिक के साथ लाल-पाल तुम ऐसा करो, तुम ऐसा करो, तुम यह करो, यहाँ इतने पैसे दो। लौकिक के साथ लाल-पाल, पैसा चन्दा करना, ऐसे लाल-पाल करे, **वह मोक्षमार्गी नहीं है।** आहाहा! ज्योतिष बतावे और ज्योतिष करे, ऐसी सब जंजाल खड़ी (करे और) नाम धरावे साधु। यह विवाह का क्या कहलाता है? मुहूर्त निकाल दे, मकान का मुहूर्त निकाल दे। यह वह कहीं उसके काम हैं? आहाहा! कहते हैं कि जिसे आत्मा का कल्याण करना है, ऐसे सन्त तो अपने

आत्मा के ध्यान में मस्त होते हैं। वे लौकिक के साथ उसे लाल-पाल होती नहीं। है न? लाल-पाल का अर्थ यह कि बोलना और उसे प्रसन्न रखना, जगत को प्रसन्न रखना। आहाहा! ऐसा ... **मोक्षमार्गी नहीं है।** वह आत्मा के आनन्द की प्राप्ति के मार्ग में नहीं है। वह तो राग और द्वेष की प्राप्ति के मार्ग में है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ८२

आगे फिर कहते हैं :—

'देवगुरुणं भत्ता'—अब सन्त मुनि धर्मात्मा कैसे होते हैं? कि—

देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि॥८२॥

एकदम सार है भाई यह। मोक्षमार्ग का अधिकार है न। आहाहा!

अर्थ :- जो मुनि देव-गुरु के भक्त हैं,... देव-गुरु के तो भक्त हैं। यह देव कैसे, यह स्पष्टीकरण करेंगे। आहाहा! अरिहन्त सर्वज्ञदेव, जिन्हें एक समय में तीन काल—तीन लोक का ज्ञान है—ऐसे परमात्मा को यहाँ अरिहन्त कहते हैं, देव कहते हैं। जिन्हें दिव्य शक्ति प्रगट हुई है। है न? लिखा है। **जिनने मोक्षमार्ग प्राप्त किया, ऐसे अरहन्त सर्वज्ञ वीतराग देव...** देखो अन्दर लिखा है भावार्थ में। **जिनने मोक्षमार्ग प्राप्त किया, ऐसे अरहन्त सर्वज्ञ वीतराग देव...** आत्मा सर्वज्ञस्वरूप है शक्ति से। ऐसी सर्वज्ञदशा जिन्होंने प्रगट की है। आहाहा! एक क्षण में जिन्हें तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं, ऐसे परमात्मा को अरिहन्त परमात्मा (कहते हैं)। णमो अरिहंताणं है न? णमो अरिहंताणं शब्द कोई वाड़ा का नहीं। जिसने राग और द्वेष, अज्ञान का हन्ता-हनकर नाश करके जिसने सर्वज्ञ और वीतरागता प्रगट की है, ऐसे परमात्मा के, धर्मात्मा उनके भगत होते हैं। आहाहा! उसकी खबर भी नहीं होती कि अरिहन्त कैसे होते हैं। अरिहन्त कोई पुरुष हो गये होंगे, राजा हो गये होंगे। आता है न? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है। राजा क्या, वह तो आत्मा की दशा पूर्ण प्राप्त, उसे अरिहन्त कहते हैं। अरि अर्थात्

दुश्मन, हन्त अर्थात् हननेवाला—अरिहंता। जिसने राग और द्वेष और विकार को अरि रूप दुश्मन को हना है, और जिसने अन्तर दशा पूर्ण आनन्द की प्रगट की है, सर्वज्ञ और वीतरागता जिसने प्रगट की है, उसे देव कहा जाता है। उस देव के मुनि भक्ति होते हैं। उनके भक्त होतें है, ऐसा। शुभराग आता है तो उनकी प्रीति है, ऐसा कहते हैं। वैसे तो इनकार किया सब के साथ में सम्बन्ध नहीं। आहाहा! परन्तु जब भक्ति का भाव आता है, तब ऐसे देव को देवरूप से वे मानते हैं, ऐसा। आहाहा!

और **निर्वेद अर्थात् संसार देह-भोगों से विरागता की परम्परा का चिन्तन करते हैं,...** संसार अर्थात् चार गति भव। नरकगति, मनुष्यगति, तिर्यंच—पशुगति और देवगति। चार गति है। उनसे विरागता, उनसे वैराग्य हो। चारों ही गति परिभ्रमण का कारण है। आहाहा! ऐसी गति से निर्वेद है। निर्वेद अर्थात् उदास है। आहाहा! देह। यह देह-शरीर, यह तो मिट्टी का पुतला जड़ है। इससे विराग है। यह मैं नहीं, मुझमें यह नहीं। इसके प्रति निर्वेद है, वैराग्य है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! **संसार-देह-भोगों से...** यह इन्द्रियों के भोग-विषय। आहाहा! पाँचों इन्द्रियों का भोग विषय। कान से सुनना, आँख से देखना, नाक से सूँघना, जीभ से चखना, स्पर्श करना—इन भोगों से जो वैरागी है। मुनि है न। पाँचों ही भोग से जिसे वैराग्य है। आहाहा! **भोगों से विरागता की परम्परा का चिन्तन...** देखा! वैराग्य-वैराग्य, उदास-उदास। परम्परा का चिन्तन करते हैं वे तो। बारम्बार जिसमें से वैराग्यता—वीतरागता प्रगट हो, ऐसा बारम्बार चिन्तवन करते हैं। गजब ऐसा!

ध्यान में रत हैं,... मुनि हैं, वे जंगलवासी, वे तो अन्दर आनन्दस्वरूप में—अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा के ध्यान में रत हैं। आहाहा! ध्यान दूसरा कोई नहीं। वह अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु आत्मा, उसमें जिनकी अन्तर लीनता है। इसका नाम मोक्षमार्गी कहा जाता है। आहाहा! मोक्षपाहुड़ है न। **रत हैं, रक्त हैं,...** विशेष कहते हैं। आत्मा के आनन्दस्वरूप में वे लीन होते हैं। उन्हें राग की और यह सब झंझट छूट गयी होती है। आहाहा! वे **तत्पर हैं...** यह विशेष कहा। **'झाणरया'** है न? उसका तत्पर कहा। आत्मा के ध्यान में रक्त हैं, रत हैं, तत्पर हैं, यह रत का अर्थ किया।

और जिनके भला—उत्तम चारित्र है,... जिन्हें स्वरूप की रमणता बहुत ऊँची

होती है, कहते हैं। आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा का आत्मज्ञान करके, आत्मज्ञान करके, आत्मध्यान करके स्वरूप में रमणता उनकी विशेष होती है, ऐसा कहते हैं। इसका नाम मुनि, मोक्षमार्गी कहा जाता है। आहाहा! **जिनके भला—उत्तम चारित्र है,...** है न पाठ? **'सुचरित्ता।'** वह **'झाणरया'** की व्याख्या की। **'सुचरित्ता'** भला जिनका चारित्र। चारित्र अर्थात् आत्मा में जिन्हें बहुत शान्ति है। वह चारित्र। यह वस्त्र-बस्त्र बदले और नग्नपना (लिया), वह कहीं चारित्र नहीं। चारित्र—आत्मा की शान्ति जिन्हें भली है, ऐसा कहते हैं। लौकिक शान्ति करता है राग मन्द, वह नहीं। आत्मा के आनन्द में से शान्ति प्रगट हुई है। आहाहा! **'सुचरित्ता'** ऐसे आत्माओं को मोक्षमार्ग में ग्रहण किया गया है। ऐसे आत्मा को मोक्षमार्गीरूप से गिनने में आया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह तो पूरा दुनिया से विरुद्ध है, भाई! मार्ग अलग ही हो। संसारमार्ग संसरण भटकने का, उससे मोक्षमार्ग अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! साधारण लौकिक माने, वह कोई चीज़ है? यह तो अलौकिक अपूर्व अनन्त काल में जिसे नहीं जाना, ऐसा आत्मतत्त्व, जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन—ऐसी प्रतीति और ध्यान, उसका चारित्र। उसके चारित्र में ऐसा भाव होता है, ऐसा कहते हैं। उसे मोक्षमार्ग में ग्रहण करना। वह मोक्षमार्गी में गिनने में आये हैं।

भावार्थ :- जिनने मोक्षमार्ग प्राप्त किया... (जेणे) अर्थात् जिन्होंने। **ऐसे अरहन्त सर्वज्ञ वीतराग देव और उनका अनुसरण करनेवाले बड़े मुनि दीक्षा-शिक्षा देनेवाले गुरु इनकी भक्तियुक्त हो,...** जिन्होंने मोक्षमार्ग प्राप्त किया है इतना। उन्हें **अरहन्त सर्वज्ञ वीतराग देव...** आहाहा! अरिहन्त सर्वज्ञ कौन है? वीतराग कौन है? उन्हें जो पहिचानकर वह भक्तियुक्त है। जिसने मोक्षमार्ग प्राप्त किया है, वह अरिहन्त सर्वज्ञ वीतरागदेव का वह भक्त होता है, ऐसा कहते हैं। **उनका अनुसरण करनेवाले बड़े मुनि...** आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा की वीतराग निर्दोष दशा जिन्हें पूर्ण प्रगट हो गयी है, उनका अनुसरण करनेवाले साधु होते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ और परमात्मा वीतराग, रागरहित पूर्ण दशा जिनको प्राप्त है, उन्हें अनुसरण करनेवाले।

मुनि दीक्षा-शिक्षा देनेवाले गुरु... आहाहा! आहाहा! उसका ज्ञान तो करना पड़ेगा न इसे? आहाहा! मुम्बई में होस्पीटल में देखो तो दुखिया... दुखिया... दुखिया...

बेचारे। आहाहा! एक जवान लड़का था बेचारा १०-१२ वर्ष का। उसे कुछ हुआ था अन्दर से। कुछ हुआ नहीं था? जवान लड़का नहीं था १२ वर्ष का? ओहोहो! वैराग्य दिखाई दे। बड़ा क्या कहा जाता है हॉस्पीटल को? हरकिशन... हरकिशन। वहाँ भाई थे न अपने, उनके काका मनसुखभाई। यह मनसुखभाई को हुआ था पैर में वह। ऑपरेशन कराया था। उन्हें वह डायविटीज है न। डायविटीज है, इसलिए पैर में बड़ा फोड़ा हुआ। इसलिए वह सूखे नहीं डायविटीजवाले को। दो बार जा आये थे उसके पास। और एक अपने वजुभाई आते थे लाठीवाले। वह तो मरने की तैयारी। दो स्त्रियाँ। दोनों बहिनें और अब अन्तिम स्थिति। डॉक्टर कहे, बाहर निकलना नहीं। मुझे महाराज के दर्शन करना है, डॉक्टर को कहे। महाराज गाँव में आये हैं। आज्ञा नहीं मिले। क्योंकि यहाँ से निकलते हुए बीच में देह छूट जायेगी, ऐसी स्थिति है। आहाहा! लो, यह सब तूफान किया। वहाँ गये तो रोते थे बेचारे। रोवे। बापू! क्या करना, भाई! नयी स्त्री से विवाह किया है। पुरानी को पुत्र नहीं था। दोनों सगी बहनें हैं। लड़का हुआ। रोवे। दोनों बार रोते थे, दो बार गये थे। अरे! भाई! बापू! किसमें किसे रोना? आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है, उसे पहिचान और उसमें रुक। बाकी थोथा है। आहाहा! तुम्हारे वजुभाई कागदी। डॉक्टर ने अन्तिम... कर डाले। डॉक्टर ने हाथ खींच लिये हैं। बचेगा नहीं।

मुमुक्षु : पथरी का ऑपरेशन।

पूज्य गुरुदेवश्री : पथरी का ऑपरेशन दो बार किया। पथरी होगी इन्द्रिय में पत्थर। आहाहा! यह संसार। इससे आत्मा का अन्दर भिन्नता का भान किये बिना यह जन्म-मरण मिटें, ऐसा नहीं है। पैसा है, स्त्री है। दो बार गये थे। आहाहा! वहाँ हॉस्पीटल में तो भाई! वैराग्य ही दिखाई दे सब। आहाहा! तब नहीं गये थे? उनका बड़ा डॉक्टर पूरा बड़ा। हरकिशन का बड़ा डॉक्टर। ऐसा बीमार पड़ा वह। मेरे पास उसकी बहू आयी, मैं वहाँ गया इसलिए। महाराज! दर्शन कराओ न। पूरा बड़ा डॉक्टर बेभान पड़ गया। आहाहा! देह की स्थिति है, उसे रोके कौन? आहाहा! पूरा बड़ा डॉक्टर कर्ता-हर्ता। हेड-हेड। ऐसा पड़ा था। मैं तो उस चुन्नीलाल के लिये गये नहीं थे अपने? उन चुनीभाई के लिये। झोबालिया चुनीभाई। शान्तिलाल के भाई। उसके लिये गये थे।

उसकी बहू आयी। महाराज! डॉक्टर को दर्शन करना है। वहाँ गये तो पड़े थे। आहाहा! डॉक्टर भी सहाय हो नहीं उसे। दरबार! डॉक्टर स्वयं मरे। यह बड़ा डॉक्टर, हों! पूरा बड़ा हेड-हेड। अपने डॉक्टर नहीं? अपने हेमन्तकुमार नहीं? यहाँ भावनगर। हेमन्तकुमार नहीं थे?

मुमुक्षु : हाँ, किसी का ऑपरेशन करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वे, वे। वे अपने यहाँ दो-तीन बार आये थे। (ऑपरेशन) करते थे और यह मुझे कुछ होता है। ऐसे गिरे तो उड़ गये। वे तो सर्जन थे। बड़ा सर्जन भाई! अरे! क्या करे? देह की स्थिति होने की, उसे कौने रोके? डॉक्टर क्या बड़े... आहाहा! हॉस्पीटल में देखें वहाँ तो वैराग्य-वैराग्य दिखाई दे। और उसमें ले गये थे एक बार। वह तो अपने राजकोट नहीं? गूँगे-बहरे। गूँगे-बहरे का राजकोट में है न! महाराज! आना। मैंने कहा, भाई! मैं उनके लिये नहीं आता। मैं तो मेरे वैराग्य के लिये आऊँगा। देखने के लिये कि आहाहा! जवान लड़की। एक तो यह लड़की उसकी भाई अपना वह... डॉक्टर। अपने यहाँ आते हैं न दाँत के (डॉक्टर)। उनकी लड़की जवान २०-२२ वर्ष की। गूँगी। ऐसे देखो तो होशियार लगे। कुछ नहीं। ऐं... ऐं... करे। यह क्या? कहे, पहले से गूँगी है। दिखाव देखो तो जवान २०-२२-२५ वर्ष की। उसे डॉक्टर ने फिर अपनी पुत्री के लिये गूँगे-बहरे का दवाखाना किया। सब गूँगे और बहरे। आहाहा!

मुमुक्षु : जन्म से बहरा हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहरा हो, उसने सुना हुआ न हो तो अक्षर भी आते नहीं। फिर बेचारी एक महिला आयी थी मेरे पास वहाँ। महाराज! आओ न वहाँ जरा देखो। फिर उस दर्पण में ऐसे दिखावे। ओ... ओ... वह ओ बोले। ऐसा करके सिखावे जरा। आहाहा! ऐसे अवतार! अच्छे संयोग मिले, तब चिन्तवन करे नहीं, ध्यान करे नहीं, विचार करे नहीं और ऐसा मिले, तब हो सकता नहीं। आहाहा!

भक्तियुक्त हो, संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर... आहाहा! संसार चार गति का भटकना, उससे उदास। कोई गति अच्छी नहीं। स्वर्ग और नरक, सेठाई और देव

सभी धूलधाणी है। आहाहा! **संसार-देह...** शरीर, **भोगों से विरक्त होकर मुनि हुए,...** आहाहा! **वैसी ही जिनके वैराग्य भावना है,...** जिन्हें अन्तर में... यह तो उत्कृष्ट मुनि की बात चलती है न? उन्हें अन्तर वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... आहाहा! **आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रतारूपी ध्यान में तत्पर...** ध्यान की व्याख्या की। '**झाणरया**' है न? ध्यान अर्थात् क्या? आत्मा का आत्मानुभव। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के अनुभवरूप शुद्ध उपयोग। पुण्य-पाप के परिणाम क्रिया के नहीं, अन्दर शुद्ध आत्मा का ध्यान, ऐसा एकाग्रतारूपी ध्यान में तत्पर है। लो! आहाहा! ऐसा तो सुना भी नहीं था। ऐई! सुना था नागरभाई ने? सेठिया तो कहलाते थे वहाँ दरियापरी में। आहाहा!

यह आत्मा, उसके आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूपी ध्यान। देखो! भाषा तो देखो! आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे तो पुण्य हैं, अशुद्ध उपयोग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वह तो पाप है, अशुद्ध उपयोग है। आत्मा के अन्तर में, आत्मा के अनुभवरूप, आनन्द को अनुसरकर होनेरूप, शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता। आहाहा! उसमें वह तत्पर है। मुनि तो उसमें तत्पर होते हैं, कहते हैं। आहाहा!

और जिनके... जिन्हें। अब बाह्य में लेते हैं। **व्रत, समिति, गुप्तिरूप निश्चय-व्यवहारात्मक सम्यक्चारित्र होता है,...** पाठ है न वह '**सुचरित्ता**' उसमें से यह निकाला दो। निश्चयचारित्र अर्थात् स्वरूप में रमणता, आनन्दस्वरूप भगवान में रमणता, वह चारित्र। व्यवहारचारित्र अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह) ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प आदि, व्रत, समिति। देखकर चलना, विचारकर बोलना (आदि)। निश्चय और व्यवहार दोनों आये न? पहले वह निश्चय कहा, यह व्यवहार कहा। ऐसा **सम्यक्चारित्र होता है, वे ही मुनि मोक्षमार्गी हैं,...** आहाहा! पूर्णानन्द की प्राप्ति के पंथ में स्थित हैं। आहाहा! **अन्य भेषी मोक्षमार्गी नहीं हैं।** इसके बिना दूसरे वेश धारण करे, वे सब मोक्षमार्ग में गिनने में नहीं आये। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ८३

अब कहते हैं कि **निश्चयनय से ध्यान इस प्रकार है :—**अब ध्यान की व्याख्या। ध्यान आया न अब ध्यान।

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं॥८३॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि निश्चयनय... अर्थात् सत्यदृष्टि से **ऐसा अभिप्राय है—जो आत्मा आत्मा में ही अपने ही लिये भले प्रकार रत हो जावे...** आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप **आत्मा में ही...** आनन्द में **अपने ही लिये...** अपने से ही—शुद्ध निर्विकल्पदशा से **भले प्रकार...** भले प्रकार अर्थात् धारणा में नहीं, परन्तु लीनता में रहा। **रत हो जावे, वह योगी,...** है। वह मोक्षमार्गी है। आहाहा! **ध्यानी...** है। वह ध्यानी, हों! ऐसे, ऐसे... ऐसे... करके बैठ जाये और फलाना, ऐसा नहीं। अन्तर आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय को वेदन करके अन्दर स्थित हैं। निर्विकल्प अर्थात् राग के झुकाव बिना अन्तर अभेद चैतन्य के आनन्द की रमणता में, आत्माराम रमता है भगवान आत्मा में स्वयं। आहाहा! **हो जावे... आत्मा आत्मा में ही अपने ही लिये भले प्रकार रत हो जावे वह योगी, ध्यानी, मुनि सम्यक्चारित्रवान होता हुआ...** उसे सच्चा चारित्र होता है। अकेला नग्नपना धारण करे और बाह्य के वस्त्र बदलकर यह वस्त्र बदलकर बैठे साधु होकर, वह साधुपना नहीं। आहाहा! कहो, पण्डितजी!

निर्वाण को प्राप्त होता है। आत्मा का अन्तर स्वरूप जिसका स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन आनन्दघन प्रभु है, उसमें जिसका ध्यान लगा है, वह स्वयं अपने से अपने द्वारा स्थिर हुए हैं, ऐसा कहते हैं। कोई विकल्प से और कोई दूसरी चीज़ करने से, ऐसा नहीं। उत्कृष्ट की बात है न? मुनि उसे कहते हैं। यह चल निकले बाहर स्त्री, पुत्र छोड़े और साधु हुए, वे साधु नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर में जिसे मौनपना, ध्यानपना प्रगट हुआ है। जिसे विकल्प का कोलाहल, जिसे राग का छूट गया है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, ऐसा उसे जानना तो पड़ेगा न। आहाहा! अरे! अनन्त काल से परिभ्रमण करते-करते इसे थकान नहीं। चौरासी के अवतार कर-करके (मर गया है)।

कहते हैं, **सम्यक्चारित्रवान होता हुआ निर्वाण को...** ऐसा जिसका चरण-रमण अन्दर है। आहाहा! परमार्थ की बात है यह तो सब। यह परमार्थ बाहर लोग परमार्थ कहते हैं, वह यह नहीं।

भावार्थ :- निश्चयनय का स्वरूप ऐसा है... सत्य दृष्टि और सत्य ज्ञान का सच्चा स्वरूप ऐसा होता है कि **एक द्रव्य की अवस्था जैसी हो, उसी को कहे।** यह निश्चय की व्याख्या। आत्मा एक द्रव्य-वस्तु है। जिसकी वह अवस्था हो अज्ञान या ज्ञान, उसे निश्चयनय कहे। **आत्मा की दो अवस्थायें हैं—एक तो अज्ञान अवस्था और एक ज्ञान अवस्था। एक तो अज्ञान अवस्था और एक ज्ञान अवस्था। जब तक अज्ञान अवस्था रहती है...** जिसे अपने आनन्दस्वरूप का भान नहीं। **तबतक तो बन्धपर्याय को आत्मा जानता है...** राग को आत्मा मानता है। विकल्प जो पुण्य, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध का राग, वह बन्धभाव है, उसे आत्मा मानता है। आहाहा! अबन्धस्वरूप आत्मा को जानता नहीं। **अज्ञान अवस्था रहती है, तबतक तो बन्धपर्याय को आत्मा जानता है...** आहाहा! आनन्दस्वरूप प्रभु पूर्णानन्द का नाथ स्वयं है, उसका जिसे अज्ञान है—उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसे राग की परिणति जो है शुभभाव या अशुभ, उसे अपनी मानता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, परन्तु लोग सुनते हैं अब, हों! आहाहा! अन्तिम दिन १० हजार लोग व्याख्यान में। पाण्डाल खचाखच।

मुमुक्षु : लोग बाहर खड़े थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर खड़े थे। इतने लोग। क्योंकि जन्मजयन्ती थी न इस शरीर की ८५वीं और शिवाजी की जयन्ती थी। शिवाजी। वैशाख शुक्ल दौज। यह शिवाजी हो गये न, उनकी जन्मजयन्ती। दुकानें बन्द थी, इसलिए लोग...लोग.. वे। पाण्डाल में दस हजार व्यक्ति ऐसे खचाखच और बाहर खड़े थे धूप में। सुनते थे। बात तो हमारी यह तत्त्व की है। आहाहा! रुचि हो। बहुत-बहुत। अरे! हजारों तो जवान। २०-२० वर्ष के, २५-२५ वर्ष के। घण्टे, घण्टे का व्याख्यान। घण्टे, आधा घण्टा दूर से आना हो। एक घण्टे दूर से आवे, वे कहते थे तुम्हारे लो न। पूनमभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह मील से आना हो, अब एक घण्टा वह हो। घण्टा यहाँ और पन्द्रह मील जाना हो। तुम्हारे नहीं?

मुमुक्षु : हमारे स्वयं को ही ऐसा होता था न। एक घण्टे में आते थे और एक घण्टे में जाते थे और एक घण्टे बैठते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता था न। सुमनभाई का मकान वहाँ जंगल में। आहाहा! बीच में खड़ा रहे वह लालटेन खड़ी रहे। वह लाल आती है न? लालबत्ती हो तब तक चला नहीं जाये। और खड़े रहना पड़े। तो भी बेचारे लोग बहुत आते थे। साधारण पाँच-छह हजार साधारण। सात हजार। अन्त में दस हजार। आड़े दिनों छह हजार, सात हजार आते थे। १८ दिन हुए। एक दिन घाटकोपर। वहाँ तो बहुत लोग।

अरेरे! परन्तु यह बात उन्हें कान में पड़ने पर बेचारों को कितनों को ऐसा लगे, ऐसा? बापू! परन्तु यह वस्तु ऐसी है। यह समझे बिना, पहिचाने बिना जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! चौरासी के अवतार। बाहर में जरा कुछ पाँच-पच्चीस लाख मिले, लड़के ठीक हों, स्त्री ठीक हो, इज्जत ठीक हो। सुखी है। धूल भी नहीं। दु:ख के... आहाहा! वह दडा को नहीं मारते, क्या कहलाता है? वह दड़े (गेंद) से खेलते हैं तब। क्रिकेट। उसी प्रकार यह दु:ख के गेंद में कूद रहा है अनादि से। इसे भान कहाँ है? आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर है, उसे छोड़कर यह सब बातें। पर के ऊपर राग और द्वेष, वह तो दु:ख के गेंद हैं। खबर नहीं, इसे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि अज्ञान अवस्थावाले। जीव के स्वरूप का जिसे अन्तर आत्मा आनन्द और ज्ञान का भान नहीं, ऐसी अज्ञान अवस्थावाले। वह है तो निश्चय अवस्था इसकी, परन्तु वह वास्तविक निश्चय नहीं। अशुद्ध निश्चय है। आहाहा! **तबतक तो बन्धपर्याय को आत्मा जानता है...** आहाहा! अज्ञानी तो **मैं मनुष्य हूँ,...** ऐसा माने। यह मनुष्य तो जड़ है, देह है, मिट्टी है और गति भी उदय की है, वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! अज्ञानी अनादि काल का अपनी अवस्था में 'मनुष्य मैं हूँ' ऐसा मानता है। मैं अन्दर आत्मा ही भिन्न हूँ, उसका उसे भान नहीं।

मैं मनुष्य हूँ, मैं पशु हूँ,... यह हाथी, घोड़ा होता है न। मैं ढोर हूँ, पशु हूँ। तोता

बोलते हैं न बहुत। तोता को बहुत सिखाया हो, बहुत बोले तोता।'पधारो, आओ' ऐसा बोले। तू तोता है। तो कहे, हाँ। ऐसा कहे। सीखा हुआ हो। परन्तु आत्मा पशु है ही नहीं। वह तो देह का पशु। आहाहा! आत्मा तो इस देह से भिन्न चैतन्यस्वरूप है। उसे न मानकर मैं पशु हूँ। **मैं क्रोधी हूँ...** लो, ठीक! मुझसे सहन नहीं होता। मैं क्रोधी हूँ। भाई! क्रोध तो विकार है। वह क्रोधी आत्मा कहलाये? यह अज्ञान में मानता है। **मैं मानी हूँ,...** हम अभिमानी हैं, हमारे पद का अभिमान है। ऐसा माने। बापू! मान किसका? आहाहा! **मैं मायावी हूँ,...** कपट को... जानता हूँ। आहाहा! वह भाई आया था न तब, नहीं राजकोट? के.लाल। बड़ा जादूगर। पाँच-पाँच हजार रुपये, दस-दस हजार (रुपये) एक-एक रात्रि के ले। वहाँ उसके समाचार आये थे हमारे प्रति, हों! वहाँ था। घाटकोपर उस ओर क्या कहलाता है? उस ओर। माटुंगा। माटुंगा में था। दो-चार दिन में दर्शन करने आनेवाला था। ऐसे समाचार आये, परन्तु आ नहीं सका। आमदनी इतनी।

के. लाल। कान्तिलाल। अपने ऊषाबहिन है न, उनका मामा। वहाँ आया था राजकोट। दस हजार आमदनी, पन्द्रह हजार आमदनी एक रात्रि की। आया था। महाराज! ४७ वर्ष की उम्र है। बहुत लाखोंपति। महाराज! मेरा धतंग है, ऐसा बोला। वह जादूगर है न। दरबार! वह जादूगर है। कान्तिलाल जादूगर है। अपना बनिया है। यहाँ अपने उसकी भानेज है। जगजीवन बावचंद थे एक कुण्डला के। उनका साला है। बनिया है, परन्तु पैसा बहुत पैदा करता है। दो-दो लाख, तीन-तीन लाख। जादूगर वह कैसा! फिर मेरे पास आया। राजकोट। महाराज! यह धतंग है। कहा, धतंग ही है तेरा सब। यह वचन की चतुराई और देह की चतुराई है। मर जायेगा, कहा। यह पूर्व का पुण्य है तो यह सब दिखता है तुझे। हाँ महाराज! मेरे पास तो क्या कहे? यहाँ समाचार आये थे, हों! नहीं? मैं चार-पाँच दिन में आनेवाला हूँ। वहाँ शान्तिभाई के घर में। फिर समय नहीं मिला होगा। पहले घाटकोपर में था, फिर माटुंगा में था। परन्तु यह बाहर की खुमारी, आहाहा! मार डालती है जीव को। मर जायेगा, कहा, ऐसा और ऐसा। पूर्व का पुण्य है तो यह सब दिखाई दे लाख, दो लाख पैदा हो और धूल हो। तू तो स्वयं कहता है कि यह मेरा सब धतंग है। वचन की चतुराई। क्या कहा जाता है उसे? हाथचालाकी,

हाथचालाकी। लोग तो ऐसे वाह-वाही करने लगे। जवान लड़की हो, उसे ऐसे काट डाले, ऐसा दिखाई दे। फिर तुरन्त बुलावे, ऐई! यहाँ चली आवे। ऐसी हाथचालाकी (हाथ की सफाई) है, दूसरा कुछ नहीं मेरा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि हम मायावी हैं, धतंगी हैं। बापू! वह तेरा स्वरूप नहीं, भाई! मायावी। **मैं पुण्यवान...** लो, ऐसा मानता है न? यह पुण्य हमारा है। पाँच-पाँच लाख की आमदनी है। ऐई! चिमनभाई! तुम्हारा लड़का वहाँ है न? होकींग क्या कहलाता है? हॉगकांग। दो व्यक्ति आये थे पत्नी-पति दोनों। नौ हजार खर्च करके। ४५०० की तो टिकिट। चिमनभाई के पुत्र है न हॉगकांग। फिर बेचारा कहता था, उस लड़के को मैं नहीं लाया ऐसी बात सुनने में। ऐसा बेचारा कहता था। नौ हजार खर्च करके आये थे टिकिट के और वापस नौ हजार खर्च करके जायेंगे। हॉगकांग, हॉगकांग। वहाँ जवाहरात का धन्धा है। बड़ा धन्धा है। अपने पहिचानते हो न दरबार! अपने नहीं, वह चिमनभाई नहीं रहते? यह मकान नहीं बनाया अभी? लाख का बनाया न। वह। उनका छोटा भाई हॉगकांग रहता है। वह बेचारा सुनने मुम्बई आया नौ हजार खर्च करके। फिर तो बेचारा कहता था कि अरेरे! मैं लड़के को नहीं लाया, हों! ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती। वहाँ तो धूल भी नहीं। आहाहा! नरम है, हों!

मुमुक्षु : आपका घड़ीक सत्संग हो, वहाँ लोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : नरम हो जाये। नरम हो जाये न, बापू! यह मार्ग दूसरी बात है, भाई! तैसे पैसे क्या धूल किस काम की?

कहते हैं... आहाहा! **मैं पुण्यवान हूँ...** ऐसा अज्ञानी मानता है। पुण्यवान है तू? पुण्य तो खिर जायेगा, नाश हो जायेगा। आहाहा! अरे! बहुत इस भव में देखे हैं न। पुण्यवान नहीं था, कहता अपने जेठालाल संघवी? कि जिसके विवाह में जिसकी जाति में कलश बाँटे थे, कलश। जाति में प्रत्येक घर में विवाह में। उस महिला को प्रसूति के समय वह पति मेरे पास आया। यह जेठालाल नहीं थे यहाँ? वे कहें, मुझे दो। बोटाद। दो तो इसे प्रसूति करायें हॉस्पीटल में। जिसके विवाह में उसकी बड़ी जाति थी। कुछ जाति होगी। उसमें कलश (दिये)। एक-एक कलश कलश देना प्रत्येक घर में। उस

बहू को प्रसूति हुई, तब पैसा कुछ नहीं होता। समाप्त हो गया सब। यह जेठालालभाई अपने बोटादवाले। सोनावाले, सोना का धन्धा। मेरे पास आये थे। भाई! कुछ दो। कहो, यह दशा। चढ़ती-गिरती छाया है। घड़ीक में छाया ऐसे जाये और घड़ीक में (ऐसे जाये)। इसी प्रकार पुण्य का उदय हो तो दिखाई दे सब धूल में। घड़ीक में बदल जाये वापस। आहाहा! मैं पुण्यवान हूँ। धूल भी नहीं, सुन न! हम पुण्यशाली डालें, वहाँ निकले। उल्टा करे, वहाँ सुलटा पड़े हमारा। ऐसा बोलते हैं कितने ही। ऐई! गिरधरभाई!

मैं धनवान हूँ,... है शब्द अन्दर? मैं धनवान हूँ, यह मूढ़ अज्ञानी मानता है। धनवान। धन तेरा कब था? मूढ़ अनादि का ऐसा मानता है, ऐसा कहते हैं। **मैं निर्धन-दरिद्री हूँ,...** अरे! मुझे कुछ नहीं। आहाहा! दरिद्री हूँ। आहाहा! भाई! वह नहीं तुम्हारा? अपने नरभेराम वकील नहीं थे? नरभेराम वकील न? भाईचन्दभाई के भाई। राजकोट। उनके पुत्र का पुत्र यहाँ आता था। यहाँ... कोई नहीं होता। घर भी नहीं मिलता। कहे, मैं तो... उनके पुत्र का पुत्र। वहाँ रहता हूँ। क्या कहलाता है? लॉज। लॉज में मकान के किराये से रहता हूँ। नहीं भाई, नहीं स्त्री, नहीं पुत्र, नहीं माँ-बाप और मकान। आहाहा! नरभेराम वकील थे। उनके मित्र थे। वह लड़का बेचारा जवान यहाँ काम करता था उसमें। अपने यहाँ भी काम करता था। ... परन्तु तू अकेला है? कहे, हाँ मैं अकेला हूँ। सतीश नाम होगा। जवान है २० वर्ष का। कुछ नहीं होता। कहो, कहाँ नरभेराम उसके पिता के पिता वकील। रहने का मकान नहीं होता। कहीं से मजदूरी करके पैसे आवें वे...

मुमुक्षु : उनके पिता का पिता नगरसेठ थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह नगरसेठ के पुत्र का पुत्र। लॉज में किराया भरकर मकान में रहता है। कोई घर में मकान भी नहीं। नौकरी करके १००-२०० कहीं से ले आवे। लॉज में भरे। आहाहा! किसका तुझे अभिमान? सुन न! मैं निर्धन दरिद्री, महाराज! अरे, बापू! दरिद्री तू नहीं, भाई! तू अन्तर आत्मा की लक्ष्मीवाला है। ऐसे दरिद्री माननेवाले तो अज्ञानी हैं, कहते हैं। हम भिखारी, दरिद्री, हम बाँझ। आहाहा!

मैं राजा हूँ,... राजा हूँ, यह अभिमान अज्ञानी का है। अज्ञानी ऐसे अनादि से

मानता है, ऐसा कहते हैं। **मैं रंक हूँ, मैं मुनि हूँ,...** पर्याय में माने न। एक समय की पर्याय जितना माने, मैं मुनि हूँ। मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! मुनि की अवस्था जो वर्तमान है, उतना वह मैं। अरे! **मैं श्रावक हूँ,...** श्रावक की अवस्था तो वर्तमान अवस्था जितनी है, वह कहाँ पूरा आत्मा है? आत्मा तो अखण्डानन्द प्रभु त्रिकाल है। आहाहा! **इत्यादि पर्यायों में...** इत्यादि अवस्थाओं में **आपा मानता है,...** आपा अर्थात् आत्मा को मानता है। **इन पर्यायों में लीन होता है...** आहाहा! यह मनुष्यपने में, पशुपने में, क्रोधी, मानी, लोभ, पुण्यवान, उसमें लीन हो जाता है। **तब मिथ्यादृष्टि है,...** लो यहाँ तो कहे, मैं श्रावक और मुनि हूँ, ऐसी पर्याय को माने तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। बाहर की नग्नपर्याय धारण की हो न। नग्नपर्याय मिथ्यादृष्टि। आहाहा! **अज्ञानी है, इसका फल संसार है...** इसका फल तो चार गति में भटकने का है। आहाहा! **उसको भोगता है।** अनादि अज्ञानी ऐसी चीज़ को अपनी मानकर अज्ञानरूप से उसे अपना फल जानकर भोगता है अज्ञानरूप से। आहाहा! परन्तु जब उसे वीतरागमार्ग का ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं।

जिनमत के ज्ञान से जीव-अजीव पदार्थों का ज्ञान होता है... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने कहे हुए में से जीव और अजीव दोनों भिन्न। आहाहा! **तब स्व-पर का भेद जानकर ज्ञानी होता है,...** लो! तब स्व-आत्मा आनन्दस्वरूप और रागादि, शरीरादि पर—ऐसा भेदज्ञान होता है, वहाँ वह ज्ञानी होता है। वह ज्ञानी होता है, तब क्या जाने? यह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ६, रविवार, दिनांक २०-०९-१९७०
गाथा - ८२-८३, प्रवचन-९३

८२ गाथा, मोक्षपाहुड़। क्या कहते हैं? धर्मी मुनि मोक्षमार्गी कैसे होते हैं? धर्मी अर्थात् आत्मा के स्वरूप के जाननेवाले और अन्दर स्थिर रहनेवाले। चारित्रसहित लेना है न? ऐसे धर्मात्मा मोक्षमार्गी जीव कैसे होते हैं?

भावार्थ :- जिनने मोक्षमार्ग प्राप्त किया ऐसे अरहन्त सर्वज्ञ वीतरागदेव... उनमें उसकी भक्ति होती है। अरिहन्त सर्वज्ञ वीतरागदेव का वह मुनि भक्त होता है। उनका बहुमान उसे वर्तता है। समझ में आया? मूल पाठ है या नहीं? '**देवगुरुणं भत्ता**' धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी और स्वरूप में चारित्रवन्त जीव, उसे देव-गुरु के प्रति बहुमान होता है। देव-गुरु परद्रव्य परन्तु ... धर्म की प्राप्ति हुई, उनके प्रति उसे बहुमान होता है। समझ में आया? **और उनका अनुसरण करनेवाले बड़े मुनि दीक्षा देनेवाले गुरु इनकी भक्तियुक्त हो,...** देव-गुरु के भक्त हो। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ निर्ग्रन्थ वीतराग परमात्मा और निर्ग्रन्थ मुनि-गुरु, उनके मुनि भक्त होते हैं, उन्हें बहुमान होता है। है शुभ विकल्प। समझ में आया? ऐसा उसे व्यवहार होता है। बहुमानपना उसे जिससे धर्म पाया है, ऐसे देव-गुरु के प्रति उसे बहुमान वर्तता है। आचार्य स्वयं गाथा में रखते हैं। यह मोक्षपाहुड़ का अधिकार है। **संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर...** निर्वेद-निर्वेद। संसार के उदयभाव, भोग और शरीर से जो अन्तर से पर से उदास है। **वैसी ही जिनके वैराग्यभावना है,...** ऐसी वैराग्य भावना मुनि को होती है। पर से उदास-उदास। यह तो नास्ति से बात की। अब अस्ति से (बात करते हैं)।

और **आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रतारूपी ध्यान में तत्पर हैं...** क्या कहा? **आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता...** शुद्ध चैतन्य आत्मा आनन्दस्वरूप, उसका जो शुद्ध उपयोग अनुभव, आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन, ऐसे अनुभवसहित शुद्ध उपयोगरूप। शुद्ध उपयोग आचरण में **एकाग्रतारूपी**

ध्यान में तत्पर हैं... स्वरूप सन्मुख के ध्यान के लिये तत्पर हैं। समझ में आया? मोक्षमार्गी जीव का वर्णन है। मोक्ष स्वद्रव्य आश्रय से होता है। परद्रव्य आश्रय से नहीं होता। भक्ति ली, उसका विकल्प-बहुमान का होता है परन्तु ऐसा तत्परपना तो अन्दर में शुद्ध अनुभवस्वरूप शुद्ध उपयोग में उसकी एकाग्रता और तत्परता होती है। क्योंकि वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

और **व्रत, समिति, गुप्तिरूप निश्चय-व्यवहारात्मक सम्यक्चारित्र होता है...** मुनि है न? निश्चयस्वरूप की चारित्रदशा भी है और व्यवहार के पंच महाव्रतादि विकल्प भी व्यवहार के योग्य जो है, वे होते हैं। समझ में आया? ऐसे मुनि, **वे ही मुनि मोक्षमार्गी हैं,...** ऐसे मुनि मोक्ष के मार्ग में आये हैं, वे मोक्षमार्गी हैं। उन्हें अल्प काल में मोक्ष होगा। देखो! **अन्य वेशी मोक्षमार्गी नहीं है।** वीतरागमार्ग के दर्शन-ज्ञान और चारित्र तथा बाह्य नग्न दिगम्बर लिंग, अन्दर में निश्चयचारित्र और व्यवहार विकल्प महाव्रत आदि के, उस जीव को मोक्षमार्ग में गिनने में आया है। अन्यवेशी मोक्षमार्ग में गिनने में नहीं आये। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ८३

८३। **आगे ऐसा कहते हैं कि निश्चयनय से ध्यान इस प्रकार करना :-** निश्चय और व्यवहार इस प्रकार का होता है और मोक्षमार्ग में उसे गिनने में आता है। अब निश्चय का अभिप्राय अकेला वर्णन करते हैं।

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं॥८३॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, निश्चय अर्थात् यथार्थ दृष्टि का, ज्ञान का ऐसा अभिप्राय है कि आत्मा-शुद्ध आनन्दधाम आत्मा, वह अपने पवित्र कार्य का कर्ता है। समझ में आया? रागादि विकल्पादि वह पवित्र कार्य का कर्ता नहीं। वह पवित्र नहीं, वह अपवित्र है। आहाहा! कहा न? बहुमान का विकल्प आवे परन्तु उसका कर्ता नहीं।

आहाहा! समझ में आया? ऐसी भूमिका में देव-गुरु का बहुमान हो, परन्तु कहते हैं कि वह कर्ता तो अपनी पवित्र दशा का है। शुद्ध वीतराग आनन्दघनस्वरूप, वह जीव अपनी निर्दोष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी कर्म अर्थात् कार्य का वह आत्मा कर्ता है। समझ में आया? मोक्षमार्ग अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। निश्चय अर्थात् कि स्ववस्तु के आश्रय से हुई दृष्टि, स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ स्वसंवेदन ज्ञान, स्वद्रव्य में आश्रय करके स्थिरता की—ऐसा चारित्र, ऐसे मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा आत्मा ही में... यह अधिकरण आया। कर्ता भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द और निर्विकल्प वीतरागी पर्याय का परिणमनेवाला स्वयं कर्ता आत्मा है। और वह वीतरागी पर्याय धर्म की निर्दोष, उसका आधार आत्मा है। समझ में आया? निर्दोष वीतरागी आनन्द और शान्तिरूपी जो अपना निजकार्य, उसका कर्ता आत्मा, और उसका आधार आत्मा है, निमित्त और विकल्प आधार नहीं है और निमित्त और विकल्प, वह मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता नहीं है। गजब! अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुमान आया (वह) विकल्प, परन्तु कर्ता नहीं। यह तो पहले कहा न? कहा सही, बहुमान आता है। भूमिका में मुनि को भी होता है। मुनि को मुनि की बहुत दशा अपने गुरु अरिहन्त तीर्थंकर के प्रति, वह तो पहली बात आयी। परन्तु अब यहाँ तो कहते हैं कि उसका कर्ता नहीं है। यह ज्ञान कराया। तथा जो विकल्प है, वह आत्मा की पवित्रदशा का कर्ता नहीं है। राग का कर्ता नहीं है और पवित्र पर्याय का वह राग कर्ता नहीं है।

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आता? ठीक किया। अधिक स्पष्ट करना है। यह भाई ऐसा कहते हैं।

फिर से, भगवान आत्मा तो चैतन्यपिण्ड अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव (है), उसका जिसे बहुमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे देव-गुरु के प्रति भक्ति का भाव

आता है और होता है। आता है और होता है, तथापि यहाँ कहते हैं कि उस विकार परिणाम का कर्ता जीव नहीं है तथा वह विकार परिणाम कर्ता और निर्मल पर्याय कार्य, ऐसा नहीं है। गजब बात! समझ में आया? आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द, जिसमें निर्विकल्प स्वभाव परिपूर्ण पड़ा है। ऐसा आत्मा जहाँ अन्तर्दृष्टि की तो वह आत्मा अपने वीतरागी निर्दोष धर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा। उसे विकल्प बहुमान का, अरिहन्त और गुरु का बहुमान आवे, ऐसा विकल्प होता है, परन्तु उसका वह कर्ता नहीं है। ऐसा होवे, उसका कर्ता नहीं है, उसका वह ज्ञाता है। और विकल्प कर्ता और धर्म की पर्याय कर्म, ऐसा नहीं है। धर्म की पर्याय कार्य और विकल्प कर्ता, ऐसा नहीं है। धर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा। सीधा द्रव्यस्वभाव, वह धर्म की पर्याय का कर्ता। आहाहा! गाथा बहुत सरस ली है। तीन कारक उतारे हैं, परन्तु छहों कारक इसमें आ गये। समझ में आया?

भगवान आत्मा विकल्प से, शरीर से, कर्म से तो रहित ही है, तथापि उसे बहुमान भी मोक्षमार्ग की भूमिका में देव-गुरु का आवे, यह बात पहले सिद्ध की। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने सिद्ध की। परन्तु वापस सिद्ध करके भी यह सिद्ध किया कि वह विकल्प होता है, उसका वह जाननेवाला है; उसका कर्ता नहीं। तथा वह विकल्प कर्ता और धर्म की पर्याय कार्य, ऐसा नहीं है। गजब बात! कर्ता-कर्म आता है न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। षट् (कारक) अन्तर उतारे हैं यहाँ तो। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा स्वयं जागृत होकर स्वभाव-सन्मुख हुआ। इससे स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति / चारित्र जो प्रगट हुआ, उनका कर्ता सीधे द्रव्य कर्ता है। उनका कर्ता पुण्य और विकल्प और व्यवहार वह उसका कर्ता नहीं है। समझ में आया? भाई! शोभालालजी! एक दिन के बुखार में आ नहीं सके। शरीर ऐसा है, भाई! यह तो मुर्दा है। जड़, जड़ को रहना हो, वैसा रहे; वह आत्मा के कारण से शरीर रहे, सम्हाल करूँ तो ठीक रहे और न रहे, यह बात अज्ञानी का भ्रम है।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! यहाँ मोक्षप्राभृत है। मोक्ष का मार्ग क्या? मोक्ष

प्राभृतसार, इसका मार्ग क्या ? इसका मार्ग भगवान आत्मा परिपूर्ण कारणसमयसार प्रभु, का आश्रय करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ, वह '**सदव्वा हु सुग्गइ**'। यह स्ववस्तु से प्रगटी, वह गति-सुगति पर्याय-दशा अपनी हुई। समझ में आया ? और वह आत्मा अपने सम्यग्दर्शन निश्चय स्व के आश्रय से निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति, वह मोक्ष का एक अवयव मार्ग का। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान अपना अपने से प्रत्यक्ष, राग और मन के अवलम्बनरहित ऐसा जो स्वसंवेदन ज्ञान, वह मोक्षमार्ग का एक अवयव। जैसे सम्यक् अवयव, वैसे ज्ञान एक अवयव। वैसे यह स्वरूप में लीनता, आनन्द में लीनता, वह चारित्र। इन तीन का कर्ता सीधे आत्मा है। उनका कर्ता कोई देव-गुरु-शास्त्र या देव-गुरु की भक्ति का विकल्प, वह उनका कर्ता नहीं—ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा ! समझ में आया ? और 'आत्मा में' यह अधिकरण लिया। आत्मा अपनी पवित्रता में कार्य करता है। कोई राग और विकल्प और व्यवहार, निमित्त के कारण कार्य (नहीं करता)। अपने कार्य का आधार स्वयं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा जो मोक्षमार्ग, ऐसी जो पवित्रदशा उसका आधार-अधिकरण आत्मा है। उसका आधार व्यवहार विकल्प और निमित्त नहीं है। समझ में आया ?

अपने ही लिये... यह सम्प्रदान आया। अपने लिये अन्दर करता है। अर्थात् ? स्वयं अपने लिये करके अपने में रखता है। आहाहा ! शुद्ध चैतन्यस्वभाव वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा, उसकी पर्याय में वीतरागता स्वद्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुई, वह स्वयं अपने लिये की है और रखी है। रागादि हों, वे अपने लिये नहीं और राग का फल वापस बन्धन है। वह यह नहीं। स्वभाव चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका जो कार्य स्वयं ने किया, वह स्वयं ने रखा। अपने में अभेदरूप से वह पर्याय हुई। स्वयं भगवान आत्मा ने अपने को दान दिया। यह दान। ऐई ! सेठ ! पैसा-फैसा दान नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : गुरु के उपदेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दान है। गुरु के उपदेश में यह दान है। स्वयं भगवान आत्मा सम्प्रदान नाम की शक्ति से तो भरपूर है। परन्तु उसका आश्रय लेकर जो पर्याय प्रगट हुई, वह स्वयं अपने में रखी है। निर्मलता स्वयं अपने में रखी है। इसका नाम दान

और सम्प्रदान कहा जाता है। भारी व्याख्या! समझ में आया?

अपने ही लिये... यह चौथी हुई न? कर्ता, कर्म, करण उसमें आ गया। क्योंकि **अपने ही लिये...** है न वह स्वयं साधन आत्मा है। राग और दया, दान या व्यवहार के विकल्प इसके—मोक्षमार्ग के साधन नहीं हैं। नहीं है, उसे कहा शास्त्र में, इसे उलझन आयी कि देखो! व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। अब वह तो व्यवहारनय के कथन हैं। समझ में आया? आहाहा! आता है या नहीं? पंचास्तिकाय में, व्यवहार साधन, निश्चय साध्य, सब बहुत आता है। बहुत आता है, सुन न अब। तेरे हित के साधन बिना बाहर के साधन कहाँ से आये? तुझमें कहाँ साधन नहीं, वह कहीं किसी को खोजना पड़े? आहाहा! अन्दर आत्मा में साधन स्वभाव पड़ा है। उसका कर्तापने का जहाँ आश्रय लिया, तब वह साधन स्वभाव साधन होकर निर्मलदशा प्रगट होती है। व्यवहार और निमित्त साधन होकर निर्मलदशा प्रगट होती है, ऐसा नहीं। कहो, वजुभाई! यह सब समझना पड़ेगा। यह शरीर तो व्यर्थ अन्दर का जरा काम न करे। है या नहीं? खबर है या नहीं, ऐसा हुआ है अन्दर? जवान छोटी अवस्था में प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। यह तो जवान छोटी अवस्था है। ऐई! मगनभाई! वह तो जड़ की अवस्था है। उसे होना हो, वैसी होती है। इसे रोकने से रुकती नहीं और टालने से टलती नहीं।

मुमुक्षु : डॉक्टर की मदद से हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मदद से नहीं। वह तो मिटने की पर्याय हो तो मिटती है। डॉक्टर का बाप मर जाये, डॉक्टर मर जाये। बाप मर जाये, वह तो ठीक। डॉक्टर स्वयं मर गया। यह नहीं वैद्य? हिम्मतलाल। पूरा सर डॉक्टर था भावनगर का। वह ऑपरेशन करता था। मुझे कुछ होता है। बस, पड़ गया, मर गया, उड़ गया।

मुमुक्षु : परन्तु वह तो हजारों में एक होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब वह हजारों को एक ही सिद्धान्त होता है न! ऐई! चन्दुभाई! आहाहा! यहाँ दो-तीन बार आये थे। एक बार दाँत के लिये बुलाया था। एक बार व्याख्यान में आये थे। देह की स्थिति जिस समय की जो पर्याय जो होनेवाली है, उसे तीन काल में इन्द्र-नरेन्द्र नहीं रोक सकते, जिनेन्द्र नहीं रोक सकते। तू तेरी

सावधानी में रह। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप चिदानन्द मूर्ति के आधार से और उसने की हुई निर्मल वीतरागदशा, वह स्वयं रखे, उसका साधन स्वयं, अपादान स्वयं। चार तो इसमें आ गये। और कर्म, यह आया, देखे! **भले प्रकार...** व्रत हो, वह कर्म है। पाठ में है न? '**सुरदो**' पाठ है। '**णिच्छयणयस्स एवं अप्पा**' कर्ता, '**अप्पम्मि**' यह अधिकरण। '**अप्पणे**' यह सम्प्रदान, '**सुरदो**' यह कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। आत्मा आनन्द में लीन (हो), वह आत्मा का कार्य है। राग और दया, दान, व्रत, विकल्प, वह उसका कार्य नहीं। आहाहा! नवरंगभाई! पानी छानना उसका कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। पानी छानना सही। कौन सा? चैतन्य का पानी जो राग में एकत्व है, उसे छोड़कर अपने छन्ने में रखकर अपने में रखना। अपने तेज को अपने में रखना। उसमें—राग में जाने नहीं देना। उसका नाम वास्तव में पानी छानकर पीना कहा जाता है। आहाहा! बाहर को कौन छाने और कौन पीवे? वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा!

एक बार श्रीमद् ने कहा था, हों! श्रीमद् ने ऐसा कहा था। श्रीमद् में एक बार किसी ने कहा, नाम नहीं देते हैं। आओ चर्चा करने। कहे, तुम यह सब ज्ञानी-ज्ञानी करके बैठे हो, अन्य किसी को मानते नहीं परन्तु तुम्हारे यह कहना है न कि पानी छानकर पीना। हम पानी छानकर पीते हैं। पानी समझते हो न? जल। एक साधु ने कहा कि चर्चा करो। चर्चा करो। ऐसे आचार्य साधु किसी को मानते नहीं। बड़ा पच्चीसवाँ तीर्थंकर हो गया। वह तो कुछ कहते नहीं थे परन्तु दूसरे उड़ावे ऐसे। ऐसा कि यह स्वयं किसी को मानते नहीं। आओ चर्चा करने। परन्तु बापू! चर्चा करके तुम्हारे साथ क्या? तुम्हारे यह कहना है न कि पानी छानकर पीना। छह काय की हिंसा नहीं करना, यह कहना है। हम पानी छानकर पीते हैं। किसलिए हमको... अमरचन्दभाई! हम पानी छानकर पीते हैं। बापू... वह पानी और यह पानी, तुझे जो समझना हो, वह समझ ले! ऐसी चर्चा हुई थी। आहाहा! अरे! भगवान! तेरे चैतन्य के पानी का पूर है न अन्दर। बेहद आनन्द, बेहद ज्ञान, बेहद जिसका स्वभाव है, उसकी हद क्या? मर्यादा क्या? ऐसी स्वभाव की स्थिति का स्वरूप सागर भगवान, उसमें जो पड़ा, 'माही पड्या ते महासुख माणे, दुनिया देखीने दाझे जो रे।' दुनिया देखे कि कुछ करते नहीं। अब सुन न! करने का है, वह तो अन्दर में है। बाहर में है करने का? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : माही पड्या ते महासुख माणे।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'माही पड्या ते महासुख माणे' वह अन्दर में पड़े हैं, वे महा आनन्द को वेदते हैं, ऐसा। 'देखनारा तो दाझे जो ने।' देखनेवाले दाझे / जले। व्रत पालते नहीं, अमुक करते नहीं। भगवान की पूजा में आते नहीं। ठीक! यह हमारे यहाँ भजन है। वेदान्त का भजन है, हों! प्रकाशदासजी! वेदान्त में ऐसा भजन आता है। 'माही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा तो दाझे जो ने। हरिनो मार्ग छे शूरानो, कायरना नहीं काम जो ने। प्रभुनो रे मार्ग छे रे शुरानो।' हरि अर्थात् आत्मा। अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, इसलिए हरि। ऐसा प्रभु का मार्ग शूरवीर का है, वह वीर का मार्ग है, भाई! यह पामर और रंक का मार्ग नहीं है। रंक और पामर के कलेजे काँप जायें। अर र र! यह... यह... ? अरे! सुन, बापू... भगवान! तू पूर्णानन्द का नाथ प्रभु चैतन्य है। उसकी जहाँ स्वभाव की शरण ली, कहते हैं कि वह विकारी दशा उसकी है ही नहीं। आहाहा! देखो न, यह शैली-रचना! पहले में तो देव-गुरु भक्त कहा। वापस उसे उड़ा दिया। है, होता है परन्तु उसका वह ज्ञाता-दृष्टा है। उसका कार्य तो निर्मल है। समझ में आया?

मुमुक्षु : घड़ीक है और घड़ीक में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं किसने कहा? है। नहीं कहा नहीं। है, उसका कर्ता नहीं—ऐसा कहा है। है और नहीं, इसका अर्थ कि है वह भाव। ऐसा होता है। कर्ता नहीं है। वह भाव नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐई! गजब बातें! कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो बात करते हैं, देखो न! बराबर बात है। आहाहा!

रत हो... देखो! '**सुरदो**' है न '**सुरदो**'? वह इसका कार्य है। शुद्ध स्वरूप में लीनता करना, वह इसका कार्य है। राग और पर का कार्य, वह आत्मा का नहीं है। आहाहा! अरे! निवृत्त होकर जरा विचार तो करे, यह वह कौन कैसा तत्त्व?

मुमुक्षु : पैसे आते रुक जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पैसे आते रुक जायें?

मुमुक्षु : निवृत्त हो इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त हो इसलिए? अन्दर में पैसा तो आनेवाले होंगे वे

आयेंगे ही। पुण्य के कारण आये बिना रहेंगे ? चक्रवर्ती के राज छह खण्ड के होते हैं, तथापि अन्दर में ध्यान करके लीन होता है तो चक्रवर्ती के राज कहीं चले जाते हैं ? और चला जाये तो यहाँ से चला गया। अन्दर में से तो छोड़ दिया है। वह मेरा नहीं न! विकल्प मेरा नहीं फिर छह खण्ड के राज कहाँ से आये ? आवे कौन और जाये कौन ? ले कौन और दे कौन ? आहाहा! यह कहते हैं कि ऐसा करना जाये तो पैसा नहीं मिले, बीड़ियों में से पैसे मिलते हों, ऐसा ये कहते हैं। आहाहा! अरे! यहाँ तो विकल्प को प्राप्त करना नहीं वहाँ और पर को प्राप्त करना कहाँ रहा ? समझ में आया ? परसन्मुख की वृत्ति है, उसमें भी जहाँ एकता करना नहीं, वहाँ फिर पर के साथ बात कहाँ रही ? आहाहा! छह खण्ड के राजा हों, इन्द्र के इन्द्रासन हों, वे उसके घर में रहे। यहाँ कहाँ अन्दर में थे ? समझ में आया ? धर्मी का धर्म उसका है। उसका राग भी नहीं तो पर तो कहीं रह गया ? समझ में आया ?

वह योगी... ऐसा कैसे कहना है ? कि गृहस्थाश्रम में मोक्ष का मार्ग पूर्ण नहीं होता। इसलिए यहाँ मुनि को लिया है। मुनि को चारित्र होता है। दिगम्बर मुनि होते हैं, आत्मध्यानी होते हैं, उन्हें मोक्ष का मार्ग (होता है) और वे मोक्ष जाते हैं। ऐसा कि यह गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी मोक्ष जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? क्योंकि गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश होता है परन्तु चारित्र पूरा नहीं होता, पूर्ण नहीं होता तो मोक्षमार्ग पूर्ण नहीं होता। इसलिए यहाँ योगी शब्द प्रयोग किया है न ? देखो न! **'जोई' 'अप्पणे सुरदो। सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं।'** वह योगी मुक्ति को पाता है। परन्तु ऐसे योगी, हों! समझ में आया ? उसका इसे ज्ञान में व्यवस्थित करना पड़ेगा नहीं ? ज्ञान में समझ में बैठाना पड़ेगा या नहीं, उल्टा बैठाया है वह।

योगी, ध्यानी,... ऐसा। स्वरूप में लीनतावाला। ऐसे **मुनि सम्यक्चारित्रवान होता हुआ... सम्यक्चारित्रवान होता हुआ... 'सुचरित्तो'** तीसरे पद में है न ? **'सो होदि हु सुचरित्तो' निर्वाण को पाता है।** आहाहा! एक-एक गाथा में भी पूरी पूरी बात रख दी है। ऐसी कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। पूरा श्लोक पढ़ो या एक पढ़ो। इस एक में भी यह और लाखों में भी यह। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ :- निश्चयनय का स्वरूप ऐसा है कि - एक द्रव्य की अवस्था जैसी हो उसी को कहे। आत्मा की दो अवस्थायें हैं - एक तो अज्ञान अवस्था और एक ज्ञान अवस्था। दो पर्याय। **जब तक अज्ञान-अवस्था रहती है, तब तक तो बन्धपर्याय को आत्मा जानता है...** जब तक मिथ्यात्वभाव है, वहाँ बन्धपर्याय अर्थात् कर्म का सम्बन्ध, उससे उत्पन्न हुए भावों को अपना माने। **मैं मनुष्य हूँ,...** मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि मैं मनुष्य हूँ, परन्तु मनुष्य कहाँ हो? तू तो आत्मा है। परन्तु मानता है कि मैं मनुष्य हूँ। **मैं पशु हूँ...** है तो आत्मा आनन्दकन्द ज्ञायकभाव वह आत्मा। अज्ञान के कारण मैं मनुष्य हूँ, पशु हूँ। **मैं क्रोधी हूँ,...** मैं क्रोधी हूँ। अरे! भगवान! क्रोधी तेरा स्वरूप कहाँ था? तेरा स्वरूप तो परमपवित्र आनन्दधाम है। अज्ञान अवस्था में मैं क्रोधी हूँ, ऐसा भाव उसे भासित होता है। क्रोधरहित चीज़ है, उस भाव का भासन नहीं है।

मैं मानी हूँ,... मैं मानी हूँ। अभिमानी। झुकूँगा नहीं। मर जाओ तो झुकूँगा नहीं और ऐसा बोले। आहाहा! बोलते हैं या नहीं? **मैं मायावी हूँ,...** महा प्रपंचजालिया हूँ। दूसरे को प्रपंच में डालना हो तो डाल दूँ। भाई! यह कहाँ से लाया? तू ज्ञान और आनन्द का कन्द है न। मायावी हूँ, कपटी हूँ, दम्भी हूँ। मेरा पेट हाथ न आवे। ठीक भाई! ऐई! नेमिदासभाई! **मैं पुण्यवान-धनवान हूँ,...** मूढ़ है, वह ऐसा मानता है। **मैं पुण्यवान-धनवान हूँ,...** मूढ़ है। धनवान-पुण्यवान तू कहाँ से आया? तेरा तो आनन्द-ज्ञानस्वरूप है। उसमें पुण्यवान हूँ, धनवान हूँ, वक्ता हूँ। लो न! समझ में आया? मैं वक्ता हूँ। दो-दो घण्टे तक बोलना हो तो लाख मनुष्यों में तो एकधारा बोल सकता हूँ। ठीक भाई! वाणी तो जड़ है, भगवान! यह सब मिथ्यादृष्टि के अज्ञानभाव हैं। आहाहा!

मैं निर्धन-दरिद्री हूँ,... दरिद्री कैसा? तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द को संग्रह कर बैठा है न! तू दरिद्री कैसा? अज्ञानी दरिद्री मानता है। आहाहा! अनन्त सिद्धपद को संग्रह कर अन्दर बैठा है और कहता है मैं दरिद्री हूँ। आहाहा! मिथ्यादशा में अज्ञानी को ऐसा भान होता है, कहते हैं। आहाहा! **मैं राजा हूँ....** लो! राजा हूँ। कितने हजारों राजा मुझे सलाम करते हैं। खम्मा अन्नदाता! तैनाती में खड़े हों ऐसे। राजा चँवर ढोले। धूल भी नहीं, सुन न! राजा-फाजा कैसा था। ऐई! **मैं रंक हूँ...** यह अज्ञानदशा में ऐसा मानता है। मैं सेठ हूँ, ऐसा लेना इसके अन्दर में। मैं साहूकार हूँ, धनिक हूँ, मेरी

बड़ी पदवी, मेरी माँ की पदवी मोटी, उसमें जन्मे हुए। अरे! माँ कब थी सुन न! बड़े पिता के कुल में जन्मे हुए। बड़े पिता के। पिता कैसा? भाई! आहाहा!

मैं मुनि हूँ... पर्याय में माना, देखा! एक समय की पर्याय में मुनिपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। पर्याय ली। ज्ञायकस्वरूप में पर्याय के भेद चौदह गुणस्थान कैसे? आहाहा! समझ में आया? मुनि की पर्याय (में) मैं मुनि हूँ। द्रव्यलिंगी हो वह मानता है। हम मुनि हैं, पंच महाव्रत पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं। देखो! निर्दोष आहार-पानी लेते हैं। हमारे लिये बनाया हुआ लेते नहीं। किसका परन्तु? वह तो विकल्पदशा, पर्याय की बात है। पर्याय में पूरा द्रव्य आ गया? ऐसी पर्याय मैं हूँ, ऐसा माने, वह मूढ़ अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें एक समय की पर्याय का अभी अभाव है, ऐसा तो त्रिकाली द्रव्य है। समझ में आया? जिसमें नहीं, उसे मानता है, वह अज्ञानी है। आहाहा!

मैं श्रावक हूँ... लो! यह आया। हम श्रावक हैं। श्रावक तो एक समय की पर्याय को तू आत्मा मानता है? पर्यायबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। कहो, पोपटभाई! आत्मा आनन्दस्वरूप परिपूर्ण वापस ऐसा। जिसमें एक समय की पर्याय भी नहीं। पर्याय तो व्यवहार है। निश्चय में पर्याय कैसी? समझ में आया? एक समय की पर्याय तो व्यवहार है। निश्चय तो द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक, वह द्रव्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय आयी कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय आयी पर्याय में से। किसने कहा? पर्याय आयी पर्याय में से। पर्याय का कर्ता पर्याय। पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। आवे तब द्रव्य में से, परन्तु है पर्याय पर्याय से। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय की खान तो द्रव्य कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी भाषा। तो भी पर्याय पर्याय स्वतन्त्र है। परिणमन है... परिणमन है। यह तो भेद का अंश अन्दर है, इस अपेक्षा से आयी, वह भेद से कथन है। अभेद सदृश की अपेक्षा से तो पर्याय का कर्ता आत्मा है ही नहीं। एकरूप वस्तु। भेद अन्दर अंश है न? वह तो भेदवाला अंश है। भेद का अंश आया, वह भेद का कथन है।

अभेद चैतन्यमूर्ति में भेद कैसा? आहाहा! तथापि कहे, मैं श्रावक हूँ। इसमें अभी दूसरा नहीं लिखा हुआ। मैं पण्डित हूँ, मैं मूर्ख हूँ। यह सब अज्ञानी ने माना हुआ है। आहाहा!

इत्यादि पर्यायों में आपा मानता है,... अपनापन मानता है। एक समय की पर्याय में ही मानता है, ऐसा कहा। या रागवाला, संयोगवाला और या एक समय की पर्यायवाला। ऐसे तीन। या अच्छे संयोगवाला या खराब संयोगवाला या रागवाला-कषायवाला और या एक समय की पर्याय। तीनों पर्यायबुद्धि है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार में क्या बोला जाये? इसका अर्थ कि मैं वह नहीं, ऐसा। ऐसा अर्थ करना। नहीं आया? टोडरमलजी में नहीं आया? टोडरमलजी में। व्यवहार अन्यथा कहता है, ऐसा है नहीं। ऐसा है नहीं। ऐसा उसका अर्थ समझना। बहुत सरस कहा। कौन हो? कहाँ के? कि वढवाण के। अर्थात् कि वढवाण के नहीं। तुम्हारा क्या व्यापार है? कि टाईल्स का। कि व्यापार टाईल्स का नहीं, ऐसा समझना। आहाहा! बाहर में क्या (बोला जाये)? हाथी के बाहर के दाँत अलग और चबाने के दाँत अलग। हाथी के बाहर के दिखाने के दूसरे और सोने के वे ... करे। वह कहीं चबाने में काम आवे? अन्दर के चबाने के दूसरे होते हैं। इसी प्रकार अन्दर के अभिप्राय की बात दूसरी होती है, बोलने की बात दूसरी होती है। आहाहा! समझ में आया?

पर्यायों में आपा मानता है,... अपनापना माने। **इन पर्यायों में लीन होता है...** देखो, वह '**सुरतः**' के सामने डाला है। '**सुरदो**' है न पहला? उसके सामने यह अज्ञानी पर्याय में लीन है। समझ में आया? वह है '**अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।**' बराबर ऐसा। क्या शब्द है। और यह है '**कुरदो**' एक समय की पर्याय को आत्मा माने, पण्डिताई की, मूर्खताई की, पढ़े हुए की। हमें बहुत आता है, ग्यारह अंग पढ़े हैं, नौ पूर्व पढ़े हैं, वह हमारा ज्ञान। यह सब पर्यायबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। कहो, समझ में आया?

पर्यायों में लीन होता है... इसके सामने डाला। '**अप्पणे सुरदो**' था न, इसके सामने सुलटा अर्थ किया कि ऐसा जब तक मानता है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो और अट्ठाईस मूलगुण पालता हो परन्तु उसवाला

हूँ और वह हूँ, तब तक मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? **अज्ञानी है, इसका फल संसार है, उसको भोगता है।** लो! इसका फल संसार है। एक समय की पर्याय को मानना, मिथ्यादृष्टि और उसका फल संसार है। आहाहा! द्रव्य वस्तु की खबर नहीं होती और एक समय की पर्याय में अपना सर्वस्व माने। समझ में आया? अब सुलटा। यह ऊंधाई की बात ली। पाठ में सुलटा है, हों! तथापि अर्थ किया है। दूसरा सामने एक अर्थ किया है।

जब जिनमत के प्रसाद से... वीतराग अभिप्राय का भाव, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ जीव-अजीव, उनने कहे हुए नौ तत्त्व, उनने कहे हुए छह द्रव्य का **ज्ञान होता है, तब स्व-पर का भेद जानकर...** दो का ज्ञान होने में मैं कौन और पर कौन , इसका भेदज्ञान होता है। समझ में आया? पर्याय भी मैं नहीं, इतना राग भी नहीं और अजीव भी नहीं। तब इसे भेदज्ञान हुआ कहा जाता है। आहाहा!

वीतराग अभिप्राय प्रमाण वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रों के पूजनीक परमात्मा, उन्होंने कहे हुए जीव-अजीवतत्त्व, उनका-दो का भेदज्ञान। जीव अखण्ड ज्ञायकभाव, एक समय की पर्याय भी एक जीव की अपेक्षा से वह भी एक न्याय से अजीव है। जीवद्रव्य नहीं, इस अपेक्षा से अजीव है। व्यवहार है न, व्यवहार वह? रागादि पर है। मेरी चीज़ राग, पर्याय और उससे भिन्न चीज़ है। समझ में आया?

स्व-पर का भेद जानकर ज्ञानी होता है, तब इस प्रकार जानता है कि - मैं तो शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूप हूँ, अन्य मेरा कुछ भी नहीं है। है? मैं तो शुद्ध ज्ञानदर्शनमय अभेद ऐसा चेतनास्वरूप हूँ। यहाँ तो एक समय की पर्याय नहीं। समझ में आया? भेदज्ञान जीव-अजीव का परमात्मा ने कहा ऐसा। जानने में आया, तब दो की भिन्नता जानी। उसमें मैं, **मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी...** अभेद। शुद्ध ज्ञानदर्शनवाला चेतना, ऐसा भी नहीं। शुद्ध ज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूप अभेद। अकेला ज्ञाता-दृष्टा का अभेदपना, वह मैं आत्मा। इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम सच्ची दृष्टि और इसका नाम सम्यग्ज्ञान। आहाहा! सूक्ष्म है। मैनेजर! बैंक का अभ्यास... हुआ था। आहाहा! समझ में आया? वह स्वयं भगवान अनन्त परमात्मा का सामर्थ्य लेकर अन्दर गुप्त पड़ा है। वह

पर्याय में भी आता नहीं। आहाहा! एक समय की अवस्था में भी वह आता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा गुप्त भगवान ऐसा शुद्धचैतन्यमय, शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतना, यह अभेद से डाला। अकेला चेतना स्वभाव। शुद्ध दर्शनज्ञानमय, केवल ज्ञानदर्शनमय। केवल अर्थात् यह त्रिकाली। केवल पर्याय नहीं। अकेले ज्ञानदर्शनमय वस्तु, अभेद वह मैं। ऐसा विकल्प भी नहीं परन्तु वह मैं, ऐसा परिणमन। समझ में आया?

अन्य मेरा कुछ भी नहीं है। इसका अर्थ क्या हुआ? देखो न! ओहोहो! राग तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय कोई भी मेरी नहीं, ऐसा। यहाँ तो अभेद, वह मैं। मैं भेद नहीं। आहाहा! समझ में आया? **तब यह आत्मा ही में अपने ही द्वारा अपने ही लिये विशेष लीन होता है...** लो, यह वापस पाठ में था, वह डाला। ऐसी जब अन्दर दृष्टि शुद्धज्ञानदर्शनमय चेतनास्वभाव (की हुई), तब वह अपनी निर्मल भाव की पर्याय का कर्ता स्वयं। यहाँ तो यह लेना है न? साथ में लेना है। यहाँ पर्याय पर्याय का कर्ता, यह नहीं लेना। जिस जगह जो लेना हो, वह लिया जाये न! सब जगह एक लेने जाये तो मेल खाये नहीं। ज्ञानप्रधान कथन क्या? दृष्टिप्रधान कथन क्या? यहाँ तो मेरी पर्याय का कर्ता मैं हूँ, ऐसा सिद्ध करना है। वहाँ और ३२० में आवे कि पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। वह किस अपेक्षा से बात है? सामान्य सत्ता में विशेष सत्ता नहीं, इस अपेक्षा से। यहाँ विशेषसत्ता की पर्याय का कर्ता तो परिणमन करनेवाला तो द्रव्य है। परिणमना, वह तो पर्याय है परन्तु परिणमन का कर्ता द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

अपने ही द्वारा... आत्मा कर्ता हुआ। **आत्मा ही में...** अधिकरण-आधार। **अपने ही द्वारा...** करण हुआ, लो! इसमें यह करण डाला। **अपने ही लिये...** यह सम्प्रदान हुआ। इसमें कारण डाला, भाई! उसमें नहीं, वह इसमें डाला। पाठ में तीन बोल है। **'अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो'** कर्म चार है। यहाँ पाँच डाले। एक अपादान नहीं। वह तो अपादान-उपादान स्वयं से हुआ, यह तो आ गया न साथ में। क्या कहा? इसमें तीन है। संस्कृत में तीन है। कर्ता, आधार और सम्प्रदान। तीन है। संस्कृत टीका में तीन है। यहाँ चार लिये हैं।

आत्मा **आत्मा ही में...** आत्मा कर्ता, **आत्मा ही में ही...** अपने आधार से, **अपने**

ही द्वारा... अपने स्वभाव साधन द्वारा। देखो! यह स्वभाव साधन आया। **अपने ही द्वारा...** शुद्ध आनन्द के स्वभाव साधन द्वारा कार्य किया है। यह साधन। राग-फाग साधन, व्यवहार-फ्यवहार साधन नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अपने ही द्वारा...** अपने आनन्दस्वभाव से मैंने मेरा कार्य किया है। राग से और पुण्य से काम नहीं किया। आहाहा! मेरा कार्य मैंने किया है। ऐसा आता है न? आवे न, भाषा क्या आवे? न्यालभाई में आता है एक जगह। जैसा महाराज ने बताया था, वह कार्य मैंने किया है, ऐसा आता है। कार्य तो पर्याय है। कथन की शैली में कौन सा प्रकार है, क्या अपेक्षा है, ऐसा जानना चाहिए न! समझ में आया? आहाहा!

अपने ही लिये... यह आया सम्प्रदान। अपने लिये मैंने कार्य किया है। यह विकल्प की बात नहीं, हों! यह तो समझावे तो भेद से समझावे न! वहाँ ऐसा नहीं मेरे लिये यह करता हूँ। ऐसा है? विकल्प है? परन्तु परिणमन ऐसा होता है। **लीन होता है... अपने ही लिये विशेष लीन होता है...** यह कर्म है, लो! यह कार्य है, कर्तव्य। कर्ता, करण, कर्म, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। एक अपादान नहीं। अपादान का अर्थ उपादान। उपादान आ गया-स्वयं से। समझ में आया? आत्मा-आत्मा (करे), परन्तु आत्मा के अतिरिक्त क्या दूसरी चीज़? दूसरी चीज़ अजीव है, ले। समझ में आया?

तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होकर... लो! जब इस प्रकार से आत्मा अपने स्वभाव का आश्रय-शरण लेकर, स्वभाव का साधन करके स्वयं अपने में रखे, तब निश्चय सम्यक्चारित्रस्वरूप होता है। निश्चयसम्यग्दर्शन पूर्ण वस्तु का ज्ञान होकर निर्विकल्प प्रतीति और स्वरूप की स्थिरता-चारित्र। निश्चयसम्यक् और निश्चयचारित्र दो। व्यवहारचारित्र यहाँ नहीं। **अपना ही ध्यान करता है,...** समझ में आया? **तब ही सम्यग्ज्ञानी होता है,...** अवस्था वर्णन की न, अवस्था? अज्ञानी की उल्टी अवस्था, ज्ञानी की यह, ऐसा वर्णन करना है न यहाँ? समझ में आया? **इसका फल निर्वाण है,...** लो! उसका फल संसार था। अज्ञान का फल संसार को भोगता है। इसका फल मोक्ष। दोनों की बात की। यह गाथा पूरी हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक २१-०९-१९७०
गाथा - ८४ से ८६, प्रवचन-९४

गाथा - ८४

गाथा ८४, मोक्षपाहुड़।

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं :- आत्मा का ध्यान कैसे करना? कैसा आत्मा जानकर (ध्यान करना), इसकी बात की है।

पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो॥८४॥

अर्थ :- यह आत्मा ध्यान के योग्य कैसा है ? आत्मा ध्यान करनेयोग्य, लक्ष्य में लेनेयोग्य, ध्येय करनेयोग्य (वह) कैसा आत्मा है? अन्य अज्ञानियों ने तो अनेक प्रकार का आत्मा कल्पित किया है। परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, कहा, वह कैसा आत्मा है? एक तो **पुरुषाकार है,...** शरीर के आकार से भिन्न वस्तु है, लोकव्यापक नहीं। समझ में आया? लोक में व्याप गया आत्मा, वह नहीं। शरीरप्रमाण ही उसका आकार और व्यापक है। क्योंकि ध्यान करना अर्थात् उसके अन्दर ऐसे एकाग्र करता है इतने में? या बाहर में एकाग्र होता है? इतने में शरीर आकार प्रमाण आत्मा है। पहले इसे ऐसा निर्णय करना।

और **योगी है,...** यहाँ मुख्यरूप से मुनि की व्याख्या है न। श्रावक की अब आयेगी। ... जिसने आत्मा शुद्ध पूर्ण ज्ञान, दर्शन और पवित्र पूर्ण स्वरूप में जिसने एकाग्रता साधी है, उसे यहाँ योगी, ध्यानी, मुनि कहा जाता है। **मन, वचन, काय के योगों का निरोध हैं,...** मन, वचन और काया का निरोध, योग का निरोध (हुआ है), वह योगी, ऐसा। मन, वचन और काया जो कम्पनरूप भाव, शरीर, वाणी, मन तो पर जड़ है, उनसे रहित अकम्पस्वरूप त्रिकाल का जिसे ध्यान है अथवा मन, वचन और काया के (योग को) रोककर निरोध (हुआ) है। **सर्वांग सुनिश्चल है...** योगी कहा न?

पुरुषाकार असंख्य प्रदेशी सुनिश्चल ऐसा आत्मा ध्यान करनेयोग्य है। उसे ध्येय बनाकर उसमें लीन होनेयोग्य है। समझ में आया? लो, यह धर्म कैसे करना और धर्मी को धर्म कैसे होता है, यह बात है।

और **अर्थात् श्रेष्ठ सम्यक्रूप ज्ञान तथा दर्शन से समग्र है - परिपूर्ण है, जिसके केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त है,...** अकेला ज्ञान और दर्शन परिपूर्ण स्वरूप आत्मा का है। केवलज्ञान अर्थात् वह केवलपर्याय नहीं। ज्ञान और दर्शन, दृष्ट और ज्ञाता—ऐसे स्वभाव से पुरुषाकार सुनिश्चल ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण ऐसा आत्मतत्त्व है। ऐसे आत्मतत्त्व का ध्यान करना। समकिती हो, उसे ऐसा ध्यान करना। समकिती न हो, उसे समकित प्राप्त करने के लिये भी उसका ध्यान करना। समझ में आया? उसकी क्रिया ध्यान की है। दूसरे प्रकार से समकित प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आयेगा, अभी इसके बाद।

इस प्रकार आत्मा का... ऐसा आत्मा। पुरुषाकार सुनिश्चल सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर परिपूर्ण पदार्थ आत्मा, उसे **जो योगी ध्यानी मुनि ध्यान करता है...** मुनि उसका जो ध्यान करे, उसकी ओर का आश्रय करके स्थिर हो, ऐसा **योगी ध्यानी मुनि ध्यान करता है, वह मुनि पाप को हरनेवाला है...** पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों पाप ही हैं। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव दोनों वास्तव में तो आत्मा के स्वभाव से विपरीत पाप और उससे बँधे हुए कर्म, वे पाप सब आठों ही। उसे हरनेवाले। कर्म का नाश, आत्मा ऐसा है, उसका ध्यान करे, उसे कर्म का नाश होता है। समझ में आया?

निर्द्वन्द्व है—राग-द्वेष आदि विकल्पों से रहित है। द्वन्द्व—दो प्रकार जिसमें नहीं हैं। पुण्य और पाप ऐसे विकल्प और राग-द्वेष ऐसे विकल्प उसमें है नहीं। ऐसी आत्म चीज़ को अन्तर दृष्टि में लेकर एकाग्र होना, वह कर्म के नाश की पद्धति और उपाय है। कहो, समझ में आया? इतने अपवास करे तो कर्म का नाश हो, ऐसा इसमें नहीं लिखा।

मुमुक्षु : यहाँ पाप लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य-पाप दोनों पाप हैं। कहा न? आठों कर्म ही पाप है और उसके भाव से बँधे हुए, वह भाव भी पाप ही है। स्वरूप से आत्मा ज्ञान, दर्शन

परिपूर्ण स्वरूप से विपरीत विकल्प, वह तो स्वभाव का घात करनेवाला भाव है। चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। उसे घात करनेवाला यह ध्यान है। आहाहा! कठिन काम। यह निर्द्वन्द्व है-द्वन्द्व नहीं, विकल्प नहीं। यह अभेद अखण्ड आनन्दस्वरूप, इसकी दृष्टि करने से, इसमें ध्यान करने से आठों ही कर्म का नाश होता है।

भावार्थ :- जो अरहन्तरूप शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है... देखो! आत्मा ही अरिहन्तस्वरूप ही है। अरिहन्त—अरि अर्थात् विकार अथवा शरीर का, कर्म का नाश करनेवाला। यह आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है, ऐसा कहते हैं। अरिहन्तस्वरूप ही आत्मा है। उसे जो अन्दर ध्यावे, वस्तु आत्मा का जो प्रयत्न करके उसके लक्ष्य में एकाग्र हो, **उसके पूर्व कर्म का नाश होता है...** यह उपाय है।

वर्तमान में राग-द्वेषरहित होता है... वर्तमान में भी वीतरागता होती है, पूर्व के कर्म का नाश होता है, आगामी कर्म बाँधता नहीं। समझ में आया? अब कहते हैं कि वह तो भाई! मुनि की मुख्यता से बात की। परन्तु श्रावक को क्या करना? यह तो मुनि की मुख्यता से बात की। गौण श्रावक उसमें आ जाते हैं परन्तु मुख्य श्रावक का क्या करना?

★ ★ ★

गाथा - ८५

आगे कहते हैं कि इस प्रकार मुनियों को प्रवर्तने के लिये कहा। अब श्रावकों को प्रवर्तने के लिये कहते हैं :- लो! ८५।

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं॥८५॥

'एवं जिणेहि कहियं' वीतराग सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं। **'सवणाणं सावयाण पुण सुणसु'** साधु को ऐसा कहा। अब श्रावक को क्या कहते हैं, वह सुन। देखो! सुन, कहते हैं। **'संसारविणासयरं'** श्रावक का भी संसार का नाश करनेवाला। **'सिद्धियरं'** सिद्धि को देनेवाला। **'कारणं परमं'** उस मोक्ष के परम कारण की व्याख्या श्रावकों के लिये क्या है, यह कही जाती है।

अर्थ :- एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार उपदेश तो श्रमण मुनियों को जिनदेव ने कहा है। वीतरागदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने मुनि को तो अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और उसका परिपूर्ण स्वरूप जो आत्मा का है, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता है, उसे अन्तर में एकाग्र करके ध्यान करना। उससे कर्म का नाश होता है। दूसरी कोई क्रिया से नाश नहीं होता। गजब!

अब श्रावकों को... कहते हैं। सुनो! जो कहूँगा वह **संसार का विनाश करनेवाला..** है। श्रावक को भी जो भाव कहूँगा, वह संसार का नाश करनेवाला है। **और सिद्धि जो मोक्ष उसको करने का उत्कृष्ट कारण...** संसार का नाश और सिद्धि की उत्पत्ति। संसार का व्यय और सिद्धि की उत्पत्ति का उत्कृष्ट कारण **ऐसा उपदेश कहते हैं...** (भगवान का है)।

भावार्थ :- पहिले कहा वह तो मुनियों को कहा और अब आगे कहते हैं, वह श्रावकों को कहते हैं, ऐसा कहते हैं जिससे संसार का विनाश हो... श्रावक को भी ऐसा उपदेश देते हैं कि जिस भाव से उसे संसार का नाश हो और मोक्ष की प्राप्ति हो।

★ ★ ★

गाथा - ८६

अब श्रावकों को पहिले क्या करना,... श्रावक को पहले क्या करना?

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए॥८६॥

अर्थ :- प्रथम तो श्रावकों को सुनिर्मल अर्थात् भले प्रकार निर्मल और मेरुवत् निःकम्प अचल तथा चल मलिन अगाढ़ दूषणरहित अत्यन्त निश्चल ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण करके... पहले तो उसे समकित को प्राप्त करना। श्रावक को पहले में पहले करनेयोग्य हो तो उसे सम्यग्दर्शन (प्रगट करना चाहिए)। कैसा है सम्यग्दर्शन? कि **भले प्रकार निर्मल और मेरुवत् निःकम्प...** है। शुद्ध चैतन्यद्रव्य की अन्तर्दृष्टि अनुभव में, वह निष्कम्प है। मेरुवत् निष्कम्प समकित है। जैसे त्रिकाल द्रव्य वस्तु अखण्ड ध्रुव

नित्य है, वैसे उसका सम्यग्दर्शन भी मेरुवत् निष्कम्प है। अचल है–चलरहित है। अर्थात् कि चल, मलिन और अगाढ़ दोषणरहित।

अत्यन्त निश्चल ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण करके... ऐसा समकित को प्रथम ग्रहण करके... पहला उपदेश यह है, लो! भगवान का उपदेश पहला यह है। ऐई! प्रकाशदासजी! पहले महाव्रत ले लेना, अणुव्रत ले लेना, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। **'गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंप'** प्रथम में प्रथम इसे द्रव्यस्वभाव परमानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु, द्रव्यवस्तु ज्ञायकभाव, कारणपरमात्मा की श्रद्धा अन्तर्मुख होकर मेरुपर्वत (के जैसी करना)। जैसे मेरु हिलता नहीं, वैसे उसका समकित चलित नहीं होता। **अत्यन्त निश्चल...** जिसे इन्द्र आवे तो चलित न हो, ऐसा समकित पहले इसे ग्रहण करना चाहिए। दुनिया की उल्टी प्ररूपणा, उल्टी मान्यतायें बहुत आती हैं। ऐसा होता है, इससे ऐसा होता है। शुभराग मन्द करते–करते समकित होता है, अमुक करते होता है, इन सब विपरीत श्रद्धा को छोड़कर... पोपटभाई! कठिन काम। एकदम समकित वापस.... पहला यह है।

सम्यक्त्व को ग्रहण करके दुःख का क्षय करने के लिये उसका अर्थात् सम्यग्दर्शन का ध्यान करना। आहाहा! समझ में आया? मुनि नहीं, उसे पहले समकित ग्रहण करना। पहले में पहला। समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुव, अचल, अखण्ड, अभेद, एकरूप शुद्ध, उसमें दृष्टि रखकर एकाग्र होकर सम्यक्त्व प्रगट करना। कहो, प्रकाशदासजी! यह तो पहली बात आयी। पहले क्या करना? समझ में आया? वह कहे, हम श्रावक हैं तो व्रत पालना, पहले ब्रह्मचर्य पालना? अब यह बात बाद में। छोड़ न। पहले सम्यग्दर्शन तो कर। समझ में आया?

कैसा? कहते हैं कि जैसे मेरुपर्वत नहीं फिरता। उसी प्रकार अन्दर श्रद्धा स्वरूप का अनुभव, रागरहित निष्क्रिय सम्यग्दर्शन। इस सम्यग्दर्शन में राग के अंश की मदद नहीं है। जिसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं, ऐसा सम्यग्दर्शन आत्मा के द्रव्य को पकड़कर प्रगट करना। पहले में पहली यह बात है। कहो, समझ में आया? किसलिए? यह समकित ग्रहण करके ध्यान करना, उसका ही किसलिए? **दुःख का क्षय करने के**

लिये... जिसे संसाररूपी दु:ख की दशा उदयभाव की, उसका नाश करने के लिये समकित को ग्रहण करके समकित का ध्यान करना। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- श्रावक पहिले तो निरतिचार निश्चल सम्यक्त्व को ग्रहण करके उसका ध्यान करे,... देखो! पहले तो यह पूर्ण प्रभु आत्मा... ऊपर कह गये न पूर्ण? मुनि के उपदेश में। पूर्ण केवलज्ञान-दर्शन ऐसे स्वभाव में दृष्टि देकर, एकाग्र होकर समकित ग्रहण करना। वह समकित ग्रहण करना। कोई समकित दे और ग्रहण किया, ऐसा नहीं। देते हैं न? समकित ग्रहण करो, जाओ। देव-गुरु-शास्त्र मानना।

मुमुक्षु : दीक्षा लो तो हमारे पास आना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे पास आना। ऐसा यह उसका अर्थ। समकित का अर्थ यह कि हमें मानना। वैराग्य हो तो हमारे पास आना। ऐसा उसका समकित। देनेवाला मिथ्यादृष्टि है, उसे भान नहीं कि समकित किसे कहना। समझ में आया?

वापस क्या कहा? '**झाणे झाइज्जइ सावय**' श्रावक को इस सम्यग्दर्शन को ग्रहण करके उसी और उसी को वापस ध्यान में ध्याना। वस्तु जो सम्यग्दर्शन का ध्येय और सम्यग्दर्शन का कारण, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसी और उसी का ध्यान करना। आहाहा! लो, यह क्या करना, वह आया। चन्दुभाई! कितने ही कहते हैं, परन्तु हमारे क्या करना? श्रावक को क्या करना?

मुमुक्षु : समकित का ध्यान?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित का, वह तो भाषा है। समकित का ध्यान क्या हो। समकित का अर्थ समकित ने यह द्रव्य पकड़ा है, उसका ध्यान करना अर्थात् वह समकित का ध्यान कहा जाता है। समकित तो पर्याय है। समझ में आया? पाठ तो यहाँ ऐसा आयेगा। परन्तु उसका आशय क्या? सम्यग्दर्शन अर्थात् परिपूर्ण ऐसी वस्तु है, (उसका) निष्क्रिय निर्मल सम्यग्दर्शन हुआ, तब उस सम्यग्दर्शन का ध्यान करना अर्थात् सम्यग्दर्शन का ध्येय जो द्रव्य है, उसका ध्यान करना, वह सम्यग्दर्शन का ध्यान कहा जाता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! यह व्रत करना या तप करना या... भगवानजीभाई! अपवास करना, कन्दमूल नहीं खाना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना। भाई!

अब छोड़ न, यह तो विकल्प की क्रिया है बाहर की। उत्तमचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : माहात्म्य बहुत होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत माहात्म्य होता है। सत्य बात है। बहुत जगह अभी वर्षा बहुत आयी है न, इसलिए ठण्डक रही, इसलिए महीने-महीने के अपवास बहुतों ने किये हैं। स्थानकवासी में बहुत।

मुमुक्षु : ... किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... किये हुए। वर्षा अच्छी आयी, इसलिए बहुत तकलीफ नहीं पड़ती। पानी पीवे तो भी। बाहर की बहुत गर्मी न हो, इसलिए कोई दिक्कत नहीं। अपवास हो, और शीतलता रहे और फिर मासखमण—एक महीने के अपवास। लंघन है। और उसमें मिथ्यात्व का पोषण है। उसे धर्म माने। मैंने आहार छोड़ा, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहार का धनी था, वह तूने छोड़ा? वह तो जड़ है। उसे अजीव का भी ज्ञान नहीं। अजीव छोड़ा छोड़े नहीं और आया आवे नहीं। वह तो उसके कारण से छूटता है। उसे जीव का ज्ञान नहीं कि जीव, अजीव को छोड़ नहीं सकता। बराबर होगा? रतिभाई! तुम्हारे गाँव में हुआ होगा या नहीं?

मुमुक्षु : बहुत हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत हुए हैं।

मुमुक्षु : द्रव्य से लाभ और भाव से लाभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि द्रव्य से लाभ शरीर में भी निरोगता रहे और भाव से लाभ—तपस्या-निर्जरा हो। धूल भी नहीं होती, सुन न! अभी आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्यद्रव्य की दृष्टि सम्यक्त्व हुआ नहीं, उसे राग का स्वामीपना मिटता नहीं और परवस्तु के त्याग-ग्रहण का स्वामित्व टलता नहीं। समझ में आया? हमने आहार छोड़ा। आहार तो जड़ है। तुझमें प्रविष्ट हो गया था? घुस गया था, उसे छोड़ा? वह मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्वभाव सेवन करे और माने कि हमारे तपस्या हुई, हमको निर्जरा हुई। अनादि से उल्टा ऐसा ही मारा है न इसने! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रियाकोष ग्रन्थ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रन्थ है। ग्रन्थ है क्रियाकोष। वह तो सम्यग्दर्शन के भान में राग की मन्दता के विकल्प कैसे होते हैं, उसकी वहाँ बात है। ठीक, सेठ भी बराबर याद रखते हैं। ऐसा कि क्रियाकोष है न। बात सच्ची। है न क्रियाकोष है अपने किशनदास का क्रियाकोष है, सब है यहाँ। सब पढ़ा है। ग्रन्थ सब रखे हैं एक-एक (प्रत्येक)। सब ग्रन्थ पूरे देखे हैं। चिह्न भी किये हैं, वहाँ भी यह सम्यग्दर्शन की क्रिया बिना दूसरी क्रियाकोष की, राग की मन्दता आयी कहाँ से? समझ में आया?

यहाँ आचार्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यह बात करते हैं, देखो! '**गहिऊण य सम्मत्तं**' कि पहले श्रावक को समकित ग्रहण करना। और वह समकित ग्रहण कैसे होगा? समझ में आया? '**झाणे झाइज्जइ सावय**' यह आत्मा ध्यान करनेयोग्य है, इसका ध्यान करे तो समकित हो और पश्चात् भी उसी और उसी का ध्यान करे। पश्चात् भी व्रत पालना, विकल्प करना और उससे फिर निर्जरा होगी, ऐसा नहीं है— ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो न! '**झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाण**' '**सम्मतं**' समकित का ध्यान करना। पाठ तो ऐसा है। परन्तु उसका अर्थ यह। सम्यग्दर्शन, जिसमें प्रतीति में, अनुभव में आत्मा आया है। उस ज्ञायक पूर्ण अभेद चिदानन्द आत्मा की जो पर्याय में प्रतीति और निर्विकल्प श्रद्धा वर्तती है, वह विकल्प श्रद्धापर्याय का ध्यान करने जाने से द्रव्य का ही ध्यान होता है। समझ में आया?

सम्यक्त्व को ग्रहण करके उसका ध्यान करे,... पाठ तो ऐसा है न? समकित का ध्यान करना। इसका अर्थ यह। समकित तो पर्याय है। समकित पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया है। इसलिए उस समकित पर्याय का ध्यान करने, पर्याय में एकाग्र होने जाने से वह द्रव्य में एकाग्र होता है। पर्याय में एकाग्र कहाँ से होता था? समझ में आया? कठिन बात!

मुमुक्षु : एकाग्र होना, वही सम्यक्त्व है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह तो ठीक परन्तु वापस... यह दूसरी बात है। यहाँ तो समकित का ध्यान करना, ऐसा कहा है न? समकित तो पर्याय है। पर्याय का ध्यान

किस प्रकार करना? पाठ तो ऐसा है। इसका अर्थ कि सम्यग्दर्शन ने जिस द्रव्य को पकड़ा और अनुभव किया है, उसी और उसी का ध्यान करना। जो पहला द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उसी और उसी का आश्रय फिर से लेना, ऐसा कहते हैं। पर के आश्रय से कहीं आत्मा को कर्म का क्षय नहीं होता। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बातें। किसके लिये उसका ध्यान करना? कि दुःख के क्षय के लिये। कर्म के क्षय के लिये, (ऐसी) भाषा प्रयोग नहीं की है।

जो उदयभाव दुःख है, उदयभाव आकुलता, राग-द्वेष आकुलता। देखो! पुण्य और पाप के भाव दोनों आकुलता दुःख है। समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, आनन्द का धाम है, आनन्द का शाश्वत् स्थान है। ऐसा आत्मा, उसे अन्तर्मुख होकर अनुभव करके सम्यक्त्व प्रगट करना। आहाहा! और उसी और उसी का ध्यान करना, मूल तो ऐसा कहना है। जैसा स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यक्त्व हुआ, पश्चात् भी उसे उग्ररूप से स्वद्रव्य का ध्यान-आश्रय करना। दूसरी कोई पर्याय का आश्रय या विकल्प के आश्रय से कुछ ध्यान नहीं होता। आहाहा! क्या हो? जगत को मूल बात में पहले से अन्तर पड़ गया है। समकित-बमकित कुछ नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित। अब मुंडाओ। पंच महाव्रत ले लो। फिर भटको अणुव्रत के आन्दोलन करने।

मुमुक्षु : इसी प्रकार का उपदेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार का उपदेश है। प्रकाशदासजी ने तो सब अनुभव किया है न? यह चलता है। मूल बात की खबर नहीं।

परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने इन तीन काल-तीन लोक को जाना, ऐसे परमात्मा की वाणी में श्रावक को पहले क्या करना, वह यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह आता है, भाई! समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द का धाम है, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसे राग की कीमत आती है, निमित्त की कीमत आती है और बहुत तो एक समय के उघाड़ की कीमत आती आती। परन्तु उस वस्तु की कीमत नहीं आती। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि पहले वस्तु का

माहात्म्य कर और वस्तु की कीमत कर। इसके बिना तेरी सब बातें व्यर्थ हैं। आहाहा! समझ में आया?

दुःख का क्षय करने के लिये... भाषा प्रयोग की है, देखा! कर्म के क्षय के लिये, यहाँ शब्द प्रयोग नहीं किया है। इसका अर्थ कि पुण्य और पाप के दो विकल्प हैं, वे दुःख हैं, आकुलता है। इसे आत्मा के ध्यान द्वारा उस आकुलता का नाश करना, दूसरे प्रकार से नहीं होता। समझ में आया? श्रावक को यह तो कहा। प्रवचनसार में कहा, वह सब यहाँ आया। श्रावक को शुभभाव से मोक्ष परम्परा होता है। वह तो चरणानुयोग की बात में निमित्त की बात की है। उसे शुभभाव अधिक होता है, अशुभ टालने के लिये, ऐसा। परन्तु शुभभाव स्वयं क्या निर्जरा का कारण है?

यहाँ तो पुण्य और पाप दोनों के विकल्प हैं, वे सब दुःख हैं, आकुलता है। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। ऐसे आनन्द के धाम की जिसने श्रद्धा-ज्ञान किये, उसे आनन्द के धाम का ही विशेष आश्रय करना। उससे दुःख का नाश होता है। आहाहा! गजब! कहो, समझ में आया? वे क्रियावाले भड़कते हैं। हमारे सेठ ने क्रियाकोष याद किया न? क्रिया करने की है न? क्रियाकोष में आता है न सब विस्तार? ऐसा। बात सच्ची।

मुमुक्षु : ... यही पढ़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही पढ़ा है, बस। परन्तु पहले छोड़े किसे? आत्मा में पर के ग्रहण-त्याग का अभाव है। उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा रजकण को ग्रहे और रजकण को छोड़े, ऐसा आत्मा में है नहीं। वह तो सच्चिदानन्द मूर्ति ज्ञान का पिण्ड आत्मा है। वह रजकण पकड़ा है तो रजकण को छोड़े? उसने आहार ग्रहण किया है तो आहार को छोड़े? वह तो परचीज़ है। आहार ग्रहण किया था तो अब छोड़ता हूँ, यह तो पर्यायबुद्धि-पर के स्वामीपने की बुद्धि हुई। उसे चैतन्य के स्वामीपने की खबर नहीं। समझ में आया? बात सच्ची। ओण वर्षा बहुत न चारों ओर, बहुत वर्षा। ४०-४० इंच। वह एक जन-भाई कल कहते थे। कैसा तुम्हारा गाँव? 'सियाणी' ६५ इंच। हिम्मतभाई का साला आया था। ६५ (इंच)। गाँवड़ा-'सियाणी', भलगाम सब देखे हैं न। लींबड़ी के

बाद। सियाणी में गत वर्ष था चार इंच, इस वर्ष आया ६५ इंच। ... कल कहते थे। सियाणी, लींबड़ी, लींबड़ी है न? वहाँ छोटा गाँव है। ६५ इंच वर्षा। गत वर्ष चार इंच। कल रविन्द्र के मामा आये थे। उन्होंने कहा था। गत वर्ष चार इंच। वे वहाँ रहते होंगे।

मुमुक्षु : वे बैंक में मैनेजर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैनेजर हैं? हाँ, ठीक। सियाणी में ठीक। आये थे। इस वर्ष ६५ इंच आयी। ६५ इंच वर्षा। वह तो परमाणु का परिणमन है। उसे किस काल में कैसे परिणमना, वह कहीं किसी के आधीन है?

यहाँ तो कहते हैं कि वह सब विकल्प की वृत्ति छोड़। यह आया और गया, वह सब धूल भी कुछ नहीं। समझ में आया? परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग परमात्मा केवलज्ञान से देखकर दिव्यध्वनि में श्रावक को पहले क्या करना, वह यह आया है। समझ में आया? ऐसे तो श्रावक अर्थात् श्रवण करना। परन्तु क्या श्रवण करना? कि ऐसी बात श्रवण करना। इसमें अर्थ है, श्रावक को श्रवण करना। इसमें है। श्रावक को श्रवण आता है न? श्र—श्रवण, व—विवेक, क—करना। ऐसे तीन बोल आते हैं। श्रावक—श्र। श्रवण करना। क्या? वीतराग की वाणी, अभेद स्वरूप को बतावे, उस वाणी को इसे श्रवण करना। और पश्चात् व अर्थात् विवेक करना। राग से भिन्न आत्मा को करके आत्मा की दृष्टि करना और फिर स्वरूप में स्थिर होना वह क—क्रिया।

मुमुक्षु : क—करणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह करणी यह। किसका करना दूसरा? यह तो आया नहीं था अपने? नहीं कहा था? सेठ! उसमें ही कहा था न? बताया नहीं था? बताया था। करणी, हितहरणी सदा। नहीं आया था? ऐई! किसमें? मोक्ष में? सर्वविशुद्ध में आया था। प्रतिक्रमण की क्रिया? सर्वविशुद्ध अधिकार का। याद किया न सेठ ने।

देखो! यह तो आया था। **'करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि'** करणी –विकल्प की क्रिया, वह सब हित की हरनेवाली है। राग है। मोक्षमार्ग में क्रिया का

निषेध। सर्वविशुद्ध अधिकार। ९६वाँ श्लोक है। '**करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि**' मुक्ति को देनेवाली नहीं। '**गनी बंध-पद्धति विषै,**' उसे बन्ध पद्धति में गिना है। '**सनी महादुखमांहि**' वह तो महादु:ख से सनी है, लिप्त है। वह पुण्यपरिणाम क्रियाकाण्ड के (परिणाम) वे महादु:ख से लिप्त है। ऐई! नवरंगभाई! '**करनीकी धरनीमें महा मोह राजा बसै,**' सेठ भी ठीक याद रखते हैं। पर्यूषण में ऐसा करो, ऐसा करो, यही चलता है। '**करनीकी धरनीमें महा मोह राजा बसै,**' उसमें कर्ताबुद्धि होती है, राग-मिथ्यात्व होता है। '**करनी अग्यान भाव राकिसकी पुरी है।**' समझ में आया? शरीर पुद्गल की मूर्ति राक्षस का नगर है। अज्ञानभाव तो राक्षस का नगर है। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु में, यह शुभविकल्प की क्रिया राक्षस-राक्षस है। आत्मा की शान्ति को खा जाए, ऐसा शुभभाव है, यह कहते हैं। '**करनी करम काया**' यह शुभभाव की क्रिया तो कर्म की काया है, आत्मा की नहीं। '**पुग्गल की प्रतिछाया**' यह तो पुद्गल की छाया है। आत्मा नहीं। आत्मा कहाँ आया शुभभाव में? '**करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है।**' शक्कर लपेटी हुई छुरी। शक्कर को? छुरी। '**करनी के जालमैं उरझि रह्यो चिदानंद, करनीकी वोट ग्यानभाव दुति दुरि है।**' राग की पर्याय में लीन होने से इसका स्वभाव वहाँ ढँक जाता है। उसे राग की ओट में स्वभाव नजर में नहीं आता। '**आचारज कहे करनी सौ विवहारी जीव, करनी सदैव निहचे सुरूप बुरी है॥९७॥**'

'**अमृषा मोहकी परनति फैलीं। तातैं कर्म चेतना मैली॥**' यह शुभभाव कर्मचेतना। '**ग्यान होत हम समझी एती। जीव सदीव भिन्न परसेती॥९८॥**' इससे-राग से अत्यन्त भिन्न है। '**मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा। चिदविलास पद जग उजयारा॥ राग विरोध मोह मम नांही। मेरौ अवलंबन मुझमांही॥१००॥**' मेरा अवलम्बन मुझमें। राग की ओर का अवलम्बन मुझे लाभदायक नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कलश-कलश। यह ... अपने आवे...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा। ... कहा न। दोपहर में चलता है न, १४८ प्रकृति? उसमें ... उसके ऊपर। ३७ नम्बर है। समझ में आया? बनारसीदास।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो श्रावक को लेकर उपदेश है। क्या कहते हैं? क्या लिखा?

मुमुक्षु : त्यागी है तो उपदेश दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागी हो, वह उपदेश दे परन्तु श्रावक को वह उपदेश सुनना और यह करना न? ऐसा कहते हैं। वह उपदेश मुझे ऐसा देता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि त्यागी हमें ऐसा उपदेश नहीं देते। परन्तु भगवान ऐसा कहते हैं या नहीं? समझ में आया?

भावार्थ :- श्रावक पहिले तो निरतिचार निश्चल सम्यक्त्व को ग्रहण करके उसका ध्यान करें, इस सम्यक्त्व की भावना से... देखो! भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय रस का सागर ऐसा भगवान आत्मा है। उस आनन्द को बाहर में खोजने जाता है, वह मूर्ख है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं मोक्षहरणी, पण्डित जयचन्द्रजी ने (बहुत अच्छा लिखा है)। **सम्यक्त्व की भावना से गृहस्थ के गृहकार्य सम्बन्धी आकुलता, क्षोभ, दुःख होय है, वह मिट जाता है,...** समझ में आया? समकित की भावना से गृहस्थ को गृहकार्य सम्बन्धी आकुलता, क्षोभ, दुःख हो वह मिट जाता है। यह गृहस्थाश्रम में रहे हुए की बात है।

क्यों? कि **कार्य के बिगड़ने-सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है।** बिगड़े-सुधरे क्या? वस्तु का स्वभाव (ऐसा है), उसमें मैं क्या करूँ? यह लड़का मर गया, शरीर में रोग आया। परन्तु वह तो वस्तु का स्वभाव है। उसमें करना कहाँ? ...भाई! यह बीस वर्ष का पालन-पोषण करके, खर्च करके परीक्षा एल.एल.बी. की अन्तिम दी। बड़ी परीक्षा एक तो कहता था। वह क्या कहा जाता है तुम्हारे बड़ी परीक्षा को?

मुमुक्षु : आई.पी.एस।

पूज्य गुरुदेवश्री : आई.पी.एस. यहाँ एक मास्टर आये थे न? हिन्दुस्तान के पण्डित। आई.पी.एस. की परीक्षा दी लड़के ने। पूरी। आई.पी.एस. की बड़ी होगी। आठ दिन में मर गया। परीक्षा थी, देकर आठ दिन में मर गया। आहाहा! एक कोई आया था नहीं अपने? कहाँ का था?

मुमुक्षु : एक हिन्दी आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी आया था। वृद्ध। मास्टर थे, मास्टर थे। कहे, हमारे पास सीखा और फिर विलायत में परीक्षा भी दी। दी और आठवें दिन में तो मर गया। किसी परीक्षा? धूल की? समझ में आया? श्रावक को इस वस्तु का विचार आने पर ऐसा एक पुत्र इकलौता हो और ऐसा हो तो भी वस्तु का स्वभाव है। ऐसा करके उसे समता रहे। कहो, समझ में आया? देखो न! अपने यह मनसुखभाई नहीं? भावनगरवाले। अभी तो वढवाण गये थे। अभी वढवाण गये थे। आये थे। पाँच लड़कियाँ और एक ही लड़का। स्वयं की ५४ वर्ष की उम्र। एक ही लड़का १९ वर्ष का। मनसुखभाई आता है। वहाँ पोरबन्दर में। तुम तो कहाँ थे? पोरबन्दर गये थे। वढवाण रह गये थे। ५४-५५ वर्ष की उम्र है। पाँच लड़कियाँ। बड़ी लड़की का विवाह किया। लड़का वहाँ रहता है। पागल हो गयी। इसलिए यहाँ घर में रखी है। चार लड़कियाँ और उसमें यह एक लड़का १९ वर्ष का। कुछ नाक का, क्या कहलाता है नाक का? कुछ होगा। तो कहे, चल डॉक्टर के पास करावें। नाक का भाग होगा। १९ वर्ष का जवान। ऐसे कुछ नहीं। डॉक्टर के पास गये। कुछ ऑपरेशन करो। नाक का कुछ होगा। यह रहे नाक के सर्जन। हड्डी बढ़ती होगी। वे डॉक्टर के पास गये और कुछ दिया वहाँ उठ गया। खत्म। इकलौता १९ वर्ष का। डॉक्टर कहे कि कौन हैं इसके माता-पिता? क्या कहना है तुम्हारे? कि यह हुआ। कहा, उसमें हमें कोई हर्ष-शोक नहीं है। तुरन्त उसका पिता डॉक्टर को जवाब देता है। डॉक्टर कहे, आहा! यह इकलौता लड़का, कौन है पिता? मैं हूँ। क्या है? स्थिति पूरी हो गयी। समाधान करो। समाधान करने का हमारे नहीं। आत्मा समाधानस्वरूप है। ऐसा जवाब दिया। ऐई! मनसुख यहाँ आता है, नहीं? रविवार को किसी समय आता है। कल था, कल था। वढवाण गये थे। वढवाण नहीं, कांप... कांप। पहले हम

(संवत्) १९९९ में आये, तब उसके शक्कर का कारखाना था। वहाँ उतरे थे। रतिभाई कहाँ गये? चिमनभाई! चिमनभाई नहीं? वह कारखाना नहीं था पीछे? वहाँ उतरे थे न? १९९९ में वहाँ उतरे थे। शक्कर का कारखाना था। डॉक्टर वह हो गया। डॉक्टर कहे, परन्तु यह पाव घण्टे में, हों! हिलता-चलता। कुछ नहीं। मात्र ... एकदम क्या हुआ कौन जाने, गुजर गया। डॉक्टर को ऐसे त्रास हो गया, कहना किस प्रकार? यह लड़का जवान, १९ वर्ष का जवान। कौन है इसके सगे? क्या कहना है तुम्हारे? फेल हो गया है। हमको कुछ है नहीं। हमको कुछ है नहीं, डॉक्टर! खेदखिन्न होना नहीं। डॉक्टर को कहते हैं, खेदखिन्न होना नहीं। होने के काल में होता है। यह पर्याय क्रमबद्ध में आयी, उसे बदले कौन? ऐई! चन्द्रकान्तभाई!

देखो! इसे श्रद्धा और ज्ञान का भान हो तो **कार्य के बिगड़ने-सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है।** यह तो वस्तु की स्थिति जैसी थी, ऐसा होता है। उसमें दूसरा क्या हो? इन्द्र-नरेन्द्र भी किसी को एक समय रख सकते हैं? क्या है? समझ में आया? अभी श्रद्धा हो व्यवहार की तो भी ऐसी समता होती है। सम्यग्दर्शन में तो त्रिकाल त्रिकाल। उस चीज़ की स्थिति ही ऐसी है। अरे! परन्तु यह पैदा किये पाँच लाख और सवेरे चोर उठा ले गया। कहाँ से खबर पड़ी? वह वस्तु की स्थिति ऐसी है। जो वस्तु की स्थिति वहाँ जाने की थी, उसमें कोई फेरफार नहीं कर सकता। समझ में आया? आहाहा! परन्तु कल पाँच लाख पैदा करके आये, हीरा-माणेक रखे हैं उसमें। किसे खबर पड़ गयी? सवेरे उघाड़े तो कुछ नहीं मिलता। उस लड़के का दृष्टान्त दिया, यह पैसे का दृष्टान्त। जरा सोता हो स्वयं खा-पीकर निश्चिन्त। सवेरे जहाँ उठे वहाँ एकदम अरे! यह क्या हुआ? क्या कहा?

मुमुक्षु : सवेरे उठे तो चला गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हो गया। हाय-हाय! अरे! यह क्या हो गया? यह हाथ चलता नहीं। शरीर की अवस्था उस काल में वही होनेवाली है, उसमें फेरफार करने के लिये कोई समर्थ नहीं है। सम्यग्दर्शन हो तो वस्तु बिगड़ने-सुधरने का खेद नहीं हो सकता। समझ में आया?

कार्य के बिगड़ने-सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे,... देखो! बिगड़ना -सुधरना अर्थात् क्या? वह तो उस समय की पर्याय... आहाहा! जड़ की अवस्था जड़ के कारण से होनेवाली हो, वह होती है। भगवानजीभाई! आहाहा! सहज ऐसा हो कि दो-पाँच लाख का माल हो, वहाँ सुलगे, बीमावाला भागे। यहाँ पड़े दुष्काल, पाँच लाख की उगाही हो, वह जाये। और शरीर में धड़ाका लगता रोग आवे, लड़का बीमार पड़े, लड़की विधवा हो जाये, लड़की मर जाये, उसकी दिक्कत नहीं। बीस वर्ष की ऐसी छह महीने की विवाहित विधवा हो। हाय-हाय क्या हुआ? पन्द्रह दिन में विधवा, मर जाते हैं न। यह कहते हैं कि यदि सम्यग्दर्शन हो तो समाधान कर सके। समझ में आया? इकलौता लड़का चला जाये और वह पन्द्रह-सोलह वर्ष की छोड़कर कच्चे सांठे जैसी। हाय-हाय। हाय-हाय क्या है? सुन न। आनन्द है, कह न। यह तूने हाय-हाय कहाँ लगायी? वस्तु का स्वभाव ऐसा है। उस समय वह होनेवाला था। कर न समाधान। पण्डितजी! अजीव की पर्याय वह होनेवाली थी, भाई! वह कहीं नयी नहीं हुई।

वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है। दुःख कैसा? हम तो आनन्दमूर्ति हैं, आनन्द के धाम हैं। कोई भी क्षेत्र-काल-भाव में हमको दुःख है नहीं। आहाहा! गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी, हों! यह उसकी बात चलती है। अकस्मात हो जाये, फेरफार हो जाये, सब बदले, भाई! समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि के इस प्रकार विचार होता है कि वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसा जाना...** देखो! लो आया, भाई! यह तो वे कहते हैं। सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होता है, ऐसा कहाँ तुम सहारा लेते हो? ऐसा कहते हैं न वे लोग? क्रमबद्ध होता है। कैसे सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा हो, यह क्या करने को कहते हो। सुन न अब!

मुमुक्षु : यह तो मूल बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मूल बात है।

सम्यग्दृष्टि के इस प्रकार विचार होता है कि वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसे जाना, वैसा निरन्तर परिणमता है... भगवान ने जैसा जहाँ परिणमन देखा, वहाँ परिणमन

उसके कारण से होता है। उसमें फेरफार करने को कोई समर्थ नहीं है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होंशी वीरा।' – यह आता है या नहीं?

मुमुक्षु : अनहोनी होने...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अनहोनी कबहु न होवे काहे होत अधिरा, काहे होत अधिरा?' यह भैया भगवतीदास का है। यहाँ पुस्तक है। भैया भगवतीदास (कृत) उसमें है। 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होंशी वीरा रे, अनहोनी कबहु न होंशी, काहे तू होत अधीरा रे।' क्यों अधीर होता है? नया होता है तेरे लिये? जगत की जड़ और चैतन्य की पर्याय भगवान ने देखी, तत्प्रमाण होती है। घटे न बढ़े। वह है न उसमें? समझ में आया? उसका भी मिथ्या ठहराते हैं। देखो! परन्तु उसमें ऐसा कहा है। पश्चात् बाद की कड़ी डालते हैं। ऐसा करके समता रख, ऐसा कहते हैं। देखो! समता रखने का प्रयत्न किया या नहीं? वहाँ कहाँ क्रमबद्ध आया? और ऐसा कहा भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यही क्रमबद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! परन्तु यही क्रमबद्ध है वहाँ।

मुमुक्षु : भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठीक कहते हैं। ऐसा नहीं। जो हुआ, वह वैसा ही होनेवाला है। उसमें दूसरी कोई बात थी नहीं। ऐसा। उपाय करे परन्तु न हो तो भी समाधान रखे, ऐसा कहते हैं। पहले करने की तड़पहाड़ट मारे। फिर न हो तो कुछ नहीं। यह कहाँ समाधान रखा?

मुमुक्षु : वह तो हार गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो हार गया, इसलिए पहुँचा नहीं। उसे पहुँच सका नहीं। नहीं तो मेरे ऐसे होने देना था, ऐसे होने देना था। क्या हो? जड़ की क्रिया देह की, वाणी की जो अवस्था जिस काल में जैसी होनेवाली हो, वैसी होती है। उसे तू रोक नहीं सकता और टाल नहीं सकता। कहो, रतिभाई! ऐसा समकित के माहात्म्य में वस्तु के स्वभाव का विचार आने पर उसे समाधान और शान्ति होती है। आहाहा!

दो-दो लाख रुपये खर्च करके अमेरिका भेजा हो और बड़ी परीक्षा देकर पाँच हजार का वेतन देता हो। वहाँ से उतरते हुए कहीं पड़ा जहाज में से नीचे। उतरते हुए गिरा समुद्र में। हाय-हाय। यह वडिया दरबार के हुआ था न? यह वडिया नहीं तुम्हारा? वह दरबार समुद्र में ... समुद्र में किसी ने डाल दिया था। वह दरबार उसका पिता था वह। अपने व्याख्यान में आते थे न वे दरबार? वे गुजर गये। वे गुजर गये परन्तु उनका पिता था वह। जाते थे मुम्बई। चाहे जैसे हुआ। समुद्र में किसी ने... दरबार थे। सब होशियार, हों! संसार के बहुत चतुर थे। वे एक, यह 'कलापी'। 'लाठी' का दरबार। वह लौकिक में होशियार कहलावे। और तीसरे यह राजकोटवाले बगसरा के। तीनों मित्र थे। तीनों मित्र थे, मित्र थे। राजकोटवाले तो हमारे पास बहुत आते थे न। यहाँ आते थे। वहाँ हम गये थे। उनके गाँव में गये थे न। 'वडाळा'। आहाहा! दरबार का मुर्दा हाथ नहीं आया। किसने कैसे धक्का मारा या क्या हुआ समुद्र में। ऐसा होनेवाला था। नया नहीं हुआ। दूसरा तो निमित्त मात्र कहलाता है। वह होने की क्रिया तो वही होनेवाली थी। हाय-हाय। अन्तिम मुख भी नहीं देखा। महिलायें और ऐसी बातें करे। भीखाभाई! अन्तिम मुख भी नहीं देखा। कैसे हुआ? अरे! मुर्दा देखा होता और फिर जलाया होता तो दिक्कत नहीं। ऐसे अरमान करे। मूढ़ को इन अरमान का कुछ पार है? खोज निकाले। ऐसी महिलायें होती हैं न कितनी ही। धूल भी नहीं, सुन न! मुँह किसका? वह जड़ का। जड़ की पर्याय उस काल में वैसी होनेवाली थी। तेरा सगा पुत्र हो या पति हो। समता। समकिती महिला हो, उस समय उस प्रकार का होनेवाला है, उसमें हमें शोक और हर्ष है नहीं। आहाहा!

एकदम अकस्मात् पाँच-दस-पच्चीस लाख पैसा (रुपये) आवे तो ज्ञानी को हर्ष नहीं। वह वस्तु की स्थिति है। कोई पड़ी होगी पुण्य प्रमाण। समझ में आया? घर में खोदते हुए निकले पाँच करोड़ और दस करोड़। राजा के दबाये हुए कोई हीरा निकले। कुछ नहीं। वह जगत की चीज़ है। वह आयी तो भी क्या? मुझे कहाँ है? ऐसा जिसे वस्तु में विचार आने पर उसे उस काल में हर्ष नहीं आता, प्रतिकूलता में उसे शोक नहीं आता। ऐसा है। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसा जाना है, वैसा निरन्तर परिणमता है... निरन्तर

जड़ और चैतन्य की पर्याय उसरूप से होती है। उसमें भी आता है। श्वेताम्बर में भी आता है। देवचन्दजी ने स्तुति की है न शीतलनाथ की। 'द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव...' फिर चार आते हैं न, गुण। 'द्रव्य क्षेत्र और काल भाव गुण, राजनीति ये चार जी, जड़ चेतन की...' क्या है ? आज्ञा ऐसा कि ... बिना जड़ चेतन की परिणति होती नहीं। भूल गये। कोई न रोके।

मुमुक्षु : त्रास बिना।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रास बिना। हाँ। 'द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव गुण राजनीति ये चार जो। त्रास बिना जड़ चेतन प्रभु की कोई न लोपे कारजी' कार-आज्ञा। त्रास नहीं जड़ चैतन्य को। उनकी परिणति जैसी भगवान ने देखा है, तत्प्रमाण जड़-चेतन की पर्याय तत्प्रमाण परिणमती है। 'त्रास बिना जड़ चेतन परिणति कोई न लोपेकार।' प्रभु! तेरी आज्ञा कोई नहीं लोपता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर भी सम्यग्दृष्टि ऐसे विचारकाल में समता रखता है। प्रतिकूलता में शोक नहीं और अनुकूलता में हर्ष नहीं। परन्तु प्रतिकूल-अनुकूल कहना किसे ? वह तो ज्ञेय है। ऐसा विचार रखकर धर्मी को समता रहती है। समझ में आया ?

इष्ट-अनिष्ट मानकर दुःखी-सुखी होना निष्फल है। ऐसा विचार करने से दुःख मिटता है,... देखो! **यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है, इसलिए सम्यक्त्व का ध्यान करना कहा है।** लो! श्रावक को ऐसा समकित ग्रहण करके और पश्चात् भी समकित का ध्यान करना। उससे दुःख का नाश होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ९, बुधवार, दिनांक २३-०९-१९७०
गाथा - ८६ से ८९, प्रवचन-९५

८६ गाथा हो गयी। ८६ में ऐसा कहा कि '**झाणे झाइज्जइ सावय**' प्रथम शब्द रखा है न? प्रथम का अर्थ यह। भले अन्दर प्रथम न हो, परन्तु श्रावक, ऐसा कहा न? श्रावक तुझे पहले समकित का ध्यान करना, समकित प्रगट करना। पहले में पहले यह है। '**तं झाणे झाइज्जइ सावय**' श्रावक, ऐसा कहा न फिर? परन्तु उसका अर्थ निकाला कि आचार्य श्रावक को कहना चाहते हैं, उसमें यह पहला कहना चाहते हैं। इसलिए इसमें से प्रथम निकाला। समझ में आया? श्रावक को पहले यह करने का है, ऐसा कहते हैं।

सम्यग्दर्शन '**दुक्खक्खयट्ठाण।**' आया न? दुःख का नाश करने के लिये समकित, वह उसे ग्रहण करना चाहिए। यह पहले में पहला श्रावक का उपाय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो जन्मते सम्यक्त्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्मते सम्यक्त्व हो गया। दिगम्बर में जन्मे, इसलिए हो गया भेदज्ञानी। ऐसा कहते हैं। कहते हैं न एक पण्डित? यह कहते हैं।

मुमुक्षु : जीव-अजीव का तो भेदज्ञान हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव-अजीव का कहाँ भान है? यहाँ विकल्पमात्र अजीव है और चैतन्यमात्र अकेला आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है। यहाँ तो बाह्य लक्षण वर्णन करेंगे। ऐसे आत्मा के अन्तर अन्तर्मुख होकर, अन्तर्मुख ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसकी निश्चल मेरु की भाँति, गिरि मेरु। आया न... गिरि? निकम्प सम्यग्दर्शन। कोई देव और कुदेव आदि चलित करे तो भी चलित नहीं। यह पहली यह सीख है। वहाँ ऐसा नहीं कहा कि हे श्रावक! पहले पूजा करना, भक्ति करना, व्रत पालना। ऐसा कहा है? कपूरचन्दजी! देखो! ऐसा, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले करना यह।

देखो! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), श्रावक, ऐसा शब्द पड़ा है। हे श्रावक! भो श्रावक! ऐसा है कहीं। करने का हो तो तुझे पहले में पहली चीज़ सम्यग्दर्शन और उसका विषय ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान को अन्तर में निर्विकल्परूप से प्रतीति करके उसका ही ध्यान लगाना। '**झाइज्जइ**' है न? अथवा सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय ध्रुव चैतन्य है, उसे पकड़कर सम्यग्दर्शन ही पहली दशा प्रगट करना। कहो, समझ में आया? अधिकार मोक्षमार्ग का चलता है। मोक्ष का। तो भी समकित की मुख्यता। इसके बिना दूसरा कुछ नहीं है। सच्चा और कच्चा सब कच्चा है।

★ ★ ★

गाथा - ८७

अब कहते हैं कि .... ८७। **सम्यक्त्व के ध्यान ही की महिमा कहते हैं :-** ८७।

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि॥८७॥

उसमें '**दुक्खक्खयट्ठाण**' था। इसमें आठ कर्म को खिपाने के लिये समकित का ध्यान करना, (ऐसा है)।

अर्थ :- जो श्रावक सम्यक्त्व का ध्यान करता है... क्यों देरी हुई? पाँच मिनिट देरी हुई। रेल में देरी नहीं होती। रेल में देरी होती है?

मुमुक्षु : आजकल...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आजकल नहीं, सदा देरी नहीं होती। बिगड़े, वह अलग बात है।

श्रावक सम्यक्त्व का ध्यान करता है... पहले में पहला आचरण कर्तव्य निश्चय सम्यग्दर्शन। वही न प्रगटा हो तो भी उसे पहले समकित का ध्यान करना, ऐसा यहाँ

कहते हैं। **वह जीव सम्यग्दृष्टि है और सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ...** समकितरूप परिणमन। अन्दर निर्विकल्प ध्रुव स्वरूप... समझ में आया? ऐसा जो आत्मद्रव्य स्वभाव, उसे ध्येय अर्थात् लक्ष्य में लेकर, सम्यग्दर्शन का विषय बनाकर पहले सम्यग्दृष्टि होना और पश्चात् भी **सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ...** उसरूप स्वभाव सन्मुख का परिणमन करते-करते **आठ कर्म उनका क्षय करता है।** लो! इतना वजन कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षपाहुड़ में देते हैं। समकित में तो—दर्शनपाहुड़ में तो आ गया था। समझ में आया? कहो, सेठ! पहले यह करना, ऐसा कहते हैं। यह दान करना, पूजा करना, अमुक करना, इससे समकित हो जाये-ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- सम्यक्त्व का ध्यान इस प्रकार है - यदि पहिले सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है। इसका स्वरूप जानकर इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है—यह वजन है। समझ में आया? **सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर...** सम्यग्दर्शन में व्यवहार क्या है और निश्चय क्या है? व्यवहार का दृष्टान्त यहाँ तो देंगे। समकित का .... का। परन्तु निश्चय और व्यवहार क्या है, उसे बराबर जानकर समकित / श्रद्धा, उसका विषय ध्रुव, उसका ध्यान करने से समकित न हो तो भी समकित होता है। उसका ध्यान करने से समकित होता है। कोई व्यवहार से-निमित्त से हो, इस बात का यहाँ निषेध किया है।

मुमुक्षु : बाहर की सहायता...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा?

आत्मा अखण्ड ज्ञायकभाव परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव पहले जानना। व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र को पहले जानना। जानकर समकित का विषय जो चैतन्य ध्रुव, उसका ध्यान करने से समकित प्रगट होता है। समकित कोई व्यवहार समकित से निश्चय होता है या बाह्य वेदना-शास्त्र में आता है न? नारकी में बहुत वेदना से समकित होता है, देव की ऋद्धि देखकर समकित होता है। समझ में आया? यह सब तो निमित्त के कथन हैं। समकित प्राप्त करने का यह मूल साधन नहीं है। मूल साधन तो समकित का स्वरूप

इसका स्वरूप जानकर... इसका स्वरूप जानकर... समकित का स्वरूप निर्विकल्प प्रतीति और उसका आश्रय त्रिकाली ज्ञायकभाव। यह सर्वज्ञ ने कहा हुआ परमेश्वर वीतरागदेव ने कहा हुआ आत्मा। इसके अतिरिक्त दूसरों ने आत्मा जाना, ऐसा वह नहीं हो सकता। अन्यमत में उस आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा ऐसा ही जिसने जाना नहीं। समझ में आया? पहले यह करना। ऐई! प्रकाशदासजी! महाव्रत ले-लेकर अणुव्रत का आन्दोलन करना (ऐसा नहीं)।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह तो एक। यह तो जानने की। जानने की बात है। जीव अनादि से यही करता है न। आहाहा!

पहले में पहला मोक्षमार्ग के अधिकार में—मोक्षप्राभृत में समकित को पहले अंगीकार करना। अंगीकार कहीं ... बाहर से समकित नहीं। इसलिए कहा न? **इसका स्वरूप जानकर...** समकित का स्वरूप निर्विकल्प प्रतीति। और निर्विकल्प प्रतीति निर्विकल्प द्रव्यस्वभाव के आश्रय से होती है। आहाहा! समझ में आया? जिसे धर्म करना हो, हित करना हो, ऐसे गृहस्थ को भी पहले क्या करना, उसकी यहाँ बात चलती है। समझ में आया?

सम्यक्त्व का ध्यान इस प्रकार है - यदि पहिले सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर... निश्चयसम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय का ध्येय द्रव्य है। समझ में आया? द्रव्य अर्थात् वस्तु अखण्ड, अभेद। **इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं।** इस प्रकार विकल्प से, कषाय मन्द करने से और बाह्य के आचरण में जरा सुधार करने से समकित हो जाता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? कितनी स्पष्ट बात रखी है। **इसका (सम्यग्दर्शन) स्वरूप जानकर इसका ध्यान करे...** शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु वह समकित का आश्रय है। उसके आश्रय से समकित होता है। इसलिए वस्तु का स्वरूप जानना और समकित का स्वरूप जानना, उसे समकित कहा जाता है और उसका आश्रय द्रव्य, ऐसा द्रव्य हो-ऐसा जानकर समकित का ध्यान करने से **सम्यग्दृष्टि हो जाता है।** दूसरे प्रकार से समकित हो जाये,

ऐसा है नहीं। ऐसा हुआ या नहीं इसमें ? कहीं यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करने से समकित होगा। ऐई ! कपूरचन्दजी ! ऐसा इसमें लिखा है। वह आवे भले परन्तु वह शुभभाव है। शुभभाव से समकित हो, ऐसा नहीं है। समकित की रीति की उत्पत्ति की भी इसे खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो न, आचार्य स्वयं पुकार करते हैं। श्रावक का तो अधिकार लिया ८६ में। समझ में आया ? ८५ में यह लिया। श्रावक और साधु दोनों सुनो। ऐसा कहा न ? देखो ! ऐसा कहा है ८५ में।

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं॥८५॥

मोक्ष का परम कारण यह सम्यग्दर्शन है, उसे तू सुन। फिर उसका स्वरूप जानना। ऐसा का ऐसा ध्यान करने बैठ जाये, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ ने कैसा आत्मा कहा है, उसे नय, निक्षेप, प्रमाण से पहले जानना। असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का एकरूप अभेद किस प्रकार से है ? उसकी पर्याय अनन्त गुण की कैसी है ? विकार कैसे है ? निमित्त कैसे है ? उसके भलीभाँति सब पहलू जैसा उनका स्वरूप है, वैसा जानना। जानकर स्वभाव-सन्मुख का आश्रय करना।

मुमुक्षु : भगवान ने कहा, वह सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा चले ? भगवान ने कहा, वह सत्य है। नेमिदासभाई ने कहा वह सत्य है। उनके पास पैसे कितने, हमें कुछ खबर नहीं। वे कहे वह सच्चा। ऐसा माना जाता है ? उसे खबर होनी चाहिए न यह क्या वस्तु है। समझ में आया ? इसे खबर बिना क्या भगवान ने कहा ? भगवान ने क्या कहा ? परन्तु क्या कहा ? यह तो उसे खबर नहीं। खबर बिना भगवान ने कहा, वह सच्चा कहाँ से आया ? उसके ज्ञान में सच्चेपने का भान हो, तब उसे सच्ची प्रतीति होती है। तब 'त्वमेव सत्यं'—ऐसा कहा जाता है।

और, **सम्यक्त्व होने पर इसका परिणाम ऐसा है...** देखो ! समकित होने से परिणाम समकिती के ऐसे हैं कि **संसार के कारण जो दुष्ट अष्ट कर्म उनका क्षय होता है,...** समझ में आया ? उसमें-धवल में आता है न जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और

निकाचित कर्म का नाश होता है। यह तो निमित्त के कथन हैं। जिनबिम्ब आत्मा है। समझ में आया? ऐसा सामने देखे, वह तो विकल्प-राग है। समझ में आया? देखो! यह कहा। वहाँ निद्धत और निकाचित का नाश कहा, यहाँ दुष्ट अष्ट कर्म का नाश कहा। समकित से दुष्ट अष्ट कर्म का नाश होता है। समझ में आया? और समकित का ध्येय और विषय तो त्रिकाली ज्ञायक है। पूरी वस्तु, पूर्ण वस्तु। एक समय की पर्याय पूर्ण वस्तु को प्रतीति करती है। समझ में आया?

संसार के कारण जो दुष्ट अष्ट कर्म उनका क्षय होता है,... उनका क्षय करता है। **सम्यक्त्व के होते ही कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होने लग जाती है,...** देखो! सम्यग्दर्शन होते ही कर्म की गुणश्रेणी, कर्म खिरने ही लगते हैं। धारावाही कर्म खिरने लगते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें इनकार किया है न गुणश्रेणी का? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। वह तो ऊपर की अपेक्षा से बात है। बाकी वहाँ गुणश्रेणी निर्जरा है। देखो न! यहाँ। आहाहा! **अनुक्रम से मुनि होने पर...** देखो! समकित में से गुणश्रेणी कर्म की धारा क्षय होने लगती है पश्चात् मुनि हो, चारित्र अन्दर में प्रगट करे, संयम चारित्रदशा, वीतरागीदशा चारित्र।

चारित्र और शुक्लध्यान इसके सहकारी हो जाते हैं,... देखो! क्या कहा? **मुनि होने पर चारित्र और शुक्लध्यान इसके (समकित के) सहकारी...** भाई! ऐई! मुख्य समकित। उसका सहकारी चारित्र और शुक्लध्यान। समझ में आया? इतना वजन यहाँ दिया है। **अनुक्रम से मुनि होने पर चारित्र...** अर्थात् कि सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य वस्तु, निष्क्रिय ऐसा जो आत्मस्वभाव, इसमें दृष्टि पसारने से समकित का परिणमन उसे होता है। कहो, समझ में आया? **मुनि होने पर चारित्र और शुक्लध्यान इसके...** इसके अर्थात्? समकित हो, उस समकित को। समकित को चारित्र और शुक्लध्यान सहकारी है। साथ दिया है। समझ में आया? हें! ... सम्यक् ऊपर है न पूरा? कि जिस ध्येय को पकड़कर दर्शन हुआ, उसी और उसी को जब स्थिर हो, तब उस सम्यग्दर्शन का सहकार है। बाकी मूल तो सम्यग्दर्शन पूरे द्रव्य को पकड़ा है, वह साधन है, ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र मुख्य नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन की प्रधानता वर्णन करनी है न यहाँ? मूल चीज़ यह है न? इसका मूल यह है। दंसण मूलो धम्मो। धर्म का मूल दर्शन / समकित है। समकित बिना उसे चारित्र क्या? ओर समकित होने के पश्चात् चारित्र हुआ, वह सहकारी कहने में आया है। उसे उसने मदद की है, ऐसा कहते हैं। स्वयं ही परिणमन करता है, उसमें चारित्र की मदद है और शुक्लध्यान की मदद है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुणश्रेणी चौथे से?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे से शुरुआत होती है न। समझ में आया?

सम्यक्त्व के होते ही कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होने लग जाती है, अनुक्रम से... ऐसा कि अशुद्धता घटती जाती है। **मुनि होने पर चारित्र...** हो गया अन्दर। स्वरूप की लीनता, प्रचुर स्वसंवेदन और शुक्लध्यान, उसका नाम समकित के **सहकारी...** निमित्त सहकारी है। उपादान समकित को रखा। आहाहा! **तब सब कर्मों का नाश हो जाता है।** लो! तब चारित्र स्वरूप में रमणता और शुक्लध्यान होने पर... मूल तो समकित का परिणमन जो है ध्येय का, उस प्रकार से पर का आश्रय छोड़कर ध्येय विशेष उग्ररूप से परिणमता है अर्थात् उसमें समकित में वह चारित्र का सहकार हुआ और शुक्लध्यान का सहकार हुआ। आहाहा! वस्तु ही पूरी द्रव्य, पूरा चैतन्य द्रव्य को जहाँ अधिकार में लिया। समझ में आया? देखो! यह श्रावक को पहले यह करना, ऐसा कहते हैं। ऐसा का ऐसा समाजभूषण और फलाणा और फलाणा पदवी दे, (उससे) कुछ मिले ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बाहर का चारित्र किसी काम का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं। बाह्य चारित्र, वह चारित्र ही नहीं है। चारित्र तो स्वरूप में सम्यग्दर्शनसहित की रमणता, वह चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

तब सब कर्मों का नाश हो जाता है। देखो! गाथा बहुत सरस आयी। ८५ से शुरु है, नहीं? श्रावक और मुनि सुनो-सुनो, ऐसा कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने? ८५ में। हे

साधु, हे श्रावक! जो वीतराग ने कहा, वही बात मैं कहूँगा, उसे सुन, ऐसा। **'जिणेहि कहियं'** जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा है। पश्चात् कहा – हे श्रावक! समकित को प्रथम अंगीकार कर। ऐसा जिनेश्वरदेव ने गृहस्थ के लिये भी पहले यह भगवान ने कहा है, ऐसा तू सुन। ऐसा कहते हैं, देखो! आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ८८

अब ८८।

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं॥८८॥

जो कोई मुक्ति को प्राप्त हुए, पायेंगे और पाते हैं, वह समकित का माहात्म्य है। यह एक ही। आहाहा! समझ में आया? देखो! जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि हे श्रावक और साधु! तू सुन। भगवान ने–तीर्थंकरदेव, अनन्त तीर्थंकरदेवों ने ऐसा कहा है कि जितने अनन्त सिद्ध हुए, अभी महाविदेह में सिद्ध होते हैं और अनन्त सिद्ध भविष्य में होंगे, वह सब समकित का माहात्म्य है। वे कहें—नहीं, नहीं। यह समकित कुछ नहीं। चारित्र न हो तो समकित कुछ नहीं। धूल नहीं न, ऐसा करके हल्का बना देते हैं।

मुमुक्षु : चारित्र तो आवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु होता ही है उसे। समकित बिना चारित्र कैसा? पहले सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य है। समझ में आया? पश्चात् चारित्र की... यहाँ तो साथ में बात की। वस्तु के आश्रय से हुआ। विशेष आश्रय होने पर स्थिरता हो और शुक्लध्यान होता है। वह सब समकित का ध्येय है, उसके वे सब मददगार हैं, (ऐसा) कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या साध्य है,... विशेष क्या कहना? बहुत करके बहुत-बहुत क्या कहना, कहते हैं। उसमें क्या ध्येय है? **जो नरप्रधान...** नरवर-नरवर। नर के प्रधान पुरुष **अतीत काल में सिद्ध हुए हैं...** वे भूतकाल

में मुक्ति को प्राप्त हुए **आगामी काल में सिद्ध होंगे वह सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।** देखो! आहाहा! समझ में आया? **बहुत कहने से क्या साध्य है...** बहुत कर-करके क्या कहना है? उसमें क्या साध्य सिद्ध होगा? यह वस्तु है। जिसने भगवान आत्मा को परिपूर्ण आनन्दकन्द ध्रुवधाम को पकड़ा और तेरा समकित, तेरे केवलज्ञानादि का अधिकार में लिया, बस! वह समकित ही भूतकाल में अनन्त मोक्ष पधारे, वह समकित का माहात्म्य है, भविष्य में पधारेंगे, वह समकित का माहात्म्य है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि समकित अन्तर्मुख का परिणमन प्रगट करता है। और अन्तर्मुख के परिणमन को ही मुक्ति का कारण होता है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल को कहाँ मेल है? उपशम समकित का शुद्ध उपयोग होता है। काल का शास्त्र जाने। कहो, समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं... यहाँ तो उपशम के सामने सामान्य समकित लिया है। उपशम होकर तुरन्त क्षयोपशम हो और क्षायिक हुए बिना रहे ही नहीं। यहाँ तो यह बात है। उसका यह हुआ, वह वापस पड़नेवाला नहीं है। वह धारावाही चारित्र मदद और शुक्लध्यान की मदद और... एक ही बात है। समझ में आया?

भावार्थ :- इस सम्यक्त्व का ऐसा माहात्म्य है कि जो अष्टकर्मों का नाशकर... आठ कर्म का नाश करके, समकित आठ कर्म का नाश करे, देखो! जो **मुक्ति प्राप्त अतीत काल में हुए हैं तथा आगामी होंगे, वे इस सम्यक्त्व से ही हुए हैं और होंगे,...** समकित से ही मुक्ति को प्राप्त हुए और समकित से ही प्राप्त होंगे। आहाहा! मूल चीज़ का पूरा विवाद उठा और रास्ता दूसरा ले लिया। अब उसमें से वापस हटना (कठिन पड़ता है)। अन्तर वस्तु जो है, उसकी तो पूरी बात पड़ी रही। समझ में आया? और ऊपर के थोथा ग्रहण करे, उसमें मिथ्यात्व का पोषण होता है। सहज धारा नहीं मिलती और सहज बिना मुक्ति का उपाय कृत्रिम और हठ नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है? गृहस्थ की बात चलती है। गृहस्थ की तो चलती है। गृहस्थी को समकित अंगीकार करना और उस समकित द्वारा आगे बढ़कर चारित्र सहकारी शुक्लध्यान, पश्चात् मोक्ष जायेगा, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो गृहस्थी की ही बात चलती है।

मुमुक्षु : पहले चारित्र ग्रहण करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र-फारित्र कैसा समकित बिना? समझ में आया? चारित्र अर्थात् रमना, चरना। परन्तु किसमें? जो चीज़ अनुभव में आयी नहीं, उसमें चरना कहाँ से? रमना कहाँ से?

मुमुक्षु : उसके अट्ठाईस मूलगुण में चर ले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : चर ले राग को। राग को चर ले फिर...

मुमुक्षु : भूमि शुद्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी भूमि शुद्धि? भूमि शुद्धि तो यह समकित, वह शुद्धि है। समकित, वही मोक्ष की पात्रता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ... पात्रता ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से पात्रता? यह बात... समझ में आया?

आचार्य कहते हैं... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **बहुत कहने से क्या?** तुझे बहुत क्या कहें? **यह संक्षेप से कहा जानो कि मुक्ति का प्रधान कारण यह सम्यक्त्व ही है।** लो!

मुमुक्षु : पूरा क्रियाकाण्ड उड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रियाकाण्ड उड़ कहाँ गया? था कहाँ उसमें? मोक्ष का कारण क्रियाकाण्ड है नहीं। क्रियाकाण्ड बीच में आता अवश्य है परन्तु वह बन्ध का कारण है। यहाँ तो मुक्ति का कारण बतलाना है न? आहाहा! ऐसा कि आचार्य ने इसमें कहीं दिया नहीं। महाव्रत के परिणाम और अणुव्रत के परिणाम से मुक्ति होती है या कुछ

(यह तो आया नहीं)। वह तो बन्ध है, वह तो बन्ध का कारण है।

यहाँ तो आत्मा का स्वभाव अखण्ड अभेद, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन ने ऐसा सिखाया कि उसका उग्र आश्रय ले तो शुद्धि बढ़ेगी। उस सम्यग्दर्शन में यह आया कि जिसके आश्रय से मैं हुआ हूँ, उसका आश्रय विशेष ले तो चारित्र होगा। ऐसा फलेगा ही परन्तु इस रीति से। जिसके आश्रय से मैं प्रगट हुआ हूँ, उसका आश्रय तू ले, पर्याय नयी... आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही कारण से दो कार्य नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही कारण है तीन होकर...

मुमुक्षु : समकित कार्य, चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चारित्र, वह समकित की स्थिरता, वह चारित्र। द्रव्य का आश्रय होकर स्थिरता हो, वह चारित्र। परन्तु यहाँ तो कहते हैं द्रव्य का आश्रय मैंने लिया, उसका ही आश्रय तू ले, तो चारित्र होगा।

मुमुक्षु : समकित कहता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समकित ऐसा कहता है। समकित ऐसा सिखाता है। इस प्रकार जो ऐसा वह बतलाता है कि मैं जिसका आश्रय लेकर प्रगट हुआ, उसका आश्रय ले। स्व के आश्रय से तुझे आगे बढ़ने का चारित्र बनेगा और शुक्लध्यान। दूसरा कोई उपाय नहीं है। बराबर है? पण्डितजी! मार्ग तो यह है, भाई! लोगों को मार्ग की रीति की ही खबर नहीं। रीति की खबर बिना उल्टे मार्ग में चले और (मानते हैं कि) हम मार्ग नजदीक करते हैं। वह अनादि से भ्रम में पड़ा है। ऐई! प्रकाशदासजी! क्या है इसमें? यह श्रावक को कहा है। श्रावक को पहले महाव्रत लेना, फिर अणुव्रत लेना, ऐसा लिखा है? नहीं?

मुमुक्षु : चारित्र ग्रहण किये बिना समकित प्रगट ही नहीं होता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। और एक व्यक्ति ऐसा भी कहता है। चारित्र किसे कहना, यह तो खबर नहीं।

यहाँ तो यह कहते हैं, **मुक्ति का प्रधान कारण यह सम्यक्त्व ही है।** सम्यक्त्व ही है। **ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है,...** देखो! ऐसा न जानो कि गृहस्थ को... ऐई! कपूरचन्दभाई! देखो! लिखा है। ऐसा न जानो कि गृहस्थ को क्या धर्म? देखो! **ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है, यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा ही है कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** गृहस्थ को सम्यग्दर्शन है, वह सब धर्म को सफल करनेवाला सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? ऐई! रतिभाई! अब कितने ही कहे, हमको मुश्किल से जँचे वह महिलाओं को जँचे नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! लड़कों को जँचे नहीं।

एक बार ऐसा बना था। मांगरोल में एक मन्दिरमार्गी था। उसका जवान लड़का बीमार पड़ा। मरने की तैयारी थी। स्त्री कहे कि मैं अमुक को मानूँ। वह कहे नहीं माना जाता। पहले चूड़ा तोड़, फिर मान। ऐसा बना हुआ है। मन्दिरमार्गी था। वह कहे कि मेरा पुत्र मरता है। मैं अमुक को मानूँगी। कुछ था। ऐसा कुछ अन्यमति का। हनुमान या ऐसा कुछ मानता। मेरे घर में दूसरी मान्यता नहीं होगी। लड़का मेरा है या नहीं? मर जाये तो भले मर जाये। परन्तु दूसरी मान्यता मेरे नहीं। तुझे माननी हो तो पहले चूड़ा तोड़। मैं तेरा पति नहीं। फिर माना जाये। ऐई!

मुमुक्षु : कठोर सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर...

मांगरोल में कहीं हुआ था। बहुत वर्ष पहले सुना हुआ। बात बहुत आवे न यहाँ? नेमिदासभाई! तुम तो बाहर भटकते थे, कलकत्ते और सर्वत्र। यहाँ तो सब बातें आती हैं। ऐसा एक व्यक्ति कहे। दूसरी मान्यता मेरे घर में नहीं होती। लड़का मेरा है या नहीं? मुझे उसे रखने का भाव नहीं? किसी की मान्यता होगी और लड़का रहेगा? ऐसी भ्रमणा मेरे घर में नहीं। और तुझे करना हो तो पहले चूड़ा तोड़ डाल। विधवा हो। मैं तेरा पति नहीं। शोभालाल! समझ में आया या नहीं? दूसरी मान्यता नहीं चलती।

लड़का बीमार पड़ा। अन्तिम स्थिति। जवान। अन्तिम स्थिति हो गयी, इसलिए उसकी बहू को ऐसा हुआ, उस लड़के की माँ को कि किसी को मानते हैं। कोई होगा चाहे जो। अन्य में न हो तो कोई अम्बाजी होगी। मेरे घर में दूसरे को नहीं माना जायेगा।

लड़का मेरा नहीं? मर जाये तो मुझे अच्छा लगता है? और मान्यता करे तो बच जायेगा? यह मेरी श्रद्धा नहीं है।

मुमुक्षु : त्रिया हठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री हठ, वह अलग। यह तो पति ने ऐसा कहा। मुझे तो उस पति का कहना है। वह कहे नहीं, यहाँ हमारे घर में दूसरा नहीं माना जाता। तुम्हारे कहाँ कठिन है? तुम कहो, ऐसा मानते हैं। वहाँ कहाँ ऐसा है? समझ में आया? कंचनबेन भक्ति करती है, मैंने देखा है न! बराबर प्रेम से ऐसे भक्ति करे। भगवान के सामने अपने मन्दिर में पोरबन्दर। वहाँ दूसरी मान्यता हो, उसे क्या है। ऐई!

वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त दूसरे की मान्यता कैसी? तीन लोक का नाथ वीतराग सर्वज्ञ, सौ इन्द्रों के पूजनीक, इसके अतिरिक्त दूसरे की मान्यता कैसी? यह यहाँ कहेंगे। ९० में। ९० में समकित के बाह्य लक्षण वर्णन करेंगे। यह तो ८८ चलती है न? **ऐसा मत जानो...** ऐसा न जानो। **कि गृहस्थ के क्या धर्म है,...** गृहस्थ में क्या धर्म है, ऐसा नहीं। गृहस्थ में महा धर्म है समकित का, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : गृहस्थ के व्रत कहाँ चले गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत कहाँ थे? व्रत कब? (विकल्प), व्रत ही कहाँ है? वह तो राग है। बन्ध का कारण है। ऐई! आहाहा! देखो! पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं।

ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है, यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है... गृहस्थ को भी सम्यक्त्व धर्म ऐसा है **कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** वह समकित होवे तो सब धर्म सफल, नहीं तो सफल है नहीं। समझ में आया? इस चारित्र को, शुक्लध्यान को, सम्यग्ज्ञान को सबको सफल करनेवाला सम्यग्दर्शन है। आहाहा! आया नहीं रत्नकरण्डश्रावकाचार में? वह कर्णधार है। कर्णधार समझे न? खेवटिया। क्या कहते हैं? खेवटिया कहते हैं? समन्तभद्राचार्य कहते हैं। सम्यग्दर्शन खेवटिया है। वह जहाज चलानेवाला। पूरा द्रव्य चलानेवाला शुद्ध में वह सम्यग्दर्शन है। उसकी ओर परिणमन करना, वह द्रव्य समकित में सब ताकत है। समझ में आया? **यह सम्यक्त्व**

धर्म ऐसा है... गृहस्थ को। **कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** सम्यग्ज्ञान, शान्ति, स्थिरता इत्यादि-इत्यादि धर्म उसके कारण सफल है। नहीं तो क्या है?

★ ★ ★

गाथा - ८९

आगे कहते हैं कि जो निरन्तर सम्यक्त्व का पालन करते हैं, उनको धन्य है :- देखो! आहाहा!

ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं॥८९॥

स्वप्न में भी यदि यह बात निकलती हो तो नकार करे कि नहीं। स्वप्न में भी चर्चा-वार्ता निकलती हो तो कहे, ऐसा नहीं होता। मार्ग स्व के आश्रय से है। समकित के अतिरिक्त कोई धर्म-बर्म है नहीं। देखो! स्वप्न में भी कहते हैं। स्वप्न आवे तो उसे ऐसा आवे। समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान को भूलने की बात तो नहीं आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गयी न। तेरी दृष्टि कर अन्दर में, भगवान के ऊपर से दृष्टि छोड़ दे। कपूरचन्दभाई! व्यवहार आयेगा ९० में। व्यवहारश्रद्धा समझाने का चिह्न बतायेंगे। लक्ष्य छोड़। पर का लक्ष्य छोड़े बिना स्व का लक्ष्य होगा नहीं। ऐसे भी जाये, ऐसे भी जाये-ऐसी एक म्यान में दो तलवार समाये? तलवार समझते हो? पर के ऊपर भी लक्ष्य करना और स्व के ऊपर भी लक्ष्य करना, ऐसे दो नहीं चलते। स्व लक्ष्य में सबको भूल जा। अरे! भगवान तो ठीक परन्तु भगवान ने बतलाया हुआ ज्ञान जो ज्ञात हुआ, उसे भी भूल जा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ गृहस्थ की बात करते हैं। कपूरचन्दभाई! पाठ में श्रावक का नाम लिया है, देखो! लोगों को सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, माहात्म्य क्या? वह क्या कैसे महा अनन्त पुरुषार्थ से स्व के आश्रय से होता है... स्व भी कैसा? भगवान ने कह

वैसा। वह आत्मा भी... कहा वैसा अर्थात् कि वस्तु ऐसा ज्ञान करके उसकी ओर से लक्ष्य छोड़कर कर, तब किया कहलाये। क्या कहा?

मुमुक्षु : आत्मा की श्रद्धा... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रद्धा होती है, आगे कहेंगे। परन्तु वह व्यवहार हो, उसे पहिचानने का साधन है, इतना। निश्चय प्रगट हुआ हो, उसे ऐसे व्यवहार की श्रद्धा होती है, ऐसा। ९० (गाथा) में आयेगा। '**हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे। णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।**' गुरु निर्ग्रन्थ वीतरागी और प्रवचन शास्त्र। चार की श्रद्धा उसे व्यवहार से अन्दर होती है। विकल्प में उस जाति की होती है। परन्तु वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन करे तो यह भाव, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं।।८९।।

स्वप्न में भी जिसने मलिन नहीं किया। स्वप्न में आवे तो भी सम्यग्दर्शन, वह आत्मा के अनुभव की प्रतीति। इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। समझ में आया? आहाहा! बड़े देव ऊपर से डिगाने के लिये उतरे तो वह बदले नहीं। स्वप्न में भी कहते हैं कि च्युत नहीं हो। स्वप्न आवे तो यह आवे। देखो! स्वप्न में भी मलिन न करे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वप्न में भी मलिन न होने दे...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वप्न में ऐसा कि यह समकित ऐसा है, व्यवहार से होता है, ऐसा स्वप्न में भी नहीं होता।

मुमुक्षु : पर आश्रय से होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पर आश्रय से समकित होता है और उससे होता है, यह बात स्वप्न में भी उसे नहीं आती। स्वप्न में भी समकित मलिन नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले समझण करे कि ऐसी चीज़ है। समझे बिना प्रयत्न कहाँ करेगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु समझावे तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझे, तब गुरु दूसरे को कहा जाये। पहले गुरु स्वयं आत्मा हो, तब समझानेवाले को उपचार से गुरु कहा जाता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें तो लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें यह लिखा है। यही आयेगा। देखो! इस गाथा के बाद यही गाथा आयेगी। निश्चय ऐसा हुआ, उसे व्यवहार ऐसा होता है। समझ में आया? इसके पश्चात् ९० गाथा में यही आता है। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब! केवलज्ञानी की पहेली हल कर डाली है। कोयडा-कोयडा कहते हैं न। समस्या (पहेली)।

अर्थ :- जिन पुरुषों ने मुक्ति को करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया, उन पुरुषों को धन्य है,... आहाहा! समझ में आया? देखो न! आचार्य भी कितने प्रमोद से बात करते हैं! हें! भगवान! तेरे घर में तू प्रविष्ट नहीं हुआ और दूसरी मलिनता की बातें तूने की, वह वस्तु नहीं है। स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। स्वप्न में भी परद्रव्य के आश्रय से हो, यह बात उसे जँचती नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ... जबरदस्ती नाम लिख डाले तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखे किसलिए?

मुमुक्षु : हमारे तो श्रद्धा में अन्तर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते होंगे न। यह सेठ भी जाते हैं। तुम भी जाते होंगे कहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जबरदस्ती लिख डाले। ठीक है। यह वहाँ काका-काकी है न, गाँव के सेठिया हैं, ऐसे और ऐसे। निवृत्त व्यक्ति, पैसेवाले को सब सामने बुलाते हैं। कुछ और देना हो। आशा हो न, कुछ देंगे। ऐसे को डालकर दिया हो तो? उन्हें भी ऐसा

हुआ है। उनका नाम लिखा एक उस बड़े बाबा में। सामने बैठावे, जाना पड़े वहाँ मुंडाने। ऐसा नहीं होता, कहते हैं। उसके गाँव में बड़े व्यक्ति है न। ... कुछ बाबा का होगा। अपने को कुछ खबर नहीं। परन्तु कोई कहे, चलो, यहाँ मन्दिरमार्गी साधु महाराज आये हैं। कुछ होगा कौन जाने। नाम लिखा हो तो क्या करे? नाम लिखे। हम भाई कहीं जाते नहीं और हम किसी का मानते नहीं, इसलिए यदि अनादर हो तो तुमको ठीक नहीं लगेगा। ... हम आयें। चरणवन्दन करें, ऐसा हमारे में नहीं है। वहाँ शर्म-सिफारिश नहीं रखे। यह वाते। भाई! शोभालालजी! भाई को कहते हैं। जहाँ-तहाँ जाते हैं न? पहले गये होंगे। अब तो क्या जाये।

मुमुक्षु : पहले जाकर नाम काटना (मिटाना)?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे तो कौन कहते हैं जबरदस्ती सिपाही लेकर बुलाते हैं तुमको? सिपाही आकर ले जाता है तुम्हें पकड़कर? तुम्हारा नाम लिखा, आओ वहाँ। यहाँ तो कहते हैं कि अभी व्यवहार का ठिकाना सरीखा नहीं और निश्चय का ठिकाना कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया... देखो! कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को, कुगुरु-कुशास्त्र को वन्दन करना, प्रशंसा करे (कि) बहुत अच्छा किया। क्या धूल कुछ अच्छा किया? बहुत त्याग किया हो और बहुत वह किया हो और महीने-महीने के अपवास कुगुरु और कुशास्त्र के माननेवाले ने। उसमें महीने-महीने के अपवास किये हों। क्या कहते हैं सेठ? तो प्रशंसा न करे, ऐसा कहते हैं। महीने-महीने के अपवास करते हैं न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शंका-आशंका...

उन पुरुषों को धन्य है,... आचार्य कहते हैं, देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य मुनि। छठवें-सातवें गुणस्थानवाले कहते हैं, जिसने स्वप्न में भी समकित को मलिन नहीं किया। धन्य है, भाई! आहा! कहो, आचार्य भी धन्य कहते हैं! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रमाण कहते हैं। आहाहा!

'**एवं जिणेहि**' कहा न? जिन ने कहा है, बापू! वीतराग ऐसा कहते हैं, वह मैं कहता हूँ। आहाहा! समझ में आया? **उन पुरुषों को धन्य है, वे ही मनुष्य हैं,...** लो ठीक! '**मणुया।**' है न अन्तिम शब्द? वह मनुष्य है। बाकी पशु है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : हिलता-चलता मुर्दा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्दा है। आहाहा! आगे लेंगे। वह पशु है।

बिना मनुष्य पशु समान है,... वे ही कृतार्थ हैं,... कृतार्थ अर्थात् उसने कार्य किया है, ऐसा कहते हैं। उसने कार्य किया। कृतार्थ-सुकृत उसने किया। बाकी सुकृत दूसरा है नहीं। दया, दान, व्रत और विकल्प, वह सुकृत नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट किया, मलिन न होने दिया। स्वप्न में भी अतिचार नहीं लगा। धन्य है, कहते हैं। वह कृतार्थ है। उसने काम किया। उसने करने का था, वह किया। यह करने का मनुष्यपने में है। समझ में आया?

वे ही शूरवीर हैं,... लो! वह वीर है। वीर-वीर। आचार्य को भी कितनी प्रशंसा! कड़क आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य। न माने, अभव्य है। ऐसी बात उनकी जहाँ-तहाँ। बहुत जगह आता है। अभव्य का संक्षेप में। यह तो शूरवीर है। युद्ध में लड़नेवाले, वे पामर हैं। भगवान आत्मा सामने स्वरूप का समकित प्रगट किया और विभाव से जिसने पीठ ली है, वह शूरवीर है। समझ में आया? **वे ही पण्डित हैं।** लो।

भावार्थ :- लोक में कुछ दानादिक करें, उनको धन्य कहते हैं... कोई दान करे, दो-पाँच-दस लाख रुपये खर्च करे तो ओहोहो! भाई! धन्य भाई धन्य! **दानादिक करें...** माँ-बाप का कोई बड़ा मृत्युभोज करे। ओहो! भाई! पैसे दिये, बाप को प्रकाशित किया, ऐसा कहे। बाप को वृक्ष के ऊपर रखे थे न कितने ही, ऐसा कहते हैं। मर जाये न। मृत्युभोज नहीं किया हो। मृत्युभोज करते हैं न? कारज। दाडो समझते हो? (मृत्यु के बाद) भोजन करावे न? प्रीतिभोज। यहाँ कहते हैं कि ऐसे जो पीछे भोजन करे या करावे, उसका यहाँ गुणगान नहीं किया। ऐसे तो सब बहुत होते हैं, कहते हैं। वह कोई वस्तु नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं न! **दानादिक करें, उनको धन्य कहते हैं...** दुनिया धन्य

कहे, ऐसा। दुनिया धन्य कहे। **तथा विवाहादिक यज्ञादिक करते हैं...** देखो! विवाह आदि आया, देखो न! विवाह आदि में यज्ञ करे, पैसा खर्च करे, दानादि दे, पगड़ी दे, कुटुम्ब में-जाति में ... दे। लोग कहे, ओहोहो! भाई! भगवान ने पैसे दिये तो खर्च किये न। दो-पाँच लाख विवाह में खर्च कर डाले। **उनको कृतार्थ कहते हैं,...** दुनिया उसे कृतार्थ कहे। कार्य किया, बापू!

युद्ध में पीछे न लौटे, उसको शूरवीर कहते हैं,... देखो! अज्ञानी तो ऐसा सब कहते हैं, जगत में कहते हैं। **बहुत शास्त्र पढ़े, उसको पण्डित कहते हैं।** बहुत शास्त्र पढ़ा हो उसे अज्ञानी, पण्डित कहते हैं। अज्ञानी को कहाँ खबर, क्या चीज़ है। **ये सब कहने के हैं;...** कहने के हैं, लो! **जो मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को मलिन नहीं करते हैं, निरतिचार पालते हैं, उनको धन्य है,...** लो! आहाहा! गजब गाथा ली है। समझ में आया? **ये सब कहने के हैं;...** सब अर्थात् सभी। ऊपर कहे वे (सभी)। कहने मात्र हैं। वे कोई शूरवीर भी नहीं और कुछ कार्य किया नहीं। कुछ पण्डित नहीं शास्त्र पढ़ा वह। आहाहा!

मुमुक्षु : पण्डितों को...

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित किसे कहना, यह तो कहते हैं। जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह पण्डित है। आहाहा!

मुमुक्षु : पठन की डिग्री काम नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : पठन-बठन वहाँ क्या काम आवे?

मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को मलिन नहीं करते हैं, निरतिचार पालते हैं, उनको धन्य है, वह धन्य है, वे ही कृतार्थ हैं,... देखो! उसने कार्य किये। आहाहा! जिसे सम्यक्त्व हुआ, वह कार्य उसने किया। समाप्त। वह तो मुक्ति पानेवाला, पानेवाला और पानेवाला है। आहाहा! चाहे तो पशु का देह हो, स्त्री का देह हो। वह देह चाहे जो हो परन्तु जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया और निरतिचार किया, वह धन्य है, कहते हैं। उस मंडुक-मेंढ़क को धन्य है, ऐसा कहते हैं। चाण्डाल को धन्य है। आहाहा! विवाह आदि में बड़े काम करे न? विवाह-बिवाह में। ऐई बड़ा खर्चा लाख-दो लाख का। पहेरामणी

दे। वह इसे दे, वह उसे दे। कन्यावाले, वरवाले को दे और वरवाला उसे दे। ओहोहो! परन्तु क्या विवाह किया और...

मुमुक्षु : ऐसा विवाह गाँव में कभी नहीं हुआ था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा भी कहे। ऐसा कभी हमने गाँव में देखा नहीं, ऐसा विवाह। लोगों ने भाई मांडवा... ओहोहो! दारूखाना फोड़ा है उसमें। दारूखाना समझते हो या नहीं?

मुमुक्षु : आतिशबाजी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आतिशबाजी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो अब हुआ। पहले दारूखाना था। हमने तो यह सब देखा है, उसकी बात है। तुम्हारे है न वहाँ एक पालेज से चमारडी, वहाँ विवाह हुआ था वोरा का। नहीं दुकान के साथ? अभु-अभु। अभु नहीं? अभु का लड़का है न अभी वह अभु। बहुत समय की बात है। (संवत्) १९६६-६७। वहाँ उसका विवाह था। वहाँ गये थे तो हमारे जीमने का अलग। ब्राह्मण। परन्तु दारूखाना। इतना छोटा गाँव चमारडी। अभी दूसरा नाम है। नगीनपुर नाम किया है। दारूखाना वह, ओहोहो! वोरा था, हों! लोटिया नहीं। ... ओहोहो! क्या भाई! वापस ... बुलाये हुए। वे करे। ... बात है। मैं और कुँवरजीभाई दो गये थे। दो जने गये थे। धूल के भी नहीं सब, होली है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अभेददृष्टि प्रगट की और स्वप्न में भी जिसे दोष लगा नहीं, उसे हम धन्य कहते हैं, कृतार्थ कहते हैं, शूरवीर कहते हैं। वह पण्डित और वह मनुष्य है। उसे मनुष्य कहते हैं। नहीं तो मनुष्य भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मनुष्यरूपेण मृगा चरंति - नहीं आता? **इसके बिना मनुष्य पशु समान है, इन प्रकार सम्यक्त्व का माहात्म्य कहा।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)